अम्बेडकरवाद के संदर्भ में काशीराम का दलित आन्दोलन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डी० फिल० : उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध – प्रबन्ध

2003

पर्यवेक्षक
डा० श्रीमती रंजना कक्कड़
रीडर, मध्य/आधुनिक इतिहास
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोध छात्र
रवि कुमार मिश्र
मध्य/आधुनिक इतिहास
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हृदय वाक्य

परमादरणीय प्रात स्मरणीय परमपूज्य बाबा जी स्व0 श्री राम नरेश मिश्र एव पिता जी स्व0 श्री राम देव मिश्र को मै यह शोध–प्रबन्ध समर्पित करता हूँ ।

बाबा जी एव पिता जी की महती इच्छा थी कि उनका कुलवर्धक डाक्टरेट की उपाधि हासिल करे । इन्ही के आशीर्वचनो के परिणामस्वरूप यह शोध ग्रन्थ मै पूर्ण कर सका हूँ ।

रवि कुमार मिश्र

जो कुछ मैं कर सका, वह जीवन भर मुसीबते सहन करके विरोधियों से टक्कर लेने के बाद कर पाया हूँ । जिस कारवा को आप यहा देख रहे है, उसे मै अनेक कठिनाइयो से यहा ला पाया हूँ । अनेक अवरोध, जो इसके मार्ग मे आ सकते है के बावजूद इस कारवा का बढते रहना है । अगर मेरे अनुयायी इसे आगे ले जाने मे असमर्थ रहे तो उन्हे इसे यही पर छोड देना चाहिये, जहा पर यह अब है । पर किन्ही भी परिस्थितियो मे इसे पीछे नहीं हटने देना हैं । मेरी जनता के लिये मेरा यही सन्देश हैं ।

डा0 भीमराव अम्बेडकर

आभार

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के सृजन मे जिन विद्वान गुरूजनों, मित्रो एव सहयोगियो से मुझे सहायता मिली, उनके प्रति आभार प्रदर्शन करना औपचारिकता मात्र है, क्योकि ऐसा करके उनके आभार से मुक्ति असम्भव है, फिर भी ऐसा न करना एक कर्तव्य की अवहेलना ही होगी ।

सर्वप्रथम मै अपनी मार्गदर्शक परमपूज्य आदरणीया डा0 श्रीमती रजना कक्कड जी (रीडर, आधुनिक इतिहास विभाग इ0वि0वि0 इलाहाबाद) का चिरऋणी हूँ । जिन्होने न केवल इस विषय पर पी0एच0डी0 उपाधि हेतु शोधकार्य का सुझाव दिया, अपितु अध्ययन, अध्यापन, कौटुम्बिक एव सामाजिक व्यस्तता से परिपूर्ण दिनचर्या के होते हुये भी शोध कार्य हेतु अपने विद्वतापूर्ण निर्देशन की सहर्ष स्वीकृति भी प्रदान की। वस्तुत यह स्वीकृति मुझ अल्पज्ञ हेतु विद्याप्रदायिनी सरस्वती का सक्षात अनुग्रह ही था। आपकी विद्याप्रदायिनी सरस्वतीस्वरूपा विद्वता व निर्देशकता के परिणामस्वरूप ही मै यह शोध स्तरीय गहन अध्ययन पूर्ण कर सका ।

इस श्रमसाध्य शोधसृजन मे मुझे प्रतिपल आपका सुस्पष्ट निर्देशन, स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन एव अध्ययन सम्बधी महत्वपर्ण योगदान प्राप्त होता रहा है । आपकी इसी महान कृतज्ञता से ही यह गुरूतर शोधकार्य अस्तित्व का सचयन कर सका है वस्तुत आपकी कृपा के बिना शोध कार्य कदाचित पूर्ण नही हो सकता था । एतदर्थ आपके प्रति हार्दिक आभार एव कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए शिरसा नमन करता हूँ ।

इसी क्रम मे परम सम्मान्य एव आदरणीय विभागाध्यक्ष महोदय प्रो0 श्री एन0 आर0 फारूकी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । जिनके महनीय सुझावों एव निर्देशो से शोध प्रबध पूर्णता को प्राप्त कर सका। परमादरणीय एव श्रद्धेय प्रो0 श्री

विनय चन्द पान्डे जी के समय–समय पर दिये गये निर्देशो व पथ–प्रदर्शन की सकुलता से ही मैं आगे बढ सका । अत उनको भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ । परमादरणीय प्रो0 श्री सुशील श्रीवास्तव जी के प्रति हार्दिक आभार एव कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । जिन्होने हर क्षण मार्ग दर्शन करते हुये शोधप्रबन्ध विषयक समस्याओ के निराकरण मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया । इसी के साथ–साथ मैं सम्पूर्ण मध्य/आधुनिक इतिहास विभाग को हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ क्योकि कही न कहीं सम्पूर्ण विभाग का योगदान किसी भी शोध प्रबन्ध मे छिपा रहता है ।

किसी भी व्यक्ति के विकास मे वस्तुत उसके परिवार का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिसमे परिवार के सभी सदस्यो का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है । सर्वप्रथम तो प्रात स्मरणीय परमपूज्य तात श्री एव पिता श्री के आशीर्वचनो को प्रणाम करता हूँ । तात श्री और पिता श्री दोनो, ही असामयिक रूप से काल कवलित हो गये । उनकी बडी आकाक्षा और आशीर्वचनो का एक बडा हिस्सा था कि उनका पुत्र पी0एच0डी0 उपाधि हासिल करे, परन्तु काल के निर्दयी स्वरूप को किसने पहचाना है । काल ने उन्हे अपना ग्रास बना लिया। उनकी आत्मा स्वर्ग में अधिष्ठित होकर आज अति प्रसन्न होगी कि उनके कुल वश वृद्धिकारक ने आज उनकी इच्छाओ और आशीर्वचनो को पूरा कर दिया है ।

जिस पूजनीया ममतामयी माँ श्रीमती राम दुलारी मिश्र एव बडी माता श्रीमती श्रृगारी देवी की मेरे अध्ययन के प्रति जन्म से लेकर अधावधि सदा ममत्वपूर्ण प्ररेणाये रही है । उनके प्रति अभार या कृतज्ञता व्यक्त करना उनके महिमामय सम्मान को अल्पीकृत करना होगा । इन चरणो मे सदैव विनयावनत रहते हुये कर्म–क्षेत्र में उन्नत शिखर प्राप्त करू । यही मेरी हार्दिक कामना एव ईश्वर से प्रार्थना है । इसी सन्दर्भ मे आदरणीय चाचा श्री ब्रह्म देव मिश्र के विशिष्ट योगदान को स्मरण करते हुये किन शब्दो मे विनयावनत होऊ, समझ मे नही आता। आजीवन स्नेहाकाक्षी मैं स्नेह निर्झर से सिचित होता रहूँ यही हार्दिक अभिलाषा है। इन्ही भावो मे बृहद

परिवार के सभी सदस्यो के सहयोग के लिये कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । परिवार के सदस्य धर्मदेव जी का विशिष्ट आभार व्यक्त करता हूँ ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में विशिष्ट सहयोग के लिये मैं अपने विशिष्ट सहयोगियो रामकृष्ण, सत्येन्द्र शैलेन्द्र, राकेश, सुनील आदि को विशिष्ट आभार व्यक्त करता हूँ । इसी क्रम मे मै अपने उन मित्रो को भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होने शोध को विशिष्ट परिष्कृत बनाने मे लगातार हमे प्रेरणा व सलाह से युक्त किये रखा । ये मित्र डा0 राजेन्द्र प्रसाद पान्डे (प्रवक्ता हिन्दी चम्बा) डा0 सिद्धार्थ शकर (प्रवक्ता हिन्दी सीवान) डा0 मधुप कुमार (प्रवक्ता हिन्दी जौनपुर) श्री कृष्ण कुमार गुप्त (लेबर आफिसर उ0प्र0 सरकार) हैं। इसी क्रम में श्री सुधांशु व श्री कृष्ण कान्त राय को भी आभार ज्ञापित करता हूँ। इन लोगो के कारण ही मेरा बृहद् कार्य आसानी से पूर्ण हो सका । अतत मैं उन सबका जिनका भी शोधप्रबध पूर्ण कराने मे जरा भी सहयोग रहा है सभी को हार्दिक व विशिष्ट आभार व्यक्त करता हूँ, साथ ही सहयोग के लिये धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ ।

श्रमसाध्य कम्प्यूटर टकण कार्य को कुशलतापूर्वक शीघ्रता के साथ पूर्ण करने के लिये मै श्री खुर्शीद आलम खान को शुक्रिया अदा करता हूँ ।

विनयावनत

रवि कुमार मिश्र

रवि कुमार मिश्र

विषय-सूची

भूमिका

भूमिका

महादेव गोविन्द रानाडे ने भारतीय समाज की मानसिकता का वर्णन प्रश्न वाचक चिन्ह से किया था "हम लोग इन दिनो भी अपने देशवासी दलितो के साथ किस प्रकार का व्यवहार कर रहे है ? ऐसे समय मे जब हमे अपने देश के लिये हाथ से हाथ मिलाकर काम करना चाहिये, हम लोग अपने पुराने प्रभुत्व के विशेषाधिकारों को छोडने को तैयार नहीं हैं और उन्हे (दलितों को) निम्न बनाये रखने पर जोर दे रहे है । इस समय हम किस तरह शुद्ध भावना से शासक वर्ग (अग्रेंज) के सदस्यो को दोष दे सकते हैं, जो हम लोगों की अवमानना करते हैं ।"

रानाडे का यही यक्ष प्रश्न भारतीय समाज मे आज भी यथावत विद्यमान है । अत्याधुनिक विज्ञान एव तकनीकी से युक्त इस विश्व का कोई कोना आज दुर्लघ्य नहीं रहा, किन्तु दुर्भाग्य है कि मनुष्य अभी भी जातिवादी सोच का शिकार है । देश मे दलित जातियो को द्वितीय कोटि का नागरिक आज भी माना जाता है । विवेकानन्द ने कहा कि उच्च वर्गो के लोगो ने अतीत के सास्कृतिक ज्ञान के अक्षय धरोहर को सर्व सुलभ नहीं कराया और सबके बीच समरसता का भाषण परन्तु कटुतापूर्ण व्यवहार किया जिससे देश अध पतन को पहुंचकर विदेशियों के पैरो तले रौदा गया है । डा0 लोहिया ने महसूस किया कि ऊची जातिया सुसस्कृत पर कपटी हैं, निम्न जातिया थमी पर बेजान है ।

इन बेजान जातियो को आवाज देने का प्रयास किया महात्मा फूले व डा0 अम्बेडकर ने । डा0 अम्बेडकर आजीवन समतावादी समाज की स्थपना हेतु सघर्ष करते रहे । उन्होने जीवन मे किसी का शोषण नहीं किया परन्तु उनके विरूद्ध आक्रोश ऐसा कि जैसे उन्होने किसी के हिस्से को हडप लिया हो । उन्होने कभी

तार्किकता से इनकार नही किया लेकिन तिरस्कार ऐसा कि जैसे वे 15वीं सदी के पोगापन्थी हो । उन्होंने कभी राष्ट्रीय आजादी का विरोध नही किया परन्तु धारणा ऐसी कि जैसे उन्होने ही राष्ट्र की आजादी को रोक रखा हो । उन्होने कभी बहुराष्ट्रवाद की वकालत नही कि परन्तु आरोप ऐसे कि वह स्वय अलग राष्ट्र की माग कर रहे थे । उन्होंने कभी राष्ट्र के विरूद्ध कोई कार्य नही किया तथापि मिथक ऐसे कि वह तो राष्ट्रद्रोही थे ।

यह कुछ समाज के मिथकीय उदाहरण हैं जो समाज मे व्याप्त हैं । जिनकी सत्यता की परख प्रत्येक बुद्धिजीवी के लिये करनी अनिवार्य है । कदाचित इन्ही मिथको से मुझे डा0 अम्बेडकर पर शोध की प्रेरणा मिली । समाज के मिथक यदि बड़े स्वरूप मे आ जाये तो वह इतिहास को भी बदल सकते हैं । हिटलर का उदघोष था कि "गलत चीज को इतनी बार दोहराओ कि वह सत्य लगनी लगे ।" अस्तु मिथको की सत्यापना समाज के सुदृढीकरण हेतु अनिवार्य हो जाती है ।

डा0 अम्बेडकर ने हिन्दू समाज की मीमांसा की । हिन्दू समाज की वे पुनर्रचना चाहते थे । वे हिन्दू समाज का परिष्कार चाहते थे । यह परिष्कार चाहने वालो की लम्बी परम्परा रही है । बुद्ध, कबीर, आर्य समाज, विवेकानन्द, गाधी सभी परिष्कार चाहते थे, पेरियार महात्मा फूले व डा0 अम्बेडकर भी परिष्कार चाहते थे । ये दो परिपाटिया थी । पहली परिपाटी मे वे लोग थे जो दीर्घजीवी और पारिवारिक परिष्कार चाहते थे जबकि दूसरी कोटि म वे लोग हैं जो दलित समाज के प्रतिनिधि पुरूष थे और इन्होने समाज की पशुता को स्वय भोगा था । इसलिये वह अतिशीघ्र पशुता की दशा से समाज को निजात दिलाना चाहते थे । चूकि दलित समाज के प्रतिनिधि जन शीघ्रता से समानता चाहते थे इसलिये उनके खिलाफ ब्राह्मणवादी समाज की प्रतिक्रिया भी काफी तीखी थी । क्योकि वस्तुत उच्च वर्णी समाज भी परिष्कार चाहता था परन्तु वह शीघ्रता से नही करना चाहता था ।

डा0 अम्बेडकर ने दलित समाज को पशुता से मुक्त कराने हेतु अपनी उच्च शिक्षा व विद्वता का सम्पूर्णता मे इस्तेमाल किया था । ज्ञान के सभी अगो का प्रयोग उन्होंने दलित समाज के परिष्कार हेतु किया । सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सभी विषयो की उन्होने तर्कपूर्ण, वैज्ञानिक, बुद्धिपरक व वस्तुवादी मीमासा प्रस्तुत की थी । मानव जीवन के सभी विषयो पर उन्होने दृष्टिपात किये । सभी पर अपनी लेखनी व मेधा का प्रयोग किया । डा0 अम्बेडकर के यही समस्त क्रिया—कलाप पुजीभूत होकर 'अम्बेडकरवाद' का रूप धारण कर लेते हैं ।

डा0 अम्बेडकर की मृत्यु के एक वर्ष पूर्व पजाब के रोपड मे रामदसिया सिख (दलित) परिवार में जन्में काशीराम ने स्नातक परीक्षा पास कर ली थी । परीक्षा पास करने के बाद उन्होने लैब असिटेन्ट की नौकरी कर ली परन्तु देश की राजनीतिक और दलित समाज की विपन्न परिस्थिति उनका इन्तजार कर रही थी । 1964 मे उन्होने नौकरी छोड़ दी उसी समय यह निर्णय ले लिया कि न तो वह अपनी शादी करेगें और ना ही वह अपनी कोई निजी सम्पत्ति रखेगे । अब से आगे वह दलित समाज के हित मे अपना जीवन लगायेगें ।

अस्तु दलित हित में मा0 काशीराम ने अपना आन्दोलन आरम्भ किया । आन्दोलन का लक्ष्य सामाजिक समतावाद है । यह समता हमे सगठन और शक्ति से ही प्राप्त हो सकती है । बिना सगठन और शक्ति के मनुवादी समाज दलितो को मानवतावादी अधिकार नहीं दे सकता । दलितों का शोषण हजारों साल की परम्परा नियति बन गयी है । ये नियति का क्रम इतनी आसानी से टूटने वाला नहीं है । इसके लिये दलित समाज को सगठित होना होगा । "कलियुगे सघें शक्ति" की अवधारणा से ही समाज का विकास सम्भव होगा । सघ की शक्ति से ही नियति के क्रम को तोडना सम्भव होगा । शक्ति के लिये दलितों को एक मच पर आना होगा ।

दलितो को एक मच पर लाने हेतु आन्दोलन की आवश्यकता होती है । किसी भी कार्य को वृहद पैमाने पर चलाने के लिये एक वृहद आयोजन की आवश्यकता होती है दलित अवधारणा भी भारत मे हजारो साल से व्याप्त है । साथ ही कश्मीर से कन्याकुमारी और अरब सागर से बगाल की खाडी तक इसकी व्यापकता का प्रसार है । इस विशालता को देखते हुये इसके उन्मूलन हेतु एक आन्दोलन की आवश्यकता होगी । आन्दोलन के द्वारा ही सम्पूर्णता मे उन्मूलन का प्रयास किया जा सकता है ।

दलित समाज को जागृत और सगठित करने का वीडा डा० अम्बेडकर ने 1920 के दशक मे उठाया था । अपने सम्पूर्ण जीवन काल में वह अपनी प्रतिज्ञापूर्ति के उपागम करते रहे । वर्तमान परिवेश मे मा० काशीराम डा० अम्बेडकर की प्रतिज्ञा को आगे बढ़ाने का बार–बार आह्वान करते है । "बाबा तेरा मिशन अधूरा, डी एस फोर करेगी पूरा" । डी एस फोर मा० काशीराम द्वारा सामाजिक आन्दोलन हेतु स्थापित किया गया प्रथम सगठन था । अपनी इसी बात को समग्रता प्रदान करने हेतु मा० काशीराम ने 'बहुजन समाज पार्टी' नामक दल का सगठन किया और आगे बढाया ।

दलित नायको के प्रति व्याप्त समाज मे मिथको और बाबा साहेब डा० भीमराव रामजी अम्बेडकर के आदर्शो को कहा तक मा० काशीराम आगे बढाने का काम करते है यह एक अत्यन्त उत्सुकता भरा कार्य था । मा० काशीराम अपनी समग्रता को डा० अम्बेडकर के चिन्तन पर आधारित होने की घोषणा करते है । अस्तु उनकी यह घोषणा कहा तक वास्तविक है । इसे जानना समाज का दायित्व है ।

क्रोचे ने कहा कि – 'इतिहास समसामयिक होता हैं 'हम एक नदी में दो बार स्नान नही कर सकते हैं ।' इस अवधारणा से क्या मा० काशीराम पूर्णतया डा०

अम्बेडकर को ही साधे चले जा रहे है अथवा उन्होने सामयिक परिस्थिति वश उसमे कुछ तब्दीलिया भी की है । तब्दीलिया जो की क्या वह मात्र समय की माग है अथवा मा0 काशीराम का अपना विशिष्ट एजेन्डा है । डा0 अम्बेडकर गुलाम भारत में पैदा हुये थे और आजादी की अत्यन्त उत्साह व जोश भरी परिस्थितयो में अपने चिन्तन का विमोचन किया था । तो क्या आज की परिस्थितयो में वही चिन्तन मान्य है । इन समस्त तथ्यो की परीक्षा हेतु मैने दलित चेतना पर आधारित एक विशिष्ट विषय **अम्बेडकरवाद के सन्दर्भ में काशीराम का दलित आन्दोलन** शोध हेतु चयनित किया है ।

****

मै 'जी एम युग' की पुस्तक 'विक्टोरियन इग्लैन्ड' के टाइटिल पृष्ठ पर दिये गये विक्टोरिया कालीन एक मुहावरे को उद्घृत करना चाहूगा कि "नौकर चाकर लोगों के बारे में बात करते हैं और भले लोग समस्याओ के बारे में तर्क–वितर्क करते हैं ।" वस्तुत जातिवाद हमारे समाज की एक विकृत समस्या है । जिसका सदियों से इस समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है । हो सकता है कि कभी इसकी उपयोगिता समाज के लिये रही हो परन्तु यह समाज के लिये अत्यन्त दु ख कारक हो गया है । प्रत्येक समय के लिये इसे हानिकारक घोषित करना इस ऐतिहासिक विनियम को नजरन्दाज करना होगा कि 'इतिहास समसामयिक' होता है । जिस समय इस जातिवादी व्यवस्था का सृजन हुआ सम्भव है कि उस परिस्थिति मे उसकी उपयोगिता रही हो । क्योंकि अधिक सम्भावना है कि तत्कालीन समाज के अग्रणी चिन्तको ने ही उस समाज का निर्माण किया होगा और जो नियम समाज के लिये उपयोगी रहे होगें उन्हें ही विनियम के रूप में समाज ने अपनाया होगा । परन्तु आज इसकी उपयोगिता पूर्णतया समाप्त हो गयी है ।

समाज विकासशील व परिवर्तनवादी है । समाज में नित नये परिवर्तन होते रहते हैं । विकास एक प्रक्रिया है जो सतत चलती रहती है । वह या तो आगे बढ़

सकती है अथवा पीछे घट सकती है परन्तु वह रूक नही सकती है । रूकना ही उसके क्षरण की शुरूआत है । स्थिर समाज अपनी प्रगतिशीलता को खो देता है ।

आज यदि हम प्राचीन समाज की मीमासा करने बैठते हैं तो हम आज के चश्मे से तत्कालीन समाज को देखने का प्रयास करते हैं । हम उस समय को उसी काल मे चश्मे से नही देख पाते है । हमारे पास जो दृष्टि है वह आज की है । हमारा निर्माण एक विशेष समाज म हुआ है । उसी समाज के मान्य तथ्यो से ही हमारा परिष्कार हुआ है । चिन्तक 'डान' अपनी पुस्तक 'डिवोशस अपान इमर्जेंट अकेजस' मे घोषणा करते है कि "कोई भी व्यक्ति अपने आप मे अलग–थलग द्वीप जैसा नहीं होता है हर व्यक्ति महाद्वीप का एक अश पूर्ण का एक अंग होता है ।" समाज और व्यक्ति अविभाज्य है वे एक दूसरे के पूरक है । इसी धारणा को आगे बढाते हुये दोस्तोवस्की 'डेविल्स' मे 'किरलोव' की कहानी मे कहते है कि व्यक्ति के लिये पूर्णतया स्वतत्र कार्य केवल आत्म हत्या है, दूसरे कार्यो मे किसी न किसी रूप मे उसके साथ समाज की सदस्यता निहित रहती है ।

समाज ही व्यक्ति या इतिहासकार का निर्माता होता है । समाज से हम अलग होकर कुछ भी सिद्ध नही कर सकते है । जो कुछ हम करते हैं वह सब हम समाज के लिये करते है । जैसे–जैसे हम कुछ करते हैं वह समाज के सस्कार होते है । जिन बातो को हम करने की चाह रखते है वह समाज की माग होते है ।

हम आज के आधुनिक तत्वो के अर्थ मे प्राचीन नियमो–विनियमो को फिट–इन करने का प्रयास करते है । यदि प्राचीन – नियम – विनियम उन खानों मे फिट–इन होते है तो हम उन नियम – उपनियमों को पास कर लेते हैं अन्यथा उन नियमों–उपनियमो को फेल घोषित कर देते हैं । हम उस समय की दशा के अनुसार नहीं सोच सकते हैं । जैसे कि 'एच बटरफील्ड' ने अपनी पुस्तक 'दि इग्लिशमेन एन्ड हिज हिस्ट्री' मे लिखा कि – हमारा इतिहासकार वर्तमान पर एक

आख रखकर लगातार अतीत की व्याख्या करता है ।" हम इतिहास में पुराने समाज की घटनाओ का विश्लेषण कर अध्ययन करते है । परन्तु हम उस समाज का सम्पूर्ण विश्लेषण कर ही नहीं सकते । बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन ने बताया कि हम एक नदी मे दो बार स्नान नही कर सकते क्योकि – सब कुछ वही समय, वही परिस्थिति यहा तक की वही जल जिससे हमने स्नान किया था, सब हमे दूसरी बार नहीं प्राप्त हो सकता जिसमे हमने एक बार प्रयोग किया वह जल तो नदी में काफी दूर तक बह गया है । अस्तु हम जहा नदी मे स्नान करते हैं तो हम पहली ही बार स्नान करते हैं । इसी अवधारणा पर कतिपय इतिहास चिन्तक मानते है कि एक इतिहासकार द्वारा दो पुस्तके नही लिखी जा सकती ।

तथापि इतिहासकार इतिहास की घटनाओ, व्यक्तियो की मीमासा करने का यत्न करते है । जैसा कि मार्क्स ने एक बार कहा था कि – प्रशिक्षित को भी प्रशिक्षण की अवश्यकता होती है अथवा 'इतिहासकार स्वयं ही इतिहास का उत्पादन होता है' इतिहासकार का निर्माण एक विशिष्ट समाज में होता है । उस समाज के द्वारा ही उसके सस्कारों का शुद्धीकरण और परिष्कार किया जाता है । समाज अपने नियम–विनियम द्वारा इतिहासकार का सृजन करता है । इतिहासकार के पास जो कुछ है सब कुछ भूतकाल मे इसी समाज द्वारा प्रदान किया गया है ।

इतिहासकार के पास समाज द्वारा दिये गये तत्व आधुनिक हैं उनका परिवेश वर्तमान है । इतिहासकार वर्तमान के बारे मे जानता हैं । इतिहास के विषय में वह जानता नही बल्कि जानने का प्रयास करता है । अतीत के बारे मे जानमे का क्रम वह तुलनात्मक आधार पर ही करता है वर्तमान समाज के सस्कार और अतीत के समाज के सस्कारो में ताल–मेंल बिठाने का वह प्रयास करता है । दोनों परिवेश, परिस्थिति, दशा का वह एक प्रकार से तुलनात्मक अध्ययन करता है ।

अतीत की घटनाओ मे अनेको तथ्य सम्भव हो सकते हैं । परन्तु इतिहासकार के पास सम्पूर्ण तथ्य नही हो पाते है । हो भी नहीं सकते हैं क्योकि ना तो वह सलामी लेने वाला राष्ट्रपति है और ना ही कोई आर्केस्ट्रा का डायरेक्टर । इतिहासकार तथ्यो की उस भीड मे स्वय शामिल होता है । जिसमे से उसे अपने तथ्यो का चयन करना है । इसके तथ्य भीड की भाति है उसमे से इतिहासकार को कुछ तथ्यो का चयन करना है ।19वीं सदी के महान चिन्तक 'मि0 ग्राडग्रिन्ड' ने 'हार्ड टाइम्स' मे लिखा था कि – हमे सिर्फ तथ्य चाहिये जीवन मे हमे सिर्फ तथ्यों की आवश्यकता है ।" इन्हीं की बात को आगे बढाते हुये 19वी सदी के चौथे दशक मे 'राके' ने इतिहास को उपदेशात्मक बनाने के विरोध मे कहा था कि – "इतिहासकार का दायित्व इतिहास को सचमुच उसी रूप में दिखाना है जैसा कि वह सचमुच था ।" परन्तु विज्ञानवादियो ने यहा इतिहास से बुद्धि को गायब कर दिया । 'कैची और गोद' शैली के इतिहास का अनुमोदन किया ।

यह भुला दिया गया कि खन्डहर तभी बोलते हैं जब कि उन्हें बुलवाया जाता हैं । जैसे ही इतिहासकार बोलवाता है वैसे ही हमारे खन्डहर बोलते हैं अन्यथा वह मौन साधे रहते है । तथ्य और इतिहास के मध्य मे इतिहासकार आता है । प्रख्यात दार्शनिक 'हाउसमान' ने इस ओर ध्यान दिलाते हुये बताया कि – 'यथातथ्य होना एक दायित्व है कोई गुण नही' । अपने इतिहास को इतिहासकार तथ्यपरक रखने का कार्य तो स्वय ही करेगा । यहा 'इतिहास को एक ऐसी आरी के रूप मे देखा गया है वस्तुत जिसके तमाम दात गायब है । इन गायब दातो का समायोजन इतिहासकार को करना होता है ।

अर्थात इतिहासकार अपने तथ्यो का समायोजन कर उन्हें आवाज देने का प्रयास करता है । उसके तथ्य पवित्र है और इसमे वह कोई बदलाव नहीं कर सकता है । परन्तु तथ्यों का चयन करना इतिहासकार के लिये एक बड़ी समस्या हो जाती है । इस चयन की समस्या से निपटने के लिये इतिहासकार उन्हीं तत्वो को

अतीत की घटनाओ से खोज कर बाहर निकालता है जिनसे कि इतिहासकार के परिवेश को , उसके समाज को, उसकी आने वाली पीढी को कुछ लाभ प्राप्त हो सके ।

इतिहासकार अतीत की सभी घटनाओ, तथ्यो को इकट्ठा करने का कार्य इसलिय भी नहीं करता कि इतिहास की प्रत्येक घटना एक दूसरे से जुड़ी है और 'कार्य कारण सम्बन्ध' और 'अन्योन्याश्रयिता' के आधार पर इतिहासकार अपनी खोज जारी रखता है तो कदाचित अतत तक उसकी चलती रहेगी और उसका इतिहास पूर्णता को प्राप्त नही हो सकेगा । 'ऐक्टन' ने 1890 मे 'क्रैम्बिज माडर्न हिस्ट्री' मे लिखते हुये कहा था कि एक दिन अन्तिम इतिहास लिखा जाना सम्भव होगा सभी सूचनाये हमारी मुट्ठी मे होगी और हर समस्या के समाधान के लिये पक चुकी होगी । परन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सकता । इतिहास की घटनाये कार्यकारण सम्बन्धो पर सब एक दूसरे से आबद्ध है । इसमें अनन्त का भाव मौजूद है । इतिहासकार इस अनन्त की भीड से अपने लिये मात्र उपयुक्त (Useful) तथ्यो चयन कर लेता है । शेष तथ्यो को वह नजरन्दाज कर देता हैं । इस प्रकार वर्तमान समाज के 'लाभ–हानि रहित तत्वो' को नजरन्दाज करने का क्षम्य अपराधी इतिहासकार को माना जाता है । इतिहासकार समाज का उत्पाद होता है और समाज की स्वच्छता, परिष्कार,, सुदृढीकरण के लिये वह अपने विवेक का प्रयोग करता है । उस लक्ष्य अपने समाज को शुद्ध करना है । इस शुद्धीकरण की प्रक्रिया के लिये वह अतीत के तथ्यो का चयन करता है । इतिहासकार के शोधपरक अध्ययन से समाज को विकास, गतिशीलता, और 'ऊर्जा की प्राप्ति होती है । इस ऊर्जा से इतिहासकार भविष्य के आधार को मजबूत करने का यत्न करता है ।

यद्यपि प्रो0 जार्ज कलार्क 'क्रैम्ब्रिज माडर्न हिस्ट्री' मे लिखते है कि – भविष्य की पीढ़ी के इतिहासकार अपने हिसाब से अपने आदर्श, मन्तवय और नियम–उपनियमो का चयन करेगे । उनको ध्यान मे रखकर हम कुछ नही कर

सकते है । हम जो कुछ भी कर सकते है अपनी वर्तमान पीढी के लिये कर सकते है । समाज विज्ञानियो की विचारणा इसके ठीक विपरीत है कि – स्वरूप भविष्य का विकास स्वरूप समाज मे ही होता है । इस आधार पर कि यदि हमारा वर्तमान (समाज) स्वरूप सभ्य, विशुद्ध परिष्कृत रहेगा तो भविष्य की पीढी को एक अच्छा आधार प्राप्त होगा जिसपर वह अपने आदर्शों की नींव खड़ी कर सकेगा । इतिहासकार अपने विगत अतीत की मीमासा का प्रयास करता है ।

मैंने भी समाज मे व्याप्त अनेकानेक मिथकों की सत्यापना अपने शोध प्रबन्ध मे करने का प्रयास किया है । दलित वाद और दलित चेतना मे एक सूक्ष्म अन्तर है जिसमें दलित चेतना का आदर्श सामने रखते हुये मैंने समाज को मिथकों से परिष्कृत करने का एक प्रयास किया है । आशा है कि इस प्रबन्ध में समाज के उन मिथको का जिनसे कि समाज भ्रमित है एक हद तक तथ्यगत और तर्कपूर्ण मीमासा करने मे सफलता प्राप्त हुयी है । आशा है कि इस शोध प्रबन्ध से भविष्य के लिये एक मजबूत आधार भावी पीढी को प्राप्त हो सकेगी । मिथको से भ्रमित समाज को भ्रमदशा से बचाया जा सकेगा । दिग्भ्रमित समाज अपने अत्यन्त छोटे–छोटे लाभों के लिये जाति, धर्म, समाज, भाषा, क्षेत्र, सम्प्रदाय, समुदाय का लाभ लेने की जल्दबाजी मे रहता है । इसके लिये वह कुछ मिथको की सर्जना करता है और अपना लाभ प्राप्त करने के बजाय उसे तिरोहित कर देता है । उसकी सत्यापना का और समाज को इन मिथको से बचाने का काम मूलत बुद्धिजीवी समाज का ही होता है ।

इतिहास यही विज्ञान से एकाकारिता प्राप्त कर लेता है । जब इतिहासकार एक मिथकीय सकल्पना का तर्क पूर्ण एव वैज्ञानिक ढग से विवेचन करता है तो इतिहास मे विज्ञान व वैज्ञानिकता का समावेश होता है परन्तु यदि इतिहासकार मिथको को पूर्णतया स्वीकार कर लेता है तो यह मिथक समाज को एक गलत दिशा ही देते है । कहना न होगा कि यहा हमने इस अवधारणा पर ध्यान न देने का पाप

किया है जिसके अन्तर्गत माना जाता है कि वस्तुत इतिहास हमें कोई सबक प्रस्तुत नहीं करता है । वस्तुत मेरा अपना मानना है कि हम बिना इतिहास को जाने भविष्य के बारे मे न तो कोई सकल्पना कर सकते है और ना ही हम अपने वर्तमान को ही सवार सकते है । हम या हमारा समाज बहुत अच्छा या बहुत बुरा नही हो सकता । ऐसा यदि वह होता है तो किसी की तुलना मे किसी की सापेक्षता मे । हम एक को दूसरे की तुलना मे रखकर देखने के दोषी है । हम अच्छा या बुरा का निर्णय इसी आधार पर करते है । आगे भी ऐसा ही होता रहेगा अच्छा या बुरा का निर्णय जब तक इस तुलनात्मकता के आधार पर होगा तब तक हमें इतिहास को जनना होगा । बिना हम एक समाज को जाने अन्य समाज के बारे मे कोई भी सामान्यीकरण नहीं कर सकते हैं और यह हम तभी जान सकते है, जब हम इतिहास का सहारा ले । अतीत के समाज का सहारा लें। अतीत के समाज से सबक हासिल करे । इतिहास से सबक प्रप्त करे। बिना इतिहास के सबक के हम न तो अपने वर्तमान समाज को सुधार सकते हैं और न ही भविष्य के समाज के लिये शुद्ध परिष्कृत नीव ही तैयार कर सकते हैं ।

सर चार्ल्स वेब्सटर ने 1919 की पेरिस सन्धि के विषय मे लिखने के पूर्व लिखा था कि हम वियना सम्मेलन से कुछ सबक सीख सकते हैं । हमें यहां कम से कम दो जगह सावधानलीर बरतनी चाहिये पहली हमें यूरोप का नक्शा खीचते समय आत्म, निर्णय के सिद्धात को अवश्य याद रखना चाहिये। दूसरे हमे अपनी रद्दी कूडे मे नही फेकना चाहिए क्योकि इसे किसी देश की जासूसी एजेंसी अवश्य ही खरीद लेगी। अर्थात हमे इतिहास ही सबक सिखाता है और उसके सबक के लिये हमेशा हमे अपने ऑख और कान के साथ दिमाग के दरवाजे खुले रखने चाहिये।

इतिहासकार सामान्यीकरण का दोषी तो हो सकता है परन्तु वह नियतिवाद का दोषी बिल्कुल ही नहीं हो सकता है। कदाचित जहा इतिहासकार आलस्य का सहारा लेना चाहता है वही वह नियमित व सयोगो का सहारा ले लेता है। संयोग

को बहाना बनाने का अर्थ है कि वह अब तथ्यो की खोज नही करना चाहता है। वस्तुत विज्ञान मे सयोगो का कोई स्थान नही है। यह कहना कि लेनिन की 54 वर्ष में असामयिक मृत्यु और ट्राटस्की का कबूतर काटने से बीमार होना महज संयोग था, उचित नही । क्योकि यहा दो दोष माने जा सकते है। पहला कि इतिहासकार अपने कार्य–कारण सम्बन्धो की स्थापना से बचने का प्रयास कर रहा है। दूसरे इतिहासकार पूर्वाग्रही है, अपने पूर्वाग्रह के कारण ही वह चाहता है कि न तो लेनिन की मृत्यु होनी चाहिये थी और न ही ट्राटस्की को बीमार होना चाहिये था और न ही स्टालिन को गद्दी प्राप्त होनी चाहिये थी । यहा इतिहासकार स्वयं ईश्वर की भूमिका मे आना चाहता है । वह निर्णय लेना चाहता है । वह विना कुछ जाने निर्णय देना चाहते है। वह भी इसलिये कि वह ऐसा चाहता था। कार्य–कारण सम्बन्ध ऐसा नही चाहते थे, बल्कि हमारा इतिहासकार ऐसा चाहता था। इतिहासकार चाहता था कि ट्राटस्की ही गद्दी पर बैठे । इतिहासकार के अपरिपक्व मास्तिष्क ने बिना कार्य–कारण सम्बधो की स्थापना किये ही यह स्थापना कर दी कि ट्राटस्की ही उपयुक्त अधिकारी था।

यहा इतिहासकार "ऐसा होना चाहिये था" सम्प्रदाय का मानने वाला है इसलिये वह अपना निर्णय समाज पर लादना चाहता था । वह चाहता है कि चूकि वह मानता है कि ट्राटस्की उपयुक्त अधिकारी है । अत सभी माने कि ट्राटस्की ही उपयुक्त अधिकारी है, उसके निर्णय का सम्मान समाज व इतिहास करे इसका कोई अर्थ नही क्योकि यहा उसने कार्य–कारण सम्बन्धो की स्थापना करने के बजाय कुछ बहानो और पूर्वाग्रहो से अपना काम चलाने का प्रयास किया है।

यहा इतिहासकार अत्यन्त आलसी के रूप में हमारे सामने आता है। जिसने बिना कार्य–कारण सम्बन्धो की तलाश किये ही अपना निर्णय दे दिया है। जब कि इतिहासकार का कार्य है कि इतिहास की घटनाओं मे कार्य–कारण सम्बधो की स्थापना करे । कार्य–कारण सम्बन्धो की स्थापना कर के ही इतिहासकार अपने

तथ्यो का चयन करता है। तथ्यो को वह कूडे दान से इकटठा करने के लिये अथवा तथ्यो की भीड मे से कुछ तथ्यो के चयन हेतु वह कार्य–कारण सम्बन्धों की स्थापना करता है और इसी सम्बन्ध के अधार पर वह अपने इतिहास का निर्माण करता है।

यहा इतिहासकार ने सयोग का सहारा लिया अर्थात इतिहासकार ने कुछ गुप्त कारणो की खोज करने का प्रयास बिल्कुल नही किया जिसे कि उसे करना चाहिये था । यदि वह उन गुप्त कारणो की तलाश करता तो सम्भव था कि उसे कार्य–कारण सम्बध स्थापना मे आसानी होती और उस कार्य–कारण सम्बधो की स्थापना के पीछे सयोगवाद अथवा पूर्वाग्रहो का सहारा न लेना पडता । परन्तु यहा इतिहासकार ने बिना गुप्त कारणो की खोज किये ही अपना निर्णय नियतिवाद के आधार एक न्यायाधीश बनकर के घोषित कर दिया। वस्तुत इस घोषणा मे उसने राके के विज्ञानवाद को फासी देने का अद्‌भुत पाप किया है । इससे इतिहासकार को बचना चाहिये था । परन्तु वह न बच पाने का दोषी है।

समाज के लिये महत्वपूर्ण व उपयोगी इतिहास वही हो सकता है जहा पूर्वाग्रहो नियतिवाद की जगह कार्य–कारण सम्बन्धो की स्थापना की गयी हो । कार्य–कारण सम्बन्धो के आधार पर अपने तथ्यो का सामान्यीकरण किया गया हो । मात्र नियतिवाद के आधार पर घोषणाये करने से न तो इतिहासकार को कुछ मिल सकता है और न ही उसके समाज को क्योकि यहा इतिहासकार ने अपनी सस्थापनाओ को तथ्यों और समाज से ऊपर मानकर समाज के लिये एक निर्णायक की स्थिति मे निर्णय प्रदान कर दिया है।

मैने अपने शोध प्रबन्ध मे इन तमाम स्थित–परिस्थित से बचते हुये कार्य–कारण सम्बन्धो को स्थापित करने का प्रयास किया है। वस्तुत इतिहास की घटनाये अन्तहीनता की ओर उन्मुख है उनमे से मैंने उपयोगी तथ्यों का चयन किया है और उसे अपने समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का एक लघु प्रयास किया है।

शोध प्रबन्ध मे कुछ बातो का विशिष्ट ध्यान रखने का प्रयास किया गया है। जिसे हम अपनी तकनीक कह सकते है। वस्तुत कोई भी शोध प्रबन्ध बिना किसी तकनीक के अपनी पूर्णता को प्राप्त नही कर सकता है। सभी के पास कुछ न कुछ अपनी–अपनी तकनीकी होती है। मैने भी विशिष्ट तकनीको का सहारा अपने अध्ययन की पूर्णता के लिये लिया है जो कि क्रमश प्रस्तुत है ।

शोध प्रबन्ध को प्रामाणिक रखने का अनथक प्रयास मैंने किया है। प्रामाणिकता ही शोध प्रबा का मूल है। इस सिद्धांत को अपने शोध प्रबंध हेतु पूर्णतया मे आत्मसात करने का प्रयास किया है । अपनी प्रत्येक सकल्पना को मैंने अधिकतम जॉच परख कर प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया है । सकल्पना की सत्यापना की जितनी प्रविधिया सम्भव थी उतने का मैने सहारा लेने का प्रयास किया है । कोशिश की गयी है कि तब तक किसी भी सकल्पना को स्थापना में न बदलने दिया जाये जब तक कि उसकी प्रमाणिकता अनेकानेक आधारों पर सत्यापित न हो जाये।

इस प्रामाणिकता का प्रमुख आधार रहा है बौद्ध दर्शन का "प्रतीत्य समुत्पाद" नियम । जिसके अन्तर्गत कार्य–कारण सम्बन्धो की स्थापना की गयी है । सकल्पना के आधार पर तथ्यो का चयन किया गया है और उसकी व्याख्या के लिये यथोचित कार्य–कारण सम्बधो की स्थापना की गयी है । सर्वप्रथम सकल्पनाओं का निर्माण किन्हीं पूर्वाग्रहो की मुक्ति के आधार पर किया गया है । तत्पश्चात उन संकल्पनाओं के लिये कतिपय तथ्यो का सकलन किया गया है । यह तथ्य (शोध हेतु) अत्यन्त बिखरी दशा मे प्राप्त हो सके हैं । तथ्यो का चयन अत्यन्त दुरूह कार्य था । सभी श्रोतोंसे इनका चयन किया गया है । जहा भी हमें तथ्य मिलें हैं हमने उनका चुनाव कर लिया है । तत्पश्चात उनके अन्तर्सम्बधो की व्याख्या की है । अन्तर्सम्बधो की व्याख्या हेतु कार्य–कारण सम्बधो को आधार बनाया है । कभी भी 'ऐसा क्यों' के

तथ्य को दिमाग से ओझल न होने देने का प्रयास किया है । ऐसा क्यों के आधार पर ही सतत व्याख्या करने का प्रयास किया है ।

मेरे सामने हमेशा ही – 'कब, क्यो, कहा, कैसे' का प्रश्न रहा है । किसी भी घटना या तथ्य की प्रामाणिकता को सत्यापित करने हेतु मैने इन्हीं प्रश्नों का सहारा लिया है । इन प्रश्नो के आधार पर तथ्यो की सलेषणा अपने आप स्थापित हो गयी है । वस्तुत तथ्यो का जो बिखराव था उसे इन्हीं शब्दो के आधार पर एक सूत्रबद्धता प्रदान की जा सकी है । 'कब, क्यों, कहा, कैसे' के आधार पर तथ्यों की क्रमबद्धता स्वयमेव आ गयी है । इतिहास वस्तुत क्रमबद्ध ज्ञान का विवेचन है और हमारे तथ्य अत्यन्त बिखरी दशा में थे परन्तु इस विखराव का समापन 'कब, क्यों, कहा, कैसे' के आधार पर हो गया है ।

प्रस्तुत शोध मे प्राथमिक एव द्वितीयक दोनो प्रकार के श्रोतो का अधिकाधिक उपयोग किया गया है । प्राथमिक एव द्वितीयक श्रोतो के आधार पर तथ्य संचयन का कार्य पूर्ण किया जा सका है । इस क्रम मे दलित चेतना के नायकों द्वारा स्वयं लिखी गयी किताबे, जीवनियॉ, दिये गये भाषण तथा दिये गये साक्षात्कारों का पूर्णता से उपयोग किया गया है । प्रायः दलित नायको ने जगह–जगह सेमिनार व सभाओं में जो भाषण दिये थे उससे भी उनके विचार जानने व चिन्तन के निर्माण मे काफी सहायता प्राप्त हुयी। दलित नायको ने जिन पार्टी व संगठनो की स्थापना की उन पार्टियो के मुखपत्र व घोषणा पत्र के द्वारा भी तथ्य संकलन में आसानी हुयी। साथ ही तमाम पत्र–पत्रिकाओ की स्थापना दलित मुखपत्र के रूप में किया गया हैं उनसे भी दलित तथ्यों की सम्प्राप्ति सम्भव हुयी । साथ ही अन्य तत्कालीन महत्वपूर्ण लिखी गयी पुस्तको में भी दलित चेतना विषयक तथ्यों की प्राप्ति हुयी है। तमाम ऐसे लोगो ने दलित चेतना पर पुस्तके लिखी है जिन्होने अपने उददेश्यो व मन्तव्यों को अधिकाधिक पूरा करने का प्रयास किया है। अन्तत दलित चेतना पर लिखी

गयी सैकडो पुस्तको शोध–प्रबन्धो पत्र–पत्रिकाओं के आधार पर मैंने अपने तथ्यो का निर्माण किया है।

वर्तमान समाचार पत्र पत्रिकाओ मे छप रहे तमाम लेखो से भी सामग्री एकत्रित करने का प्रयास किया गया है। दलित चेतना के तमाम विद्वानो, जानकारों के लेख समय–समय पर पत्र पत्रिकाओ मे छपते रहते है। जिनसे तथ्यो का चयन किया गया है। दलित आन्दोलन विषयक दलित जनता की जानकारी के सम्बन्धो मे कुछ तथ्य इकठ्ठा करने का प्रयास किया गया है।

अन्तत दलित नायको मा0 काशीराम व सुश्री मायावती का सक्षात्कार लेने का "असफल" प्रयास किया गया। सीधे साक्षात्कार लेने हेतु प्रश्नावली तैयार कर ली गयी थी। अनेको पत्र इस सम्बध मे भेजे गये परन्तु दलित नायको के पास समयाभाव के कारण अभी तक सीधे साक्षात्कार सम्भव नही हो सका है।

शोध प्रबन्ध का दायरा काफी लम्बा है । इसमें वस्तुत एक के साथ दो प्रबन्धो की जानकारी समाहित है । एक तो 'अम्बेडकर वाद' और दूसरे 'काशीराम का दलित आन्दोलन में योगदान' । परन्तु इन दोनो विषयों को जोडकर एक तीसरे विषय का निर्माण किया गया । अस्तु शोध विषय अत्यन्त लम्बा हो गया है । तथापि शोध को कम से कम मे 'वस्तुनिष्ठता' के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

किसी भी शोध प्रबन्ध की विषयगतता और वस्तुनिष्ठता उस शोधार्थी का दायित्व होता है । यहा न तो विषयेतर तथ्यों को जगह दी गयी है और ना ही वस्तुनिष्ठता को त्यागा गया है । उद्देश्य सतत 'गागर मे सागर भरने' का रहा है । जिसमे आशा है कि शोधार्थी को सफलता प्राप्त हुयी होगी । यद्यपि विषय की विशालता को देखते हुये प्रबन्ध के बढते जाने का भय सता रहा था परन्तु

वस्तुनिष्ठता की परिभाषा के आधार पर इसे कम से कम समय में पूरा करने का प्रयास किया गया है ।

शोध विषय बिल्कुल अधुनातन था । जिसका एक अलग आनन्द व कठिनाइयॉं थी । आनन्द इस स्वरूप मे था कि प्राचीन घटनाओं की भॉंति इसमें नीरसता नही थी । हमेशा यह लगता था कि मै स्वय कुछ जान रहा हूँ और जो मै स्वय जान रहा हूँ वही रामाज को बताने का प्रयास कर रहा हूँ । विषय की अधुनातनता के कारण ही अधिकतम जानने की इच्छा सतत कायम रहती थी ।

इससे कभी भी यह एहसास नही होता था कि मै एक ऐसा कार्य कर रहा हूँ जिससे सिर्फ इतिहासकार को मतलब हैं । हमेशा यह भान रहता था कि मैं जो कर रहा हूँ उससे हमारे समाज को मतलब है । मै जो कर रहा हूँ उसे जानना समाज के लिये कितना आवश्यक है यह जानने के बाद' ही ज्ञान हुआ । यही अधुनातन विषय का आनन्दवाद था ।

इसका दूसरा पक्ष इसकी कठिनाइयो का था । यह रास्ता अत्यन्त दुष्कर था । अम्बेडकर का समाज तो पुराना है उन पर तो अनेक अच्छी–बुरी सामग्रियॉं बाजार से, सरकार से, प्राप्त हो जाती है । तमाम शोध परक कार्य भी सम्पन्न हो चुके है । दलित चेतना विषयक भी अनके ग्रन्थ प्राप्त हो जाते है । जिनसे आसानी से तथ्यो का सकलन किया जा सकता है । परन्तु शोध का दूसरा पक्ष मा0 काशीराम के दलित आन्दोलन पर आधारित है । इस पक्ष के लिये सामग्रियो का अभाव अभी भी बाजार मे है । जो है वे भी सतही किस्म की हैं उन पर शोध का सम्पादन नही किया जा सकता है । उनके पार्टी दफ्तर से भी किसी प्रकार की साहित्यिक सहायता नहीं प्राप्त हो पाती है । साथ ही राष्ट्रीय पार्टी 'बहुजन समाज पार्टी' के पास अभी तक अपना कोई पुस्तकालय नहीं है । इस

सम्बन्ध मैने लिखित शिकायत और आग्रह भी पार्टी अध्यक्ष और भारतीय चुनाव आयोग को की है कि वह राष्ट्रीय पार्टियो के लिये एक लाइब्रेरी की व्यवस्था अनिवार्य रूप से करें ।

अत्यन्त कठिन परिस्थितियो से सघर्ष के उपरान्त मा0 काशीराम और बहुजन समाज पार्टी विषयक तथ्यो की प्राप्ति हो सकी । यहा कहना न होगा कि यहीं से वास्तविक शोध कार्य आरम्भ हुआ था, कई बार ऐसा समय भी आया जब यह लगा कि शायद शोध प्रबन्ध पूर्ण नहीं हो सकेगा, परन्तु अपनी जीवटता और कभी पीछे न हटने की प्रतिज्ञा वाले जीवन दर्शन के आधार पर शोध प्रबन्ध कार्य मे संलग्न रहा और अन्तत "आर्थिक समस्याओ से जूझते हूये" शोध ग्रन्थ को लगभग सात वर्षो में पूर्णता को पहुॅच सका हूँ ।

कोई भी आन्दोलन होता है तो आगे पीछे एक आन्दोलन की विचारधारा व दर्शन होता है । आन्दोलन के बारे मे जानना अत्यावश्यक होगा । हम हमेशा यह कहते है कि आन्दोलन समाज मे प्रक्रिया (क) स्वरूप में होते हैं, लेकिन सामाजिक सिद्धान्त मे प्रक्रिया के होने का स्वरूप क्या है ? क्या सामाजिक प्रक्रिया सरचना का ही एक तत्व है ? हम कह सकते है कि प्रक्रिया ऐसा नाम है जिसे हम जारी आपसी लेन–देन या अन्त क्रिया का नाम देते हैं और जो ऐसे व्यक्तियों के बीच चालू रहती है जो कि समाज मे आदर्श स्थिति (विशिष्ट स्थिति) को प्राप्त हुए रहते है । यही आदर्श या विशिष्ट स्थिति ही सामाजिक सरचना के आधारित तत्व है । इन्ही के बीच की अर्न्तक्रिया दैनिक सामाजिक जीवन की प्रक्रिया होती है । लेकिन स्पष्टत सामाजिक आन्दोलन प्रक्रिया के रूप में और शैक्षिक एवं पारिवारिक मेल जोल (सोशलाइजेशन) एक प्रक्रिया के रूप में, दोनो में अन्तर है । एक गुरू एव शिष्य के बीच के अर्न्तसम्बध की प्रक्रिया जिसे हम शिक्षा कहते हैं तथा माता–पिता एव बच्चे के बीच सम्बंध जिसे हम सोशलाइजिग या पालन (अपब्रिगिग) प्रक्रिया कहते है सतत् होती है तथा समाज मे हमेशा चलती रहती है । यद्यपि

आज की बच्चो वाली पीढी कल पिता माता की पीढी होगी । हम सोशलाइजेशन एव शिक्षा सम्बन्धो के बारे मे ऐसा सोचते है कि उनको परिवार एव स्कूल द्वारा क्रमश सस्थागत बना दिया गया है, ऐसी प्रक्रिया जिसे हम सामाजिक आन्दोलन कहते है मे प्रत्यक्षत कोई निरन्तरता नही होती है । इसके साथ ही उसमे पहचानने योग्य कोई सस्थागत सरचना या स्तर भी नही होता । यह दूसरी बात है कि प्रत्येक सामाजिक आन्दोलन मे सस्थागत हो जाने का आन्तरिक सामर्थ्य होता है । लेकिन यह हम सस्था का प्रयोग मूल या प्राथमिक सामाजिक सस्था जैसे परिवार, धर्म और शिक्षा आदि के रूप मे ही कर रहे है ।

यद्यपि आन्दोलन कोई अति–विशिष्ट घटनायें नहीं होती जो कि सिर्फ घटती है । वे हमेशा घटती रहने वाली घटनाये प्रतीत होती है जो कि हमेशा ऐसे बडे समाजो मे होती है जो अपने सामान्य सीमित एव जनजातीय सामाजिक पहचान से भी ज्यादा बढ गये है । भारत के सन्दर्भ मे कहते हुए यह लगता है कि इसका तो विरोध, असहमति, सुधार एव पहचान आधारित आन्दोलनो का एक लम्बा इतिहास ही है । अपने देश के आकार वाले राष्ट्र में एक साथ कई क्षेत्रो में और समाज के विभिन्न भागो मे एक साथ कई आन्दोलन चला करते हैं । इन सभी के सामने विभिन्न लक्ष्य भी रहते हैं ।

लेकिन आन्दोलन अपने स्पष्ट व्यवहार एव तरीके से ज्यादा विशेषित होते है । वास्तव मे यदि ऐसा कोई व्यवहार या तरीका न हो तो समाजशास्त्रियों के लिए यह किसी रूचि का विषय नहीं होगा । रूडोल्फ – "अन्तर्राष्ट्रीय इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज" में कहते है कि आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन लाने या नयी सामाजिक व्यवस्था बनाने या विशिष्ट सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन को रोकने के सामूहिक प्रयास होते हैं । एम0 एस0 गोर ने सामाजिक आन्दोलनों के क्षेत्र को कुछ इस तरह परिभाषित किया है । हम सामाजिक आन्दोलनो को कुछ ऐसे कह सकते है कि ये विभिन्न प्रकार के सामूहिक प्रयास हैं

जो कि सामाजिक सस्थाओ मे परिवर्तन लाना या पूर्णतया नयी सामाजिक व्यवस्था बनाना चाहते है । परन्तु सामाजिक आन्दोलन कोई ऐसे ही हो जाने वाली घटना नहीं है । बल्कि वह बार–बार होने वाली पद्धति है ।

सामाजिक आन्दोलन मूल्यो के तरीके मे भी परिवर्तन लाते हैं । साथ ही वे सामाजिक सम्बधो के एक या अन्य भाग मे भी बदलाव लाते हैं । मूल्यो (सामाजिक) पर जोर आवश्यक है क्योकि मूल्य ही वर्तमान प्रथाओ की वैधता के प्रश्नों को उठाते हैं । सामाजिक सम्बधो मे बदलाव भौतिक एव भाव नाटकीय लेन–देन के स्तर पर बदला व की तरफ भी इगित करता है । यद्यपि आन्दोलन की प्रमुख विचारधाराये भौतिक सम्बधो में बदलाव पर (प्रमुखतया) ज्यादा जोर देती हैं । यह विशेष रूप से वहा और सत्य होता है जहा आन्दोलनो का सम्बध सामाजिक समूहो के स्वार्थ की टकराहट से उद्भूत हैं ।

इसी क्रम मे वे कुछ अतिरिक्त पर्यवेक्षण बिना उसे विस्तारित किये ही करते हैं । ये आन्दोलनो की विशेषताओ को एक सामाजिक तरीके या पद्धति की तरह की तरह और विवेचित करते है ।

नये मूल्यो, रिश्तो व वैयक्तिक प्रेरक तरीकों को चित्रित करने का प्रयास विभिन्न तीव्रता, गभीरता की परिस्थितियो के उदय के रूप मे पाया जाता है । क्योकि रिश्तो की कोई भी वर्तमान प्रथा किसी वर्ग के लिये अवश्य लाभप्रद होती है । रिश्तो एव मूल्यो को बदलने का प्रयास सामान्यत समाज के सदस्यों को बांटने अनुसरणकर्ता बनाने, विरोधी बनाने तथा कभी–कभी अप्रभावित एवं उदासीन दर्शक भी बनाने का कार्य करता है । सक्षम अनुसरणकर्ता एव सक्षम विरोधी ऐसे लोग होते हैं जिनके भौतिक स्वार्थ ही सामान्यतया उन्हे जोड़ते हैं वो भी किसी विरोधी वर्ग के साथ लेकिन ऐसे लोग जो उदासीन वर्ग मे मरते हैं उन्हें उनकी गुप्त स्थिति प्राप्त

करने से रोका जाता है । रोकने का कार्य आन्दोलन की विशिष्ट स्थिति ही करती है ।

(a) कुछ आन्दोलन आशिक रूप से तथा कुछ ऊपरी तौर पर ही सफल होते प्रतीत होते है । सफलता आशिक इस अर्थ मे कि कुछ लक्ष्य (आन्दोलन के) तो प्राप्त कर लिए जाते है और कुछ नहीं । आन्दोलनो को प्रेरणा आपेक्षिक रूप से एक समेकित मूल्य प्रणाली से ही प्राप्त होती है परन्तु विशिष्ट लक्ष्यो की प्राप्ति हो सकती है यथा नारी आन्दोलनो के लक्ष्यो मे मताधिकार का लक्ष्य तो प्राप्त हो सका है । परन्तु इसके अन्य लक्ष्य जैसे कि शैक्षिक–आर्थिक क्षेत्रो मे अभी तक कम ही सफलता हासिल हो पाये है । सबसे कम सफलता घरेलू जीवन के क्षेत्र मे प्राप्त हुई है ।

(b) सफलता आंशिक का एक अन्य अर्थ भी हो सकता है । भावी लाभ प्राप्त करने वाली पार्टी या करने वाला समूह जिसके द्वारा आन्दोलन चलाया गया है, का परिवर्तनशील भाग ही आन्दोलन में शरीक है । उदाहरण स्वरूप नारी आन्दोलन में बुजुर्ग, अशिक्षित, एव ग्रामीण महिलाओ की अपेक्षा नगरीय, शिक्षित एवं नयी महिलाओ की भागीदारी ज्यादा हो सकती है ।

(c) सफलता पुन आंशिक हो सकती है यदि आन्दोलन अनपेक्षित अप्रत्याशित परिणाम की तरफ अग्रसर हो या प्राप्त कर ले जो कि आन्दोलन के मूल लक्ष्य को ही आघात पहुचाये या पराजित करे । यथा ग्रामीण सहकारी आन्दोलन जो लघु किसानो के हितो की साधना हेतु चलाया जाता है । बडे किसानो को लाभ पहुचाये ।

(a) आन्दोलन समाप्त हो सकते है क्योकि उन्हे अपने विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाय । यथा देशे की राष्ट्रीय लडाई जिसने स्वाधीनता प्राप्त कर ली हो ।

(b) एक लम्बे समय के साथ आन्दोलनो का किसी बडे आन्दोलन में लीन या एकाकार हो जाना या उसी का भाग बन जाना । यथा विभिन्न सुधारवादी आन्दोलनों का राष्ट्रीय आन्दोलन का भाग बन जाना ।

(c) आन्दोलनों का अप्रासगिक/अनाकर्षक हो जाना जबकि सामाजिक परिस्थतियो में बदलाव आ गया हो । यथा थियोसोफिकल या प्रार्थना समाज आन्दोलन महाराष्ट्र मे ।

(d) समान लक्ष्यों वाले आन्दोलनो की दौड मे कमजोर पड जाना ।

(e) अन्तत आन्दोलनों का कुचल दिये जाने पर भी अन्त हो जाता है ।

आन्दोलनो को समय के साथ अपने सागठनिक ढांचे–जिसकी सुपरिभाषित केन्द्रीय शक्ति तथा सवाद के रास्ते हो, में विकास लाते रहना चाहिए । यह आन्दोलन के एक सस्था बनने का एक पक्ष है ।

(a) आन्दोलन के प्रथम नेता/ नेताओ द्वारा करिश्माई शक्ति का अपने अनुयायियों पर प्रयोग होना चाहिए । करिश्मा – आन्दोलन को एक सस्था बनाने का एक दूसरा पक्ष है । परन्तु करिश्मा तभी सस्थागत हो सकती है जबकि यह व्यक्ति केन्द्रित न हो कर आन्दोलन के आफिस या कार्यालय केन्द्रित हो ।

आन्दोलन जो दीर्घकालिक होते है और संस्थागत हो जाते हैं अपनी गवेषणा (रचनात्मक) रमक या खाजी शक्ति श्वो देते है । याह वे परिवर्तन की अपनी रूचि भी खो देते है । ऐसे आन्दोलन शीघ्र ही अपने सिद्धान्त एव अनुष्ठानों को बचाने लगते हैं ऐसे अनुयायियों से जो उनमें विश्वास नहीं करते । सम्बंधों एव मूल्य ढांचों में ये परिवर्तन प्राय: वर्तमान विचारधाराओ को चुनौती देते है और नये विचारों को उल्लेखित करते है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक "अम्बेडकरवाद के सन्दर्भ में काशीराम का दलित आन्दोलन" है । जिसे अध्ययन–सुविधा हेतु अध्यायो मे बाटा गया है । शोध विषय को कुल 5 अध्यायों मे विभाजित कर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है । इससे शोध प्रबन्ध रचना मे काफी आसानी हो गयी है । इतिहास की क्रमबद्धता का समायोजन सम्भव हो सका है । दलित आन्दोलन के सम्पूर्ण प्रस्तावित विषय को सर्वप्रथम दो चरणो मे विभाजित किया गया है । पहला चरण अम्बेडकरवाद का है जिसमे डा0 अम्बेडकर का सम्पूर्ण चिन्तन वस्तुनिष्ठता, प्रमाणिकता, तथ्यात्मकता और क्रमबद्धता के साथ विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है । द्वितीय चरण मे मा0 काशीराम की दलित आन्दोलन विषयक अवधारणा को समेटने का प्रयास किया गया है । अन्तत दोनो को एक साथ रखकर निष्कर्षित करने का प्रसाय किया गयाा है । अस्तु हम प्रत्येक अध्याय विषयक संक्षिप्त क्रिया विधि को इस प्रकार जान सकते है ।

प्रबन्ध का प्रथम अध्याय पूर्वपीठिका है जिसमें कि दलित आन्दोलन की पूर्वपीठिका है । इस अध्याय मे उन क्रियाविधियों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है जिनसे कि दलित आन्दोलन का जन्म होता है । इस अध्याय में आन्तरिक रूप से दो भाग है।

प्रथम भाग मे "दलित समस्या" का अध्ययन है । इस भाग मे यह जानने का प्रयास किया गया है कि वस्तुत दलित समस्या है क्या चीज । जिस दलित आन्दोलन का अध्ययन करने हम जा रहे है वह क्या है यह जानना अत्यावश्यक था । अत सर्वप्रथम दलित समस्या को जानने का प्रयास किया गया है इसके अन्तर्गत दलित समस्या के उद्भव, जन्म और विकास की मीमांसा की गयी है । यहा यह जानने का प्रयास किया गया है कि वस्तुत दलित समस्या है क्या चीज । किस तरह से यह समाज मे आई और किन–किन रूपों से आगे बढते हुये यह समाज का एक कैन्सर बन गयी । क्या जिस स्वरूप में यह आज है उसी स्वरूप मे

इस का उद्‌भव हुआ था अथवा उद्‌भव किसी और रूप के लिये हुआ था परन्तु आज इसमे तमाम विकृति आ गयी और इन्ही विकृति के कारण ही यह आज इस रूप में हमारे सामने है ।

पूर्वपीठिका अध्याय के अन्तर्गत दूसरे भाग मे "अम्बेडकर के उद्‌भव" को जाने का प्रयास किया गया है । हमारा लक्ष्य अम्बेडकरवाद को जानना है । परन्तु इतिहास की एक विशिष्ट अवतारणा है कि 'इतिहास को जानना' है तो इतिहासकार को जानो और इतिहासकार को जानना है तो उसकी परिस्थितियो को जानो ।" मुझे अम्बेडकरवाद को जानना है यह हम तभी जान सकते है जब हम अम्बेडकर को जान जाये और हम अम्बेडकर को तब तक नहीं जान सकते जब तक कि हम अम्बेडकर का जन्म और विकास किन परिस्थितियो मे हुआ इसे न जान जाये । जब हम अम्बेडकर के जन्म का विकास की दशा परिदशा को समझ लेते है तब हमे अम्बेडकर दर्शन को समझने मे अत्यन्त आसानी हो जाती है । अतः इस भाग में अम्बेडकर के जन्म व विकास की परिस्थितियो को जानने का प्रयास किया गया है ।

दूसरा अध्याय "अम्बेडकर का दर्शन" है । इसमे अम्बेडकर के समग्र चिन्तन को सक्षेप मे जानने का प्रयास किया गया है । अध्ययन की सुविधा के लिये समग्र चिन्तन के इस अध्याय को चार भागो मे बाटा गया है । सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक चार भागो मे चिन्तन को बाटा गया है । इसी के अन्तर्गत समग्र अम्बेडकर दर्शन को समेकित करने का प्रयास किया गया है ।

इस अध्याय का पहला भाग अम्बेडकर के "सामाजिक चिन्तन" का है । इस भाग मे यह जानने का प्रयास किया गया है कि डा0 अम्बेडकर का समाज के प्रति क्या चिन्तन था । वह समाज की सम्पूर्णता को किस स्वरूप में देखते थे । अम्बेडकर दलित समाज से ताल्लुक रखते थे । दलित समाज अत्यन्त निम्नतम दशा

मे खडा था । अब तक अनेक लोग दलित समाज के उत्थान हेतु काफी कार्य कर चुके थे ।इन कार्यो से अम्बेडकर का समाज के प्रति चिन्तन कितना अलग था । प्राचीन लोगो द्वारा किये गये चिन्तन मे क्या कमिया थी कि दलित समाज में अधिक सुधार नही आ सका । डा0 अम्बेडकर का समाज के प्रति जो नजरिया था क्या वह इस दृष्टिकोण को क्रियाविधि मे उतारने का प्रयास करते थे अथवा नहीं । इन सब बातो की समीक्षा अम्बेडकर दर्शन के 'सामाजिक चिन्तन' भाग में की गयी है ।

प्रथम अध्याय अम्बेडकर दर्शन का दूसरा भाग "धार्मिक चिन्तन" का है । इस भाग मे अम्बेडकर का धर्म चिन्तन जानने का प्रयास किया गया है । अम्बेडकर एक बडे धर्मवेत्ता भी थे और उन्होंने धर्म पर अनेक पुस्तकों की रचना की थी । हिन्दू धर्म मे उनका जन्म हुआ लेकिन वह हिन्दू धर्म मे मरना नहीं चाहते थे । ऐसी उनकी मीमासा थी । क्या परिस्थितिया थी कि डा0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म से इस सीमा तक खिलाफ हो गये थे । हिन्दू धर्म के अलावा अन्य धर्मो के प्रति उनकी क्या राय थी । भारत अनेक धर्मो बहुसस्कृतियो का देश है । इसमे वह धर्म निरपेक्षता को किस स्वरूप मे देखते थे । धर्म का जीवन में क्या योगदान है । अम्बेडकर ने धर्म परिवर्तन किया तो यह उनका व्यक्तिगत नजरिया था या फिर दलित समाज को बदलने का प्रयास था । इन सब बातो की मीमासा का प्रयास अम्बेडकर दर्शन के इस भाग दो मे किया गया है ।

अम्बेडकर दर्शन का तीसरा भाग "आर्थिक चिन्तन" का है । अम्बेडकर वस्तुत अर्थशास्त्र के विद्यार्थी थे । उनका शोध स्नातकोत्तर, पी. एच. डी और डी लिट सभी के विषय अर्थशास्त्र के थे । वस्तुत वह अर्थशास्त्र के अध्येता थे । अर्थशास्त्र में उनकी विद्वता थी । इस विद्वता का उपयोग, उन्होंने भारत देश और दलित समाज के लिये किस प्रकार किया । क्या वे अपने आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक उपयोग कर सके अथवा उनके आर्थिक सिद्धान्त मात्र किताबी बन कर रह गये । दलित समाज अत्यन्त निम्नतम पशुवत दशा में खड़ा था। जिसे इस दशा

से ऊपर उठाने के लिये अम्बेडकर के पास क्या और कैसी आर्थिक योजना थी और क्या वह योजना व्यावहारिक थी। इस तरह के आर्थिक प्रश्नो पर गहन मीमासा सक्षेप में करने का प्रयास इस अध्याय के तृतीय भाग में करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास के समय आकडो व सारणी की अपेक्षा व्यावहारिक और समाज के प्रति इसकी गुणवत्ता पर ध्यान देने का प्रयास किया गया है । आकडो की कलाबाजी से मात्र बुद्धिजीवी को मतलब होता है । अत आकडीय कलाबाजी के खेल का सहारा वही तक लिया गया है जहा उसकी अत्यन्त आवश्यकता थी अन्यथा उसके व्यावहारिक पक्ष पर ही अधिक ध्यान दिया गया है।

अम्बेडकर दर्शन का चौथा भाग अम्बेडकर के "राजनीतिक चिन्तन" का है। इसमे डा0 अम्बेडकर के मानवतावाद, जनतत्रवाद, लोकतत्र, एक व्याक्ति एक वोट, किसान–मजदूर–एकता के नारे, धर्मनिरपेक्षतावाद आदि तत्वो की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है। इसी भाग के अन्तर्गत भाषावाद, क्षेत्रवाद, प्रातवाद आदि तथ्यो की भी मीमासा कर ली गयी है । यह सब प्रश्न भी राजनीतिक ही है इस पर भी डा0 अम्बेडकर ने अपनी बेबाक राय अपने चिन्तन मे दी थी।

अम्बेडकर दलित समाज को ऊपर लाने का प्रयास कर रहे थे इस प्रयास की पूर्णता के लिये उन्होने आरक्षण का नारा दिया था। इस आरक्षण सिद्धात के द्वारा वह दलित समाज को ऊपर लाने का प्रयास कर रहे थे। यह आरक्षण का सिद्धात उन्होने अग्रेजी सरकार से लिया था। अग्रेजी सरकार के बिरूद्ध चल रहे आन्दोलन के प्रति उनकी क्या अवधारणा थी। विशेषत आन्दोलन मे 1920–50 का दौर गाधीवादी दौर माना जाता है। गाधीवादी दौर मे गाधी ही समाज की भी अगुआई कर रहे थे। इस दशा मे डा0 अम्बेडकर और गॉधी के बीच सम्बंध किस प्रकार के थे । क्या दोनो की एक दूसरे के प्रति समझ थी। दोनो एक दूसरे को समझना व जानना भी चाहते थे अन्यथा नहीं। गॉधी ने भी अस्पृश्यता उन्मूलन को अपना लक्ष्य

घोषित किया था । क्या इससे गॉधी को सफलता मिली। यदि नहीं मिली तो अम्बेडकर की नजरो मे इस असफलता का क्या कारण था।

सब से बडी बात अग्रेजी सरकार की क्या मनोदशा अम्बडेकर को लेकर थी। अम्बेडकर अग्रेज सरकार से भारतीय समाज और दलित समाज से क्या चाहते थे। डा0 अम्बेडकर की अग्रेज सरकार से कैसे पटती थी । क्या वह दलित समाज के लिये अग्रेजी सरकार से कुछ पाने मे सफल हुये अथवा उन्हें कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। अग्रेज सरकार की अम्बेडकर व दलित समाज के प्रति सहानुभूति वास्तविक थी अथवा सिर्फ दिखावा और काउन्टर बैलेस की नीति थी । जिसके द्वारा वह राष्ट्रीय आन्दोलन को सतुलित करने का प्रयास कर रहे थे। इस सन्तुलन के द्वारा वह राष्ट्रीय आन्दोलन के अगुआ वर्ग (हिन्दू सवर्ण वर्ग) की शक्ति को तोडने का प्रयत्न कर रहे थे। इन सारे महत्वपूर्ण प्रश्नो व मिथको को इस भाग के अन्तर्गत जानने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रबन्ध का तीसरा अध्याय "दलित समाज के जागारण में काशीराम का योगदान" है। प्रकारान्तर से कहे तो यह शोध प्रबन्ध का दूसरा भाग है । इस भाग मे हमने यह जानने का प्रयास किया है कि आखिर काशीराम की दलित समाज के जागरण के प्रति क्या अवधारणा है । वह भारतीय समाज ओर दलित समाज के प्रति कैसे व किस रूप मे सोचते है । वह बार-बार यह दावा करते हे कि उनका आन्दोलन डा0 अम्बेडकर की परम्परा का आन्दोलन है। यह अपनी ऊर्जा का सचयन डा0 अम्बेडकर से ही प्राप्त करते है । डा0 अम्बेडकर ही विद्वान व्यक्ति थे और उन्होने जो सस्थापनाये अपने चिन्तन मे की है उसी को मै आगे बढाने का प्रयास कर रहा हूँ । इसमे मेरी सिर्फ सामयिकता है । चिन्तन के पुरोधा तो डा0 अम्बेडकर थे । मेरा आन्दोलन डा0 अम्बेडकर की ही परम्परा को आगे ले जाने का काम कर रहा है। अन्तत कहा जा सकता है कि वह पूर्णतया अपने को अम्बेडकर की दलित आन्दोलन की परम्परा को गतिशील रखने वाला घोषित कर देते है।

इस अध्याय को भी अध्ययन की सरलता के लिये तीन भागो मे बॉट कर देखने का प्रयास किया गया है। अध्याय के तीन भाग–सामाजिक क्रियाविधि, धार्मिक क्रियाविधि और आर्थिक क्रियाविधि के रूप मे है । काशीराम के योगदान को उसकी क्रियाविधि के आधार पर जानने का प्रयास किया गया है।

अध्याय का प्रथम भाग "सामाजिक क्रियाविधि" के रूप मे है । इसके अन्तर्गत काशीराम के समाज के प्रति विचारो को जानने का प्रयास किया गया है। वह समाज को किस दिशा मे आगे ले जाना चाहते है। दलित समाज को वह कैसे समतावादी सिद्धात का स्वरूप देना चाहते है। दलित समाज के उत्थान के लिये उनके पास क्या सामाजिक योजना है। वह अपने सामाजिक सघर्ष को किस हद तक अम्बेडकरवादी परम्परा से जोडने का प्रयास कर रहे है। अम्बेडकरवाद के सन्दर्भ मे उनका योगदान कुछ है भी या नही है । दलित समाज को वह कैसे शोषणवादी प्रवृत्तियो से बचना चाहते है । इन प्रश्नो का उत्तर जानने का प्रयास सामाजिक क्रियाविधि के प्रथम भाग मे किया गया है।

अध्याय का दूसरा भाग "धार्मिक क्रियाविधि" का है । इस भाग मे यह जानने का प्रयास किया गया है कि धर्म के विषय मे काशीराम की विचारधारा क्या है । उनका व्यक्तिगत धर्म क्या है । वह आस्तिक है अथवा नास्तिक है । वह दलित समाज को जो धर्म देना चाहते है वह कौन सा धर्म है । कोई पुरातन धर्म है अथवा कोई अधुनातन धर्म है । यथा मानववाद । धार्मिक मीमासा कहा तक फिट बैठती हे। दोनो लोगो की धर्मिक मीमासा पर सामयिकता का कितना प्रभाव है।

सबसे बडा तथ्य यह है कि काशीराम का धर्मपरिवर्तन का क्या मनतव्य है । वह धर्म परिवर्तन को हिन्दू धर्म से मुक्ति मानते है या नहीं । यदि नहीं मानते है तो क्यो नहीं मानते है। वह धर्म परिवर्तन चाहते है अथवा नहीं । अन्य धर्मानुयायियो के

प्रति उनकी क्या राय है। वह धर्म परिवर्तन को अस्पृश्यता का एक विकल्प मानते है अथवा नही । यदि नही मानते है तो क्यो नही मानते है ।

काशीराम का धर्म के मूल तत्वो ईश्वर,, आत्मा, जीव, मानव, पूर्वजन्म आदि पर क्या मीमासा है इस मीमासा के साथ उनका क्या योगदान है और जो योगदान है उसमे वह कहा तक डा0 अम्बेडकर की परिकल्पना मे फिट बैठते है इन सब बातो को जानने व खोजने का प्रयास धर्मिक क्रियाविधि भाग के अन्तर्गत किया गया है इसे लिखते समय काशीराम के स्वतत्र व अम्बेडकर के परतत्र भारत के साथ–साथ भारत के बटवारे को भी ध्यान मे रखा गया है ।

दलित समाज के जागरण मे काशीराम का योगदान अध्याय के अन्तर्गत तीसरा भाग "आर्थिक क्रियाविधि" का है । इसमे समस्त आर्थिक गतिविधियो की मीमासा की गयी है काशीराम, भूमि, मलिकाना, जमीदारी, मजदूरी आदि तत्वों पर किस प्रकार का नजरिया रखते है यह सब जानने के लिये इस भाग की सरचना की गयी है । इसके अन्तर्गत यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि वस्तुत काशीराम को उत्तर प्रदेश मे जो सफलता प्राप्त होती है क्या वह मात्र काशीराम के योगदान के कारण है अथवा इसके लिये एक उर्वर आर्थिक पृष्ठभूमि है । यहां सबसे बडा तथ्य यह है कि यहा उन तथ्यो की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है कि आजादी के बाद जो व्यापक रोजगार व विकासपरक योजनाये सरकार द्वारा सचालित की गयी उसका क्या प्रभाव समाज पर पड़ा है । रोजगार व धनशक्ति के विषय मे महत्वपूर्ण सबध है । जो योजनाये दलित वर्ग के लिये चलाई गयी क्या उनका वास्तविक लाभ आम जनता तक पहुँचा या नहीं पहुँचा तो किस प्रकार से पहुँचा ।

हरित क्रान्ति का लाभ आम जनता तक किस स्वरूप में पहुचा । इस क्रान्ति से अथवा ब्रिटिश काल मे कृषि के वाणिज्यीकरण का अन्तिम लाभ समाज के अन्तिम

व्यक्ति तक पहुँचा अथवा नहीं । हरित क्रान्ति से उत्पादन तो बढा परन्तु इससे समाज के अन्तिम व्यक्ति का दारिद्र दूर हुआ कि नही । डा0 अम्बेडकर ने बाकी जमीन दलितो मे बटवा कर उन्हे मालिकाना देने की बात की थी क्या उनकी यह मशा पूरी हुयी । क्या काशीराम इस मशा को पूरा भी करना चाहते है अथवा नही । मजदूरो की दशा पर काशीराम क्या सोचते है । मजदूर को उसकी मजदूरी लाभ के स्वरूप मे प्राप्त होनी चाहिये । इन सब विशिष्टतम सवालो का उत्तर आर्थिक क्रियाविधि भाग के अन्तर्गत करने का प्रयास किया गया है ।

शोध प्रबन्ध का चतुर्थ अध्याय दलित समाज के जागरण मे "काशीराम का राजनीतिक योगदान व आन्दोलन का परिणाम" के रूप में हैं । इस अध्याय के अन्तर्गत काशीराम के राजनीतिक योगदान की मीमासा की गयी है । चूकि राजनीतिक योगदान से ही परिणाम भी प्राप्त होने लगते है और समस्त आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति है इसलिये दोनो विचारो को एक में मिलाकर मीमासा करने का प्रयास किया गया है । डा0 अम्बेडकर और मा0 काशीराम दोनो ही सभी तालो की एक चाबी सत्ता प्राप्ति के रूप में मानकर चलते है । दोनो का ही मानना है कि दलित समाज की सारी समस्याओ का समाधान तभी होगा जब वह स्वय सत्ता की प्रधान कुर्सी पर विराजमान होगा । राजनीतिक योगदान के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष रूप मे सीधे तौर पर सत्ता दिखाई पड़ती है । इसलिये दोनो को एक साथ रखकर समीक्षा करने का प्रयास किया गया है ।

काशीराम की लोकतत्र, जनतत्र, समतावाद, मानवतावाद आदि तत्वों के प्रति क्या विचारणा है । वह समाज को राजनीतिक रूप से क्या देना चाहते है। क्या वह राजनीतिक चिन्तन में भी कुछ नया आयाम जोडते है अथवा सिर्फ सत्ता की तलाश ही करते रहते है ।

सत्ता की चाबी की तलाश वह किन आधारो पर करते है । अम्बेडकर को वह सत्ता क्यो नही प्राप्त हो सकी और काशीराम को वह सत्ता कैसे प्राप्त हो गयी । इतने अल्प समय मे काशरीराम के योगदान का पूर्ण सफलता प्राप्त होने के क्या आधार थे । क्या इसका आधार अम्बेडकर द्वारा किया गया सामाजिक आन्दोलन था अथवा इसकी आधार पीठिका भी स्वय काशीराम ने तैयार की थी ।

काशीराम ने किन सगठनो को बनाया और जिन सगठनो को बनाया उसकी सरचना क्या थी । उन्होने 'बहुजन समाज पार्टी' की स्थापना किन आधारो पर की थी । बहुजन समाज पार्टी वास्तव मे चाहती क्या है । क्यो इसका लक्ष्य मात्र सत्ता की प्राप्ति है अथवा वह दलित समाज के लिये भी कुछ करना चाहते हैं । दलित समाज के साथ–साथ सम्पूर्ण समाज के लिये भी कुछ करना चाहते हैं या फिर सिर्फ सत्ता ही प्राप्त करना चाहते है ।

आन्दोलन के लिये धन की जरूरत होती है । धन की व्यवस्था काशीराम ने कैसे की कहा से की । धन की व्यवस्था के लिये उन्होने किन–किन उपायों का सहारा लिया । क्या वे इतना धन प्राप्त कर सके कि उनका आन्दोलन सुचारू रूप से चल सके अथवा धन के कारण ही 'इन्डिपेन्डेन्ट लेबर पार्टी' और 'इन्डियन पार्टी' की तरह आन्दोलन धराशायी तो नही हो जायेगा। आन्दोलन सुदृढ़ीकरण के लिये पर्याप्त कोष इकट्ठा कैसे हुआ।

आन्दोलन के लिये एक रणनीति होती । उस राजनीति मे प्रायः भावनात्मक तत्वो का अधिक आश्रय लिया जाता है । जनता के लिये भावनात्मक दलीलो का आश्रय लिया जाता है । क्या काशीराम की भी तकनीक भावनात्मक अपीलो का आश्रय लेती है अथवा नही। क्या उनकी तकनीक समाज को जोड़ती है अथवा विभाजित करके अपना मन्तव्य साधने का प्रयास करती है । उनकी पार्टी का कोई घोषणा पत्र भी है अथवा नही । यदि घोषणा पत्र नही है तो वह दलित समाज को

कैसे कुछ करने का आश्वासन देते है। उनके नारो की जो अपील है उसकी प्रवृत्ति क्या है । अन्यथा समाज मे व्याप्त जो मिथक है उनके प्रति काशीराम का क्या नजारिया है। इन सब प्रश्नो का उत्तर खोजने का प्रयास इस चौथे अध्याय में किया गया है । इसी के अन्तर्गत बहुजन समाजपार्टी को सत्ता प्राप्त हो जाती है और सुश्री मायावती देश के सबसे बडे राज्य उत्तर प्रदेश की मुख्यमत्री बन जाती है मुख्यमत्री एक नहीं तीन बार बनती है । अर्थात सत्ता की चाबी प्राप्त हो जाती है । यह सत्ता की चाबी किन तकनीको से प्राप्त होती है । क्या यह मात्र बहुजन समाज के आधार पर प्राप्त हो गयी है अथवा तथा कथित मनुवादी पार्टियो से भी सहयोग लेने का प्रयास किया गया है। यदि मनुवादियो का सहयोग लिया गया तो आखिर बहुजन समाज की अवधारणा मे क्या अन्तर आया । आया भी कि नहीं। क्या 'सर्वजन समाज' की अवधारणा नई परिस्थितियों की देन है अथवा काशीराम का दलित आन्दोलन को आगे बढ़ाने की नयी तकनीक है । क्या इससे बहुजन समाजपार्टी की मूलभूत क्रियागतता मे कुछ बदलाव आयेगा या नही । इन सब प्रश्नो का उत्तर दलित समाज के जागरण मे काशीराम का राजनीतिक योगदान व आन्दोलन का परिणाम अध्याय के अन्तर्गत खोजने का प्रयास किया गया है।

पाचवा व अन्तिम अध्याय "निष्कर्ष एव सामान्यीकरण" का है । इसमें सम्पूर्ण शोध मे गयी सकल्पनाओ व सस्थापनाओ की व्याख्या है । इसके अन्तर्गत संकल्पना की समीक्षा के उपरान्त जिन सकल्पनाओ को मूलभूत पाया गया है उनका विवेचन किया गया है। इसमे क्रमश सभी अध्यायो से प्राप्त संस्थापनाओं का क्रमवार वर्णन है । यद्यपि संस्थापनाओ को हमेशा 'सन्दर्भ' मे रखकर देखने का प्रयास किया गया है । यह सन्दर्भ अम्बेडकरवाद से काशीराम के दलित आन्दोलन का है । दोनो को एक साथ रखकर अपने अध्ययन को निष्कर्षित करने का प्रयास किया गया है । सस्थापनाओ को प्रमाणिकता व वस्तुनिष्ठता के आधार पर रखने का प्रयास किया गया है ।

संस्थापनाओ के अन्त मे "साराश" दिया गया है । इस साराश में अम्बेडकर वाद के सन्दर्भ मे रखकर काशीराम के दलित आन्दोलन की समीक्षा तुलनात्मक आधार पर करने का प्रयास किया गया है । साराश के अन्तर्गत दोनो के विशिष्ट चिन्तन को एकरूपता देने का प्रयास किया गया है ।

अन्तत आन्दोलन के लिये "सुझाव" लिखा गया है । सुझाव को समाज के विकास के लिये अत्यन्त उपयोगी कहा जा सकता है । सुझाव के द्वारा आन्दोलन को मजबूती दी जा सकती है । सुझाव के द्वारा आन्दोलन की कमियों का परिष्कृत किया जा सकता है । परिष्कृत समाज के आधार पर ही परिष्कृत भविष्य के निर्माण की रूपरेखा लिखी जा सकती है ।

अध्याय — एक

पूर्वपीठिका

(क) दलित समस्या

(ख) अम्बेडकर का उद्भव

(क) दलित समस्या

लोकाना तु निवृद्ध्यर्थ मुखवाहूरूपाधत ।
ब्राह्मण क्षतित्रयम् वैश्य शूद्र निरवर्तमेत ।।[1]
(लोको की वृद्धि के लिये मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय जांघ सेवैश्य
एव चरण से शूद्र ब्रह्मा जी ने उत्पन्न किये ।
"सर्वस्यातु सर्वस्य गुप्त्यर्थ स महाद्युति ।
मुखबाहूरूपाज्जाना पृथक्कर्मण्यकल्पयत् ।।
अध्यायन अध्ययने यजन याजन तथा ।।
दान प्रतिग्रह चैव ब्राह्मणानाम कल्पयत् ।।
प्रजाना रक्षणं दानमिज्या ध्ययनमेव च ।
विषयेष्व प्रसाक्तिश्च क्षत्रियस्य समाक्षत ।।
पशूना रक्षण दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वाणिक्वय कुसीद च वैश्यस्य कृषिमेव च ।।
एकमेव तु शूद्रस्य प्रभु कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णाना सुश्रूषामनसूयम ।।"[2]

(विश्व की रक्षा के लिये उस परम तेजस्वी ब्रह्मा ने मुख, बाहु, जघां और पाद से उत्पन्न वर्णो के क्रम पृथक पृथक निर्दिष्ट कर दिये । वेद पढना–पढाना, यज्ञ करना–कराना, दान देना–लेना, यह छ कर्म ब्राह्मणो के लिये निश्चित किये । प्रजा रक्षण, दान, यज्ञ, वेदाध्ययन और विषयो से अनाशक्ति य कर्म क्षत्रियो के लिये नियत किया गया । पशुपालन, दान, यज्ञ, वेदाध्ययन, वाणिज्य औए कृषि वैश्य के कर्म नियत किये । शूद्र के लिये प्रभु ने एक ही कर्म का आदेश दिया कि वह उक्त तीनो वर्णो की सेवा ईर्ष्या त्याग कर करें । इस प्रकार की भारतीय प्राक सामाजिक दशा थी जिसमे चार वर्णो की उत्पत्ति स्वत ब्रह्मा रो मनु महाराज ने करा दी और शूद्र

को निम्नतम स्थान प्रदान कर दिया शूद्र के लिये दन्ड भी अधिक कठोर थे । वह किसी मामले में गवाही के भी योग्य न था ।[3]

यह व्यवस्था थोड़ा बहुत परिवर्तन के साथ 18वी सदी तक बनी रही अस्तु मध्य काल के लखक अलवरूनी ने भी 1030 ई0 के लगभग अपनी भारत यात्रा का विवरण लिखते समय हिन्दू समाज सगठन की विलक्षणता पर टिप्पणी निम्न प्रकार से की है । "हिन्दू अपनी जातियो को वर्ण अथवा रग कहते हैं । वे जातक की जाति उसके जन्म की जाति के आधार पर करते हैं । ये जातियाँ आरम्भ से ही केवल चार है ।

1 सबसे ऊची जाति ब्राह्मणो की है । उनके बारे मे हिन्दू ग्रन्थ कहते है कि उनका जन्म ब्रह्मा के सिर से हुआ है । ब्राहाण उस शक्ति का पर्याय है जिसे प्रकृति कहते है। । सिर चूकि शरीर का सबसे ऊचा हिस्सा है, अत ब्राह्मण समस्त जातियो मे सर्वोत्तम है । अत उन्हे हिन्दू सर्वश्रेष्ठ मानव जाति मानते है ।

2 दूसरी जाति क्षत्रियो की है । कहा जाता है कि उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा की भुजाओं से और कधा से हुयी । उनकी श्रेणी ब्राह्मणों से अधिक निम्न नहीं है ।

3 उनके बाद वैश्य आते है । जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा की जांघ से हुयी है ।

4 शूद्र जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से हुयी है । शूद्र और वैश्य एक साथ मिल–जुलकर रहते हैं ।

शूद्र के बाद वे लोग है जो अन्त्यज कहलाते हैं । इनकी गिनती किसी जाति में नहीं होती है । वे अपने–अपने व्यवसाय के नाम से जाने जाते हैं । ये गाँवों कस्बों के बाहर रहते हैं जबकि चारों वर्णो के लोग गावों में रहते है ।"[4]

"भोज मे हर जाति के लोग अलग–अलग अपनी जातिवालो के साथ बैठते हैं एक वर्ग में दूसरी जाति वाला सम्मिलित नही हो सकता । अगर ब्राह्मण वर्ग में कोई ऐसे दो व्यक्ति हैं । जो आपस मे वैमनस्य रखते हो और उन्हे साथ बैठना पडे, तो वे अपने बीच खपच्ची रखकर या अगोछा बिछाकर या किसी अन्य तरीके से एक दूसरे से पृथक अपना चौका बना लेते है । आसनो के बीच एक रेखा के भी खीच दिये जाने पर उन्हे अलग–अलग समझा जाता है । चूकि जूठन खाने की मनाही है । अत हर व्यक्ति को अपनी–अपनी थाली में अपना भोजन करना चाहिये ।"[5]

दुआर्ते वारबोसा "1500–17" तक भारत में पुर्तगाल सरकार की सेवा में पुर्तगाली अधिकारी रहा उसने भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन किया है । इस शूद्र से बनी अस्पृश्यता का उद्‌भव स्थल क्या है ? इस सम्बन्ध मे अनेक मत है । इस पर डा0 धनजय कीर का मानना है कि – "जातिभेद का विकृत और विपरीत पर्यवसान ही यथार्थ में अस्पृश्यता की रूढि है । अर्थात आरम्भ में जाति संस्था मौजूद नहीं थी । आर्य वश एक समान था । उनकी धारणा थी – न विशिष्योअस्ति वर्णानाम् । श्रम विभाग के तत्व के अनुसार हर एक अपनी रूचि अरूचि के अनुसार व्यवसाय करता था । — किन्तु यह श्रम विभाजन का तत्व आगे अधिक समय तक टिक नहीं सका । गुणवाचक वर्ण संज्ञा आगे जाति वाचक मानी गयी । इसलिये ब्राह्मण मे आवश्यक गुणों का पूरी तरह अभाव होने पर भी तीनों लोको में श्रेष्ठ माना जाय, ऐसा ख्याल था । क्षत्रिय कुल मे पैदा हुआ व्यक्ति क्षात्रगण रहित होने पर भी शस्त्रहार या शासक हो जाता था । साथ ही शूद्र कुलोत्पन्न व्यक्ति ज्ञान सम्पन्न होने पर भी शूद्र और हीन ही माना जाता था । इस तरह चार वर्णो की चार की सख्या अनगित हो गयी विभिन्न रीतिरिवाज विभिन्न आहार तथा संकट के कारण इन अनेक जातियो मे से सैकडो उप–जातिया, अनु–उपजातियां निर्मित हुयी ।"[6]

दूसरी एक उपपत्ति बतायी जाती है कि भारत के जिन मूल निवासियों ने आर्यो की सत्ता को नकारा उन्हें आर्यो ने रौंद दिया । उन पर दासता और अन्त में उनके माथे पर अस्पृश्यता की मुहर लगा दी । तीसरा मत यह है कि यह एक छिन्न–भिन्न हुआ समाज था । आगे इस समाज के लोगो ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया उनकी अवनति के समय भी वे आर्यो के साथ समरूप नही हो सकें । उन्होने गोमास भक्षण का त्याग नही किया । इसलिये उस समाज को निष्कासित किया गया । और वही समाज आस्पृश्य माना गया ।"[37]

"तीन हजार वर्ष की इस परम्परा में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों को ही ज्ञान सत्ता और सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकार मान्य किये गये थे । ज्ञान के कारण सत्ता पर अकुश रखना सम्भव था सत्ता के कारण सम्पत्ति प्राप्त हो जाना स्वाभाविक था तीनो वर्णो मे सघर्ष के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं । सत्ता सम्पत्ति या ज्ञान के लिये किये गये इन सघर्ष कथाओ में एक भी ऐसी कथा नहीं मिलती, जिसमें शूद्र या अछूत के अधिकारों की बात कही गयी हो । उनके जिम्मे केवल कर्तव्य ही कर्तव्य था । इस चौथे वर्ण और इस वर्ण से बाहर जीने वाले समाज को लेकर किसी भी प्रकार की सहानुभूति या दया ऊपर के वर्ण वालों में दिखलाई नहीं देती । किसी बुद्धिमान शूद्र को लेकर कही कोई प्रसशा के स्वर मिलते भी हों तो भी उन्हे अपवाद ही मानना होगा ।"[8] "ऋग्वेद काल मे शूद्र तिरस्कृत भी नहीं थे । वास्तव में ऋग्वेद में मात्र तीन ही वर्ण थे – ब्रह्मण, क्षत्रिय और वैश्य"[9] चौथे वर्ण की व्युत्पत्ति अतिम दशम अध्याय मे प्राप्त होता है, जो बाद के उपनिषद काल मे धीरे–धीरे चौथे वर्ण की तथा बाद के काल खन्डो में अछूत वर्ग की निर्मिति की गयी । उपनिषदो का काल साधारणतया ई0पू0 1200–600 माना जाता है ।"[10]

"रोटी–बेटी व्यवहार तथा खान–पान में प्रयुक्त वस्तुओं (शाकाहारी और मासाहारी) को प्रमाण मानकर चार वर्णो मे कई जातियां – उपजातियां बनी । मध्य काल तक आते–आते इस देश का समाज इतनी इकाइयों और इतनी उप इकाइयो मे बट गया कि इसकी अपनी असली पहचान लुप्त सी हो गयी ।

आश्चर्य केवल इसी बात का था कि प्रत्येक को अपने वर्ण का अभिमान था और प्रत्येक वर्ण की सैकडों जातिया अपने–अपने अहकार को लेकर जी रही थी । बात केवल यहीं तक सीमित होती तो भयंकर नहीं थी । अपने वर्ण और जाति का अहकार जतलाते–जतलाते अन्य वर्णो और जातियो के प्रति तिरस्कार की भावना भी बढने लगी । ऊपर का वर्ण नीचे के वर्ण को छोटा समझता । वर्ण व्यवस्था के अन्तिम छोर पर स्थित शूद्र और उससे भी अन्य में स्थित अछूत सबकी निन्दा अपमान और उपेक्षा का शिकार हो गया । समाज के सभी तबकों ने इन्ह नकारना शुरू किया । धर्माज्ञा के नाम पर यह सब चल रहा था ।"[11]

यहा एक प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि भारत मे इन अस्पृश्यो की सख्या कितनी है । बहुत पूर्व से इसके विषय मे हमे कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती । हॉ 1911 की प्रथम जनगणना से हमे इस विषय मे सही जानकारी प्राप्त होने लगती है ।

"भारत मे पहली बार आम जनगणना 1881 में हुयी थी । जिसमें मूलत जाति–उपजाति का विवरण और उनका कुलयोग निकालने का कार्य किया गया था । दूसरी 1891 की जनगणना में उच्च व निम्न का वर्गीकरण महत्वपूर्ण रहा । तीसरी 1901 की जनगणना मे नया सिद्धान्त स्थानीय जनमत द्वारा स्वीकृत सामाजिक वरीयता के आधार पर वर्गीकरण का सिद्धान्त अपनाया गया । कहा गया कि भारतीय समाज के विभिन्न स्तरो मे परिवर्तन का निर्धारण अभी भी जाति के आधार पर ही होता है । प्रत्येक हिन्दू जिस जाति में जन्म लेता है वहीं उसकी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक जीवन का निर्धारण करती है । यह स्थिति मा की गोद से लेकर मृत्यु की गोद तक रहती है । पश्चिमी देशों में समाज के विभिन्न स्तरो का निर्धारण चाहे वह आर्थिक हो सामाजिक हो, शैक्षिक या व्यावसायिक हो वे बदलते रहते है । भारत मे आध्यात्मिक, सामाजिक, सामुदायिक तथा पैतृक व्यवसाय सबसे बडे तत्व हैं, जो अन्य तत्वों की अपेक्षा प्रधान तत्व होते

है । इसलिये पश्चिमी देशो मे जहा जनगणना के समय आर्थिक अथवा व्यावसायिक वर्ग के आधार पर आकडे एकत्र किये जाते है । " वहा भारत में धर्म और जाति का स्थान महत्वपूर्ण होता है और जब तक समाज मे किसी व्यक्ति के अधिकार व पद की पहचान जाति के आधार पर होगी तब तक इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है ।"[12] परन्तु 1901 की जनगणना से कोई ठोस आकडे प्राप्त न हो सके और 1911 की जनगणना मे नये मानदन्ड अपनाये गये – "जो वागमय मे निम्नत है –

1 ब्राह्मणो की श्रेष्ठता को नही मानते ।

2 किसी ब्राह्मण या अन्य मान्यता प्राप्त हिन्दू से गुरू दीक्षा नहीं लेते ।

3 वेदो की सत्ता को नही मानते ।

4 बडे–बडे हिन्दू देवी देवताओ की पूजा नहीं करते ।

5 ब्राह्मण जिनकी यजमानी नही करते ।

6 जो किसी ब्रह्मण को पुरोहित बिलकुल भी नहीं बनाते ।

7 जो साधारण हिन्दू मन्दिरो के गर्भ गृह में भी प्रवेश नही कर सकते ।

8 जिनसे छूत लगती है ।

9 जो अपने मुर्दो को दफनाते है और

10 जो गोमास खाते हैं और गाय की पूजा नहीं करते हैं ।"[13]

"साइमन कमीशन जो 1930 मे भारत आया था उन्हीं कोशिशों के परिणामस्वरूप कुछ–कुछ निश्चय पूर्वक यह बता सका कि ब्रिटिश भारत में अछूतों की सख्या 4 करोड 45 लाख है ।"

अन्तिम जनगणना 1951 मे हुयी । जिसमे जनगणना आयुक्त ने सख्या 5 करोड 13 लाख बतायी है । जिसमें कि कुल भारतीय जनसंख्या 35 करोड 67 लाख बतायी गयी है । जिनमे 29 करोड 49 लाख लोग ग्राम क्षेत्र से और 6 करोड 18 लाख लोग शहरो मे रहते थे । ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियो की जनसख्या 4 करोड़ 62 लाख है, जबकि शहरों में इनकी जनसख्या

51 लाख है । कुल आबादी मे एक करोड 32 लाख लोग अनुसूचित जातियों के हैं ।[15]

"अनुसूचित जाति के लोगो की कुल पाच करोड 13 लाख की जनसख्या में से उत्तरी भारत (उ0प्र0) मे एक करोड 14 लाख लोग, पूर्वी भारत – (बिहार, उडीसा, पश्चिमी बगाल, असम, मणिपुर, त्रिपुरा) मे एक करोड 28 लाख लोग , दक्षिणी भारत (मद्रास, मैसूर, त्रावनकोर कोचीन और कुर्ग) में एक करोड़ 10 लाख लोग , पश्चिमी भारत (बम्बई, सौराष्ट्र और कच्छ) मे 31 लाख लोग , मध्य भारत (मध्य प्रदेश, मध्य भारत, हैदराबाद भोपाल और बिन्ध्य प्रदेश,) में 75 लाख लोग और उत्तरी पश्चिमी भारत (राजस्थान, पजाब, पटियाला और पूर्वी पजाब के राज्यो अजमेर, दिल्ली बिलासपुर और हिमाचल प्रदेश) मे 52 लाख लोग अनुसूचित जाति के थे ।"[16]

अस्पृश्यता पर लज्जित होने की बजाय हिन्दू उसे हमेशा उचित ठहराने की कोशिश करते हैं । उसके समर्थन मे उनका कहना है कि अन्य देशों की तुलना में भारत में गुलामी प्रथा कभी नहीं रही, और यह कि अस्पृश्यता किसी भी दशा में उतनी बुरी नही है, जितनी की गुलाम–प्रथा थी । कुछ इसी प्रकार का तर्क लाला लालपत राय ने अपनी पुस्तक "अनहैपी इन्डिया" मे दिया है ।

इसके प्रतिवाद मे वाङमय मे लिखा गया है कि – "यह कहना सरासर झूठ बोलना है कि हिन्दुओ मे गुलामी प्रथा कभी थी ही नहीं । यह तो हिन्दुओं की अति प्राचीन प्रथा है । इसे हिन्दुओ के विधि निर्माता मनु ने मान्यता प्रदान की और उनके बाद उनका अनुशरण करने वाले अन्य स्मृतिकारों ने इसे व्यापक बनाया और व्यवस्थित रूप दिया । हिन्दुओ मे गुलाम प्रथा केवल एक प्राचीन प्रथा के रूप में नहीं थी जो केवल धुधले अतीत मे प्रचलित रही हो, बल्कि यह तो एक ऐसी संस्था थी जो भारत के इतिहास मे 1843 तक प्रचलित रही और अगर अग्रेंजी सरकार इसे

इस वर्ष कानून बनाकर समाप्त न कर देती तो शायद यह आज भी प्रचलित होती ।"[17]

गुलाम प्रथा के कुछ एक विवरण द्वारा हम अछूत प्रथा से उसकी नजदीकी को समक्ष सकते है यथा – रोम साम्राज्य मे गुलामो की दशा का विवरण देते हुये "स्लेवरी इन रोमन एम्पायर" नामक पुस्तक मे श्री बैरो लिखते है कि – "निस्सन्देह गुलाम भारी सख्या में होते थे और ये प्राय रोम में पाये जाते थे । गुलाम भारी सख्या मे खेतो में काम करने और इससे जुडे उत्पादकता कार्यो के लिये लगाये जाते थे । ये वहा इन गुलामों के बीच आपसी सम्बध ठेकेदार और मजदूरों के बीच जैसा होता था, उनमे से एक उनका मुखिया होता था, बाकी उसके अधीन काम करते थे । प्लिनी का अपने गुलामो के प्रति दयापूर्ण व्यवहार प्रसिद्ध है । वह अपने गुलामो के प्रति यह व्यवहार धार्मिक भावना से प्रेरित होकर या इस इच्छा से नहीं करता था कि आगे आने वाली पीढी की दृष्टि मे वह अच्छा समझा जायेगा ओर यह पीढी उसके उन पत्रो को पढ़ेगी जिसमें उसने अपने गुलामों की मुसीबतों और मुत्यु का वर्णन किया है । प्रत्येक घर उसके गुलामो के लिये एक गणराज्य था । प्लिनी का अपने गुलामों के प्रति व्यवहार यदा–कदा इतना नरम था कि उसके साक्ष्य को साक्ष्य नही माना जाता । इस दृष्टिकोण हेतु कोई कारण समक्ष में नहीं आता । –– शासन मे गुलाम नाजिरो को नियमित नौकरियॉ मिलती थी । एक विशेष शोध प्रबध में स्टोनियस ने दावा किया कि – बहुत से गुलाम मुक्त शास्त्रकार और वैयाकरणिक थे । आगस्टस के पोते का अध्यापक बैरीअस फलाकस था, और उसकी मृत्यु हो जाने पर उसकी मूर्ति लगाकर उसका सार्वजनिक सम्मान किया गया था । हाई जीनियस पैलेटाइन पुस्तकालय का लाइब्रेरियन था । इसी प्रकार अन्य कई गुलाम डाक्टर, वास्तुकार इतिहासकार वास्तुकार का पता चलता है । समाज के कुछ वर्गो द्वारा नर्तकों, गायको, सगीतकारों खेलकूद प्रशिक्षकों आदि की माग हुयी । गुलामो मे इस कोटि के लोग भी हुये । इनमें से कुछ को शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षित भी किया गया और उन्होंने ख्याति भी अर्जित की ।"[18]

इसी प्रकार व्यापार व्यवसाय के बढने पर गुलामों को विशेष छूट मिली । यथा मलिक किसी भी गुलाम को अपनी भूमि या जहाज कमीशन पर दे सकता था । ये गुलाम जो कमाते वह कानून की दृष्टि में उनकी सम्पत्ति बन जाती थी । जिसे वे किसी प्रयोजन पर खर्च कर सकते थे ।[19]

कुछ इसी प्रकार की दशा अमरीका के नीग्रो लोगों की थी । जिसका विस्तृत विवरण दी नीग्रो इन अमरीकन सिविलाइजेशन – चार्ल्स सी0 जानसन द्वारा लिखित रचना में प्राप्त होता है । "बाङमयकार ने दोनों अस्पृश्य और गुलाम व्यवस्था दोनो का तुलनात्मक अध्ययन करते हुये प्रश्न किया है कि – आज की अस्पृश्यों की दशा गुलामो की दशा से कितनी भिन्न है ? आज कितनी सख्या मे अस्पृश्य, लाइब्रेरियन, स्टोनोग्राफर, डाक्टर, जैसे व्यवसायो मे लगे है ? आज कितने अस्पृश्य वाक्पटु, भाषा विज्ञानी, दार्शनिक, अध्यापक, वास्तुकार कलाकार नियुक्त है या बौद्धिक कार्य कलाप करते हैं ? क्या रोम के गुलामों की तरह अछूतों से ये काम कराये जाते है ? क्या कोई हिन्दू ऐसी हिम्मत रखता है कि कई प्रश्नों का उत्तर हां में कर दे ? अछूतों के लिये थे सारे रास्ते पूरी तरह बन्द हैं, जबकि रोमन गुलामों के लिये वे पूरी तरह खुले थे । अस्तु स्पष्ट है कि अस्पृश्यता को गुलामी से श्रेष्ठ ठहराने की दलील व्यर्थ है ।"[20]

इस समस्या का उन्मूलन करने के लिये भारत के अनेक महानुभावों ने अपने–अपने तरीके से प्रयास किये । राजकुलोत्पन्न महाज्ञानी और बुद्धि प्रामाण्यवादी गौतम बुद्ध ने भी जाति व्यवस्था को धक्का दिया । भगवान बुद्ध ने अस्पृश्यों को अपने धर्म की दीक्षा दी । उन्हें अपने भिक्षु–सघ में शामिल कर लिया । तत्पश्चात ग्यारहवी शताब्दी मे रामानुजाचार्य ने स्वय स्थापित किये मठ और मन्दिर अस्पृश्यों के लिये खुले कर दिये । रामानुजाचार्य का एक प्रधान शिष्य तो अस्पृश्य जाति का ही था । कर्नाटक में बासवेश्वर नामक एक विशाल और व्यापाक दृष्टिकोण रखने

वाले धीरोदान्त मत्री ने अस्पृश्यता नष्ट करने का कार्य किया । चक्रधर,, रामानन्द, कबीर,, चैतन्य आदि ने भक्ति के क्षेत्र मे एकात्मकता पर जोर दिया उनका अनुसरण कर एकनाथ, तुकाराम, रोहिदास, चोखामेला—साधु—सन्तो ने भक्ति पथ में समता का उपदेश किया ।"[21]

"इस देश मे जो बाहरी शक्तिया आई, उन्होने कभी इस वर्ण या जाति—व्यवस्था के विरोध मे जेहाद नहीं छेडा । कारण स्पष्ट था जो विदेशी थे उनका लक्ष्य व्यवस्था परिवर्तन का नही था वे तो पूरी तरह सुरक्षित और शान्ति के साथ अपनी सत्ता स्थिर रखकर शोषण करना चाह रहे थे । जिस देश का सामाजिक ढाचा शोषण के बहुत अनुकूल हो उसे बदलने का खतरा वे क्यों मोल लेना चाहते ? जाति और वर्ण—व्यवस्था के कारण समाज अनेक स्तरो पर बटा हुआ था और ऐसे बटे हुये मनुष्य समूह पर शान्ति और सुरक्षित ढग से शासन करना आसान होता । उलटे इस जाति व्यवस्था को उन्होने और मजबूत करने का काम किया ।"[22] ऊच नीच और छूआछूत की यह बीमारी इस्लाम को मान्य नहीं थी, परन्तु "हिन्दुओ ने मुसलमानो को जातिवाद का जहर पिलाया, बदले मे मुसलमानो नें हिन्दुओ को पर्दे का शाप दिया । हिन्दुओं की देखा—देखी मुसलमानों में भी ऊच—नीच का भेद चलने लगा ।[23] "जाति व्यवस्था और इस्लामी सस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय स्त्री और शूद्र इन दोनो की स्थिति और बद तर होती गयी । जाति व्यवस्था की क्रूरता के कारण इस काल मे धर्म—परिवर्तन भी काफी सख्या में हुये । सम्भवत इसी धर्म—परिवर्तन के कारण सन्तों ने भक्ति की धारा को प्रवाहित किया । भक्ति की इस धारा ने दलितो को भावनात्मक गरिमा जरूर पहुंचायी परन्तु उनकी सामाजिक दशा मे इससे कोई मौलिक अन्तर नही हुआ । "[24]

"भक्ति पथ और साधु—सन्तो की सीख के बारे में एक बात ध्यान में रखना जरूरी है । यह सच है कि ईश्वर के घर मे कोई भेद—विभेद नहीं, देव भाव का भूखा इस तरह वे जयघोष किया करते थे । लेकिन तुम्हारी—हमारी भजन में एकता,

भोजन मे छूयता, साथ एक, पातदो ऐसी ही उनकी रूढि थी । इन पुण्यश्लोक साधु सन्तों की सीख से इलाम के धार्मिक आक्रमणों के खिलाफ जाने-अन जाने हिन्दू समाज के निम्न वर्गो में धर्माभिज्ञान जागृत हुआ । किन्तु चातुर्वर्ण्य प्रणीत सामाजिक विषमता और जाति भेद नष्ट करना उनका मकसद नहीं था । इस लिये उनके उपदेश का नतीजा भक्ति-पथ तक ही सीमित रहा । अगर ऐसा होता तो बारकरी सम्प्रदाय मे पूरी तरह से दकियानूसी हुये सनातनी हरि भक्त परायण न होते । विष्ठा भक्षण करने वाली गाय को प्रणाम करके गाय-भैसों की विष्ठा से देवघर और रसोई घर पोतने वाले किन्तु अपने धर्म बान्धवो का अपने देवताओं के भक्तों का अशौच मानने वाले गोभक्त परायण और सन्त शिरोमणि उस भक्ति मार्ग में रत न होते । साधु-सन्त परम दयालु थे । भूतदया के हिमायती थे । लेकिन जिस प्रकार केवल माता के प्रेम करने से बेटे की बीमारी अच्छी नहीं होती, उसी प्रकार साधु सन्तो की केवल दयार्द्रता और सहृदयता से हिन्दू धर्म पर लगा हुआ अस्पृश्यता का कलक दूर नहीं हुआ ।[26]

"वही बात हिन्दू सम्राटों की थी । अपने धर्म बान्धवो को अस्पृश्य मानना पाप है, अपराध है ऐसा कानून किसी भी भारतीय राजा ने नहीं बनाया । एक भी नृपश्रेष्ठ के शिलालेख या स्तूप पर ऐसा नहीं दिखाई देता कि प्रजा को इस तरह का आदेश दिया गया हो।"[26]

"अग्रेंजों के आगमन तक ऐसी ही स्थिति थी । ईस्ट इन्डिया कम्पनी की स्थापना से लेकर – (सन् 1600-1857) के सिपाही विद्रोह तक करीब 257 वर्षो तक इस देश के सामाजिक ढांचे मे किसी भी प्रकार के मूलभूत परिवर्तन की बात न कही गयी है और न इसके लिये कोई आन्दोलन ही आरम्भ हुआ । वैचारिक स्तर पर चर्चा हो रही थी । 1872 में जन्में राजाराममोहन राय ने ब्रह्मा समाज की स्थापना 1828 ई0 में की । जिस पर ईसाई धर्म का प्रभाव था । हिन्दू धर्म की शुद्धि की बात की जा रही थी । परन्तु इसमें चौथा वर्ण शामिल न था । राममोहन के

नेतृत्व मे चार वर्णो मे वहा हिन्दू समाज आत्म परीक्षण के लिये तैयार था । हजारों वर्षो की जड़ता को तोड़ने का काम ब्रह्म समाज ने किया ।"[27]

इस काम को आर्य समाज ने और आगे बढ़ाया । "दयानन्द ने जाति व्यवस्था पर कठोर प्रहार किये राममोहन राय और केशव चन्द सेन से भिन्न स्वामी दयानन्द की यह विशेषता रही कि उन्होने धीरे–धीरे पपड़िया तोड़ने का काम न करके, उन्हें एक ही चोट से साफ कर देने का निश्चय किया । दयानन्द के अन्य समकालीन सुधारक केवल सुधारक मात्र थे किन्तु दयानन्द क्रान्ति के वाहक थे ।"[28]

राम मोहन का प्रभाव बगाल की जाति व्यवस्था पर थोड़ा पड़ा तथापि अस्पृश्यता नष्ट करने के लिये प्रत्यक्ष कार्य का आरम्भ महात्मा ज्योतिबाराव फूले ने किया । अस्पृश्यता का उन्मूलन करके आधुनिक भारत में सामाजिक समता निर्माण करने का महान सदेश महात्मा फूले ने दिया । उन्होंने पुरातन पन्थियों की निष्ठा तथा छल–छद्म का अलौकिक धीरज के साथ डटकर मुकाबला किया । अस्पृश्य समाज की मुक्ति के लिये उन्होने साहसिक कार्य किया । उन्होंने अछूत बन्धुओं के लिये पुणे में सन् 1948 में एक पाठशाला खोलकर भारत के ढाई हजार वर्षो की कालावधि मे अद्‌भुत क्रान्तिकारी कार्य किये । इतना ही नहीं अध्यापक के अभाव में उन्होने अपनी अशिक्षित पत्नी को शिक्षित कर अध्यापिका बना दिया । यह पवित्र कार्य करते समय उस सत्वशील देवी ने अज्ञानी बान्धवों और सनातनियों से क्रूर विडम्बना सहन की । भारतीय स्त्री को शिक्षा प्रदान करके उसके लिये आत्मोन्नति का मार्ग खुलाकर देना और शूद्रो तथा अति शूद्रों को शिक्षा प्रदान कर सामाजिक धार्मिक और आर्थिक विषमता नष्ट करने के लिये उन्हे अपने पैरों पर खड़ा करने का ज्योतिराव का कार्य भारत में बेजोड़ है ।"[29]

बगला के शशीधर बन्धोपाध्याय ने भी इस क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किया । भारतीय नरेशों मे से पुण्यश्लोक, सियाजीराव गायकवाड़ का अस्पृश्यता उन्मूलन का

कार्य बड़ा ही ठोस और परिणामकारी सिद्ध हुआ । ऐसा प्रजाहित दक्ष, ज्ञानदाता और प्रगतिप्रिय नरेश आधुनिक भारत में शायद ही हुआ होगा । स्पृश्य हिन्दुओं की निर्दयता से, अस्पृश्यो के लिये खोले गये स्कूल के लिये स्पृश्य हिन्दू अध्यापक उपलब्ध नहीं होते थे , इसलिये सियाजी राव महाराज को मुस्लिम अध्यापक नियुक्त करने पडे ।"(30)30

"महाराष्ट्र का अस्पृश्य समाज भी अपनी गहरी नींद से जागृत हो रहा था । उस समाज के प्रथम नेता गोपाल बाबा वलगकर थे । उन्होने जोर–जोर से चिल्लाकर कहना शुरू किया कि अस्पृश्यता देव निर्मित नहीं मानव निर्मित है । वे साधु वृत्ति से रहते थे । अपनी बाते समाचार पत्रों, कीर्तनो और सामाजिक परिषदों द्वारा व्यक्त करते थे । वे सुशिक्षित हिन्दुओ का ध्यान अन्याय के शिकार हिन्दू समाज के एक घटक की ओर आकृष्ट कर रहे थे । कर्नल अल्काट और ईसाई धर्मोपदेशको के स्कूल जो अस्पृश्यो के लिये बाद मे खोले गये उस समय नहीं थे ।"(31)

"अग्रेजो की सत्ता से अछूतों की शैक्षिक दशा में फर्क आने लगा था । प्रारम्भ में नये शासको का रूख काफी सावधानी पूर्ण था । पेशवाई में ब्राह्मणों के हाथ मे राज्यसत्ता थी । उन्होने इस तरह की सावधानी बरत ली थी उन्हें असन्तुष्ट न रखा जाये । उन्हें पश्चिमी पद्धति की शिक्षा देकर राज्य कारोबार में लगाये रखना तथा उनकी तरफ से कोई विरोध होगा ऐसी बात प्राय नहीं थी ।"(32)

"उस समय शिक्षा प्राप्त करना ब्राह्मणो की बपौती मानी जाती थी । ब्राह्मणेतर लोग शिक्षा प्राप्त करे, यह कल्पना ही उस समय अधार्मिक मानी जाती थी । ब्राह्मणो को वह असत्य लगती थी । विधाध्ययन करना उनका फर्ज नहीं, ऐसा पीढ़ी दर पीढी ब्राह्मणों ने उनके मन पर अकित किया था । इस चेतावनी की धाक

से बेवस हुये सतारा के कमजोर छत्रपति को भी लगी थी । दिन मे शिक्षा नहीं ले सकने के कारण वे रात में विद्याध्ययन करते थे ।"[33]

सन् 1820 मे ब्रिटिशो ने पुणे के ब्राह्मणो के लिये एक संस्कृत पाठशाला खोल दी । तीस साल बाद उस पाठशाला में ब्राह्मणेतर हिन्दू छात्रो को प्रवेश दे दिया जाये, ऐसा अग्रेंजो के तय करते ही उस पाठशाला के प्राय सभी ब्राह्मण अध्यापकों ने ब्रिटिशों की इस नयी नीति का जोरदार विरोध किया ओर उस नीति के निषेध के लिये लगभग सभी अध्यापकों ने त्याग पत्र दे दिया ।"[34] उच्च वर्ग के ब्राह्मणेत्तरों के स्कूल प्रवेश की यह कर्म कथा थी तो अस्पृश्यों की शिक्षा की बात करते ही कौन से अत्याचार हो गये होते उस की केवल कल्पना करना ही उचित होगा । ब्रिटिश सरकार को डर लगता था कि ब्राह्मणेतरों और अस्पृश्यों को यदि शिक्षा दी जाये तो ब्राह्मण उसका विरोध करेगे । उस तरह का विरोध अपने माथे पर रखने के लिये धूर्त राज्यकर्ता उस समय प्राय तैयार नहीं होते थे । निम्न समाज को शिक्षा देने से अगर क्रान्ति हो जायेगी तो उच्च वर्ग के पूर्व हमे ही स्वाहा होना होगा, ऐसा डर ईस्ट इन्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के अध्यक्ष लार्ड एलिनबरो जैसे चतुर राजनीतिज्ञ को लगता था ।"[35]

"उस समय लगभग सभी अध्यापक और स्कूल निरीक्षक ब्राह्मण थे । इसी कारण ब्राह्मणेत्तरों और विशेषत अछूतों की शिक्षा की समस्या और जटिल हो गयी थी । अस्पृश्यो को सरकारी स्कूल मे प्रवेश देने के बारे मे उस समय बीच–बीच में विचार –विमर्श होता था । वैसी माग भी थी । उस समय हटंर आयोग के सामने बयान देते समय म0गो0 कुन्टे ने कहा कि वह अंग्रेज अधिकारी और अव्यवहारी एतद्देशीय समाज सुधारको की है, वह निराधार और और व्यर्थ मॉग है । कुन्टे उस समय के ख्याति प्राप्त समाज सुधारक, विद्वान रानाडे के परम मित्र थे । " ब्राह्मणों के इस स्वार्थी रूप की वजह से निर्मित हुयी उस प्रतिकूल परिस्थिति का लाभ ईसाई धर्म–प्रचारकों और संस्थाओं ने बड़ी कुशलता से उठाया । ईसाई

धर्म–प्रचारको ने धर्मान्तरण का उद्देश्य अपने दिल मे रखकर शूद्रो और विशेषत अति शूद्रो की शिक्षा की समस्या हाथ मे ले ली । ईसाई धर्म प्रचारकों का बर्ताव दयालु और कार्य प्रवीणता आकर्षक थी । वे उनको अशौच नहीं मानते थे । इसलिये उनकी भूतदया से युक्त कार्य प्रणाली का असर शूद्रों के मन पर अधिक पडा । उनकी ऐसी धारणा बन गयी कि ब्राह्मण समाज की अपेक्षा वे विदेशी ईसाई धर्म प्रचारक अधिक अच्छे है ।"[36]

अग्रेज राज्य कर्ता अस्पृश्यो की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते थे । वे कुछ मात्रा में तटस्थ रहते थे फिर भी अस्पृश्यों की शिक्षा की समस्या उछलकर सन् 1856 मे सामने आयी है । धारवाड के सरकारी स्कूल के एक प्रधानाध्यापक ने एक अस्पृश्य लडके का प्रवेश नकारा । इसलिये यह मामला बम्बई सरकार के पास फैसले के लिये भेजा गया । वहा से होकर वह मामला कलकत्ता के महाराज्यपालों के यहा पहुच गया । उन्होने अनुकूल फैसला किया । उस फैसले के अनुसार सन् 1858 में एक परिपत्र द्वारा राज्य के सभी स्कूलों को बताया गया कि अब सरकारी स्कूलो मे सभी जाति के छात्रो को प्रवेश दिया जाये । जिन स्कूलों को सरकारी अनुदान प्राप्त होता था उन्हे समस्त जातियों के लडकों को प्रवेश देना आवश्यक है ।"[37] जो स्कूल इस आदेश का पालन नहीं करेगें उन्हें अनुदान देना अथवा न देना सरकार की इच्छा पर निर्भर करेगा ।"[38]

सामाजिक ढाचे मे परिवर्तन की प्रक्रिया 1857 के बाद तेजी से शुरू हो गयी । 1857 के विद्रोह से अग्रेज इस बात को भाप गये कि उनकी सत्ता को खतरा समाज के उच्च वर्गीय जातियो से है । विद्रोह में मुसलमान व हिन्दू दोनों के उच्च तबके अधिक सक्रिय थे । कम्पनी की सेना मे इसी वर्ग के लोग अधिक थे । इस वर्ग से उत्पन्न खतरे को रोकने के लिये उन्होंने अपनी नीति में परिवर्तन कर दिया तब से लेकर 1947 तक धूर्त अग्रेज कभी पिछड़े वर्ग को तो कभी सवर्णो को निकट लेकर अपनी सत्ता को सुरक्षित करने लगे । अग्रेंजों ने अछूतों दलितों को सेना में प्रवेश देना शुरू कर दिया ।"[39] कम्पनी सरकार ने छावनियों में स्कूलों की

सुविधाए भी उपलब्ध करा दीं । इन स्कूलो मे सैनिकों के लडके–लडकियो को अनिवार्य रूप से प्रवेश दिया जाने लगा । परिणामत इस तबके के लडके–लडकियों को पहली बार आधुनिक शिक्षा मिलने लगी । शिक्षा की इस सुविधा के परिणाम स्वरूप इस तबके मे स्वतत्र चिन्तन शक्ति का विकास होने लगा अपनी स्थिति पर वे सोचने लगे ।"[40]

अग्रेंजो की बदलती नीति के परिणाम स्परूप शिक्षा की सुविधायें देश के अनेक शहरो मे उपलब्ध होने लगी एक ओर अग्रेज इस देश की पारम्परिक अर्थव्यवस्था को ध्वस्त कर रहे थे तो दूसरी ओर वे पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान को यहां प्रचारित थी कर रहे थे । 1853 के अपने एक लेख मे कार्ल मार्क्स और फेडरिक एजिल्स ने लिखा है – "इग्लैंड को हिन्दुस्तान में दो स्तरों पर कार्य करना है एक विध्वस के स्तर पर दूसरा पुन निर्माण के स्तर पर । पुरानी एशियायी समाज पद्धति को नष्ट करना तथा एशिया में पश्चिमी समाज पद्धति में स्थित भौतिकता की नीव डालना उसका लक्ष्य है ।"[41] अग्रेंजी शिक्षा के प्रचार प्रसार के कारण व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति सजग हो रहा था । ईसाई धर्म प्रचार के आक्रमण के कारण पारम्परिक हिन्दू धर्म की ओर उसे नयी दृष्टि से देखना जरूरी हो गया था । देश भर में रेलो का जाल बिछाया जाने लगा । इससे लोगों की बीच सम्पर्क बढने लगा । "देहातो की पूर्ण उदासीनता रेलो के कारण टूटने लगी ।"[42] वास्तव मे इग्लैड परिवर्तन की इच्छा से यह सब नहीं कर रहा था । अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिये वह जिन पद्धतियो का उपयोग कर रहा था । उसके अप्रत्यक्ष प्रभाव पारम्परिक सामाजिक ढाचे पर होने लगे । "हिन्दुस्तान में सामाजिक क्रान्ति लाने के लिये प्रतिबद्ध इग्लैन्ड नीच स्वार्थी हितो से प्रेरित था । इग्लैन्ड ने चाहे जितने अपराध किये हों तो भी हिन्दुस्तान में सामाजिक क्रान्ति लाने की प्रक्रिया में वह अनजाने में इतिहास के हाथों का एक हथियार बना यह निश्चित है ।"[43] 1814 में रे0सी0टी0ई0 इनियस नामक एक जर्मन ईसाई धर्म प्रचारक भारत आया था । वह अपनी डायरी में लिखता है कि "जाति सस्था के कारण एक जाति का अन्य जाति

से जो भेद है उससे अछूत हिन्दुओ को अपने नहीं लगते । वास्तविकता यह है कि जाति और वर्ण को वे अपना हक मानते है, बडी शान से इसका उल्लेख करते है । अत्यन्त निकृष्ट और पशुवत जीने वाले अत्यजो मे भी जातिया–उपजातिया होती है , जो जाति जितनी हीन है वह उतनी ही अधिक मजबूत है । अछूतो में अपनी जाति से चिपके रहने की प्रवृत्ति काफी अधिक है ।"[44]

18वीं सदी तक प्राय यही स्थिति थी "18वीं सदी तक देश में सामजिक सुधार आन्दोलन शुरू नहीं हुये थे । उलटे इस सदी मे विद्वेष की भावना चरमोत्कर्ष पर थी । जाति प्रथा की सख्ती कठोरतम अवस्था तक चली गयी थी । 19वी सदी के आरम्भ तक यही दशा थी ।[45] सन् 1840 के बाद महाराष्ट्र मे धार्मिक और सामाजिक सुधारो के प्रति सजगता दिखलाई देने लगती है । गोपाल हरि देशमुख "लोकहितवादी अग्रेजी शिक्षा से अभिभूत थे । उनके मराठी लेखों से स्पष्ट है कि वे सामाजिक विषमता और परम्परावादी, रूढिग्रस्त समाज के विरूद्ध कठोर टीका कर रहे थे । जाति प्रथा का विरोध व स्त्रियो की दयनीय दशा पर उन्होंने काफी कठोरता से लिखा है ।" अम्बेडकर के जन्म के पूर्व महाराष्ट्र में एक सुधारात्मक नेताओं विचारकों की एक श्रृखला चल पडी थी जिसके पुरोधा ज्योतिराव गोविन्द राव फूले थे । इनका व्यक्तित्व आक्रामक व विद्रोही था । दलित जाति में जन्म लेने से दलित अपमान को समझने मे मदद् मिली । अग्रेंजी भाषा ज्ञान से व्यवस्था के प्रति चिढ व पारम्परिक शास्त्र के अध्ययन से समाज व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना पनपी । "इस समाज रचना के विरोध हेतु उन्होंने तीन मार्गो का अवलम्बन किया – (1) बौद्धिक स्तर पर विषम समाज रचना का विरोध (2) पिछड़ी जाति व दलितो का सगठन (3) प्रत्यक्ष सघर्ष । उनका सबसे बडा कार्य ब्राह्मणवादी संस्कृति का पर्दाफाश करना रहा है । उनके अथक परिश्रम के कारण आगे के आन्दोलनों की वैचारिक पृष्ठभूमि की प्राप्ति हुयी ।"[46] "किसी भी आन्दोलन को अगर सैद्धान्तिक नींव प्राप्त न हो, आन्दोलनकर्ता को अगर समाज में स्थित विविध अन्त प्रवाहों का एहसास न हो, तो ऐसा आन्दोलन जाति के कोष से बाहर नहीं निकल

सकता । आन्दोलन कितना भी विद्रोही क्यो न रहा हो उसका महत्व और उसका बडप्पन जाति के कोष से बाहर निकलने की क्षमता पर ही अवलम्बित होता है ।"[47] ज्योतिवाराव के पास ऐसी दृष्टि थी ।"[48]

श्री फूले शिवाजी महाराज की जाति निरपेक्ष दृष्टि से अत्याधिक प्रभावित थे । 1869 मे उन्होंने "छत्रपति शिवाजी राजे पाचां पोवाडा" नामक एक वीर काव्य की रचना की । 1873 में उनकी पुस्तक 'ब्राह्मणाचे कसब' नाम से छपी । पुस्तक की भूमिका मे उन्होने लिखा कि "धर्म के नाम पर इस देश में कितना कदाचार होता है, सामान्यजनों का कितना शोषण होता है, इसकी जानकारी आम आदमी को देकर, उन्हे ब्राह्मणो के बन्धनो से छुडाने हेतु इस पुस्तक को मैने लिखा है ।"[49] 1873 में ही उनकी एक और पुस्तक 'गुलामगीरी' छपी । जिसमे उन्होंने अमेरिका के नीग्रो लोगो के मुक्ति सग्राम को उन नीग्रो को गुलामी से मुक्त करने हेतु प्रयत्नशील सदाचारी लोगो को समर्पित की है । वे यह अनुभव कर रहे थे कि नीग्रो तथा दलितों की स्थिति समान है । वहा रंग के आधार पर भेदनीति अपनायी गयी और यहा वर्ण या जाति के आधार पर भेदनीति अपनायी गई । इस कारण दोनों लड़ाइयों में समानता हैं । 1873 में इस देश के एक आन्दोलन को विश्व के किसी दूसरे देश मे चलने वाले आन्दोलन से जोडने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को यह सूचित करती है ।"[50] गुलाम गिरी 60 पृष्ठों मे लिखी गयी पुस्तिका है । जो सोलह भागों में विभाजित है । सम्पूर्ण पुस्तिका में ज्योतिबा व उनके एक मित्र के संवाद दिये गये है । विश्व की उत्पत्ति से लेकर आज तक के हिन्दू धर्म के संक्षिप्त इतिहास की, उसकी विसगतियों की इसमें चर्चा है । अग्रेंजी शासन के कारण आम आदमी के ज्ञान के दरवाजे कैसे खुल गये हैं इसे भी इसमें स्पष्ट किया गया है । यथा–"इस देश में अग्रेंजी सरकार आने के कारण शूद्रादि, ब्राह्मणों की शारीरिक गुलामी से मुक्त हो रहे है । परन्तु हमें यह कहते हुयें दुःख होता है कि अभी भी हमारी दयालु सरकार शूद्र अति शूद्रों को ज्ञान–शिक्षा देने के प्रति गम्भीरतापूर्वक जिम्मेदारी महसूस नहीं कर रहीं है ।"[51] उन्होनें "शेतक–याचा या सूद" और

"सार्वजनिक सत्य धर्म" नामक प्रमुख पुस्तको की रचना की । 13 सितम्बर 1863 को उन्होंने सत्य शोधक समाज की स्थापना की । जो हिन्दू धर्म को नकारता है । मानव को केन्द्र बिन्दु मानता है, ईश्वर पर विश्वास करता है । विधवा विवाह, केशप्रक्षालन, कुमारी मातायें या विधवा जनन पर उन्होंने सुरक्षात्मक उपाय खोजे व मान्यता प्रदान की । स्त्री, श्रमिक सबके लिये कार्य किया । तभी रावसाहब कास्वे ने उनके आन्दोलन को दलित आन्दोलन न कहकर एक वर्णीय आन्दोलन कहा है ।[52] इसी परम्परा मे महाराष्ट्र की धरती पर न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे व गोपाल गणेश आगरकर के रूप मे दो प्रमुख सामाजिक मनीषी व चिन्तक रहे हैं ।

अग्रेजी शिक्षा से बदलाव आरम्भ हुआ तो महार रेजिमेन्ट की स्थापना से इसमे त्वरण आया जिससे सम्मान की प्राप्ति हुयी । 1857 के बाद महार बटालियन विकसित की जाने लगी । राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना के ठीक एक वर्ष बाद 1886 मे गोपाल बाबा बलगंकर सेना से निवृत्त हो गये और आगे का शेष जीवन समाज कार्य को समर्पित किया । "अनार्य–दीप–सहार" नामक सस्था की स्थापना की अस्पृश्यता विध्वसन (बिठाल विध्वसन) गोपाल बाबा की पुस्तक है । इसी परम्परा में 'शिवराम जानबा काबले' का नाम आता है जो दक्षिण महार परिषद के सचिव थे । इन दोनो ने अग्रेजी सरकार को अपने अधिकारो के लिये लिखा कि – " ब्राह्मणों और मुसलमानो को ब्रिटिश नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकार अगर आपने दिये है तो हमें क्यो नहीं दिये जाते । हमें भी वे सारे अधिकार मिलने चाहये ।"[53] श्री काम्बले का यह विश्वास था कि "वर्ण व्यवस्था का नाश तथा अस्पृश्यता का सम्पूर्ण उन्मूलन किये बगैर स्वतत्रता बेमानी होगी ।[54] किसन भागू जी वनसोड़े एक अन्य समाज सुधारक थे जिन्होने अपना मुद्रणालय खोलकर व्यापक साहित्य सर्जन किया । मजदूर पत्रिका चलाई तो 'सन्मार्ग बोधक निराश्रित समाज' सस्था की स्थापना की । दलितों को सबोधित कर इन्होंने कहा है कि "ईसाई मत बनों, मृत जानवरों का मांस मत खावो, मद्यपान बन्द करो, पढो, अच्छे नागरिक हो जाओ, अपनी आर्थिक दशा सुधारो सगठित हो जाओं ।"[55]

ये सभी आन्दोलन नवीन चेतना के वाहक थे जिसमे महात्मा फूले की सर्जना क्रान्तिकारी और बहुआयामी सिद्ध हुई । म0 फूले का प्रभाव रजवाड़ो पर भी पड़ने लगा म0 फुले के विचारो से कोल्हापुर के महाराजा शिवाजी के वशज शाहू जी महाराज अत्याधिक प्रभावित थे । परिवर्तनवादी आन्दोलन को राज्याश्रय प्रदान करने वाला यह प्रथम विवेक सम्पन्न राजा था । सत्यशोधक समाज को वे मात्र राज्याश्रय प्रदान कर वे नहीं रूके । अपने प्रशासन मे दलितों तथा पिछड़ो को अधिकाधिक भागीदारी देना भी उन्होने आरम्भ किया । 1919 मे उन्होने एक राज्या देश जारी कर अस्पृश्यों के लिये खोले गये स्वतत्र स्कूलो को बन्द कर राज्य शासन द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलो मे सभी जातियो के साथ अस्पृश्यों को भी प्रवेश देना शुरू किया । सरकारी स्कूलो मे छुआछूत पालना उन्होंने गैर कानूनी घोषित किया । इन स्कूलो मे सभी जातियो और धर्मो के छात्र इकट्ठे बैठेगे ऐसी घोषणा की गयी । नाशिक, नागपुर,, कोल्हापुर मे उन्होने दलितो के लिये छात्रावास खोले ।"[66] 1920 की नासिक की सभा में शाहू जी महाराज ने कहा – "शिक्षा एव स्वावलम्बन ये ही प्रगति के साधन है । मानवीय अधिकारो का प्रस्थापित करने के लिये शिक्षा ही एकमात्र मार्ग है । 1919 के आज्ञापत्र मे उन्होंने कहा कि – कोल्हापुर रियासत के रिवेन्यू, जूडिशियल आदि विभागो के सभी अधिकारियो को यह आदेश दिया जाता है कि उनके विभागो मे जिन अस्पृश्य वर्ग के व्यक्तियो की नियुक्तिया हुयी हैं, उनके साथ वे पूरी, आत्मीयता, स्नेह और मानवीयता के साथ पेश आयें । जो अधिकारी उनके साथ ऐसा व्यवहार करना नही चाहता वह तुरन्त त्याग पत्र देकर अलग हो जाय । परन्तु त्याग पत्र देने वाले को पेशन नहीं मिलेगी । हमारी ऐसी इच्छा है कि हमारे राज्य का कोई भी व्यक्ति किसी और व्यक्ति के साथ पशु की तरह व्यवहार न करें ।[67]

बड़ौदा के नरेश सियाजीराव गायकवाड़ प्रजाहित दक्ष और जाति तथा वर्ण के परे जाकर 'मनुष्य' मात्र को केन्द्र बिन्दु मानने वाले थे । साथ ही सर्वणों में भी

अनेक लोग आगे आ रहे थे । यथा रानाडे, आगरकर, बिट्ठल रामजी शिन्दे आदि थे । इनमें शिन्दे से डा0 अम्बेडकर सहमत नही थे । फिर भी उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता ।

अस्तु यह स्पष्ट है कि अम्बेडकर के पूर्व राजनीतिक, सामाजिक चेतना की पूर्वपीठिका तैयार हो चुकी थी । इसी से प्रेरत होकर रावसाहेब कास्वे ने लिखा है कि "डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर का जन्म किसी दैवी चमत्कार से प्रेरित नहीं था । इस भूमि को ब्राह्मणेत्तर पृष्ठभूमि प्राप्त हो चुकी थी । प्रमुखत महात्मा फूले का कार्य पथ प्रदर्शक व क्रान्तिकारी सिद्ध हुआ । सत्यधर्म और समतावादी समाज की निर्मिति के लिये आवश्यक जमीन फूले ने तैयार की । फूले तथा उनकी परम्परा के समाज सुधारकों की जमीन पर डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर खडे हैं ।"

20वीं सदी मे भी समाज व्यवस्था मे अन्याय की धारा का समापन पूर्णतया नहीं हो सका यद्यपि इस अन्याय को समाप्त करने के प्रयास शतत रूप में हो रहे थे तथापि इस 2500 वर्ष पुरानी व्यवस्था का मूलोच्छेदन नहीं हो सका । कदाचित इतनी शीघ्रता व त्वरित गति से इसका मूलोच्छेदन सम्भव भी नहीं था । 20वीं शताब्दी के अर्धभाग मे भारत पर अग्रेजी सत्ता काबिज थी । भारत परतत्र था । यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन मध्यान्ह के सूर्य की भाति इतिहास की छाती पर चमचमा रहा था तथापि राष्ट्रीय नेतागण बहुत कुछ करने की स्थिति में नहीं थे । एक तरफ परतन्त्र भारत था दूसरी तरफ अशिक्षित भारत था जो कि गॉवो में बसता था । फलत अछूत प्रथा कायम रही । इसे जानने हेतु कतिपय घटनाओं /उद्धरणों का विवरण समीचीन प्रतीत होता है ।

सन् 1909 मे श्री वेकट सुब्बा रेड्डी और उसके साथियों ने मजिस्ट्रेट द्वारा कुछ लोगों की इस शिकायत पर कि उन्होने उनको बाधा पहुंचाई, भारतीय दन्ड सहिता की धारा 339 के अधीन सजा दिये जाने के विरूद्ध मद्रास हाई कोर्ट में

अपील की । इस मुकदम मे वादी और प्रतिवादी दोनो ही हिन्दू थे । मद्रास हाई कोर्ट के निर्णय में इस मुकदमें का पूरा ब्यौरा तो मिलता है लेकिन इससे अस्पृश्यों की तुलना मे अस्पृश्यो की स्थिति भी सटीक ढग से स्पष्ट होती है । यह निर्णय इस प्रकार है । अपीलकर्ता–वेंकट सुब्बा रेड्डी व अन्य को इसलिये सजा दी गयी है कि उन्होने कुछ पेरिया जाति–(मद्रास की अस्पृश्य जाति) के लोगों को एक मन्दिर के पास सार्वजनिक मार्ग मे इस उद्देश्य से खडा किया, जिससे वादी उस मदिर से एक जुलूस उस सड़क से होकर निकाल न सके । यह पता चला कि वादी ने इस आशका से जुलूस नहीं निकाला कि अगर वह पेरियाओ के पास से होकर गुजरातो वह अपवित्र हो जायेगा और यह कि अभियुक्त ने दुर्भावनापूर्वक पेरियाओ को सडक पर खडा किया, जिसका एक मात्र प्रयोजन वादी को वहा जाने से रोकना था, जहा उसे जाने का अधिकार था । हम यह नहीं समझते कि अभियुक्त ने अनुचित अवरोध करने का कोई अपराध किया, हमारे विचार से यह कार्यवाही कोई ऐसी कार्यवाही नही थी, जिसे धारा 339 के अन्तर्गत बाधा माना जाये । पेरिया लोग कोई बाधक नहीं थे । दरअसल वादी को उनके पास से जुलूस ले जाने से रोकने की कोई बात नहीं थी और उन्हे यह अधिकार था कि वे जहा रहना चाहते थे रहे और यह नही कहा गया कि उनकी परिस्थिति का प्रयोजन शारीरिक क्षति पहुँचाने का था किसी भय को उत्पन्न करना था कि उनकी उपस्थिति से अपवित्र होने के अतिरिक्त कुछ और भी हो सकता था ।

शिकायतकर्ता जहा जाना चाहता था, उसको वहा जाने से रोकने के कारण ये लोग पेरियाओ की उपस्थिति नहीं थी, बल्कि उसका कारण उसकी खुद की अनिच्छा थी, जिसके कारण वह पेरियाओ के पास नहीं गया । जैसा कि श्री कुप्पूस्वामी अय्यर ने कहा कि – यह उसके द्वारा स्वय किया गया । यह उसने अपनी सहमति से किया कि वह वहीं रहा और दन्ड–सहिता के अर्थ की सीमा में क्षति पहुचाने को कोई भय नहीं था, जिसके कारण उनकी सहमति मुक्त सहमति न होती । यदि स्थिति इससे भिन्न होती, तब यह समझा जाता कि किसी भी पेरिया के

खिलाफ गलत खडे होने के बारे मे शिकायतकर्ता द्वारा की गयी यह शिकायत उचित थी कि जब उससे उस स्थान से कुछ दूर हट जाने के लिये कहा गया, जहां वह अपने किसी काम से बिना किसी कानून का उल्लघन किये विद्यमान था, तो उसने वहा से हटने से यह जानते हुये मना कर दिया कि जब तक वह वहां रहेगा तब तक शिकायतकर्ता अपवित्र हो जाने के डर के कारण उसके पास से नहीं जायेगा । यह स्पष्ट है कि इस मामले मे कोई बाधा नहीं पहुचाई गयी और हम समझते है कि अभियुक्त ने जो वहा पेरिया लोगों को खड़ा किया उसमें कोई अन्तर नहीं पडता । इसलिये हम सजा को रद्द करते हैं, और यदि कोई जुर्माना अदा कर दिया जाय तो वह लौटा दिया जाये ।"[58]

प्रस्तुत उदाहरण के दोनो पक्ष सवर्ण हिन्दू थे । उनके बीच मात्र जुलूस मार्ग को लेकर विवाद था । वेकट सुब्बा रेड्डी अपने विरोधियो को जुलूस निकालने से रोकना चाहते थे । इसके लिये उनको कोई अच्छा तरीका मालूम नहीं था । तभी उन्होंने विचार करके नायाब तरीका अछूत को मार्ग मे खड़ा करके मार्ग अपवित्र करके जुलूस निकालने से रोकने का निकाला । विरोधी अपवित्रता के कारण जुलूस नहीं निकाल सके । यह बात दूसरी है कि मद्रास हाईकोर्ट ने यह फैसला दिया कि पेरियाओ को सडक पर खडा करना कानून की दृष्टि में कोई बाधा नहीं कहलाता । "लेकिन सच्चाई तो यही है कि पेरियाओ की उपस्थिति सवर्णो को दूर रखने के लिये पर्याप्त थी । इससे भयकर अछूत प्रथा का पता स्वत चलता है ।[60]

दूसरा उदाहरण भी उतना ही ज्वलन्त है । जिसे प्रस्तुत करना समीचीन लग रहा है । यह काठियावाड के एक स्कूल मास्टर से सम्बधित है । यह श्री गांधी द्वारा प्रकाशित यंग इन्डिया नामक पत्र में छपा एक पत्र था । जिसमें मास्टर ने जो कि अस्पृश्य था ने बताया है कि उसे अपनी पत्नी का इलाज एक हिन्दू डाक्टर से कराने मे कौन–कौन सी परेशानिया आई । "मेरी पत्नी ने इस महीन की पांच तारीख को एक बच्चे को जन्म दिया । सात तारीख को वह बीमार पड़ गयी । वह

कमजोर होती गयी । उसके सीने पर सूजन आ गयी । उसे सास लेने में तकलीफ होने लगी । मैं डाक्टर को बुलाने गया, लेकिन उसने कहा कि वह हरिजन के घर नहीं जायेगा । वह बच्चे की जाच करने को भी तैयार नहीं हुआ तब मैं नगर सेठ के पास गया और मरसिया दरबार मे गया, और उनसे गुजारिश की कि वे इस मामले मे मेरी मदद करे । नगर सेठ ने बतौर डाक्टर की फीस दो रूपये की जमानत दी । डाक्टर इस शर्त पर आया कि वह उन्हे हरिजन बस्ती के बाहर देखेगा । मैं जच्चा–बच्चा को बस्ती के बाहर ले गया । तब डाक्टर ने अपना थर्मामीटर एक मुसलमान को दिया, उसने मुझे दिया और मैने इसे अपनी पत्नी को लगाया बाद में इसी प्रक्रिया के द्वारा थर्मामीटर लौटा दिया गया । तब कोई रात के आठ बजे होगे । डाक्टर ने लालटेन की रोशनी मे थर्मामीटर देखा और कहा कि मरीज को निमोनिया हो गया है । इसके बाद डाक्टर दुबारा आने के लिये तैयार नही हुआ, हालाकि मैने उसे उसकी फीस दो रूपये दे दी थी । यह बीमारी खतरनाक है । भगवान ही हमारा भला करेगा । मेरे जीवन की ज्योति बुझ गयी ।"[80] प्रस्तुत पत्र में डाक्टर व पत्र प्रेषक का नाम इसलिये नहीं छापा गया कि इससे बाद मे पत्र दाता को सताये जाने का भय था ।

तीसरा उदाहरण 'बम्बई समाचार' का है ।"कालीकट के एक गांव कलाड़ी में एक युवती का बच्चा कुये मे गिर पडा । युवती जोर–जोर से चिल्लाने लगी लेकिन किसी का साहस कुयें में कूदने का न हुआ । वहां गुजर रहे एक अजनबी ने साहस कर बच्चे की जान बचायी । जब उससे लोगो ने उसके बारे मे पूछा कि वह कौन है तो उसने जवाब दिया कि वह अस्पृश्य है । वहा लोगों ने उसके प्रति आभार प्रकट करने के बजाय उस पर गालियों की बौछार कर दी और उसे मारा पीटा कि उसने कुआ गदा कर दिया" ।[81]

अस्पृश्यों के प्रति हिन्दुओं के सामाजिक दृष्टिकोण का एक और उदाहरण है, जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती यह दृष्टिकोण कतिपय उदाहरणों के माध्यम

से बेहतर ढग से स्पष्ट हो जायेगा । जैसे कि – "अलफजल अखबार" ने 8 दिसम्बर 1943 को छापा की "नासिक से पहली सितम्बर को यह खबर मिली की गाव के हिन्दुओ ने एक अछूत परिवार पर धावा बोल दिया है ।एक बुढ़िया के हाथ–पाव बाध दिये, उसे लकडियो के ढेर पर डाल दिया ओर उसमें आग लगा दी । यह सब कुछ इसलिये हुआ कि वे सोचते थे कि गांव में हैजा इसी बुढिया की वजह से फैला है ।"[82]

29 अगस्त 1946 को 'टाइम्स आफ इन्डिया' ने छापा कि "खेड़ा जिले के एक गाव में सवर्ण हिन्दुओं ने हरिजनों के मकानों पर हमला कर दिया । उनको सन्देह था कि ये लोग जादू–टोना करते है । जिससे जानवर मर जाते है । कहा जाता है कि 200 ग्रामीण लाठिया लेकर हरिजनो के मकान मे घुस गये, एक बुढ़िया को पेड से बाध दिया और उसके पैर जला दिये । उन्होने एक और औरत की जबर्दस्त पिटाई की । हरिजन डरकर गाव से भाग गये । जिला हरिजन सेवक संघ के मंत्री छोटा भाई पटेल को जब इस घटना का पता चला तो वह हरिजनों को गंव वापस ले आये और उन्होने हरिजनो की सुरक्षा के लिये अधिकारियों को एक पत्र दिया है ।"[83]

इसी तरह 'तेज' समाचार पत्र ने खबर छापी कि "हरिजनो ने व्यकोम के शिवमन्दिर के एकदम पास जाकर उसे अपवित्र कर दिया । इस पर उस क्षेत्र के हिन्दुओ ने प्रचुर धन लगाकर मन्दिर को शुद्ध करने का फैसला किया है जिससे यहा फिर से पूजा आरम्भ हो सके ।"[84]

एक अन्य धार्मिक घटना 'प्रताप' में छपी कि – मेरठ अगस्त 1932 जन्माष्टमी के दिन कुछ हरिजनों ने सवर्ण हिन्दुओ के मन्दिर में प्रवेश करने की चेष्टा की थी जगह–जगह दगे और अशाति के अलावा इसका कोई नतीजा नहीं निकला था । इस साल स्थानीय दलित सघ ने यह फैसला कर रखा था कि यदि मन्दिर के द्वार

उन के लिये नहीं खोले गये तो वे सत्याग्रह करेगे । जब सवर्णो को यह बात पता चली तो उन्होंने इससे निपटने की योजनायें बनानी आरम्भ कर दीं । अन्त में जन्माष्टमी की रात को हरिजनो ने जुलूस निकाला और मन्दिर मे घुसने का प्रयास किया । लेकिन पुजारियो ने उन्हे रोक दिया और कहा कि यदि आप लोग भगवान के दर्शन करना चाहते है तो सडक पर से करे । अन्ततोगत्वा भारी मार–पीट हुयी ।[85] एक अन्य शोषण का रूप पीने के पानी को लेकर था । यथा प्रताप ने – 12 फरवरी 1923 को छापा "महाशय छेदी लाल जी ने खबर दी है कि एक चमार मूर्ति की पूजा करने के लिये जा रहा था । रास्ते मे उसे प्यास लगी । उसने अपनी लोहे की छोटी डोलची कुयें में डालकर पानी लिया । इस पर एक सवर्ण हिन्दू ने उसे डाटा, खूब मारा–पीटा और कोठरी मे बन्द कर दिया । जब यह घटना घट चुकी तब मैं उधर से निकला । मैने पूछा कि इस आदमी को कोठरी में क्यों बन्द कर रखा है, तो दीवान साहब ने बताया कि इस आदमी ने अपनी डोलची हमारे कुयें में डाल दी और यह हमारा धर्म भ्रष्ट करना चाहता है ।"[86]

दलित उत्पीडन का एक अन्य रूप शिक्षा भी था यथा 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने 26 मई 1939 को छापा कि "खबर है कि जिले में कातीपुर गाव में कुछ लोगों ने एक रात्रि पाठशाला पर हमला कर दिया । जहा किसान व अन्य लोगों को पढ़ाया जाता था । उन लोगो ने अध्यापको को पकड लिया और उससे स्कूल बन्द कर देने को कहा, क्योकि अस्पृश्यो के लडके पढ–लिख लेने के बाद बराबरी का बर्ताव करने लगेगे । जब अध्यापक ने उनकी बात नहीं मानी तो उसकी पिटाई की गयी और बालाकों को भगा दिया गया ।"[87]

एक अन्य रूप दलितों, या अस्पृश्यों के मुर्दे को न गाड़ने और जलाने को लेकर था । यथा मिलाप ने छापा कि "अस्पृश्यों में जागृति का मुख्य कारण हिन्दुओं के द्वारा उनपर किया जा रहा अत्याचार है । मैं इस बात से अवगत नहीं था । लेकिन मुझे विभिन्न कार्यकर्ताओं से जो समाचार मिले हैं । उनसे मुझे बड़ा कष्ट

हुआ है । एक स्थान से मुझे यह सूचना मिली कि अस्पृश्यो या दलितो को अपने मुर्दो तक नहीं जलाने दिया जाता । ऐसा लगता है कि इससे वहा के भगियों में एक नई प्रथा शुरू हो गयी हैं । अब उन्होने अन्यों से अलग करने के लिये अपने मुर्दो को सिर के बल गाडना आरम्भ कर दिया है ।"[68]

यज्ञोपवीत, चारपाई पर बैठना, एक धर्मशाला में ठहरना, सफाई कार्य, साफ–सुथरे कपडे आभूषण, मुख्य मार्गो का प्रयोग आदि सवर्ण हिन्दुओं के विशेषाधिकार थे जिनका प्रयोग दलित नहीं कर सकते थे । सेवा कार्य दलितो का विशेषाधिकार था जिससे वह इनकार नही कर सकता था ।[69] यथा फरवरी 1939 में 'जीवन पत्रिका' मे छापा कि "आगरा जिले की किरावली तहसील में अभयपुरा गांव के जाट वहा के गरीब अनुसूचित जाति के लोगो से बेगार कराते थे और मजदूरी मागने पर उन्हे पीट देते थे । करीब तीन माहपूर्व सुखी नामक एक जाट ने सुखराम, घनश्याम और हुक्मा नामक जाटवो से जबर्दस्ती काम कराया और उन्हे मजदूरी नहीं दी ये लोग इनकी जबरदस्तियो से इतने परेशान हुये कि उन्होंने गांव ही छोड दिया और अन्य गाव में जाकर अपने रिश्तेदारों के यहा रहने लगे ।"[70] कुछ इसी प्रकार का अभिमत 8 मार्च 1945 को हिन्दुस्तान में छपे वक्तव्य से होती है जो कि हरिजन सेवक सघ के अध्यक्ष का है । जिसमें मेवाड़ हरिजन संघ ने दलितो पर हो रहे अत्याचार को लेकर एक ज्ञापन वहा की सरकार को दिया है जिसमे बताया गया कि सवर्णो की कट्टरता और जातीय विद्वेष के कारण हरिजनों के नागरिक अधिकार किस प्रकार समाप्त किये गये हैं । कुछ ऐसे रीति रिवाज निम्न है –

1 हरिजन अपनी मर्जी के कपडे नहीं पहन सकते ।
2 शादी–दावत में वे पैसा होने के बावजूद खाना क्या बने, यह तय नहीं कर सकते ।
3 गाव मे वे किसी सवारी पर नहीं चल सकते ।
4. सार्वजनिक वाहनों पर नहीं चल सकते ।

5 वे अपने जुलूस निर्दिष्ट मार्ग के बाहर नहीं ले जा सकते ।

6 वे कुओं और मन्दिरों का प्रयोग भी नहीं कर सकते है ।

ऐसी दशा 1945 मे थी ।[71]

टाइम्स आफ इन्डिया ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे 31 अगस्त 1950 को छापा कि "ग्रामीण क्षेत्रो मे निचली जातियो की सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था कैसी है, इस बारे मे पर्याप्त प्रकाश उन तथ्यो से पडता है, जो इलाहाबाद उच्च न्यायालय में एक अपील की सुनवाई के दौरान बयान किये गये जो निम्न लिखित है । एटा जिले के सारस गाव में चिरजी लाल नाम का एक धोबी पिछले विश्व युद्ध में फौज मे भर्ती हो गया और चार–पाच साल तक अपने गाव से बाहर रहा । जब वह लडाई से अपने घर लौटा तो उसने लोगो के कपडे धोने बन्द कर दिये और गाव में फौज की वर्दी पहनकर घूमा करता था । इससे और इस बात से भी कि उसने सारस के राजा तक के (जो उस गाव का एकछत्र जमींदार था) अहलकारों तक के कपडे धोने बन्द कर दिये, गाव वालो को बडा क्रोध आया । जब 31 दिसम्बर 1947 को वह धोबी अपने खुद के कपडे धो रहा था, राजा के अहलकार समेत गांव के चार आदमी उसके पास आये और उससे अपने कपडे धोने के लिये कहा । ऐसा करने से उसने इनकार कर दिया । गाव वाले चिरंजी को पकड़कर राजा के पास ले गये और वहा उसे पीटने लगे । उसकी मा और मौसी उसे बचाने के लिये वहा पहुच गयी । लेकिन उन्हे भी मारा पीटा गया । ये लोग चिरजी को राम सिंह की देखरेख मे छोड़कर चले आये । कहा जाता है कि चिरंजी ने राम सिह को अकेला पाकर तमाचा मारा और वहां से भाग आया । तब राम सिह ने राजा के दूसरे अन्य अहलकारे के साथ चिरजी का उसके घर तक का पीछा किया । जहां वह जाकर छिप गया था । जब उसने दरवाजा नहीं खोला तब लोगों ने उसका घर जला दिया । जिससे तमाम घर जल गये । धोबी ने पुलिस से शिकायत की लेकिन पुलिस ने इस पर यकीन नहीं किया, और कहा कि झूठी रिपोर्ट लिखाने के आरोप

मे उस पर मुकदमा चलाया जायेगा । तब उसने मजिस्ट्रेट के सामने अर्जी दी । जहा अभियुक्तों को दोषी पाया गया और उन्हें तीन–तीन वर्ष की सजा दी गयी ।"

यह घटना स्वतत्र भारत की है । इन तमाम उदाहरणो से भारत के दलितों की स्थिति के विषय मे स्वयमेव जानकारी प्राप्त हो जाती है । जहा एक तरफ जागरूकता आ रही थी वहीं दूसरी तरफ सुविधाभोगी वर्ग अपनी सुविधाओं को त्यागने हेतु तैयार नहीं था । फलत आक्रामक आन्दोलन का उद्भव होना आवश्यक था ।

अत निष्कर्षात्मक तौर पर कहा जा सकता है कि भारत मे समाज का विभाजन प्राचीन काल से ही था । समाज मे चातुर्वर्ण व्यवस्था लागू थी । जिसमें ब्रह्मा के शरीर से सम्पूर्ण समाज की निष्पत्ति की गयी थी । समाज की चातुर्वर्ण व्यवस्था मे अन्तिम सोपान पर शूद्र वर्ण के लोग विद्यमान थे उसमे शकर वर्ण के द्वारा अनेक उपशूद्रो का सृजन हुआ । समाज के तीन वर्ण कुछ न कुछ विशेषाधिकार सम्पन्न थे परन्तु शूद्र वर्ण के पास कोई भी अधिकार नहीं था । वह समाज का सेवक वर्ग था । उसके लिये दन्ड विधान भी अन्य वर्णो की अपेक्षा कठोर थे । यह व्यवस्था आगे चलकर जाति व्यवस्था का रूप धारण कर लेती है । जाति व्यवस्था मे शूद्रो का बटवारा भी सछूत और अछूत में कर दिया जाता है । यह व्यवस्था इतनी क्लिष्ट हो गयी थी की सभी विदेशी यात्रियों की दृष्टि इस पर अवश्य पड जाती है । मध्य काल का अरबी इतिहासकार अलबरूनी भी इस व्यवस्था की जकड़न का उल्लेख करता है । जिसमे वह श्रेणी क्रम में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज वर्ग का विवरण देता है । उनके खान पान की कुव्यवस्था का विवरण देता है । कमोवेश यही व्यवस्था 19वीं सदी तक गतिशील रहती है ।

इस व्यवस्था के जातिवादी होने के पीछे प्राय दो अनुमान व्यक्त किये जाते है प्रथमत. व्यवस्था ने गुणवाचकता को जातिवाचकता में सस्थापित कर दिया जिसमें

रीति रिवाज, परम्पराओ के समावेश से अनगिनत जातियों का निर्माण हो गया । द्वितीय अवधारणा आर्यो द्वारा पराजित लोगों को पहले दास–दस्यु में रूपान्तर व तत्पश्चात, सछूत–अछूत मे रूपान्तर किया गया ।

ज्ञान, सम्पत्ति, सत्ता पर विशेषाधिकार ऊपर के वर्णो का था । यद्यपि इसको लेकर आपसी सघर्ष समाज मे होते थे परन्तु सघर्ष में शूद्र का सोपान नगण्य होता था । शूद्र मात्र कर्तव्य के लिये जीवित था । वस्तुत ऋग्वेद काल शूद्र की अवधारणा से मुक्त था । उस काल में शूद्र सेवक वर्ग के रूप मे नहीं था । यह उत्तरवैदिक काल में सेवक के रूप में हमारे समक्ष आता है जिसकी पूर्ण प्रतिष्ठा उपनिषद काल और स्मृति काल मे हो जाती है ।

परन्तु इन अस्पृश्यो की सख्या भारत मे कितनी थी इसकी जानकारी हमें आधुनिक काल मे अग्रेजी शासन द्वारा की गयी जनगणना से प्राप्त होती है । अग्रेंजी ने पहली और दूसरी जनगणना का सिद्धान्त पश्चिमी देशों के विपरीत जहां जनगणना आकडो का एकत्रीकरण आर्थिक, व्यवसायिक आधारों पर किया जाता है वहीं भारत में आकडों का एकत्रीकरण, जातीय, सामुदायिक, परिवारिक और आध्यात्मिक आधारो पर एकत्र किये गये थे । अन्ततः जनगणना में जो आकडे उभर कर आते है वह स्वतत्रता तक लगभग 5–6 करोड़ शूद्र सख्या का उल्लेख करते हैं ।

यद्यपि भारतीय हिन्दू पाश्चात्य गुलामी प्रथा से भारतीय शूद्र व्यवस्था को श्रेष्ठ साबित करते है । जबकि गुलामो को भी कुछ प्राधिकार प्राप्त थे । परन्तु शूद्र वर्ण को कोई भी विशेषधिकार प्राप्त नहीं था । वह सम्पत्ति इकट्ठा कर सकता था, गुलामी का त्याग कर सकता था । परन्तु शूद्र की मृत्यु ही उसको शूद्रत्व से मुक्ति दे सकती थी । ऐसी ही कुछ दशा अमेरिका मे नीग्रो लोगो की भी थी । अन्ततः गुलामों से शूद्रो की श्रेष्ठता की स्थापना खन्डनीय है ।

का कार्य अरम्भ किया । गोपाल बाबा बलगकर ने चिल्लाकर घोषणा की कि "जाति ढाचा देवनिर्मित नहीं वरन मानव निर्मित है ।"

अग्रेजी मिशनरियो की शिक्षा व्यवस्था व सरकारी शिक्षा नीति के परिणाम स्वरूप व्यवस्था मे परिवर्तन आने लगा था । यद्यपि अभी अध्यापक ब्राह्मण थे परन्तु सरकारी शिक्षा नीति मे उदारता की बहस जारी थी । जिसका समर्थन जागरूक नवशिक्षित भारतीयों ने किया था । मिशनरी स्कूलों में सबके लिये समान अवसर था ।

यद्यपि आरम्भ मे अस्पृश्य समाज को पढने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा यथा – छत्रपति राजा को अपनी शिक्षा रात में ग्रहण करनी पड़ी थी । किसी को वहा से भगा दिया जाता है तो किसी के साथ अध्यापक का बुरा बर्ताव होता था । अन्ततः अग्रेजी शासन का भी दलित शिक्षण से कोई लगाव नहीं था ।

1857 के पश्चात सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में तेजी आने लगी थी । यद्यपि इसका कारण यह था कि अग्रेंज समझ गये थे कि हमारे शासन के लिये खतरा यहा की उच्च्य जातियां है । अतः उनको सन्तुलित करने के लिये 'काउन्टर वैलेस' नीति अख्तियार करनी होगी । इस नीति से दलित समाज को लाभ पहुँचा । उनकी सेना में भर्ती होने लगी । सैनिक स्कूलो में शिक्षण होने लगा जिससे उनमें ज्ञान की रोशनी का प्रस्फुटन हुआ ।

एशियायी समाज में अग्रेंजों को अपना कार्य दोस्तरो पर करना था पहला विध्वस दूसरा सृजन । विध्वंस में यहा की रूढियों, ग्रामीण स्वायत्तता, आदि को ध्वस्त करना था तो सृजन में आधुनिकीकरण अर्थात नयी शिक्षा, सबको शिक्षा, औद्योगीकरण, रेल विकास आदि करना था । इससे यदि एक तरफ पश्चिमी शासन मजबूती प्राप्त करता तो अप्रत्यक्षत एशिया में भी नई रोशनी आती ।

महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले के साथ समाज सुधारकों की एक व्यापक परम्परा ही चल पडी थी । फूले अग्रेजी के विद्वान थे, धर्मज्ञाता थे, शैली मे आक्रामकता थी । उनके पास अपनी बात को कहने का साहस था । वह दलित समस्याओ के एहसास को अभिव्यक्ति दे रहे थे । वह शिवाजी महाराज के कार्य से प्रभावित थे । उनकी प्रशसा करते थे । धर्म के नाम पर कदाचार का खन्डन करते थे । उन्होने गुलामगीरी पुस्तक की रचना की जिसकी शैली यद्यपि प्रश्नोत्तरी है तथापि आक्रामकता का समावेश है । बाद मे उन्होने 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की । विधवा विवाह, केशप्रक्षालन, कुमारी माता आदि कुरीतियों पर उन्होंने आधुनिकता को अपनाया । इनको अवलम्ब आगरकर, व रानाडे से भी प्राप्त हुआ था । काम्बले, किसन भागू जी बनसोडे आदि इसी परम्परा के चिन्तक व मनीषी थे ।

कोल्हापुर के महाराज शाहूजी महात्मा फूले के विचारों से प्रभावित थे । परिवर्तनवादी आन्दोलन को राज्याश्रय प्रदान करने वाले यह प्रथम विवेक सम्पन्न राजा थे । उन्होंने राज्य मे व प्रशासन में दलित पिछ्डों को पूर्ण भागीदारी का नियम बनाया था, छुआछूत को अमान्य घोषित किया था । शिक्षा व्यवस्था को आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया था । इन्हीं की परम्परा में बड़ोंदा के राजा सियाजीराव गायकवाड भी थे ।

20वीं सदी में अन्यायिक सामाजिक व्यवस्था जारी थी । ढाई हजार साल पुरानी व्यवस्था को इतनी आसानी से उखाड़ पाना सम्भव नही था । 20वीं सदी के भी हमें तमाम अन्याय के उदाहरण प्राप्त होते है । इसी कोटि का वाद वेंकटसुब्बा रेड्डी वाद है । इसी तरह का मास्टर की यातना, व कलाडी गांव की घटना का है । इसी तरह हमारे पास अनेकानेक उदाहरण है जिनसे अस्पृश्यता व दलित

के दश व पीडा को समझा जा सकता है । इस तरह की घटनाये अकसर समाचार पत्रों मे स्थान पाती रहती है ।

इस प्रकार दलित समस्या 20वी सदी तक अपना विषपायी पजा फैलाये समाज को अपने आगोश मे लेने को हमेशा तैयार रहती है और ढ़ाई हजार साल पूर्व से चली आ रही सडी व्यवस्था जब–तब अपना प्रभाव दिखाकर समाज को स्तब्ध कर देती है ।

विवरणिका

1 मनुस्मृति – अध्याय एक, श्लोक सख्या – 31, प्रकाशन – ख्वाजा कुतुब, बरेली ।

2 वही – श्लोक सख्या – 88 – 91, पृष्ठ – 24, ।

3. वही – श्लोक सख्या – 62, ।

4. ए सोशल कल्चरल एन्ड इकोनामिक हिस्ट्री आफ इन्डिया – चोपड़ा पुरी, दास, मैकमिलन प्रकाशन – 1974 ।

5 वहीं " आगे ।

6 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – डा0 धनजंय कीर – पृष्ठ – 2, पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली – 1996 ।

7 वही – उपरिवर्णित पृष्ठ – 2 ।

8 सस्कृति के चार अध्याय – लेखक रामधारी सिह दिनकर – पृष्ठ – 64, उदयाचल प्रकाशन – पटना – 1970 ।

9 वहीं " पृष्ठ – 52 ।

10 मराठी तत्वज्ञान महाकोष खन्ड – एक पृष्ठ – 364, मराठी तत्वज्ञान महाकोष मण्डल – पुणे – 1974 ।

11 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे, पृष्ठ – 14, राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

12 वाङमय – खन्ड – 9, पृष्ठ – 21–22 डा0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मत्रालय – नई दिल्ली – 1995 ।

13 वहीं – पृष्ठ – 23 ।

14 वही – " आगे ।

15 वही – पृष्ठ – 24

16 वही – पृष्ठ – 25 ।

17 वाङमय – खन्ड – 9 – पृष्ठ – 26 ।

18 स्लेवरी इन रोमन इम्पायर – श्रवैरो – पृष्ठ – 63 । उघृत वाङ.मय में – खन्ड – 9, आगे ।

19 वहीं – पृष्ठ – 101 – 102 ।

20. वाङमय खन्ड – 9 पृष्ठ – 34, अम्बेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय नई दिल्ली–1995 ।

21. धनजंय कीर – बाबा साहेब का जीवन चरित्र, पृष्ठ – 3, पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली – 1996 ।

22 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर,, पृष्ठ – 15, राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

23 सस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिह दिनकर – पृष्ठ – 474, उदयाचल प्रकाशन – पटना – 1970 ।

24 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 15, राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

25. धनजय कीर – पृष्ठ – 3, पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996 । डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र ।

26 वहीं – आगे ।

27 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे, पृष्ठ – 17, राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1981 ।

28 सस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिह दिनकर – पृष्ठ – 562, उदयचल प्रकाशन – पटना - 1970 ।

29 धनजय कीर – पृष्ठ – 4, डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

30 महाराष्ट्रीय ज्ञान कोष – भाग – 7, पृष्ठ – 644, महाराष्ट्रीय तत्वज्ञान मद्राकोष मण्डल – पुणे – 1979 ।

31 धनजय कीर – पृष्ठ – 4, डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

32 रिपोर्ट आफ दि बोर्ड आफ एजूकेशन फार दि ईयर 1840 – 41, पृष्ठ – 24, महाराष्ट्र सरकार ।

33 ए वी लाठे – मेमोरीज आफ हिज हाई नेस श्री शाहू महाराज आफ कानपुर ।

34 ज्ञानोदय – 2 अगस्त 1853, पूना ।

35 रिपोर्ट आफ दि डायरेक्टर आफ एजूकेशन फार दि ईयर 1957–58, महाराष्ट्र सरकार ।

36 धनजय कीर – पृष्ठ – 5, डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र, पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

37 डा0 जी. एस गायरे – कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया, पृष्ठ – 166 ।

38 एम जी भगत – दि अनटचेबिल्स आफ महाराष्ट्र, पृष्ठ – 31 – 32 ।

39 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 16, डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

40 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – न म जोशी – पृष्ठ – 2, पूना – 1989 ।

41 मार्क्स – एजेल्स – लेनिन – भारतावरील लेख – पृष्ठ – 19, लोकवाङ. मय गृह – मुम्बई – 1

42. वही पृष्ठ – 20 ।

43 वही – पृष्ठ – 21 ।

44 ए सोशल कलचरल एन्ड इकोनामिक हिस्ट्री आफ इन्डिया, पी एन चोपडा – पुरी – दास खन्ड – 3, पृष्ठ – 78, मैकमिलन प्रकाशन – 1974 ।

45 ए कल्चरल हिस्ट्री आफ इन्डिया – ए वी वासम, पृष्ठ – 370, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस – 1974 ।

46 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे, पृष्ठ – 19, राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

47. अम्बेडकर और मार्क्स – श्री राव साहेब वासवे – पृष्ठ – 18, सुगावा प्रकाशन – पूना – 1985 ।

48 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे, पृष्ठ – 19, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली – 1998 ।

49 महात्मा फूले – मधुकर गिरी – पृष्ठ – 76, सूयूदय प्रकाशन – 1990 ।

50 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे, पृष्ठ – 19, राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

51 गुलामगीरी – ज्योतिबा फूले – स0 – रमेश रघुवशी पृष्ठ – 10, पूना – 1989 ।

52 अम्बेडकर आधि मार्क्स – राव साहेब वासवे – पृष्ठ – 18, सुगावा प्रकाशन – पूना – 1985 ।

53 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – भालचन्द फड़के – पृष्ठ – 45, श्री विद्या प्रकाशन – पूना 1985 ।

54 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे पृष्ठ – 22, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली – 1998 ।

55 बाबा साहेब अम्बेडकर – भालचन्द्र कडके – पृष्ठ – 46, श्री विद्या प्रकाशन नई दिल्ली – 1998 ।

56 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे, पृष्ठ – 23, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली – 1998 ।

57 आछे तेरी काय मन्डल आयोग – गोविन्द पानसरे – मूल पृष्ठ ।

58 क्रिमिनल ला जर्नल (।।) पृष्ठ – 263 ।

59 वाङमय – खन्ड – 9, पृष्ठ – 52, डा0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मत्रालय नई दिल्ली – 1995 ।

60 यग इन्डिया – 12–12–1929 । अहमदाबाद ।

61 बम्बई समाचार – 19–12–1936 । बम्बई ।

62 अलफजल – 8–12–1943 । नासिक ।

63 टाइम्स आफ इन्डिया – 29–8–1946 । बम्बई ।

64 तेज समाचार पत्र – 4–9–1927 । बायकोम ।

65 प्रताप – 2–9–1932 । कानपुर ।

66 प्रताप – 12–2–1923 । कानपुर ।

67 हिन्दुस्तान टाइम्स – 26–5–1939 । नई दिल्ली ।

68 मिलाप – 6–6–1924 ।

69 वाङमय खन्ड – 9 – पृष्ठ – 92 । डा0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान – कल्याण मन्त्रालय – नई दिल्ली – 1995 ।

70 जीवन पत्रिका फरवरी – 1939 ।

71 हिन्दुस्तान टाइम्स – 8–3–1945 । नई दिल्ली ।

72 टाइम्स आफ इन्डिया – 31–8–1950 । नई दिल्ली ।

(ख) अम्बेडकर का उद्भव

बड़े जाबाज और प्रतापी नवरत्न प्रदान कर जिस जिले ने अपने नामका यथार्थ सिद्ध किया, उस रत्नागिरी जिले मे, मडन गढ से पाच मील की दूरी पर आम्ववडे नामक एक देहात स्थित है । यही है आम्बेडकर घराने का मूलगाव । इस घराने का कुलनाम है सकपाल । कुलदेवी है भवानी । कुलदेवी की पालकी रखने का सम्मान इसी महार घराने का था गाव के वार्षिक उत्सव के समय पर उन्हे अपने गाव वालों में विशेष सम्मान प्राप्त होता था और उस परिवार को वह दिन बडा महत्वपूर्ण लगता था ।

"भारत के सारे अस्पृश्य समाज मे महार जाति मजबूत कदकाठी वाली, जोर दार आवाज वाली चमकीली चमडी वाली गुण से बुद्धिमान और वृत्ति से लड़ाकू दिखाई देती है । समय का ध्यान रखते हुये सावधानी से बर्ताव करने वाली अगर कोई जाति होगी तो वह महारो की ही । हिन्दू समाज के अपने निम्न स्तर की और शर्मिंदा जीवन की चुभन महारों को हर समय महसूस होती थी । इसी निम्न स्थिति से मुक्ति पाने के लिये हमे प्रयास करने की आवश्यकता है, इस तरह की उग्र भावना से वे बेचैन रहते थे । कुछ इतिहास अनुसन्धान कर्ताओं का कहना है कि महाराष्ट्र के मूल निवासी महार ही थे और उनके ही नाम पर महाराष्ट्र को महाराष्ट्र नाम प्राप्त हुआ । कुछ लोग महार शब्द की व्युत्पत्ति इस तरह करते है कि – महा + अरि = बडा दुश्मन । दक्षिणी भारत मे राजनीतिज्ञों की सत्ता के लिये षडयन्त्र शुरू होने पर उन्होंने बडी होशियारी से उस उपेक्षित लेकिन कड़वा महार जाति के साथ प्रथमत सम्बध जोड लिया । ईस्ट इन्डिया कम्पनी के बाम्बे आर्मी सेना विभाग के लिये कम्पनी सरकार ने महारो के दल निर्माण किये थे । उस समय बिहार के दस्यु और मद्रास राज्य के पेरिया दलित जातियों के उसी तरह के सेना दल कम्पनी सरकार ने गठित किये थे ।"[1]

"अम्बेडकर के पितामह का नाम मालोजी सकपाल था । वे एक सेवानिवृत्त फौजी सिपाही थे । उनकी सन्तानो मे से मीराबाई नामक बेटी और राम जी नामक बेटा, दोनो की ही कुछ जानकारी प्राप्त होती है । मालोजी के तीन और बेटे थे । परन्तु प्रतीत होता है कि उनके सेना विभाग के बार–बार होने वाले स्थानान्तरण से बाद मे परिवार के साथ मालाजी का विशेष सम्बध नहीं रहा होगा । रामजी सकपाल भी सेना मे भर्ती हो गये । पहले जवानों को फौजी छावनी के स्कूल द्वारा अनिवाय्र शिक्षा देने का प्रबन्ध ईस्ट इन्डिया कम्पनी सरकार ने किया था । इसके अतिरिक्त फौजी सिपाहियो के बाल बच्चो के लिये दिन के स्कूल थे । उनके प्रौढ़ रिश्तेदारो के लिये भी रात के स्कूल थे । ऐसी ही शिक्षा राम जी सकपाल को मिला थी ।"[2]

" रामजी सकपाल जिस दल मे जवान थे उस दल में सयोंगात सूबेदार मेजर धर्मा मुरबाडकर का तवादला हुआ। मुरवाडकर भी महार परिवार के थे। वे थाने जिले के मुरबाड़ के निवासी थे। मुरबाडकर का कुलनाम पडित था। उस प्रिवार के सातो भाई भी सेना मे मेजर थे। स्वाभाविक ही उनका रहन–सहन अमीरी ठाट–बाट का था। वे नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उनके घर का वातावरण धार्मिक था। महार बस्ती और गाव में उनका घराना बड़ा इज्जतदार माना जाता था। आगे चलकर यह परिवार पनवेल के नजदीक उलवा बन्दर गाह पर निवास करने चला गया। वहा से होकर कुछ दिनों बाद वह परिवार पनवेल जाकर बस गया।[3]

सकपाल के दल मे सूबेदार मेजर के रूप मे आये मुरबाड़कर के साथ उनका परिचय बढ गया। दोनो ही कोकण के थे । सकपाल का तड़पदार बाना, महत्वाकाक्षी स्वभाव और सुदृढ देहयाष्टि उनकी आखों में समा गये। उनके परस्पर सम्बन्ध दृढ हो गये। आगे बात होने लगी कि धर्मा जी की बेटी जीजाबाई से रामजी का विवाह हो। धर्मा जी मुरवाडकर के परिवार के अन्य लोग इस विवाह के खिलाफ

थे । उनका मत था कि गरीब सकपाल के साथ रिश्ता जोडना ठीक नही होगा। लेकिन धर्मा जी के बडे बेटे ने राय दी कि राम जी सकपाल उसकी बहन के उचित वर है । उसकी पुष्टि के उपरान्त धर्मा जी की वेटी जीजावाई और राम जी सकपाल का विवाह 1865 ई0 के दौरान सम्पन्न हुआ। विवाह के समय राम जी की उम्र 22 वर्ष के आसपास थी और भीमाबाई की उम्र कोई तेरह वर्ष। भीमाबाई बड़ी बातूनी, मानी, हठीली और धर्म परायण महिला थी। उनका रग गौर था। ऑखे बड़ी और पानीदार थी। बाल घुघराले थे। ललाट चौडा था और नाक तनिक ठोद्टी थी। विवाह के बाद भीमा की मा ही उसकी पूछता किया करती थी। परिवार के अन्य सदस्य रूठे ही रहते थे। फलत भीमाबाई ने दुढता पूर्वक कहा कि – अब मै तभी मैके आऊँगी जव कि जेवरो से भरी पूरी अमीरी प्राप्त कर लूगीं ।"(4)

रामजीसकपाल उद्यमी, महत्वाकाक्षी और स्वतत्र वृत्ति के आदमी थे । वे क्रिकेट, फुटबाल आदि खेलो में प्रवीण थे । उत्साह के साथ निरन्तर उद्यम करने वाले पुरूष को सम्मान और सम्पत्ति प्राप्त होती है । रामजी की उद्यमिता, प्रवीणता, कर्तव्य परायणता, देखकर एक सेनाधिकारी का उनसे स्नेह सम्बध हो गया । उसने रामजी की शिफारिशकर उन्हें पुणे के पतोंजी स्कूल में प्रवेश करा दिया । वहां अध्यापन के व्यवसाय की शिक्षा लेते समय उन्हे जो वेतन मिलता था । उसमें में कुछ भाग पत्नी के लिये बम्बई मे देते थे । उन दिनों उनकी सैन्य टुकड़ी बम्बई के निकट सान्ता क्रुज मे थी । भीमा अपनी जीवनचर्या के लिये ककंड़ पत्थर पसारने का कार्य किया करती थी । अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण वे रूखी–सूखी में ही प्रसन्न रहती थी । "(5)

जिस समय रामजी की शिक्षा – दीक्षा सम्भव हुयी थी उस समय दलित शिक्षा की बात करना मे बेनानी था । "रास्तो की सफाई, सिर पर मैला ढ़ोना, मृत जानवरो की चमड़ी निकालना–इसी प्रकार के काम करकेउन्हें अपने अस्तित्व को

बनाये रखना पडता था । ऐसी दशा मे स्कूल और शिक्षा की बात करना भी बेमानी था ।"[6]

राम जी का सौभाग्य था कि उन्हे शिक्षा की सुविधाये प्राप्त हुयी थी । उनके पिताजी जब सेना मे थे तब कम्पनी सरकार ने सेनाओ की छावनियो मे स्कूल शुरू किये थे । इन स्कूलों मे सैनिको के बच्चो को अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जाती थी । इसके अलावा सैनिको को भी शिक्षा दी जाती थी । इसी तरह के एक स्कूल मे पढ कर प्रवीण हुये थे ।"[7]

"पुणे के पतोजी स्कूल की परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर राम जी अध्यापक बने और धीरे–धीरे फौजी छावनी के स्कूल मे प्रधानाध्यापक बन गये । उन्होंने प्रधानाध्यापक का कार्य लगभग चौदह वर्षो तक किया । आखिर उनकी इस सेवा की कद्र कर उन्हे सूबेदार मेजर के ओहदे तक की पदोन्नति प्राप्त हुयी । उनकी अध्यापन कला सराहनीय थी । शिक्षा के प्रति अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा, प्रेम और लगाव से उन्होने यह सिद्ध किया कि दलित भी अच्छा अध्यापक बन सकता है । साथ ही भीमाबाई का प्रण जो उन्होंने अपनी सम्पन्नता हेतु किया था वह भी पूरा हो गया । उनके परिवार को अब काफी प्रतिष्ठा सम्मान प्राप्त हो गया था । 1890 तक सूबेदार रामजी और भीमाबाई के तेरह सन्ताने पैदा हुयीं । उनमे से बालाराम गगा, रमाबाई, आनन्द राव, मजुला, तुलसा जीवित रहे । शेष सन्ताने बचपन में ही मर गयीं । इतने बच्चो की पैदाइश आतिथ्य सत्कार, कडे व्रत–उपवास, पूजा अर्चना और वैदकी निदान न होने से भीमाबाई की स्वास्थ्य दशा कमजोर होने लगी । रामजी का भी छावनियो मे तबादला होते–होते अन्त मे मध्य प्रदेश के जिले महू की लशकरी छावनी में उनका आसन स्थिर हो गया ।"[8]

महू मे एक असाधारण घटना घटी । रामजी के एक चाचा वैरागी हो गये थे जिनका काफी समय तक पता ही नहीं था । सयोंगात एक बार वे साधु जत्थे के

साथ महूआ गये और उस बूढे सन्यासी ने आशीर्वचन दिया कि – अपने कर्त्तव्य से इतिहास पर चिरन्तन, छाप डालकर अपने घराने का नाम अमर करने वाला एक पुत्र तेरी गोद मे पैदा होगा ।"[9]

"इस शुभाशीर्वचन पर सूबेदार पति पत्नी की श्रद्धा दृढ हुयी । दोनों मूलत: धर्मपरायण और व्रत धारी थे अपने घर कुल दीपक जैसा पुत्र हो इसलिये दान, व्रत, उपसना आराधना और धार्मिक कृत्यों की ओर उनका ध्यान बडी उत्कटता से बढ गया । वे विधावन्त कट्टर कुलवन्त महानुभाव बडे आर्तभाव से कृपा की याचना करने लगे । उनकी प्रार्थना इस तरह थी । अस्पृश्यता का कलंक धोने के लिये है देव । तू दौड, मेरे अपग, अज्ञ और विपन्न दशा मे, सड रहे बान्धवो की रक्षार्थ है देव । तू अवतार ले ले । महात्मा ज्योतिबा फूले के प्रति गर्व का भाव रखने वाला उनका एक मित्र और रानाडे जी से परिचित व्यक्ति ईश्वर से और क्या मांग करेगा ? तप के अन्त मे उस सन्त का वरदान फलीभूत हुआ । परमात्मा ने मानों दरवाजा खोल दिया । महू मे 14 अप्रैल 1891 को इस तपोनिष्ठ भीमाबाई को पुत्र रत्न पैदा हुआ । उनके उस14वे रत्न का नाम सूबेदार ने भीम रखा । पुराने जमाने की धर्म–परायण माताओं की तरह आधुनिक भारत में कुछ दैवीय महापुरूषों की उत्पत्ति हुयी । यथा–सूर्योपासना से – तिलक और स्वामी विवेकानन्द इसी तरह हिन्दू समाज को दलितो की बुरी हालत के लिये सन्त के आशीर्वाद और दैवीय प्रेरणा से भीम का जन्म हुआ ।"[10]

"आरम्भ मे भिवा नाम से पुकारे जाने वाले जब ढाई वर्ष के थे तभी उनके पिता की सेवा निवृत्ति हो गयी । उन्हे अब आधा वेतन मिलने लगा । मकान कोई था नहीं । फलत सीधे गावं जाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था । वे सीधे कोकण के कायदापोली पहुचे । बडे बेटे को उन्होंने कायदापोली स्कूल में ही भर्ती करा दिया । कुछ दिनो बाद छोटा भीम भी वही स्कूल जाने लगा ।"[11]

"उस समय कायदा पोली गाव सेवानिवृत्त महारों के वास्तव मे भरा एक बड़ा केन्द्र था । ये सेवा निवृत्त लोग कबीर सम्प्रदाय, रामानन्द सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय आदि मे से किसी एक मे दीक्षा लेते थे । भक्तिमार्ग की सीख थी कि हम सब ईश्वर की सन्तानें है, ईश्वर के दरबार मे ऊच नीच का भेदभाव नही है । कबीर की जाति विरोधी हमलो को देखकर काफी लोग उस तरफ आकृष्ट हुये । भिन्न–भिन्न सम्प्रदायो के अनुयायी वाद–विवाद के दौरान गुटों का निर्माण कर लेते थे । इसी प्रक्रिया में रामजी सकपाले भी नाथपन्थी अगुआ बन गये । यद्यपि रामजी की इच्छा कायदापोली मे मकान बनवाकर रहने की थी लेकिन गुटबन्दी व आर्थिक तगी के कारण उन्होंने नौकरी पानी चाही । नौकरी छोटे से गाव में मिलनी मुश्किल थी । 50 रूपये मासिक पेशन पर गुजारा होता नहीं था फलत उन्होंने कायदापोली को राम–राम कहकर बम्बई की राह ली और वहा से सतारा गये जहां नौकरी मिल गयी । और सतारा मे ही घर बसा लिया । जहा ये कबीरपन्थी हो गये और पूर्णत शाकाहार को अपना लिया । "[12]

"छ. वर्ष की उम्र में मा पर लोक वासी हो गयी ।" सतारा मे घर बसाने के थोड़े ही दिनों बाद भीमाबाई का देहावसान हुआ । लगभग छ वर्ष की आयु में भीम जगत के निर्व्याज प्रेम से वचित हुआ । यह कहा जाता है कि मृत्यु के समय गले की बीमारी से वह ग्रस्त थी । उसी मा की समाधि जिसे भीम बय कहता था, सतारा में है ।[13]

मा की मृत्यु के समय भीम की उम्र कम थी । बच्चे छोटे थे यद्यपि घर की देखरेख के लिये बुआ मीरा थी । इन दिनो भीमराव अन्य बच्चों की तरह काफी मटरगश्ती करते थे । छोटे–मोटे झगडे करते । मा गुस्से से पीटती पर मीरा बुआ काफी लाड करती । पिताजी जितना लाड प्यार करते थे उतना ही गुस्सा भी करते ।"[14]

बुआ का भीम पर अतिशय प्रेम था । वह कुबडी बुआ का सबसे लाडला था । रामजी को बच्चे की शिक्षा की चिन्ता थी । शिक्षक होने के कारण शिक्षा का महत्व उन्हे पता था । उन्हे सवर्णो की अहकार वृत्ति का अनुभव था । बच्चो पर योग्य सस्कार के लिये उन्होने अपना जीवन क्रम नये सिरे से निर्धारित किया । "बच्चो मे विद्याध्ययन की रूचि उत्पन्न है । उनका चरित्र समुज्जवल, सम्पन्न है । इसके लिये वे बहुत सावधानी बरतते थे । सुबह नाश्ता करने से पहले देवता के सामने बैठकर बच्चो को अभग और ब्राजन का पाठ करने का अनुशासन उन्होने सिखाया था । भग और भजन का पाठ अधूरा छोडकर जब बच्चे नाश्ते के लिये उठते थे, तो वे उनसे गुस्से मे आकर पूछते थे, क्यों रे – आज तुम्हारा जल्दी समाप्त हुआ । " उनका सख्त नियम था कि रात के भजन के समय तो सभी बच्चे उपस्थित रहे अगर किसी ने आनाकानी की तो वे उसे क्षमा नहीं करते थे ।उनके भजन, अभग, दोहे शुरू होने पर वहा गम्भीर, पवित्र तथा उदान्त वातावरण का निर्माण स्वत हो जाता था ।"[15]

रामजी सकपाल रामायण महाभारत महाकाव्यों, की कथायें बच्चों को पढाकर समझाते थे । मोरोपन्त, मुक्तेश्वर, पन्डित कवियों तथा नाम देव, तुकाराम सन्त कवियो के काव्य और अभग वे अपने बच्चो से कठस्थ करवाते थे । बाबा साहेब बड़े गर्व के साथ कहते थे कि उनकी बडी बहन पान्डव प्रताप–पोथी रामायण के अनेक विषयो पर विवेचन और विश्लेषण कर सकती थी । राम जी सूबेदार का खुद के परिवार की और अस्पृश्य समाज की उन्नति की छटपटाहट लगी रहती थी । राम जी महात्मा फूले के मित्र थे । इधर भीम का मन अध्ययन में नहीं लगता था । पिताजी के बेहद स्नेह से भीम बिगड गया था । जिसकी शिकायते आती थी और भीम पर मार पडती थी या वह बुआ के पीछे छिप कर बच लेता था ।"[16]

रामजी महसूस कर रहे थे कि बडी बहन मीरा पर अधिक भार पड़ रहा है । इस कारण अनिच्छा से उन्होंने दूसरे विवाह का निर्णय लिया । शिरकावाले एक

पेशनर जमादार थे । जीजाबाई नामक उनकी एक विधवा बहन थी । राम जी ने इस जीजाबाई से विवाह कर लिया । घर मे सौतेली मा आ गयी । इससे भीम की परेशानिया बढ गयी क्योकि सौतेली मा बनके कपडो, आभूषणो को धारण करती थी ।"[17]

अस्पृश्यता के दश की जानकारी बालक भीम के मन पर बचपन में ही हुयी । उसने देखा कि बाजार मे दूकानदार माँ के सामने दूर से कपड़े फेक देता है । स्कूली जीवन की भी कुछ घटनाये गहरायी से मन–मस्तिष्क में घर कर गयी । भीम एक दृढ निश्चयी बालक था स्कूल में किसी प्रकार से अनुपस्थिति उसे ठीक नहीं लगती थी । एक दिन जोर से बारिश हो रही थी । घर मे एक छाता था जिसे लेकर आनन्दा चला गया । सबने बालक को स्कूल जाने से बारिश के कारण मना किया । परन्तु भीम ऐसी दशा मे स्कूल के लिये चल पडे । भीगी दशा में भीम जब कक्षा मे पहुँचे तब पेडसे नाम के अध्यापक ने भीम को देखा और आश्चर्यचकित हुये । वे उन्हे अपने घर ले गये । पानी गर्म करवाया । एक लगोंट दी । एक दलित छात्र के प्रति एक ब्राह्मण अध्यापक की इतनी आत्मीयता । इस शिक्षक की आत्मीयता से भीम सदा नतमस्तक रहे । इसी स्कूल मे उन्हें एक अन्य अध्यापक भी मिले । उनका उपनाम था अम्बेडकर इस अम्बेडकर गुरू जी ने ही भीमराव के जीवन मे बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया । स्कूल मे भीम के नाम के आगे आम्बावडेकर लिखा जाता था कि उनके गाव के नाम अम्बावड़े पर आधारित था । एक दिन अम्बेडकर गुरूजी ने भीमा से पूछा –

अरे भीमा,

क्या है गुरूजी,

तेरा यह उपनाम,

मैं अम्बावडे गाव का । इस कारण यह उपनाम मै लिखता हूँ ।

अम्बावडेकर नाम ठीक नही है ।

मतलब

मेरा नाम अम्बेडकर है कि नहीं । ठीक वैसे ही तेरे उपनाम को भी अम्बेडकर कर देगें ।"

गुरूजी पर क्या नाम बदला जा सकता है ।

"इसमे क्या दिक्कत है ? मनुष्य अपनी जाति बदल नही सकता, पर नाम बदलने मे क्या दिक्कत है ? जन्म से जाति तो चिपक जाती है, पर नाम नहीं चिपकता ।"

"तो फिर मैं नाम बदलू ।"

"हा मेरे उपनाम की तरह तू भी अपना उपनाम आम्बेडकर लिखाकर ।"[18]

इस प्रकार अम्बावडेकर बदलकर अम्बेडकर हो गया । आम्बेडकर गुरू जी और पेडसे के इस व्यवहार ने आम्बेडकर पर गहरी छाप डाली । आम्बेडकर गुरूजी का ध्यान भीमा पर काफी ज्यादा था । उन दिनो भीमा का घर स्कूल से काफी दूर था । बीच की छुट्टी में भीमा घर खाने जाता था । बालक भीमा को आत्मीयता से लेते हुये केवल रोटी खाने के लिये इतनी दूर तक पैदल जाने की आवश्यकता नहीं मेरे साथ बैठकर तू मेरी रोटी खा सकता है इसके ठीक विपरीत भीम को अनुभव इससे पूर्व मिला था ।[19]

नौकरी के कारण राम जी कोरेगाव में थे । जबकि परिवार (लड़के) सतारा में था । छुट्टियो मे दो भाई और एक भाजा पिता के पास जाने के लिये निकले । भीम इस समय 9 वर्ष का बालक था । सतारा से व रेल द्वारा मसूर स्टेशन पहुचे वहा गरमी के दिन मे बच्चे स्टेशन से बाहर आये और एक गाडीवान से पूछा ऐसा इसलिये करना पडा क्योंकि पत्र न मिल पाने के कारण पिताजी स्टेशन पर लेने नहीं आ सके थे । भीमा व उसके अन्य भाइयो ने एक गाड़ीवान से पूछा –

"दादा क्या हमे कोरेगाव ले चलोगे ।"

"हा क्यो नहीं ।"

"कितने पैसे लोगे ?"
"तुम जितना योग्य समझते हो दो ।"
"फिर भी कहो न ।"
"अरे बैठो तो । बाद मे देख लेगे ।"

तीनो बच्चो को अति प्रसन्नता हुयी । बैलगाडी वाले को लगा कि खाते–पीते घर के खानदानी लडके है । यू अब दूसरी रेल भी आने वाली नहीं थी । ग्राहक मिलने की सम्भावना नही थी । इधर–उधर की बातचीत के बाद गाडीवान ने पूछा –
"क्यो रे बच्चो कोरेगाव मे किनके यहा जाना है ? ",
"रामजी सूबेदार के यहा ।"
"राम जी सूबेदार, यह कौन है । "
"सेना मे वे सूबेदार मेजर थे ।"
"सेना मे ? "
"मतलब वह महार तो नही (दलित) ?
"हा हम भी महार ही हैं ।"

गाडीवान एकदम उछल के नीचे उतरा । गालिया देने लगा । कहने लगा । मुझे तुम्हारी छूत हो गयी । मेरी गाडी को भी छूत हो गयी । बैल भी भ्रष्ट हो गये । अब मुझे नहाना होगा । गाडी धोनी होगी । बैलो को नहलाना होगा । चलों, पहले मेरी गाडी से उतर जाओ ।" नौ वर्ष का भीमा समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा क्या कुछ अपराध हुआ कि जिस कारण गाडीवान गालिया दे रहा है । छोटे भीम ने गाडीवान से कहा –

गाडीवान दादा हम भी आदमी ही हैं, तुम्हारी गाडी मनुष्यो को बैठने के लिये है और हम भी मनुष्य है । फिर हमारे प्रति यह भावना कैसी । पर गाडीवान किसी की कुछ नहीं सुन रहा था ।

लेकिन बच्चे थे वहा अपरिचित । फलत बडे भाई ने फिर से प्रयास किया । कहा कि – दादा हम तुम्हे दूने पैसे देगे और गाडीवान ने भी सोचा कि रात हो गयी आगे रेल भी नहीं है तो सवारी भी नहीं मिलेगी और कौन देखता है फलत उसने बच्चो को बैठा लिया । बाद मे जब प्यास लगी तो उस ने कहा तुम्हें पानी तो मिल ही नहीं सकता और इसी गढ्ढे से प्यास बुझा सकते हो । गढ्ढा काफी गन्दा था । लडके जब गुस्सा हुये गाडीवान पर तो उसने कहा कि – मुझ पर क्यो गुस्सा करते हो, मै अकेला कुछ नही कर सकता, समाज दलित को अछूत मानता है और कोई अपने कुये से पानी नही देगा ।"[20]

बाद में दूने पैसे पर गाडीवान व बच्चो मे सन्धि हो गयी कि – गाड़ीवान गाडी चलाये उस पर बच्चे बैठेगे नही पीछे–पीछे चलेगे । गर्मी के दिन थे बच्चे प्यास से बेहाल थे पर पानी नहीं मिल रहा था । कुछ लोग गन्दे पानी की तरफ उगली उठाते थे तो कुछ दुत्कार देते थे । दूसरे दिन अधमरी दशा मे सब मुकाम पर पहुचे । दिल तोडने वाली इस घटना का उल्लेख बाबा साहेब अपने भाषण मे किया करते थे । उस दिन बालक भीम को अपनी कारूणिक दशा, दीन हीन जिन्दगी की जानकारी मिली ।"[21]

"इस प्रकार के अनुभव उन्हे बार बार होते रहे थे । सतारा शहर में जगह–जगह पेयजल की व्यवस्था थी एक दिन भीम राव वहां पानी पीने गये । कुछ ने उन्हें पहचान लिया और उसी समय उन्हे पीट दिया । भीमराव ने सोचा कि कुछ लोगो को सहजता से पानी मिलता था और कुछ को नहीं । कुछ के लिये शुद्ध जल और कुछ के लिये गन्दा पानी । बात पानी तक सीमित नहीं थी । नाई अछूतों के

बाल काटता नहीं था । चाहे जितना पैसा आप दे । भीमा की एक छोटी बहन भीमा का बाल काटती थी ।"[22]

हमे स्कूल मे अलग क्यो बिठाया जाता है । घर से स्कूल के लिये टाट क्यों लाने पडते है, कुछ अध्यापक हमारी नोट–बुको को हाथ क्यो नहीं लगाते । अशौच के भय से प्रश्न भी पूछना वे कैसे टाल देते थे, आदि बातों की भीमा को जानकारी हुयी । मा दुकान के बाहर खडी रहकर दूर से ही कपडा क्यो चुनती थी, इसका रहस्य अब उसे मालूम पडा पानी पीने के लिये भीम को अपने हाथ की अजली कर अपना मुह ऊपर करना पडता था और फिर कोई ऊपर से उसके मुह में पानी डाल देता था । यह भीम का अनुभव था । एक बार स्पृश्य हिन्दुओ के पनघट पर वह पानी पीते पकडा गया तो जानवरो की भाति उसकी पिटाई की गयी । बालक भीम को धीरे–धीरे ज्ञान हुआ कि इसका मूल हमारे दलित होने मे है । जिस धर्म के कारण ऐसी विडम्बना है स्वाभाविक था कि बालक भीम के मन में इसके विपरीत भावना का उदय हुआ हो ।"[23]

छोटे भीम ने अग्रेंजी की दूसरी कक्षा में प्रवेश लिया । स्कूली प्रगति साधारण थी । स्वभाव जिद्दी, स्वतत्र, निर्भीक एव स्वतत्र था । एक बार हठ पर आने पर वह पीछे नहीं हटता था । बडे होने पर भी बाबा साहेब कहते थे – मेरे दोस्तों को यह मालूम था कि मेरा स्वभाव पहले से ही बहुत जिद्दी और हठी है । वे यह जानते थे कि यह काम मत करों कहने पर मैं निश्चय ही उसे करूंगा । परन्तु जब पेडसे गुरूजी ने वारिस वाले दिन बालक भीम को कक्षा में भीगे कपड़ो के बजाय सूखी लगोटी पहनायी और जब बालक भीम नहाकर सूखी लगोटी पहनकर कक्षा के बाहर सीटी बजाते हुये घूम रहा था तब 'पेडसे' गुरूजी ने कहा – कक्षा में आकर बैठजा, तुझे शरमाने की क्या जरूरत है ? ये सब बच्चे ही तो हैं । पेंडसे गुरूजी के ऐसा कहने पर भीम के रग मे भग पड गया । वह रोने लगा और शर्म से गर्दन नीचे कर कक्षा मे जाकर बैठ गया । उस समय से भीम ने अपने स्वभाव से जिद

निकालने की ठान ली ।"[24] जब भीम दूसरी कक्षा मे था तब न्यायमूर्ति रानाडे का देहावसान हो गया । यानि मात्र नौ वर्ष का । उस दिन भीम के स्कूल में छुट्टी हो गयी । रानाडे कौन थे ? उन्होने कौन सा कार्य किया था ? उनके निधन के निमित्त छुट्टी क्यो हो गयी ? इस सम्बन्ध मे हमे तनिक भी खबर न थी । आगे डा० आम्बेडकर ने रानाडे के शत–वार्षिकी उत्सव के निमित्त आयोजित एक सभा में यह बताया था । "[25]

तीसरी कक्षा तक भीमा साधारण विद्यार्थी था । अब भी वह आवारगी मे रत रहता था । बागवानी करने की उसे बडी लगन लग गयी थी । जो पैसा उसे मिलता था वह पौधे खरीदने मे व्यय हो जाता था । अध्ययन से दूर होने का एक घरेलू कारण भी था । एक दिन त्यौहार के समय भीमाबाई यानी भीम की सगी मा के गहने सौतेली मा ने पहने थे । यह देखकर मीराबाई रोने लगी । बच्चे भी रोने लगे । इस घटना पर राम जी ने भी कुछ कटु वचन कह दिये जिसका घातक प्रभाव भीम पर पड़ा । उसी क्षण भीम ने यह निश्चय कर लिया कि वह पिता से स्वतत्र अपनी जीवनचर्या करेगा । दूसरे के गौ हांकना, खेत में काम करना जैसे मामूली काम वह करने लगा । एक बार सतारा स्टेशन पर कुली का काम भी किया । यह सुनकर उसकी बुआ काफी दुःखी हुयी । भीम भी अन्य बच्चों की तरह बम्बई जाकर नौकरी करने की इच्छा को रोक न सका । किराये के लिये बुआ की गोद मे सो रहे भीमा ने बुआ की कमर मे बधी बटुआ की पोटली की चोरी कर ली, परन्तु उसमे मात्र आधा आना पैसा ही था । इससे बालक भीम को बहुत कष्ट हुआ । यहीं बालक भीम ने सकल्प किया कि वह चालाकी कर पलायन करने की अपेक्षा मेहनत से अध्ययन कर स्वोन्नति करेगा और अपने पैरो पर खड़ा होगा । अपनी साध्य करना ही श्रेयस्कर है ।"[26]

स्कूल के शिक्षको को भी उनके इस परिवर्तन का एहसास हुआ । अब उनकी शरारतों की शिकायत करने वाले शिक्षक उनकी अध्ययनशील प्रवृत्ति की प्रशंसा

करने लगे । पहले जो अध्यापक भीम की शिक्षा के लिये व्यर्थ व्यय न करे – ऐसी निराशा से रामाजी को भडकाते थे वही अध्यापक अब भीम के पिताजी से आग्रह करने लगे कि – सूबेदार कुछ भी करो, कष्ट उठाओ, लेकिन इस बच्चे की शिक्षा पूरी करो । रामजी अब कही न कही से यहा तक कि अपनी बेटियो के यहा से पैसे ले आते और बालक भीम की किताबी भूख की पूर्ति करते । राम जी सांस्कारिक हिन्दू थे इसलिये वे बच्चो को सस्कृत पढाना चाहते थे परन्तु अध्यापको के इन्कार करने पर पर्सियन पढना पडा । सस्कृत भाषा का अध्ययन बाद में बाबा साहब ने अपनी दृढ इच्छा शक्ति के माध्यम से किया था । उनकी सस्कृत भाषा मे असीम अनुकम्पा थी । संस्कृत साहित्य मे काव्यशास्त्र, अलकार शास्त्र नाटक दर्शन, तर्क, गणित सभी विषयो पर वाङ मय है ।"[27]

रामजी की नौकरी समाप्त हुयी और बम्बई आ गये । तब भीम धोबी तालाब के एल्फिस्टन हाई स्कूल मे जाने लगे । स्कूल काफी दूर था और ट्राम के लिये पैसा नहीं था । स्कूल में भी तिरस्कार मिला । एक दिन जब शिक्षक ने बोर्ड पर सवाल लिखकर बालक भीम को हल करने को कहा तब लडकों ने हल्ला मचाया कि – अरे रूको, रूको, हमारे टिफिन के डिब्बे उस बोर्ड के पीछे हैं तुम्हारे स्पर्श से हमारे टिफिन को छूत लग जायेगी ।"[28]

उन डिब्बो की वह आवाज बाहर के विश्व के छुआछूत के पागलपन की प्रति ध्वनि थी । यह आवाज और वह शोर भीम के कानो में हमेशा गूजंती रही होगी ? इसमे क्या आश्चर्य ? अध्यापको में से कोई उसे कहता था, 'अरे तू महार है । तुझे पढ़ाई करके क्या करना है ? तू स्कूल छोडकर चला जा तो अच्छा । तेजोभंग करने वाले वे शब्द सुनते–सुनते भीम का क्रोध बेकाबू हो जाता था । एक बार झट से खडा होकर अपनी जोर दार आवाज मे उसने उस अध्यापक से कहा, 'महोदय आप अपना काम करें, व्यर्थ की पूछ–ताछ करने के लिय आपसे किसने कहा है ।"[29]

प्रतिकूल परिस्थितियो से लडते हुये 1907 मे भीम ने मैट्रिक की परीक्षा मन्द–मन्द दिये के प्रकाश मे छ लोगो के एक परिवार में एक कमरे में पढकर पास कर लिया । पिताजी आनन्द से फूले ना समाये । पाठ्येत्तर ग्रन्थो को अधिक पढ़ने वाला छात्र उस जमाने मे द्वितीय श्रेणी मे पास होना स्वयं प्रफुल्लित करने वाला था । महार का कोई लडका मैट्रिक पास हो – यह उस समय अभूतपूर्व एक घटना थी । इस उपलक्ष्य मे एक समारोह आयोजित किया गया । समारोह का अध्यक्ष पद प्रख्यात सुधारक सीताराम केशव को दिया गया । विख्यात विचारक कृष्णाजी अर्जुन केसुलकर भी वक्ताओ मे थे । यही केसुलकर ने अम्बेडकर को उच्च शिक्षा के लिये प्रोत्साहित किया । अपना स्वय का लिखा हुआ मराठी का 'बुद्ध चरित्र' उपहार के रूप में दिया ।"[20]

मैट्रिक पास होने के थोड़े ही दिनो बाद 19वीं सदी की समाज रचना के अनुसार उनका विवाह निश्चित कर दिया गया । मात्र 17 साल की उम्र का वर एवं 9 साल की वधू । लड़की 'रमाबाई' सुस्वभावी और गरीब घर की थी । लड़की के पिता भिखू धत्रे कुली का काम करते थे । चाचा–मामा ने रमाबाई को पाल कर बड़ा किया था ।[31]

इस समय महाराष्ट्र मे दलित आन्दोलन आगे बढ़ रहा था । दलित समाज के शिवराम जानवे कावले 'सोमवशीय मित्र' नामक पत्रिका निकालकर दलित चेतना जागृत कर रहे थे। इन्होने प्रथम अस्पृश्य परिषद बुलाया। दूसरे दलित विचारक कर्मवीर विटठल रामजी शिन्दे थे। इन्होने भारतीय समाज रचना जानने के लिये समूसचे भारत का दौरा किया था। आगे उन्होने सर नारायण चन्दावरकर की सहायता से 'डिप्रेस्ड क्लास मिशन आफ इन्डिया' नामक सस्था स्थापित की। दलितोद्धार का यह प्रथम सगठित प्रयास था। ऐसी थी भीमराव के महाविद्यालयी शिक्षा के समय की सामाजिक परिस्थिति का चित्र ।[32]

अब आर्थिक स्थितिया प्रतिकूल हो रही थीं। केसूलकर जी ने कोशिश कर बडौदा नरेश गायकवाड की ओर से भीमराव जी को प्रतिमाह 15 रूपये की छात्रवृत्ति मजूर करा ली। इससे आगे की पढाई सम्भव हो सकी। बडौदा नरेश ने कुछ ही महीने पहले दलितो के प्रति अपनी प्रतिवद्धता व्यक्त की थी। कालेज के अध्यापक म्यूलर ने भी भीम की काफी मदद की थी । भीम ने 1912 मे बी0ए0 परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। 1913 मे उनके पिता की मृत्यु हो गयी ।[33]

स्नातक होने के बाद भीमराव नौकरी हेतु बडौदा चले गये। जहां वे सेना में लेफ्टिनेन्ट पद पर नियुक्त हुये। उसी दौरान बडौदा रियासत उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्ति देकर चार छात्रों को अमरीका भिजवाना चाहती थी। महाराजा ने भीम से इसके लिये आवेदन करने को कहा। 4 जून 1913 को भीम ने महाराज के एक अनुबध पत्र पर हस्ताक्षर किया जिसके अन्तर्गत अध्ययन पूर्ण होने के बाद कम से कम 10 वर्ष तक अनिवार्य रूप से नौकरी करनी थी। विदेश शिक्षार्थ गमन की घटना एक दलित व सामान्य घराने मे जन्मे व्यिक्ति के लिये एक ऐतिहासिक घटना थी। आम्वेडकर जुलाई 1913 मे न्यूयार्क पहुचे। जहा उन्हें एक मुक्त व नवीन समाज मिला। वहा वे बराबरी व उन्मुक्तता से रह सकते थे, बात कर सकते थे, बैठ सकते थे, खा सकते थे । उन्हे एक नया साक्षात्कार हो रहा था । अमेरिका से अपने पिता के एक मित्र को उन्होने लिखा कि मा बाप बच्चों को जन्म देते है, कर्म नहीं दे सकते यह विश्वास योग्य नही हैब। मा बाप अपनी सन्तति के जीवन को नई दिशा दे सकते है। इसे अब भारतीयो के मन में उतारना जरूरी है। लड़को के साथ–साथ लड़कियों की शिक्षा की व्यवस्था अगर कर दी गयी तो अपने समाज की प्रगति तेजी से हो सकती है।शेक्सपीयर के नाटक का एक वाक्य– प्रत्येक मनुष्य के जीवन में अवसर आते हैं अवसरों का योग्य उपयोग यदि वह कर ले तो वह वैभव को प्राप्त कर सकता है–उदघृत करते हुये उन्होने दलितों की कमजोर वृत्ति के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है ।[34]

अम्बेडकर का ध्येय अमरीका की बडी से बडी विश्वविद्यालयी उपाधि हासिल करने तक सीमित न था बल्कि अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र और मानवशास्त्र आदि विषयो मे प्रवीणता प्राप्त करने की उनकी प्रबल महत्वाकाक्षा थी। वहां के एक प्राध्यापक डा0 एडविन आर0ए0 'सेलिग्मन' का प्रभाव उनपर काफी अधिक था। 'सेलिग्मन' लाला लाजपत राय के मित्र थे । 1915 मे उन्होने एम0ए0 की उपाधि प्राप्त की। उस समय "प्राचीन भारत का व्यापार" विषय पर प्रबन्ध लिखा । 1916 मई मे डा0 गाल्डेनवेजर की सेमिनार मे–भारत की जातिया, शासन प्रणाली, उत्पत्ति और विकास विषय पर उन्होने एक प्रलेखपाठन किया । जिसमे उनकी स्थापना थी कि – स्वजाति विवाह जाति व्यवस्था का प्राण सूत्र है । जाति व्यवस्था बहु वचन में ही सम्भव है । एक वचन मे असम्भ्व है । मनु के पूर्व जाति– व्यवस्था अस्तित्व में थी, मनु ने मात्र उस काल के प्रचलित नियमो का सहिताबद्ध किया है ।[35]

उनके अनुसार मनु एक उद्यत और साहसी पुरूष थे । बाद मे "भारत के राष्ट्रीय मुनाफे का बटवारा एक ऐतिहासिक और विवेचनात्मक अध्ययन" नाम से जून 1916 मे उनका शोध प्रबन्ध कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने स्वीकार किया । इस ग्रन्थ को उन्होंने श्रीमान सियाजीराव महाराज को समर्पित किया । डा0 सेलिग्मन ने उसकी प्रस्तावना लिखी और 8 वर्ष बाद पी.एच.डी. की उपाधि मिल गयी । जब अम्बेडकर 1916 में न्यूयार्क से ब्रिटेन के लिये विदा हुये तब विश्व युद्ध चल रहा था । जहॉ ब्रितानी गुप्तचरो ने इन्हे कोई जासूस माना और उनकी तलाशी ली । वहां भीमराव ने कानून व अर्थ शास्त्र में दाखिला लिया । परन्तु 1917 में फेलोशिप के समाप्त होने पर वापस भारत 21 अगस्त 1917 को आ गये । अनुबन्ध के अनुसार उन्हें बडौदा नरेश की नौकरी करनी थी । जब अम्बेडकर बड़ौदा आये तो बड़ौदा महाराज के आदेश के बावजूद उन्हे लेने स्टेशन कोई नहीं गया क्योंकि वे महार थे ।[36]

महाराज अम्बेडकर को वित्तमत्री बनाना चाह रहे थे परन्तु अनुभव हीनता के कारण उन्हें सेना सचिव के पद पर काम दिया गया । अम्बेडकर को रहने खाने का प्रबध स्वय करना था । किसी हिन्दू धर्मशाला मे आवास नहीं मिला तब एक पारसी धर्मशाला मे जगह मिली । जहा वे नाम बदलकर रहने लगे । कार्यालय मे भी कोई सहयोग नही करता था । चपरासी पानी तक नहीं पिलाता था । कागज व सूचिकाये दूर से फेक कर दी जाती थी । एक दिन आफत ही आ गई । एक तरफ प्लेग का प्रकोप था । दूसरी तरफ पारसियो का झुन्ड लाठी लेकर अम्बेडकर को निकालने आ पहुचा । अम्बेडकर को घर खाली करना पडा । शहर मे कोई भी हिन्दू–मुसलमान अम्बेडकर को आश्रय देने को तैयार न था । जिससे वे एक पेड के नीचे बैठकर रो पडे ।[37] ऊपर आसमान और नीचे जमीन यही उनका सहारा था । तब वे बम्बई आ गये । इसी समय उनकी सौतेली माता का भी देहावसान हो गया । इसके बाद उन्होने एक वित्तीय कम्पनी खोली और कुछ समय बाद एक स्कूल मे पढाने लगे । 1917 मे काग्रेस मे दलित चिन्तन अपेक्षाकृत तेज था । काग्रेंस ने एक प्रस्ताव पारित कर तत्कालीन सरकार का ध्यान अछूतों के प्रति आकृष्ट कराया था । माग की कि उनके लिये विधान सभा मे अपना नेता हो । अत उन्हें अपने प्रतिनिधि भेजने के लिये उसने अधिकारों का प्रश्न उठाया । इसके साथ ही काग्रेस ने एक अन्य प्रस्ताव पारित कर उन लोगो के लिए न्याय व अधिकारों की मॉग की और उसमे हर प्रकार के धर्म या जाति के आधार पर होने वाले भेदभाव को दूर करने की अपेक्षा की । अब तक अम्बेडकर मात्र दर्शक की भूमिका में थे परन्तु एक नई पिच तैयार हो रही थी । अम्बेडकर का काग्रेंस लीग योजना पर यह आक्षेप था कि उस योजना के अुनसार कार्यकारिणी विधान सभा के प्रति उत्तर दायी नहीं थी ओर कार्यकारिणी और विधान सभा को विभिन्न अधिकार शक्तियों से आदेश प्राप्त होने वाले थे ।"[38]

19 मार्च 1918 को बम्बई मे अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण परिषद बडौदा नरेश सियाजी राव गायकवाड की अध्यक्षता में हुयी । अध्यक्ष ने कहा कि –

सामाजिक नव निर्माण तथा विज्ञानी निष्ठा ज्ञान के सामने अज्ञान मूलक गलत-फहमियाँ और जात्याभिमान स्थायी नही रह सकते । अस्पृश्यता मनुष्य निर्मित है देव निर्मित नहीं । अस्पृश्यो के सभवनीय धर्मान्तरण से उद्भूत होने वाले खतरे को सूचित करते हुय उन्होने आगे कहा हमे अपने धर्म में व्यावहारिक सुधार कर दलितों की समस्या हल करनी चाहिये ।[39]

परिषद को – बिट्ठल भाई पटेल, मुकन्द राव जयकर, विपिन चन्द्र पाल, डा0 कुर्तकोटी, टैगोर महात्मा गाँधी आदि का आशीर्वाद था । अन्तिम दिन सभी नेताओं का हस्ताक्षर युक्त बयान जारी किया गया । सम्मेलन में तिलक ने ईश्वर को तो खूब कोसा लेकिन घोषणा पत्र के समय अपने अनुयायियो के दबाव में आ गये और उन्होने हस्ताक्षर नहीं किया ।"[40]

अम्बेडकर ने इस परिषद मे भाग नही लिया क्योकि एक तो वे मितभाषी थे और दूसरे सवर्ण हिन्दूओ द्वारा आरम्भ किये गये इस आन्दोलन के प्रति वे सशंकित थे । इस बीच जब मान्टेग्यू – चेम्सफोर्ड सुधार के अनुषगों से साउथबरो कमेटी भारत के विभिन्न वर्गो से मताधिकार के विषय में गवाही प्राप्त कर रही थी तब डा0 अम्बेडकर और कर्मवीर शिंदे दलित वर्ग की तरफ से प्रस्तुत हुये । जहाँ अम्बेडकर ने गवाही दी कि – स्वराज्य जैसा ब्राह्मणो का जन्म सिद्ध अधिकार है वैसा ही महारो का भी है, यह बात कोई भी स्वीकार करेगा । इसलिये उच्च वर्ग का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वे दलित वर्ग को शिक्षा देकर उनका मनोबल और सामाजिक स्तर ऊचा उठाने का प्रयास करे । जब तक यह नहीं होगा तब तक भारत की स्वतंत्रता का दिन बहुत दूर रहेगा ।"[41]

इन्ही दिनो शाहूजी महाराज से उनकी भेट हुयी । महाराज ने उन्हें 'मूकनायक' पाक्षिक शुरू करने को प्रेरित किया । आर्थिक सहायता दी । 31 जनवरी 1920 को प्रथम अंक प्रकाशित हुआ । 1922 में वे बैरिस्टर हो गये ।

मूकनायक मे सम्पादक के तौर पर अम्बेडकर का नाम नहीं था । स्थित इतनी प्रतिकूल थी कि – तिलक के केसरी व मराठा जैसे पत्रों ने मूकनायक पर दो शब्द लिखने के बजाय विज्ञापन तक छापने से मना कर दिया था ।[42]

उस समय अम्बेडकर प्राध्यापक थे और हिन्दू समाज पर अभी खुली चढ़ाई करने को वे तैयार न थे । साधन और सामर्थ्य भी उन्हें प्राप्त करना था । कोल्हापुर के शाहू महाराज के साथ जो कि शिवाजी के वशज और मानवतावादी थे, के साथ अम्बेडकर के सम्बन्ध सुदृढ होने लगे थे । उस रियासत के माणगाव नामक गाव में पहली 'परिषद' सम्पन्न हुयी । शाहू महाराज वहा अपने तामझाम के साथ उपस्थित थे "मेरे राज्य के बहिष्कृत प्रजाजनो तुमने अपना सच्चा नेता खोज निकाला इसलिये मैं तुम्हारा हृदय से अभिनन्दन करता हूँ । मेरा विश्वास है कि डा0 अम्बेडकर तुम्हारा उद्धार किये बिना नही रहेगे । इतना ही नहीं, एक समय ऐसा होगा कि वे समस्त हिन्दुस्तान के नेता होगे । मेरी अन्तरात्मा मुझसे ऐसा कहती है ।"[43]

इस प्रकार छोटी–छोटी परिषदों का आयोजन भीमराव कराने लगे । 1920 के अन्त मे शाहू जी महाराज की अध्यक्षता मे एक अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद बुलायी गयी । जहा अम्बेडकर ने राज्यपाल के नामित प्रतिनिधि के विषय में अपना अभिमत दिया । यहा शिदे पर अम्बेडकर की सार्वजनिक जीवन में प्रथम जीत थी ।

जिस समय अम्बेडकर अमेरिका मे थे उसी समय उनकी पत्नी ने एक बेटे को जन्म दिया । जिसका नाम गगाधर रखा गया । जो बचपन में ही मर गया । दूसरे बेटे यशवन्त राव की भी तबियत ठीक नहीं रहती थी । रमाबाई को हमेशा अपने बेटे की चिन्ता लगी रहती थी । सचमुच, महान हिन्दू पुरूष के जीवन में अर्धांगिनी का हिस्सा बहुत महत्वपूर्ण होता है । तिलक, गाधी, सावरकर की पत्नियां साहसी थी वैसे ही डा0 अम्बेडकर की पत्नी भी साहसी स्त्री थी ।"[44]

जिन्होने दु ख दरिद्रता मे अपने बच्चो को पाला व पति को ढाढस बधाया था । एक घटना और महत्वपूर्ण बनी । बडौदा महाराज ने तो छात्रवृत्ति अध्ययन हेतु अम्बेडकर को प्रदान की थी लेकिन अधिकारियो की मशा ठीक न थी और अधिकारी उस अर्थराशि को कर्ज के रूप मे देखते थे जिसके लिये उन्होंने कई बार वापसी का प्रयत्न भी किया । बीच बचाव हेतु विख्यात नेता नारायण मल्हार राव जोशी को भी आना पडा । अन्त में इस मामले का समापन 1932 के एक मत्रिमण्डल फैसले से किया गया ।"[45]

जब लन्दन में अपनी बैरिस्टरी पास करने दुबारा वे गये । तो जिस स्त्री के धर वे बाइबिल का अध्ययन करते थे उस अग्रेज स्त्री से विशेष अनुरक्ति हो गयी । वहा अम्बेडकर के विश्राम का एक और स्थल था । वहा एक शास्त्री जी के यहां अम्बेडकर जाते थे उनकी पत्नी सुशील, धर्मन्ष्ठि और मिलनसार थीं । वह अम्बेडकर को हर इतवार या पखवाड़े मे एक बार सानुग्रह बहन के रूपमें आमत्रित करती थीं । वह उन्हें तू कहकर पुकारती थीं । अम्बेडकर ने अपने दलित होने की बात उनसे छिपायी थी ।[46]

अस्तु भीमराव अम्बेडकर के अनेक रूप अर्थशास्त्री, शिक्षक, बैरिस्टर, विचारक आदि के बन गये लेकिन उनका अपना मनतव्य दलितोद्धार पर केन्द्रित था । फलत 9 मार्च 1924 को पर के 'दामोदर ठाकरसी सभागृह में उन्होंने एक बैठक बुलाई । काफी विचार–विमर्श के बाद कई प्रस्ताव पास किये गये । अस्पृश्योद्धार हेतु नई सस्था को जन्म दिया "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" जिसके अध्यक्ष – चमन लाल सितलवाड़ और कार्याध्यक्ष – अम्बेडकर थे । संस्था के उद्‌देश्य इस प्रकार थे :–

1 दलितों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये औद्योगिक और कृषि विषय के स्कूलों की स्थापना करना ।

2 छात्रावास की स्थापना करना । अन्य साधनों की सहायता से अस्पृश्यों के बीच शिक्षा का प्रसार करना ।

3 अस्पृश्य समाज मे उच्च सस्कृति को बढ़ाने हेतु विभिन्न स्थानो पर वाचनालय, शिक्षा की कक्षाये और स्वाध्याय की स्थापना करना ।[47]

इन्ही सब प्रयत्नो से 1925 से शोलापुर मे इस सस्था की ओर से पहला छात्रावास आरम्भ हुआ । 1926 मे सी0 के0 बोले नामक एक समाज सुधारक ने बम्बई विधि सभा मे प्रस्ताव रखा कि – "सभी सार्वजनिक स्थानों – न्यायालय, स्कूल, कुआ और बाजार आदि स्थानो पर छूत–अछूत का आचरण न माना जाये । यहा अम्बेडकर ने कहा कि – अब जन जागृति का पर्व समाप्त हो चुका है अब प्रत्यक्ष कृति की आवश्यकता है ।" 19–20 मार्च 1927 को एक परिषद का आयोजन हितकारिणी सभा की ओर से किया गया जिसमें अम्बेडकर ने भारी भीड़ के समक्ष अपना भाषण दिया । जहा इन्होने स्वय नेता बनने का आग्रह दलित समाज से किया ।[48]

* * * * * * * * * * *

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि अम्बेडकर महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले में 'कुल देवी' 'भवानी' की पालकी उठाने वाले, मजबूत कद काठी वाली जोरदार आवाज वाली, चमकीली चमडी वाले, गुण से बुद्धिमान व वृत्ति से लड़ाकू महार जाति के सकपाल परिवार मे डा0 भीमराव अम्बेडकर का जन्म हुआ था । कहना न होगा कि महारो के राष्ट्र के नाम पर ही राज्य का नाम महाराष्ट्र पड़ा होगा । महारों के नाम पर अग्रेजी सेना मे महार रेजिमेन्ट का गठन किया गया था । डा0. बी. आर अम्बेडकर के पितामह मालोजी सकपाल व पिता रामजी सेना में विशेष अधिकारी थे । उस समय सेना मे प्रौढ एव शिशु दोनो की शिक्षा की व्यवस्था थी और वही रहकर इनका परिवार शिक्षित हो सका था । बाद मे धर्मा मुरवाड़कर जो कि सेना मे सूबेदार मेजर थे और उनका पूरा परिवार ही सेनाधिकारियो का था का परिचय रामजी सकपाल परिवार से बढ गया और अन्तत भीमाबाई का विवाह –राम

जी से 1865 मे सम्पन्न हुआ । रामजी उम्र कोई 22 वर्ष और भीमाबाई की उम्र कोई 13 वर्ष की थी ।

पुणे के पन्तोजी स्कूल की परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर रामजी अध्यापक बने, फिर छावनी स्कूल के प्राचार्य बन गये । 14 वर्ष तक प्राचार्य रहे सेना मे सूबेदार मेजर बन गये । पति–पत्नी ने 14 सन्ताने 1890 तक पैदा की । परिवार प्रतिष्ठित हो गया था परन्तु भीमाबाई का स्वास्थ्य काफी कमजोर था । 1890 में उनके एक वैरागी चाचा ने बहू को एक इतिहास निर्माता बच्चा पैदा करने का आशीर्वाद दिया और यह बच्चा मध्य प्रदेश के महू मे 14 अप्रैल 1891 को पैदा हुआ । यह 14वा पुत्र भीम था । ढाई वर्ष की उम्र मे पिताजी रिटायर हो गये । जहा से वे कोंकण चले गये । वही कायदापोली स्कूल मे भीम को बडे भाई के साथ दाखिला दिला दिया । इस समय कायदापोली गाव महारो का गढ़ था । अधिकाश सेवानिवृत्त लोग थे । कबीरपन्थी नाथपन्थी धारा मे बटे थे । रामजी भी नाथपन्थी हो गये । वह घर बनवाकर वहा रहना चाहते थे परन्तु गाव मे गुटबन्दी और आर्थिक तगी के कारण उन्होंने सतारा की राह पकडी । वहीं सतारा मे घर बनवाकर, कबीरपन्थी होकर, शाकाहार जीवन अपना लिया । 6 वर्ष की उम्र मे ही मा भीमाबाई का निधन हो गया । सतारा में उनकी समाधि है । घर की देखरेख हेतु बुआ मीरा थी । जिनका भीम पर अतिशय प्रेम था । पिता अध्यापक थे उन्हें बच्चों की शिक्षा की चिन्ता सताये रहती थी । बच्चो को वे अच्छा सस्कार देना चाहते थे परन्तु सवर्णो द्वारा शिक्षा व्यवस्था पर तिरस्कार भाव का भी उन्हे आभास था वह किस्सा, कहानी, पैराणिकता, भजन, अध्ययात्म द्वारा बच्चो मे सस्कार स्थापित करना चाह रहे थे । अन्तत उन्होने जीजाबाई नामक विधवा से दूसरा विवाह करने का निश्चय किया ।

इस बालक पर अस्पृश्यता की छाप बचपन से ही पडने लगी थी । उसने देखा कि कपडे का दूकानदार माँ को कपडा दूर से फेककर किस प्रकार देता है । स्कूल मे भी कुछ पाठ अस्पृश्यता के पढने को उन्हे मिले । वहा पेंडसे गुरूजी की आत्मीयता व अम्बेडकर गुरूजी की (ब्राह्मण) प्रेरणा से अम्बेडकर हमेशा नतमस्तक

रहे । वहीं अम्बेडकर गुरूजी ने अपने नाम से काट कर – भीमजी अम्बावडेकर का (गाव का नाम) की जगह भीम जी अम्बेडकर कर दिया । इसके ठीक विपरीत अनुभव 9 साल के बालक भीम को सतारा के रास्ते मे गाड़ीवान द्वारा दिया गया था । जिसमे उसने महार जानने के बाद गाली देकर गाडी से उतार दिया था और बाद मे दूने पैसे देने पर गाडी के पीछे–पीछे चलने का सौदा किया । साथ ही गर्मी के दिन मे प्यास से तडपते बच्चो को कहीं भी जल नहीं मिल रहा था । जल समस्या से प्राय उन्हे दो–चार होना पडता था । नाई दलितो के बाल नहीं काटता था । भीमा की बहन भीमा के बाल काटती थी । घर से टाट लानी पड़ती थी, मास्टर छूत के डर से सवाल नहीं पूछता था । नोट–बुक को हाथ नहीं लगाता था । कपड़ा बाहर से फेका जाता था । हिन्दुओ के पनघट पर पानी पीने पर पिटाई हो जाती थी और यह सब मात्र इस कारण कि हम दलित हिन्दू हैं तो इसमे कोई भी इसके त्याग की सोच सकता है ।

कक्षा तीन तक बालक भीम साधारण था । परन्तु उसके बाद उसमें बदलाव आया । अब शिक्षको की राय भीम के प्रति बदल गयी । शिक्षक भीम के पक्ष में पिता से प्रसशा व सिफारिशें करने लगे । बाद में भीम का दाखिला एलफिस्टेन कालेज मे हुआ । वहा का भी अनुभव अच्छा नहीं रहा । कभी अध्यापकों का तिरस्कार तो कभी सहपाठियो का बहिष्कार उन्हे मिलता था ।

1907 मे वह मैट्रिक द्वितीय श्रेणी मे पास हुये तो यह महार समाज के लिये विशिष्ट उपलब्धि थी । अत इसके उपलक्ष्य में एक समारोह किया गया । वहीं से उच्च शिक्षा की प्रेरणा प्राप्त हुयी । इसी समय रमाबाई से विवाह तय हो गया । – (17 वर्ष–9वर्ष) । इसी समय शिवराम जानवे, कावले, कर्मवीर बिठ्ठल रामजी शिन्दे, सर नारायण चन्दावरकर आदि दलित समाज को जागृत करने का प्रयास कर रहे थे । केसलकर के प्रयासों से बड़ौदा नरेश गायकवाड़ से 15 रूपये प्रतिमाह की फेलोशिप 'भीम' के लिये मजूर करा ली, कालेज अध्यापक म्यूलर ने भी भीम की

काफी मदद की थी । 1912 मे भीम ने बी ए परीक्षा पास की । 1913 मे उनके पिता की मृत्यु हो गयी ।

अब वह बड़ौदा नौकरी करने चले गये वहा सेना मे लेफ्टिनेन्ट हो गये । परन्तु बड़ौदा नरेश ने उच्च शिक्षा के लिये इन्हे विदेश भेज दिया । जुलाई 1913 को वह न्यूयार्क पहुच गये । जहा उन्हे एक नवीन समतावादी समाज की प्राप्ति हुयी । जहां वे बराबरी व उन्मुक्तता से रह सकते थे, वस्तुत वहा अपने जीवन से उनका नया साक्षात्कार हो रहा था ।

वह वहा उपाधिया इकट्ठा करने के साथ–साथ अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, नीति शास्त्र और मानव शास्त्र आदि ज्ञान के उपागमों में प्रवीणता प्राप्त करना चाहते थे । वहा के डा0 एडविन आर ए सेलिगवन से उनकी आत्मीयता थी जो कि लाजपतराय के मित्र थे । 1915 मे 'प्राचीन भारतीय व्यापार' पर प्रबन्ध लिखकर एम. ए की डिग्री प्राप्त की । 1916 मे एक सेमिनार भाषण में स्थापन की –

1 जाति कर मूल स्वजाति विवाह मे है । 2 जाति व्यवस्था बहुवचन में ही सम्भव है । 3 मनु के पूर्व जाति व्यवस्था अस्तित्व में थी । बाद में कोलम्विया विश्वविद्यालय से उन्होने डाक्टरेट प्राप्त किया। फिर वहा से ब्रिटेन गये ततपश्चात 1917 मे वापस भारत आ गये।

भारत आते ही अस्पृस्यता का दश पुन दिखाई पडा उन्हे बड़ौदा स्टेशन पर महाराज के आदेश के बावजूद कोई लेने नहीं गया था। अनुभव हीनता के कारण बड़ौदा नरेश ने वित्तमत्री के वजाय सेना सचिव का पद दिया । रूकने के लिये पारसी धर्मशाला मे जगह लेनी पडी । कार्यालय में भी कोई सहयोग नहीं करता था। चपरासी पानी नही पिलाता था। कागज–फाइल दूर से फेकी जाती थीं । एक दिन लाठी लेकर पारसियो ने वह धर्मशाला भी खाली करा ली । शहर में उनका

कोई आश्रय नहीं रहा । पेड के नीचे बैठकर वह रो पडे । अब उनकी सौतेली माँ का निधन हो गया और वह बम्बई आकर एक स्कूल में पढाने लगे ।

कांग्रेस ने 1917 मे दलित प्रतिनिधि के लिये माँग करनी आरम्भ कर दी थी । उसने दलित समाज के न्याय व अधिकारो पर चर्चा की थी । दूसरी तरफ 1918 मे अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण परिषद बडौदा नरेश सियाजीराव गायकवाड की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुयी । कहा गया कि – अस्पृश्यता मानव निर्मित है देव निर्मित नही धर्मान्तरण का खतरा दिखाकर धर्म सुधार की मांग की गयी । इससे भीम अलग रहे ।

साउथवरो कमेटी के समक्ष उन्होने गवाही देते हुये कहा कि – स्वराज्य जैसा सवर्णो का जन्म सिद्ध अधिकार है वैसा ही महारो का भी है यह बात कोई भी स्वीकार करेगा । इसलिये सवर्णो का प्रमुख कर्तव्य है कि वे दलित वर्ग को शिक्षा देकर उनका मनोबल और सामाजिक स्तर ऊचा उठाने को प्रयास करें । इन्हीं दिनों शाहू जी महाराज से 'मूलनायक' के सम्पादन के प्रभार का प्रस्ताव मिला । जिसे उन्होंने स्वीकार किया । शाहू जी महाराज से सम्बन्ध प्रगाढ होने लगे । शाहू जी महाराज ने 'माणगाव परिषद मे अम्बेडकर के बारे मे कहा कि – दलितों ने अपना सच्चा प्रतिनिधि खोज लिया है । वहीं उन्होने अम्बेडकर को दलित समाज का उद्धारक व हिन्दुस्तान का नेता घोषित कर दिया ।

अन्तत 'दमोदर' ठाकरसी सभागृह मे उन्होंने एक बैठक बुलाई । जहां अनेक प्रस्ताव पास किये गये । अस्पृश्योद्धार हेतु नई सस्था – 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का गठन किया गया । इस तरह से भीमा – भीमराव राम जी (पिता का नाम) अम्बेडकर (आम्बेडगाव के नाम से अम्बेडकर गुरूजी का नाम) हो गये और सामाजिक राजनीतिक जीवन मे आ गये । जिसको भविष्य का इतिहास इन्तजार कर रहा था ।

विवरणिका

1 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब का जीवन चरित्र, पृष्ठ – 8, पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली – 1996

2 वही " आगे ।

3 वही " पृष्ठ – 9 ।

4. भा बी बाबा साहेब वाणी ।

5 वही "

6 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र व कार्य, न0मा0 जोशी, – पृष्ठ – 2 – पूना – 1989 ।

7 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – डा0 भीमराव अम्बेडकर । पृष्ठ – 26, राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

8 धनजय कीर – पृष्ठ – 9 – 10 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

9 डी0एस0 राघवाकर – बी0आर0 अम्बेडकर, पृष्ठ – 11 ।

10 धनजय कीर – पृष्ठ – 11 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

11 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 28 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर राधाकृष्ण प्रकाशन, – नई दिल्ली – 1998 ।

12 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र, पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली 1996, पृष्ठ – 13 ।

13 डा0 अम्बेडकर, रानाडे, गाँधी व जिन्ना, पृष्ठ 9–10 ।

14 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – चरित्र व कार्य – न0मा0 जोशी पृष्ठ – 3 – पूना–1989 ।

15 हुदलीकर – प्रा0 सत्य बोध, नवयुग आम्बेडकर विशेषांक – 13 अप्रैल 1947 – पूना ।

16 धनजय कीर – पृष्ठ – 15 – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996, बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र ।

17 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 29 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

18 डा0 अम्बेडकर – भालचन्द्र फडके – पृष्ठ – 30, – श्री विद्या प्रकाशन – पूना–1985 ।

19 वही " पृष्ठ – 99 ।

20 महामानव डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – प्रभाकर दीघे – पृष्ठ – 26–पूना–1989 ।

21 आम्बेडकर राचे भाषण – जनता – 20 नवम्बर 1937 ।

22 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 32 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

23 धनजय कीर – पृष्ठ – 16 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली 1996 ।

24 वही पृष्ठ – 17 ।

25 डा0 अम्बेडकर – रानाडे, गाँधी व जिन्ना, पृष्ठ 9–10 ।

26 आम्बेडकर्स स्पीच – दि बाम्बे सेन्टीनेल – 20 जनवरी 1942 ।

27 हुदलीकर, प्रा0सत्यबोध, नवयुग अम्बेडकरविशेषाक,13,अप्रैल,1947, बम्बई ।

28 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – प्रभाकर दीघे – पृष्ठ–22 –पूना–1989 ।

29 शिवतरकर, सी0 ना0 जनता – 14 अप्रैल 1934 – बम्बई ।

30 धनजय कीर – पृष्ठ – 23 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

31 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 34 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

32 धनजय कीर – पृष्ठ – 24, डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र, पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली – 1996 ।

33 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे, डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर पृष्ठ – 34, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली – 1998 ।

34 भीमराव जी अम्बेडकर – खैर मोडे – पृष्ठ – 66–67 श्री विद्या प्रकाशन – पूना–1980 ।

35 दि इन्डियन ऐन्टिक्विटी – डा0 अम्बेडकर पृष्ठ – 81 – 95 ।

36 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृष्ठ – 43 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

37 अम्बेडकर राचे भाषण – जनता – 23 मई 1936 – बम्बई ।

38 दि इवोलुशन आफ प्राविंसियल फाइनास इन ब्रिटिश इन्डिया पृष्ठ – 297 – महाराष्ट्र सरकार ।

39 दि आल इन्डिया एन्टी अनटचेबिलिटी मूवमेन्ट, पृष्ठ – 22 ।

40 महाराष्ट्रीय ज्ञान कोष – खण्ड – 7 – मराठी तत्वाज्ञान महाकोष मण्डल – पृष्ठ – 647 – पूना – 1974 ।

41 टाइम्स आफ इन्डिया – 16 जनवरी 1919 – म्बई (उपनाम से अम्बेडकर द्वारा लिखा गया पत्र) ।

42 बहिष्कृत भारत – 20 मई 1927 – पूना ।

43 शिवतरकर – सी0 ना0 जनता – खास अंक – बम्बई । अप्रैल – 1933।

44 डा0 धनजय कीर – पृष्ठ – 43 – बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

45 वही आगे ।

46. वही पृष्ठ – 46 ।

47 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 39 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

48 डा0 आम्बेडकर आणि त्याच्चा धम्म – प्रभाकर वैद्य पृष्ठ – 12 शलाना प्रकाशन – नई दिल्ली – 1981 ।

अध्याय – दो

अम्बेडकर का दर्शन

(क) सामाजिक चिन्तन

(ख) धार्मिक चिन्तन

(ग) आर्थिक चिन्तन

(घ) राजनीतिक चिन्तन

कठोर था और आज भी है । विवाह का यह बधन तब तक पाला जा सकता है जब तक उस जाति में स्त्री पुरूषों की सख्या में बहुत बड़ी खाई नहीं होती । पुरूषो की तुलना मे स्त्रियो की सख्या अधिक हो तो जाति अन्तर्गत विवाह का नियम निभाया नहीं जा सकता । अथवा किन्हीं अन्य कारणो से स्त्रियों की संख्या बढ गयी तो इसके लिये परम्परा ने दो मार्ग बतलाये । एक मृत पति के साथ स्त्री को चिता पर जला दिया जाये । इससे स्त्री पुरूष अनुपात में अन्तर नही आ सकता । परन्तु प्रत्येक स्थान पर इस पद्धति को अपनाया नहीं ज सकता। इस विधवा को बिना विवाह के रखना भी धोखा है क्योंकि वह जाति के बाहर व्यक्ति से विवाह नहीं कर सकती । इस कारण उसे जला देना आवश्यक है । अथवा जिन्दगी भर का वैधव्य अनिवार्य कर दिया जाये । अनादि काल से स्त्री की तुलना में पुरूषों को समाज व्यवस्था में विशेष स्थान प्राप्त हुआ है । इस कारण पुरूषों ने स्त्रियों पर अधिक बन्धन डाले हैं । मृत पत्नी के साथ पुरूषो को जलाने की व्यवस्था इसी कारण सम्भव नहीं थी । पुरूष जाति के लिये अधिक उपकारक होता है । वह अपनी जाति की संतति पैदा कर सकता है । इस कारण जो बन्धन स्त्री पर डाले गये वह पुरूष पर नही डाले गये। इसके लिये सन्यास का एक मार्ग उपलब्ध ही था । इस प्रकार स्त्री पुरूषों की संख्या समान रखने के लिये हिन्दू परम्परा ने चार मार्ग सुझाये है –

1 मृत पति के साथ स्त्री को जला देना ।

2 मृत्यु तक वैधव्य लादना ।

3 विधुर पर ब्रह्मचर्य लादना ।

4 अनमेल विवाह करना (कम उम्र लडकी) ।

इन बधनो से जाति प्रथा मजबूत से और मजबूत होती गयी । इस सिद्धान्त को अम्बेडकर तमाम अन्य प्रमाणों से साबित करते हैं कि जाति अर्न्तगत विवाह ही जाति व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिये कारणीभूत है ।[1]

इसी आलेख मे वे एक अन्य विद्वान का भी प्रतिपादन करते हैं । "व्यक्ति समूह समाज से बनता है यह एक बहुत ही मजबूत व स्थूल तथा सामान्य

वक्तव्य है । समाज कभी भी व्यक्ति से नहीं बनता है वह वर्ग से ही बनता है। प्रत्येक समाज के वर्ग अस्तित्व में होते हैं। वर्ग रचना के मूल में निहित कारण अलग–अलग होते है । कभी आर्थिक, कभी बौद्धिक, कभी राजनीतिक कारणों से वर्ग बनते है । व्यक्ति किसी न किसी किसी वर्ग की इकाई बनकर ही जीना चाहता है। यह एक वैश्विक सत्य है । हिन्दू समाज भी इसके लिये अपवाद नहीं है। इस नियमानुसार वर्ग जाति मे रूपान्तरित होते गये । वास्तव में जाति व वर्ग आमने–सामने रहने वाले पडोसी की तरह होते हैं । बहुत मामूली भेदों के कारण उनका अस्तित्व भिन्न–भिन्न लगता है । वस्तुत जाति स्वय एक मर्यादित वर्ग है ।[2]

डा0 अम्बेडकर के मन मे कबीर थे और उनकी आस्था मे महात्मा बुद्ध उनके सामाजिक जीवन चेतना पर कबीर का गहरा प्रभाव था । वे सघर्षी मुद्रा में रहे और आजीवन घाव सहते घावो पर मरहम लगाते और जूझते रहे। न चिन्ता की कि उनके जूझने से क्या होगा और न परिणाम से डरे कि सब कुछ उलट सकता है ।[3] उन्होने इस बात को स्वय स्वीकारा कि "यह सम्भव हो सकता है कि मै गलती पर होऊ परन्तु मैने यही हमेशा मुनासिब समझा है कि दूसरो के पथ निर्देशन और आदेशों को मानने तथा मौन वैठे रहने व स्थितियों को बिगाड देने की अपेक्षा त्रुटिया करना कही श्रेयस्कर है ।[4]

डा0 अम्बेडकर भारतीय सास्कृतिक, राजनीतिक, नवजागरण की सशक्त सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है। उनका पूरा चिन्तन नवजागरण की गरमागरम मनोभूमिका को अनेक कोणो से सामने लाता है। भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक सरंचना पर वे मौलिक ढग से सोचते है जो उन्हे महात्मा गाधी और राममनोहर लोहिया की सोच से अलग करता है। बाबा साहेब भारतीय समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के धारदार प्रश्नो को उठाते हैं । उनपर वैचारिक बहस छेडते हैं और अपनी स्पष्ट राय जाहिर करते है । जाति प्रथा के उद्गम और स्वरूप पर वे जीवन भर अनुसधान करते रहे हैं और जाति प्रथा के उन्मूलन के तार्किक समाधान भी सुझाते रहे हैं ।[5]

भारत में जाति प्रथा लेख में उन्होनें कहा कि "मुझसे ज्यादा योग्य विद्वानों ने जाति के रहस्यो को खोलने का प्रयास किया है । किन्तु यह दुख की बात है कि यह अभी तक व्याख्यायित नहीं हुआ है और हम लोगो को इसके बारे में अल्प जानकारी है मै जाति जैसी सस्थाओ की जटिलता के प्रति सजग हूँ और इतना निराशावादी नही हूँ कि यह पहेली अगम अज्ञेय है, क्योकि मेरा विश्वास है, कि इसे जाना जा सकता है। जाति की समस्या सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में एक विकराल समस्या है ।"[6] "पूरी आस्था और खोजी सकल्प के साथ बाबा साहेब इस विकराल समस्या से जूझते रहे, उन्हे ज्यादा जुझारू तेवर इसलिये भी अपनाना पड़ा कि यह जटिल समस्या न केवल सैद्धान्तिक स्तर पर शिव की जटाओ की तरह उलझी है अपितु व्यावहारिक स्तर पर भी बिना मुंह का फोड़ा रही है । जिसमे दर्द है, मवाद भरता है, लेकिन मुह नही दिखाई देने के कारण ठीक तरह से इलाज नहीं किया जा सकता है । यह हिन्दू समाज की नागिन अम्बेडकर के सामने जहरवाद फैलाती दिखाई पडती है ।"[7]

"भारतीय समाज रक्त की शुद्धता की बात चाहे जितनी ही क्यों न करे पर यह शुद्ध रक्त वाला समाज नही है । इस भारतीय समाज में आर्यों, द्रविणों, मगोलो, शको, हूणो, आभीरो, नागों, यक्षो, आदि न जाने कितनों का सम्मिश्रण है। अनेक जातिया देश विदेश से घूम–घामकर यहा पहुंची, बसी और इस देश की सास्कृतिक धारा मे मिलकर एक हो गई ।"[8] बडे अनुसधान के बाद बाबा साहेब ने कहा कि ये अपने पूर्ववर्तियो को धकेलकर इस देश का अग बन गये। इनके परस्पर सतत् सम्पर्को और सम्बन्धो के कारण एक समन्वित संस्कृति का सूत्रपात हुआ। परन्तु भारतीय समाज के विषय में यह बात कहना असगत है कि वह विभिन्न जातियों का सकलन है ।[9] सकलन से सजातीयता उत्पन्न नहीं होती यदि रक्त भेद की दृष्टि से देखा जाये तो भारतीय समाज विजातीय है, हां यह संकलन सास्कृतिक रूप से अत्यन्त गुथा हुआ है । इसी आधार पर मेरा कहना है कि इस

प्रायद्वीप को छोडकर ससार का कोई देश ऐसा नहीं है जिसमें इतनी सांस्कृतिक समरसता हो । हम केवल भौतिक दृष्टि से सगठित नहीं हैं बल्कि हमारी सुनिश्चित सास्कृतिक एकता भी अविच्छिन्न एव अटूट है, जो पूरे देश मे चारों दिशाओं मे व्याप्त है । इसी सास्कृतिक एकरूपता के कारण जाति प्रथा इतनी विकराल बन गयी है कि उसकी व्याख्या करना कठिन कार्य है ।[10] कठिन कार्य इसलिये है कि यहा सजातीय समाज मे भी जाति प्रथा की घुसपैठ है इस जाति प्रथा को समझाने के लिये अम्बेडकर फ्रासीसी विद्वान **सेनार** के तीव्र वशांनुगत के आधार वाले सिद्धान्त, **नेसफील्ड** के समुदाय सिद्धान्त तथा डा0 केतकर के जाति प्रथा सिद्धान्त का विश्लेषण करते हैं और इस नतीजे पर पहुचते है कि सभी लोग जाति को एक स्वतन्त्र तत्व मानने की भूल करते है । डा0 सेनार अपमिश्रण सिद्धान्त को जाति से जोडकर देखते है और ऊपर–ऊपर ताक–झॉक करते रह जाते हैं । वे जाति तन्त्र का विश्लेषण जाति प्रथा के आधार पर नहीं करते यह गलती नेसफील्ड दुहराते हैं – पर डा0 केतकर जाति तत्र की नब्ज पकड लेते हैं और कहते हैं कि सजातीय विवाह सम्बन्ध ही जाति समस्या का मूल है ।[11]

भारतीय जाति समस्या को यूरोपीय नृविज्ञान और समाजशास्त्र के सिद्धान्तों से हम कभी नही समझ सकते है। ऐसा विश्वास डा0 अम्बेडकर का शुरू से ही बन गया उनका कहना है कि भारत मे जाति प्रथा का जो अर्थ है समाज को कृत्रिम हिस्सो मे विभजित करना, जो रीति–रिवाज और शादी–विवाह की भिन्नताओं से बधें हो । परिणाम स्पष्ट है कि सजातीय विवाह एकमात्र लक्ष्य है जो जाति प्रथा की विशेषता है, और यदि हम यह जानने मे सफल हो जायें कि सजातीय विवाह ही क्यो होते है तो हम व्यावहारिक रूप से साबित कर सकते हैं कि जातियों की उत्पत्ति कैसे हुयी और उनका ताना बना क्या है ।[12] वे यह प्रश्न उठाते हैं कि वह कौन सा पहला वर्ग था जो जाति में रूपान्तरित हुआ दूसरे शब्दों मे जाति व्यवस्था का जनकत्व किसे दिया जाये । अनेक प्रमाण देते हुये वे यह सिद्ध करते है कि आरम्भ में ब्राह्मण वर्ग जाति में बदल गया । इसी ब्राह्मण वर्ग ने

इस देश मे जाति प्रथा को लादा, ऐसी उनकी स्थापना है। सैकड़ों वर्षो से वर्ग जाति में परिवर्तित होने की प्रकिया चल रही थी । वे यह भी स्पष्ट करते है कि मनु जाति व्यवस्था का जन्मदाता नहीं है । मनु के सैकडो वर्षो पूर्व जातिप्रथा अस्तित्व में थी मनु इस व्यवस्था को एक दार्शनिक धरातल पर ले जाकर शास्त्र रूप देता है । जाति से सम्बन्धित नियमो का मनु ने केवल संकलन किया है ।[13]

आर्य समाज के तत्वाधान मे चल रहे जातपात तोडक मन्डल सभा की अध्यक्षता हेतु अम्बेडकर ने एक भाषण तैयार किया जिसके तीखे होने की वजह से अम्बेडकर की अध्यक्षता का चयन ही सभा ने रद्द कर दिया । जो बाद में अपने एक पत्र मे अम्बेडकर ने लिखा कि "अध्यक्ष के विचार स्वागत समिति को पसन्द नहीं थे इसलिये अध्यक्ष की नियुक्ति को ही रद्द कर देना यह विश्व इतिहास का प्रथम उदाहरण है । सवर्ण हिन्दू मुझे इस सभा का अध्यक्ष पद दे रहे थे, और उसे मै स्वीकार रहा था , यह भी मेरे जीवन की पहली घटना थी, परन्तु उसका समाधान इस प्रकार नियुक्ति रद्द होने में हुआ (15 मई 1936) ।[14]

58 पृष्ठ के इस आलेख मे बहुत विस्तार के साथ हिन्दू समाज रचना का विश्लेषण किया जाता है । इस समाज रचना में विषमता को समाप्त कर उसकी पुनर्रचना के सम्बन्ध मे मौलिक सुझाव दिये गये हैं अब तक के सभी समाज सुधारको के प्रयत्नों का मूल्याकन भी इसमे किया गया है । श्री मधु लिमये ने इस आलेख को समतावादी समाजव्यवस्था का एक मौलिक घोषणा–पत्र कहा है ।[15]

काग्रेस द्वारा आरम्भ की गयी सामाजिक सुधार परिषद की कठोर समीक्षा करते हुये वे कहते है कि विषम समाज रचना भावुकता अथवा आदर्शो से समाप्त होने वाली नही है। इसके लिये परिवर्तित मानसिकता ओर ठोस कार्यक्रमों की आवश्यकता है । हिन्दुओं के पारिवारिक सुधार आन्दोलन और हिन्दू समाज पुनर्रचना के आन्दोलन ऐसा स्पष्ट वर्गीकरण वे करते हैं । आज तक के (1935 तक)

आन्दोलन केवल पारिवारिक प्रश्नो को सुलझाने के लिये ही किये गये। सम्पूर्ण समाज की पुनर्रचना की बात कहीं की ही नहीं गयी ।[16] इसे वह स्पष्ट करते है विधवा विवाह, वृद्ध विवाह, बाल विवाह आदि सुधारो का सम्बन्ध व्यक्ति और परिवार के साथ है, समाज रचना के साथ नहीं है उच्चवर्णियों की रूचि पारिवारिक सुधारों मे अधिक रही । इसी मे उनके हित सम्बन्ध सुरक्षित रहे जाति या वर्णभेद से न टकराने करने की आवश्यकता उन्हे महसूस हुयी । जाति और वर्ण के कारण उपेक्षित समाज की यातना को वे समझ ही नहीं पाये विधवा विवाह, वृद्ध विवाह आदि स्त्री विषयक समस्याये उनके अपने वर्ण मे ही अधिक कठोर थी, इस कारण उनके सामाजिक सुधार उनके वर्ण तक ही सीमित रहे । समाज रचना में परिवर्तन हो, इस प्रकार की दृष्टि अंग्रेजो की सत्ता यहा आने के बाद ही पनपी । जाति व्यवस्था के मूल मे श्रम विभाजन का सिद्धान्त काम कर रहा है ऐसी स्थापना आर्य समाजियो की है इस पर अम्बेडकर ने कहा कि "जाति सस्था केवल श्रम विभाजन नहीं है, वह श्रमिको का भी विभाजन है केवल श्रमिको का विभाजन करके ही वह रूकती नहीं , अपितु श्रमिको के एक–एक समूह को वह नीचे से ऊपर की ओर, एक दूसरे पर रखती जाती है" और सबसे भयंकर बात यह है कि वह क्रमबद्धता जन्म के आधार पर हमेशा के लिये चिपका दी जाती है विश्व के किसी भी देश में श्रम विभाजन को श्रमिको के सामाजिक स्तर के साथ चिपकाया नहीं गया है ।[17]

डा0 अम्बेडकर ने जो सोचा और जो किया, वह हिन्दू समाज की सुदृढ़ता के लिये था,उसकी एकता के लिये था, उसके विकास के लिये था । उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय समाज सीढी दर सीढी का ऐसा सिलसिला है जिससे हर ऊपर की सीढी का आदमी हर नीचे की सीढी के आदमी को घृणा की दृष्टि से देखता है और नीचे की सीढी का आदमी अपने ऊपर की सीढी के आदमी को आदर की दृष्टि से । ऐसे समाज में समता बन्धुत्व और प्रजातत्र को पनपने की रत्ती भर भी गुजाईश नही है प्रजातत्र मे असमानता कैसी, भेदभाव कैसा, रागद्वेष कैसा, । यही बात तो डा0 अम्बेडकर के समझ में नहीं आ रही थी कि समाज है, सबके लिये है,

समता और सहयोग के लिये है, और पिछडो को साथ लेकर चलने के लिये है फिर उससे वैसा ध्वनित क्यो नहीं होता उसमे एक समूह विशिष्ट अधिकारों से युक्त है तो दूसरा वचित क्यो? कौन पाटेगा इस खाई को, आखिर किसी न किसी को तो डा० अम्बेडकर बनना ही था । ताजिदगी तो समाज का एक अंग लकवे का शिकार नही रह सकता । कभी तो उसमे हरकत होती है । हो सकता है कि बदले की आग मे पगलाया वह समाज के अग को काटकर चील, कौवो को डाल देता और कदाचित उन दुर्गन्धयुक्त अगो को खाने से चील कौवे भी इनकार कर देते उस "हो सकता" की ज्वाला से सम्पूर्ण समाज को बचाने के लिये समय रहते ही डा० अम्बेडकर ने सबको चेता दिया और धवस्त होते समाज को थाम लिया ।[18]

डा० अम्बेडकर की सबसे बडी उपलब्धि यह थी कि उन्होने क्लासवार को भरसक प्रयत्नो से रोक रखा अन्त तक वे हिन्दू समाज मे सामाजिक मानवतावाद लाने की चेष्टा करते रहे । यह कहना ठीक नही होगा कि वे ब्रह्मण विरोधी थे बल्कि यह कहना समीचीन होगा कि उन्होने हिन्दू समाज पर ब्राह्मणवाद की कलुशित मशाओ का पर्दाफाश कर उसके उदात व विमल चरित्र की पुनर्स्थापना का प्रयास किया ।[19]

जाति व्यवस्था से जो दोष हिन्दू समाज मे आये उसका विस्तृत विश्लेषण करते हुये वे यह सवाल उठाते है कि क्या इन दोषो से हम मुक्त हो सकते है ? जाति व्यवस्था नष्ट कैसे की जा सकती है जाति व्यवस्था नष्ट करने के लिये सर्वप्रथम उपजातिया नष्ट करनी चाहिये, ऐसी एक धारणा है । यह धारणा कैसे गलत है इसे वे स्पष्ट करते है । उपजातिया नष्ट करने के इस प्रयत्न में जातियां अधिक मजबूत और शक्तिशाली बनेंगी इसे वे सप्रमाण सिद्ध करते हैं । कुछ लोग अन्तर्जातीय सहभोजन की कल्पना रखते हैं उनके अनुसार यह उपाय भी अधूरा है ।[20]

अन्तर्जातीय विवाह, यही एक मात्र उपाय जाति व्यवस्था तोडने के लिये है, ऐसा वे सुझाते हैं। रक्त सम्बन्धो के कारण ही आत्मीयता की भावना तैयार होती है । इसी कारण अन्तर्जातीय विवाह अधिकाधिक होते जाये तो जाति के बन्धन कमजोर हो जायेगे। एक दूसरे के प्रति अधिक आत्मीयता तैयार होती जायेगी। जाति व्यवस्था मनुष्य निर्मित है वह नष्ट की जा सकती है । जाति एक काल्पनिक व्यवस्था है। एक मानसिक वृत्ति है । किसी की मानसिकता को बदलना आसान काम नहीं है । हिन्दू जाति का पालन करते हैं इसका एकमात्र कारण कि हिन्दू मूलत धार्मिक हैं जाति को धार्मिकता से जोडा गया है । मूल धर्म ने ही एक गलत अमानवीय व्यवस्था का समर्थन किया हैं । शास्त्रों की हसी उड़ाकर यह व्यवस्था खत्म होने वाली नहीं है । इसके विरोध मे प्रखर बुद्धिवाद और समतावादी समाज रचना के प्रति प्रतिबद्धता की नितान्त आवश्यकता है । जाति और वर्ण अधिष्ठित लोगो के आचरण के मूल मे हजारो वर्षो से चली आई श्रद्धायें हैं । समर्थन करने वाला शास्त्र है इस कारण वो शास्त्र और परम्परा पर टूट पडना और उन परम्परा के विश्वासो को खत्म कर देना जरूरी है। अंतर्जातीय विवाह का नारा लगाकर काम नही होगा । शास्त्रो का खन्डन करना होगा । शास्त्रो की केवल नई व्यवस्था से बात नहीं बनने वाली है। शास्त्रों को पूर्णत नकारना और उनकी पवित्रता को भी अमान्य करना जरूरी है । उनकी इसी मान्यता के कारण आर्य समाजी रूठ गये थे। आर्यसमाजी वेदो की श्रेष्ठता को त्यागने को तैयार ही नहीं थे । जन्म आधारित वर्णव्यवस्था के स्थान पर कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था में उनका विश्वास था । आर्य समाज व्यक्ति के कार्यो को उच्च व निम्न श्रेणी में रखता है। इस पर उन्होंने कहा कि जब–जब आदर्श और काल्पनिक वर्ण व्यवस्था का प्रचार करते है। तब तब जातियो से चिपककर जीने का एक बहुत बडा आधार जनसामान्य को मिल जाता है । इस कारण वर्ण व्यवस्था की काल्पनिक उपयोगिता कासमर्थन कर आप (आर्य समाजी) सामाजिक सुधार का बहुत बडा नुकसान करने जा रहे है । वर्ण व्यवस्था की जडो पर ही आघात करने की आवश्यकता है । जब तक जडे तोडी नहीं जायेगी तब तक अस्पृश्यता की मानसिकता समाप्त नहीं हो

सकती । अस्पृश्यता और जाति भेद नष्ट करने के लिये शास्त्रो से आधार ढूढने का प्रयत्न वास्तव में कीचड से कीचड साफ करने का हास्यास्पद प्रयत्न है ।[21]

इस सम्पूर्ण आलेख मे अम्बेडकर ने अन्तर्जातीय विवाहो का खुला प्रतिपादन किया है । गाधी जी इसी बिन्दु पर अम्बेडकर से असहमत थे । गाधी जी वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते दिखते हैं । जातिप्रथा के सम्बन्ध मे मैने बहुत विचार किया है और मुझे ऐसा जान पडता है कि हिन्दू जातियों का काम जातियों के बिना नही चलेगा वह तो जाति बन्धन पर ही टिका हुआ है ।[22] गाधी जी के इस प्रकार के कथन अम्बेडकर को मनुवादी ब्राह्मणवादी व्यवस्था को ढोये रखने के प्रयास लगते थे और उनके तन मन मे आग लग जाती थी । लेकिन यहा विशेष बात है कि अम्बेडकर को गाधी जी के मन्तव्यो की ऊची भावना पकड मे न आती थी और वे प्राय अर्थ का अनर्थ कर जाते थे । **वेद ब्राह्मण गाय और राम** गाधी की अपनी व्याख्या है ऐसे ही जाति, वर्ग, कुल पर गांधी एक खास ढग से सोचते है और पूरा चिन्तन हिन्दू धर्म मे सनातन धर्म प्रवाह की आवाज उठाता है मूलत यह चिन्तन स्वराज्य तथा सामाजिक गठन से जुडा हुआ है ।[23]

गाधी जी ने स्वराज्य को जाति प्रथा से जोडते हुयें कहा "मेरे ख्याल से हिन्दू समाज रूपी इमारत जो अब तक खडी रह सकी है , इसका कारण जाति प्रथा की नींव पर उसका रचा जाना है , सर विलियम हन्टर ने अपनी पुस्तक "भारत का इतिहास" मे लिखा है कि हमे भारत में जातिप्रथा प्रचलित होने से ही (निर्धनों का कानून) पापर्सला नहीं बनाना पडा है । यह विचार मुझे ठीक जान पडता है । जातिप्रथा मे स्वराज के बीज निहित हैं । भिन्न जातियां सेना के डिवीजनों की भाति हैं । सेनानायक प्रत्येक सैनिक को नहीं पहचानता, पर उस डिवीजन के मुख्य अधिकारी के द्वारा वह उससे काम लेता है। इसी प्रकार जाति प्रथा को साधन बनाकर हम समाज सुधार का कार्य सुगमता से कर सकते हैं और अपने धार्मिक व्यवहारिक नैतिक और राजनीतिक चक्रो को जिस प्रकार चाहे

परिवर्तित कर सकते हैं । जातिप्रथा नितान्त स्वाभाविक प्रथा है । इस देश मे उसे धार्मिक स्वरूप दे दिया गया है, अन्य देशों में इसकी उपयोगिता अच्छी तरह ध्यान मे नहीं आई, इससे वहा उक्त प्रथा का स्थूल रूप ही कायम रहा फलत उससे अधिक लाभ नहीं पहुचा । मेरे ऐसे विचारो के कारण जातिप्रथा का मूलोच्छेद करने के लिये जो प्रयत्न किया जा रहा है, उसका मै विरोधी हूं ।[24]

गाधी जी कहते थे –समस्त ससार की रचना ही जाति व्यवस्था अथवा वर्ग व्यवस्था पर हुयी है । हमारी व्यवस्था सयम के उद्देश्य से अर्थात त्याग वृत्ति से स्थापित की गई है पश्चिम की वर्ण व्यवस्था और हमारी वर्ण व्यवस्था में भेद है फिर भी सर्वत्र वर्ण व्यवस्था तो है ही । जब तक मनुष्य मे आसुरी वृत्ति और दैवी वृत्ति विद्यमान है तब तक जातिभेद रहेगा इस रचना का उन्मूलन करके एक जाति बनाने का प्रयत्न व्यर्थ है । जातिया भी जन्मती और मरती है । श्री **लावल** ने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि हिन्दुओ में जातिया जन्मी और मरी हैं । इतना ही नहीं बल्कि बाहर से भी लोग हिन्दुओं मे आये हैं फिर भी हिन्दुओं ने उन्हें इसाइयों की तरह हिन्दू बनाया है । ऐसा देखने मे नही आया ।[25]

गाधी भारतीय वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं पर बाबा साहेब घोर विरोधी । बाबा साहेब ने **जातिप्रथा उन्मूलन** शीर्षक अपने लेख मे लिखा "मेरे लिये यह चातुर्वर्ण्य जिसमे पुराने नाम जारी रखे गये हैं, घिनौनी वस्तु है, जिससे मेरा व्यक्तित्व विद्रोह करता है लेकिन मै यह नही चाहता कि मै केवल भावनाओं के आधार पर चातुर्वर्ण्य के प्रति आपत्ति करू । इसका विरोध करने के लिये मेरे पास अधिक ठोस कारण है इस आदर्श की अच्छी तरह जाच–परख के बाद मुझे पूरी तरह विश्वास हो गया है कि चातुर्वर्ण्य सामाजिक संगठन प्रणाली के रूप में अव्यावहारिक घातक और अत्यन्त असफल रहा है । व्यावहारिक दृष्टि से भी चातुर्वर्ण्य से ऐसी अनेक कठिनाइया उत्पन्न होती है जिन पर इसके समर्थकों ने

ध्यान नही दिया । जाति का आधारभूत सिद्धान्त वर्ण के आधार भूत सिद्धान्त से भिन्न है न केवल मूलरूप से भिन्न है बल्कि मूलरूप से परस्पर विरोधी है ।[26]

गाधी जी ने एक पत्र मे सी एफ एन्ड्रूज को लिखा – जाति व्यवस्था सम्बन्धी अपने विचारो से मै तुम्हे परेशान नही करूगा इस मामले मे मेरी नैतिक स्थिति के सम्बन्ध मे तुम्हे चिन्ता नही होनी चाहिये । मेरे दुष्टिकोण को तुमने ठीक से नही समझा, मेरे मन मे ऐसा, ख्याल आता है कि हिन्दू धर्म भले ही अधर्मता की कोटि को इस समय प्राप्त हो गया हो फिर भी हिन्दुत्व के सर्वागपूर्ण सिद्धान्तो की भव्यता अभी तक तुम्हारी समझ मे नही आई है ।[27] फिर यग इन्डिया के एक निबन्ध मे लिखा "जाति बनाम वर्ग" और स्पष्ट किया कि भारत ने सामाजिक सगठन के लिये जाति व्यवस्था विकसित की है और यूरोप ने वर्ग व्यवस्था । कौन नही जानता जाति व्यवस्था से अधिक बुराईयो को जन्म वर्ग व्यवस्था ने दिया है ।[28] जाति प्रथा की खूबी इस बात मे है कि इसका आधार धन नहीं है इतिहास साक्षी है कि दुनिया में पैसा सबसे बडी विघटनकारी शक्ति है। शकराचार्य कह गये है कि धन की कलुषता पारिवारिक सम्बन्धों की पवित्रता को भी सुरक्षित नहीं रहने देती । जाति प्रथा परिवार के सम्बन्धो का विस्तार मात्र है मानव समाज की इससे अधिक सामजस्यपर्ण किसी व्यवस्था की कल्पना करना कठिन है ।[29]

जाति प्रथा को सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, राजनैतिक संगठनों के लिये महत्वपूर्ण मानते हुये भी गाधी जी उसकी बुराइयो से बेखबर नही हो जाते । **नवजीवन** मे उन्होने लिखा कि "जिस समाज क अगुआ बिना बिचारे केवल मोह, भ्रम अज्ञान या ईर्ष्या से प्रेरित होकर व्यक्तियो का बहिष्कार करते हैं, उस समाज में रहने के बनिस्बत उसके द्वारा हमारा त्याग दिया जाना ही ईष्ट है । जातीय बहिष्कार को सहना नरक पीडा को झेलने से कम नहीं है जो अपनी कम उम्र की विधवा कन्या का पुनर्विवाह करने का साहस करता है उसे जाति से बहिष्कृत करना इस सजा का अनैतिक उपयोग है ।[30]

डा0 अम्बेडकर स्वय वर्ण धर्म सिद्धान्त को लेकर चक्कर खाते दिखाई देते है वे मान जाते है कि वर्ण सिद्धान्त मूलत जाति सिद्धान्त से भिन्न है, बल्कि मूलरूप से परस्पर विरोधी है पहला सिद्धान्त गुण पर केन्द्रित है, मगर यदि कोई व्यक्ति गुण के आधार पर नही जन्म के आधार पर ऊची हैसियत प्राप्त कर गया हो तो आप क्या करेगें? उसे कैसे झेलेगे ? इसका उत्तर यही है कि आप को जाति प्रथा का उन्मूलन करना पडेगा। प्लेटो ने भी लोगो को प्रकृति के आधार पर तीन भागों में बाटा था, पर हुआ क्या? वे असफल रहे ।ऐसे ही अम्बेडकर का विचार है कि चातुर्वर्ण्य सिद्धान्त मानव प्रकृति के प्रतिकूल है, वह चल नहीं सकता । चाहे उसे पालन कराने के लिये दन्ड विधान की नीति को ही क्यो न अपनाया जाये राम ने रामायण मे चातुर्वर्ज्य के पालन के लिये दन्डनीति को अपनाया और शाम्बूक का वध किया ।[31]

डा0 अम्बेडकर ने ऐसे मानव समाज की स्थापना की चेष्टा की थी जो समता, स्वतत्रता और भ्रातृत्व भावना पर खडा हो और जिसकी नीव त्याग, बलिदान, समर्पण, सत्य, अहिंसा और प्यार पर रखी गयी हो ।
यदि किसी समाज मे ऐसा नही है तो वह समाज कैसे हो सकता है ? समाज तो मानवकृत है और उसने उसे सबकी सुविधा और विकास के लिये बनाया है । जिस समाज मे सब सुखी नही वह समाज कितना सार्थक होगा, हिन्दू समाज उसका ज्वलन्त उदाहरण है वे अवर्णो की चीत्कार से फट पडे थे उनका हदय आकोश से भर उठा था वे कहने लगे थे कि तुम्हारे मुखमडल की दयनीय दशा देखकर और तुम्हारी हिमपाती निराशामयी आवाज सुनकर मेरा हदय विदीर्ण हो उठा है कितने समय से तुम अत्याचारों की चक्की मे पिसते आ रहे हो और फिर भी तुममे साहसहीनता और अन्धविश्वास त्यागने का विचार पैदा नही होता है तुम लोग जन्म लेते ही क्यो नही मर जाते तुम अपने दयनीय घृणित और उपेक्षित जीवन से धरती का बोझ क्यो बढाते हो ? यदि तुम नवजीवन नही अपना सकते और अपनी स्थिति

नहीं बदल सकते तो इस जीने से मरना कही बेहतर है यकीनन भोजन वस्त्र और आवास प्राप्त करना तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है यदि तुम ससम्मान जीना चाहते हो तो तुम्हे आत्मसहायता पर विश्वास करना चाहिये क्योकि वही सर्वोपरि सहायता है । वे आत्मविश्वास स्वावलम्बन और स्वप्रयत्न पर विशेष जोर देते हैं उनका एक एक शब्द वेदनामय और प्रखरता युक्त होता था ।[32]

अम्बेडकर का निर्णय है कि "हिन्दू हिन्दुस्तान के रोगी हैं । अगर हिन्दू समाज एकवर्णी समाज बनेगा तो ही उसमे उपनी रक्षा करने की शक्ति का निर्माण होगा । इस आन्तरिक शक्ति के अभाव मे स्वराज्य हिन्दुओं की स्वतंत्रता की सीढी न बनकर गुलामी की एक सीढी सिद्ध होगा ।" उन्होने यह भी कहा था कि जाति पाति भजक मण्डल का कार्य राष्ट्रीय हितवाद होने से उसे सफलता प्राप्त हो कुछ इसी तरह के विचार अम्बेडकर से पूर्व राष्ट्र मनीषियों ने दिया था यथा लाला हरदयाल कहते है कि "जाति व्यवस्था भारत के लिये एक शाप है । हिन्दुस्तान का विनाश न मुस्लिम धर्म ने किया है न इग्लैण्ड ने, हमारा दूश्मन हममे ही निवास कर रहा है ब्राह्मणवाद और जातिभेद ने हमारा विनाश किया है । जब तक हम जाति भेद का पालन करते है तब तक भारत में स्वतत्र राज्य स्थापित करना या उसे स्थायी रूप देना असम्भव है । आप व्याख्यान दे, प्रस्ताव पारित करे,, दीर्घकाल तक राष्ट्रकुल विधेयक पर समति दर्शक हस्ताक्षर करते रहे । जाति भेद की वजह से हिन्दू कोई काम एक होकर नही कर सकते यहा तक कि एक विजयी सेना का निर्माण भी नहीं कर सकते हैं । भारत के महान इतिहासकारो, समाज शास्त्राज्ञों विचारकों और समाज सुधारकों ने यह निर्णय दिया है कि जाति भेद की वजह से हिदुओ का विनाश हुआ है ।[33] यूरोपियन लोग वश का अभिमान रखते हैं । मुसलमान अपने धर्म का और हिन्दू अपनी जातियो का अभिमान रखते हैं ऐसा जो कुछ आलोचक कहते है वह झूठ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता ।[34]

अम्बेडकर निरन्तर वर्ण व्यवस्था की समस्या पर विचार मन्थन करते हैं । यह मान भी लिया जाये कि चातुर्वर्ण्य व्यावहारिक है फिर भी मै यह निश्चयपूर्वक कहूंगा

कि यह एक बहुत ही दोषपूर्ण व्यवस्था है कि –ब्राह्मण द्वारा विद्या का संवर्धन किया जाना चाहिये, वैश्य को व्यापार करना चाहिये और शूद्र को सेवा करनी चाहये। यद्यपि यह एक श्रम विभाजन ही था क्या इस सिद्धान्त का उद्देश्य यह था कि शूद्र को धन सम्पत्ति आदि अर्जित ही नहीं करनी चाहिये। यह बहुत ही दिलचस्प प्रश्न है। चातुर्णर्ण्य के समर्थक इसका पहला अर्थ यह निकालते है कि शूद्र को धन सम्पत्ति आदि अर्जित करने का कष्ट क्यो उठाना चाहिये, जबकि तीनो वर्ण उसकी सहायता को मौजूद है। यदि शूद्र को लिखने पढने की जरूरत होगी तो वह ब्राह्मण के पास जा सकता है। शूद्र को शस्त्र धारण की चिन्ता क्यों करनी चाहिये जबकि क्षत्रिय मौजूद हैं। इस अर्थ में समझे गये चातर्वर्ण्य सिद्धान्त के अनुसार कहा जा सकता है कि शूद्र एक आश्रित व्यक्ति है और तीनों वर्ण उसके सरक्षक।[35]

यदि ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपने कर्तव्य का पालन न करें तब शूद्र का क्या होगा और यदि तीनों वर्ण मिलकर उसे दबाते है तब उसकी रक्षा कौन करेगा? इसका उत्तर बाबा साहेब यो देते है। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को मिलनी चाहिये, रक्षा के साधन सभी लोगों के पास होने चाहिये, प्रत्येक व्यक्ति के आत्मपरीक्षण के लिये ये परम आवश्यकताये है किसी अशिक्षित और निरस्त्र व्यक्ति को उस व्यक्ति से क्या सहायता मिल सकती है कि उसका पडोसी शिक्षित और सशस्त्र है? अत यह सम्पूर्ण सिद्धान्त बेतुका है। जिससे चातुर्वर्ण्य के समर्थक चिंतित नही होते लेकिन यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।[36] इस चातर्वर्ण्य सिद्धान्त चिन्तन मे गहराई से डूबने पर अम्बेडकर सरक्षक और आश्रित की अटूट परम्परा का समर्थन करते पाते है सरक्षक और आश्रित की यह पूरी सकल्पना उन्हें मनुवादी व्यवस्था के समर्थन की ध्वनि प्रतीत होती है।[37]

वर्ण व्यवस्था की आन्तरिक ध्वनि को अपने ढंग से समझते हुये उन्होने कहा –"इसमे कोई सन्देह नही है कि व्यवहार मे यह सम्बन्ध वस्तुत मालिक और नौकर का था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के आपसी सम्बन्ध भी सन्तोषजनक नहीं

थे फिर भी वे मिलकर कार्य करने मे सफल हुये ब्राह्मण ने क्षत्रियो की खुशामद की और दानो ने वैश्य को जीवित रहने दिया ताकि वे उसके सहारे जीवित रह सके लेकिन तीनो शूद्र को पद दलित करने के लिये सहमत हो गये । उसे धन सम्पत्ति अर्जित करने की अनुभूति नही दी गयी क्योकि कहीं ऐसा न हो कि वह तीनो वर्गो पर निर्भर ही न रहे उसे विद्या प्राप्त करने से रोका गया कि कही ऐसा न हो कि वह अपने हितो के प्रति सजग हो जाये उसके लिये शस्त्र धारण करना निषिद्ध था कि कहीं ऐसा न हो कि वह उनकी सत्ता के विरूद्ध विद्रोह करने का साधन प्राप्त कर ले । तीनो वर्ण शूद्रो के प्रति ऐसा ही व्यवहार करते थे इसका प्रमाण मनु के कानून मे मिलता है । सामाजिक अधिकारों के सम्बन्ध में मनु के कानून से ज्यादा बदनाम और कोई विधि सहिता नही है । सामाजिक अन्याय के सम्बन्ध में कहीं से भी लिया गया कोई उदाहरण मनु के कानून के समक्ष फीका पड जाता है ।[38]

डा0 अम्बेडकर अपने सम्पूर्ण विवेचन मे यह सिद्ध करते है कि – हमारे चिन्तन का मूलाधार "मनुष्य" होना चाहिये इस मनुष्य को उसके मानवीय अधिकार उपलब्ध करा देना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है, शास्त्रो ने मानवीय अधिकार ही छीन लिये । इसलिये उनको नकारना जरूरी है अम्बेडकर ने एक बार कहा कि मैं तुम्हे बताता हूँ, धर्म मनुष्य के लिये है, मनुष्य धर्म के लिये नही ।

डा0 अम्बेडकर का यह सुदृढ मत था कि जब तक अछूत हिन्दू समाज में बना रहेगा तब तक उसका जीवन स्तर नही सुधरेगा और वह निरन्तर शोषित, अपमानित और अकिचन बना रहेगा उसका भाग्य कभी नहीं बदलेगा कोई भी उसे आर्थिक प्रलोभन देकर अपने धर्म मे परिवर्तित कर लेगा , इसका परिणाम यह होगा कि हिन्दू समाज मे कभी भी क्रान्ति नहीं हो सकेगी । निरन्तर रूढान्धता की खोह में पड़ा–पड़ा सडता जायेगा हिन्दू समाज मे रहना है तो उसमे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये बिना जीवन स्तर नही सुधारा जा सकेगा । अछूतो की आर्थिक स्थिति दिन प्रति दिन गिरती जा रही है उसके पास सामाजिक सौहार्द्र सहजीवन की पकड़ और

प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं है । फिर भी वह हिन्दू समाज की इकाई कैसे बना हुआ है । सामाजिक सम्मान प्राप्त किये बिना कोई वर्ग किसी समाज में सम्मान से नहीं रह सकता, यह सब सामाजिक क्रान्ति लाये बिना सम्भव नहीं है ।[39]

डा0 अम्बेडकर ने सिद्ध किया कि हिन्दू शब्द देशवाचक नहीं है यह जातिवाचक है । वह सिन्धु शब्द से नही बना है वह तो **हिंसया यो दूष्यति बन्धानां मनान्सि जात्यहंकारम् वृत्तना सतत सो हिन्दु:** से बना है । जो जाति को अहकार के कारण हमेशा अपने पडोसी या इस धर्म के अनुयायी का अनादर करता है वह हिन्दू है । हिसा से "हि" और दूषयति से "दू" शब्द को मिलाकर हिन्दू शब्द बना है । परिणामत हिन्दू शब्द के स्थान पर भारत का प्रयोग किया वस्तुत ऐसा है नहीं । डा0 अम्बेडकर के मन मे हिन्दू और उसके नियमोपनियम के प्रति गहरी आस्थाहीनता बैठ चुकी थी । यही कारण है कि वे हिन्दू समाज मे कोई भी अच्छाई नहीं देख सके, हालाकि उस समय उनको अस्तित्व के लिये दुर्धर्ष संघर्ष करना पड़ रहा था और हिदू समाज भी डा0 अम्बेडकर पर असोचे वार पर वार करता जा रहा था । उसने भी डा0 अम्बेडकर की मानवोचित और लाभप्रद बातो को नही सुना और बराबर अडा रहा । देखा जाये तो डा0 अम्बेडकर बराबर इसी प्रयत्न मे रहे थें कि हिदू समाज को गहन अन्धकारो से मुक्त कर एक सर्वथा नवीन पृष्ठभूमि में स्थापित करे और उसमे नवजीवन का मुक्त सचार होने दे ।[40]

1940 मे डा0 अम्बेडकर की एक पुस्तक **थाट्स आन पाकिस्तान** प्रकाशित हुयी इस पुस्तक के माध्यम से मुसलमानों के सम्बन्ध में उनके विचारों को हम जान सकते हैं मुसलमानो के प्रति उनकी आवधारणाये है और आश्चर्य की बात है कि ये धारणायें है और आश्चर्य की बात यह कि ये धारणायें कट्टर हिन्दूवादियों की तरह ही है । मुसलमान एक राष्ट्र है । इस देश पर जिनकी निष्ठायें सशय से भरी हुयी हैं उन मुसलमानो को हिन्दुस्तान में रहने की अपेक्षा हिन्दुस्तान के बाहर चले जाना अधिक अच्छा है ।[41] भीतरी भागों की अपेक्षा इन धर्मों के लोग अलग–अलग हिस्सों

मे चले जाये ऐसा वे कहते हैं । पाकिस्तान का समर्थन करते हुये उन्होने कहा है देश विभाजन हमें मान्य करना चाहिए । केवल मान्य ही नहीं अपितु आगे के दंगों को रोकने के लिए हिन्दू मुसलमानो की जनसख्या की अदला बदली भी होनी चहिए ।[42]

पूरी निर्भीकता के साथ उन्होने इस्लाम की प्रतिगामिता को स्पष्ट किया है मुसलमानों की मानसिकता जनतन्त्र के अनुकूल नहीं है, उनकी राजनीति मुख्यत धर्म पर आधारित होती है । मुसलमान समाज सुधार के विरोध मे होते हैं । उन्हे अपना धर्म वैश्विक धर्म लगता है अपने धर्म के प्रति उनमें अहकार है। वे अपने धर्म को शाश्वत मानते है । इस्लाम के जिस बन्धुभाव की प्रसशा की जाती है । वह वास्तव मे सर्वव्यापक और शाश्वत नहीं है । उनका बन्धुत्व उनके धर्मावलम्बियो तक ही सीमित है। अन्य धर्मियो के प्रति इनमे तिरस्कार होता है। उनकी राजनिष्ठा भी उनकी धर्म निष्ठा से जुडी होती हैं । इसे स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं कि मुसलमानों में अब (1940) एक नई चेतना विकसित हो रही है, उन्हे स्वतन्त राष्ट्र दे देना चाहिये । अखण्ड हिन्दुस्तान कभी भी सेन्द्रिय और एकजीवी नहीं हो सकता ।[43]

डा अम्बेडकर हिन्दू समाज मे बने रहकर अछूत समाज या वर्ण को सम्मान सहित बराबरी का अधिकार दिलाना चाहते थे । किसी समाज का प्रत्येक व्यक्ति बराबरी का हकदार है; यह मामूली सी बात सवर्ण समाज के दिमाग मे क्यो नहीं बैठ रही थी। आश्चर्य तो यह सोचते हुये हो रहा है कि हिन्दू समाज ब्रिटिश सरकार से मुक्ति पाने के लिए सघर्ष कर रहा था । उसके सामने अपने अस्तित्व तथा जिजीविषा का प्रश्न था । वह अंग्रेजो की दासता से मुक्ति चाहता था । वह राजाओं के राजतन्त्र को भी नमस्कार करना चाहता था । उसकी दृष्टि मे गुलामी अभिशाप है और उससे घृणित अपमान किसी जाति का नहीं हो सकता था। सर्घर्षशील और स्वाधीनता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानने वाला समाज अपने

ही भाईयो को गुलाम बनाये रखने के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयास करता जा रहा था और उनके शोषण को कायम रखना चाहता था । आखिर उसका ऐसा दोहरा चरित्र क्यो ? वह क्यो अछूतो को सम्मान से जीने का हक नहीं देना चाहता था । एक समाज मे सभी मनुष्य समान है । वह समाज ही इसलिये बना है, उसका उदि्दश्ट भी यही है कि सभी मिल जुलकर सम्मान जीवनयापन की दिशा मे अग्रोन्मुख हो ।[44]

गाधी जी के "हरिजन" विशिष्ट परिभाषिक शब्द से अम्बेडकर को अनेको आपत्तिया थी, जिसके मुख्य विन्दु इस प्रकार हैं –

1 क्या अछूत हरिजन हो जाने से अछूत नहीं रहेगा।
2 क्या वह मैला नही उठायेगा या झाडू नहीं लगायेगा ?
3 क्या इससे अन्य वर्ण वाले उसे गले से लगा सकेगे ?
4 क्या उसे हिदू समाजं अछूत न समझकर सवर्ण जैसा मान लेगा?
5 क्या इससे उसे सामाजिक समता का अधिकार मिल सकेगा?[45]

"यदि नहीं तो फिर हरिजन की चक्रव्यूह रचना क्यों ? जिस मार्ग से अछूतो का आत्मसम्मान नहीं लौट सके, उस मार्ग से क्या लाभ ? हरिजन तो हर एक है लेकिन गाधी जी ने हरिजन को भी भगी बनाकर ही दम लिया । हरिजन का अर्थ हो गया मेहतर या भगी । यह कैसी सामाजिक क्रान्ति ? सोच का यह फरेब कैसा ? वे तो आयरलैण्ड के देशभक्त **डेनियल कौनल** के शब्दो को दोहरा रहे थें कि कोई मनुष्य अपमानित होकर धन्यवाद नहीं दे सकता, कोई नारी अपना शील भंग हो जाने पर धन्यवाद नही दे सकती और कोई राष्ट्र अपनी स्वाधीनता खोकर धन्यवाद नहीं कर सकता फिर अछूत हरिजन के वज्र से अपमानित होकर कैसे गांधी जी का धन्यवाद अदा कर सकता था ।

जातियो की वजह से शुद्धि अन्दोलन व्यर्थ ठहरता है, क्योंकि शुद्ध होकर हिन्दू धर्म मे आये मनुष्य की जाति नही होती । इसलिये जाति और विशुद्धि विसगत है जाति व्यवस्था ने हिन्दू धर्मप्रसार की प्रवृत्ति ही मार डाली है पहले हिंदु धर्म धर्मप्रसार का कार्य करता था । जहा जाति है वहा शुद्धि नहीं, जब तक संगठन नहीं, जब तक हिन्दू दीन और दुर्बल है तब तक वे अपमान और अन्याय चुपचाप सहते रहेगे । उन्होने आदिवासी लोगो को उनकी मूल जगली अवस्था मे रखा और अगर अहिन्दुओ ने उन्हे अपने समूह मे खीचा तो हिंदूओं के दुश्मनों की संख्या बढ जायेगी और अगर ऐसा हुआ तो हिन्दुओ को अपनी जाति व्यवस्था और खुद को ही दोष देना पडेगा ।[47]

विश्व मे केवल हिन्दू ही ऐसी जाति है जिसने समाज व्यवस्था का यानी मानव–मानव के आपसी सम्बन्ध का धर्म द्वारा पवित्रीकरण करके उसे पवित्र, शाश्वत और अलध्य बना दिया । विश्व मे केवल हिदुओ की ही एक ऐसी जाति है जिसने अर्थ व्यवस्था का यानी कामगारो के आपसी सम्बध का धर्म द्वारा पवित्रीकरण करके उसे पवित्र शाश्वत और अलध्य बना दिया ।[48]

धर्मान्तरण को लेकर अम्बेडकर की बडी बेबाकराय थी महार जाति की 30 और 31 मई को दादर मे बुलाये गये सम्मेलन मे डा0 अम्बेडकर ने कहा कि जब तक अस्पृश्य वर्ग हिन्दू समाज मे समाविष्ट है, तब तक उसकी उन्नति नहीं होगी, सच्ची स्वतत्रता प्राप्त करने के लिये उनको हिन्दू समाज त्याग देना चाहिये इससे उन्हे कपडे बनाना खाना पीना, नौकरी करना, शिक्षा लेना, सुसस्कृत समाज में रहना आदि की स्वतत्रता मिल जायेगी । आगे कहा कि तुम्हारे पास गंवाने के लिये कुछ भी नहीं है, तुम सिर्फ अपनी बेडियों को ही गवांनें वाले हो । धर्मान्तरण से तुम्हें अनेक लाभ होने वाले है सामाजिक दृष्टि से धर्मान्तरण की समस्या की ओर देखा जाये तो यह सघर्ष ऊपरी तौर से भले ही सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने की दिखाई पड़े तो भी वह प्राय वर्गीय संघर्ष ही है हक दार और बेरोजगार में जो निरन्तर

सघर्ष चल रहा है वरिष्ठो का जुल्म उसका एक हिस्सा है ही ।[49] सघर्ष फलदायक करने के लिये आवश्यक तीन शक्तियो की अस्पृश्यों में कमी हैं वे शक्तियां है मनुष्य शक्ति, द्रव्य शक्ति और बौद्धिक शक्ति ये तीनो शक्तियॉ जब तक तुम हिन्दू समाज मे रहोगे तब तक तुम्हे प्राप्त नहीं हो सकेगे ।[50]

डा0 अम्बेडकर ने हिंदू समाज सुधारको के बारे में अपना अभिप्राय वडी निर्भीकता से व्यक्त किया । उन्होने यह भी कहा कि "हिंदू समाज सुधारक जाति में जीवन व्यतीत करते हैं, जाति मे विवाह करते है ओर जाति में मरते हैं । गाधी जी भी अस्पृश्यों की ओर से स्पृश्य हिन्दुओं की ओर से स्पृश्य हिन्दुओं से संघर्ष नहीं कर सकते । कुछ लोग कहते है धर्मान्तरण करने से तुम्हे क्या लाभ होने वाला है उसका उत्तर है कि स्वराज से भरत को क्या लाभ होगा ? हिन्दुस्तान को जितनी स्वराज्य की आवश्यकता है उतनी ही अस्पृश्यो को धर्मान्तरण की । धर्मान्तरण और स्वराज का अन्तिम प्रयोजन है स्वतन्त्रता प्राप्ति ।"[51]

मुस्लिमो के विषय मे भी डा0 अम्बेडकर बहुत ही बेबाक राय रखते थे । विभाजन के बाद पाकिस्तान में जब हिन्दुओं पर अत्याचार आरम्भ हुये तब उन्होने दलितो को हिदुस्तान लौटने को कहा, दलित बन्धुओं से आहवान करते हुये उन्होने कहा–"हैदराबाद सस्थान के मुसलमानो पर अथवा मुस्लिम लीग पर विश्वास रखने से दलित समाज को धोखा होगा हिंदू समाज दलितो की और तिरस्कार की दृष्टि से देखता है इसलिये मुसलमान अपने मित्र हैं, ऐसा दलित न मानें ऐसी धारणा उनके लिये घातक सिद्ध होगी ।[52]

हिदू कोड बिल की चर्चा में उन्होने जो विचार व्यक्त किये है उससे उनके स्त्री विषयक विचार स्पष्ट हो जाते हैं । हिन्दू कोड बिल वस्तुत स्त्री मुक्ति के लिये ही था । इस देश मे स्त्री को जो गौण स्थान दिया गया हे उसे नष्ट कर स्त्री भी एक मनुष्य है ऐसी मानसिकता विकसित होनी चाहिये ऐसा उनका प्रयत्न था ।

दलित और स्त्री उनके चिन्तन के दो प्रमुख केन्द्रविदु थे । दलितो के लिये सवैधानिक व्यवस्था करने के बाद वे स्त्रियो के लिये भी वैसी ही व्यवस्था करना चाह रहे थे । हिंदू कोडविल के अन्तर्गत स्त्री को विवाह तलाक, उत्तराधिकार ओर दत्तक विधान की स्वतत्रता वे देना चाह रहे थे । अन्तर्जातीय विवाह को कानूनी सरक्षण देने की उनकी इच्छा थी । जो परिवार अन्य जाति के लडके को दत्तक लेना चाहते है । उन्हे वे वैसी स्वतत्रता देना चाह रहे थे । अर्थात इस प्रकार की व्यवस्था से वे स्त्री को पुरूष के बराबर लाना चाह रहे थे । और ठीक इसी समय जाति प्रथा को नष्ट करने की कोशिश भी कर रहे थे ।(53)

सम्पूर्ण देश भर की जनता के लिये लागू होने वाले धर्मातीत ऐसे समान नागरी कानून के वे आग्रही प्रतिपादक थे । विवाह, तलाक या उत्तराधिकार का कानून बनाते समय धर्म का आधार ही क्यो लिया जाये ऐसा उनका प्रश्न था । ससद मे उन्होने कहा – समान नागरिक कानून होना चाहिये । हिंदू मुसलमान और ईसाई धर्म पर आधारित कानूनो में जहा मतभेद के मुद्दे हैं, उन्हें विचार पूर्वक हल करना चाहिये सबमे कुछ समानता के मुद्दे भी हैं । केवल मतभेदो के मुद्दों से बात नही बन सकती, समान नागरिक कानून हमारा अन्तिम उद्देश्य है ।(54)

अखिल भारतीय शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के 30 जनवरी 1945 को कानपुर के हुये अधिवेशन में भाषण देते हुये उन्होने यह स्पष्ट किया कि सामाजिक समता की इस लडाई मे दलितो को ही महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है । कमजोर वर्ग को सगठित होकर अपने अधिकार खुद ही प्राप्त करने चाहिये "मैं अस्पृश्य समाज को राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिये प्रयत्नशील हूँ । देश की स्वतंत्रता के लिये काम करने वाले बहुत से युवक हैं दलित युवकों का उद्धार उन्हें स्वय करना है दलितो के उद्धार से ही सचमुच का स्वराज्य सभव है । "(55)

शिक्षा सबधी उनके विचार बहुत ही स्पष्ट और सरकार की जिम्मेदारी की ओर सकेत करने वाले है । समाज के सबसे सामान्य शोषित और उपेक्षित व्यक्ति तक शिक्षा की सुविधाये पहुचनी चाहिये ऐसा उनका आग्रह था । परम्परा से नकारे गये वर्ग को उच्च शिक्षा हेतु अधिक खर्च न करना पडे ऐसी व्यवस्था वे चाहते थे । विश्वविद्यालय की भूमिका पर प्रकाश डालते हुये उन्होने कहा "स्नातक और छात्रों के पाठ्यक्रम द्वारा सास्कृतिक प्रगति करने के लिये महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयो को एकत्र होना जरूरी है ।"[56]

शिक्षा को वे दोधारी शस्त्र मानते हैं । चरित्रहीन और विनयहीन शिक्षित व्यक्ति पशु से भी अधिक भयकर होता है । सुशिक्षित मनुष्य का ज्ञान और उसकी शिक्षा जनहित के विरोध मे जा रही हो तो ऐसा व्यक्ति समाज के लिये शाप साबित होता है ।"[57]

अछूत मूलतः कौन थे और वे अस्पृश्य कैसे बनें नामक पुस्तक में डा० अम्बेडकर ने अछूतो की निर्मिति के संबंध मे उनकी संस्थापनाये मौलिक हैं । सस्थापनाओं का आधार उन्होंने वेद, उपनिषद, स्मृति, बौद्ध ग्रन्थ, धर्म शास्त्रों का इतिहास, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि का व्यापक और सूक्ष्म अध्ययन को बनाया जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत् थे –[58]

1 अछूत और सवर्ण में वशभेद नहीं हैं ।

2 पूर्व में यह अन्तर विजित और विजेता का था ।

3 वशभेद की भाति व्यवसाय भेद भी उसका आधार नहीं है ।

4 अस्पृश्यो की उत्पत्ति के दो कारण हैं ।

(अ) ब्राह्मण बौद्धों का जैसे तिरस्कार करते थे वैसा ही पराजितों के साथ भी करते थे ।

(ब) बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के कारण औरो ने गोमांस भक्षण त्याग दिया, परन्तु पराजित समूह गोमास भक्षण करता रहा ।

5 चाण्डाल और अस्पृश्य पर्यायवाची शब्द नहीं है ये भिन्न है ।

6 चाण्डालो का वर्ग धर्म सूत्र के काल खण्ड में हुआ परन्तु इसके कई वर्षो बाद करीब 400 ई0 मे अस्पृश्यो की निर्मिति हुयी ।

अस्पृश्य सारे देश मे गाव से बाहर क्यो रहते है ? इसके उत्तर मे वे कहते है कि – आदिम काल मे टोलियो मे सतत् लडाईया हुआ करती थी । ये टोलिया जब स्थाई समाज मे परिवर्तित हो गयीं तब अन्य स्थानों पर से विस्थापित टोलियों के लोग इनके यहा आये । तब इन्हे गाव के भीतर प्रवेश नहीं दिया गया । उन्हें गाव के बाहर ही रहना पडा । न केवल भारत में अपितु दुनिया के कई देशों में विस्थापितो को गाव के बाहर ही रूकना पडता था । आर्य द्रविणों के संघर्ष मे विजयी आर्यो ने द्रविणो को जीत लिया और उन्हे शूद्र बनाया । इसके पूर्व द्रविणों ने आदिवासियो को जीता था और उन्हे अस्पृश्य बनाया था । द्रविण और नाग इन दोनो को एक ही वश का सिद्ध करते है । बाद मे आर्यो ने नाग लोगो को विस्थापित कर दिया और उन्हे अस्पृश्य घोषित किया । मानव वंश शास्त्र के आधार पर वे यह स्पष्ट करते है कि विभिन्न वंशो सबधी निर्णय लेने का आधार अगर वाशिक शरीर रचना शास्त्र है तो उसके आधार पर अगर हम हिन्दू समाज की विभिन्न जातियो का मूल्याकन करे (सिर, ऑख, नासिका, ठुड्डी, रग, कद आदि) तो यह सिद्ध हो जायेगा कि अस्पृश्य आर्य और द्रविण वश एक दूसरे से कहीं पर भी भिन्न नहीं हैं । शरीर के विभिन्न अगो के मापन से यह सिद्ध होगा कि ब्राह्मण और अस्पृश्य एक ही वश के लोग हैं । अगर ब्राह्मण आर्य हैं तो अस्पृश्य भी आर्य हैं । अछूतो के प्रति सवर्णो मे जो तिरस्कार की भावना है उसके मूल कारणों की खोज करते हुये वे यह सिद्ध करते है कि – अछूत बौद्ध थे । शकराचार्य ने दार्शनिक स्तर पर जाकर जब हिन्दू धर्म की पुर्नस्थापना की तब समाज का बहुत बड़ा तबका सत्ता, शाक्ति और आतक के कारण हिन्दू धर्म मे लौटा परन्तु एक तबका ऐसा था जो बौद्ध धर्म छोडने को तैयार नही था । इन्हे ही तिरस्कृत कर अस्पृश्य बना दिया गया । यह षडयत्र ढाई हजार वर्ष पूर्व से आरम्भ हुआ था । [80]

मृत गाय का मास भक्षण और अस्पृश्यता मे गहरा सबध है । पूर्व में गोमांस भक्षण हिन्दू धर्म का अनिवार्य अग था परन्तु बौद्ध प्रभाव से ब्राह्मणों ने इसे छोड़ दिया । बौद्ध धर्म द्वारा पराजित हो जाने के कारण अपनी प्रतिष्ठा और सत्ता वापस पाने के लिये वे प्रयत्नशील थे । जनता के मन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव इतना गहरा था कि उसे रोकने के लिये बौद्ध धर्म के तत्वो को आत्मसात कर उन तत्वो के अत्याधिक प्रसार को रोकना सम्भव नहीं था । गोमास भक्षण त्याग करने के मूल मे ब्राह्मणो का उद्देश्य बौद्ध भिक्षुओ के वर्चस्व को छीन लेना था । इसी कारण उन्होंने गोमास भक्षण छोड दिया । परिणामस्वरूप अभी भी जो जातियां गोमांस भक्षण करती थी उनकी निन्दा उन्होने आरम्भ की ।[80]

गुप्त राजाओ ने चौथी शताब्दी मे गो हत्या के लिये मृत्यु दण्ड घोषित किया था । साधारणत इसी समय अस्पृश्य जाति का जन्म हुआ । इस प्रकार अस्पृश्यता का जन्म बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद के सघर्ष से हुआ है । इसी संघर्ष से भारत का इतिहास भरा पडा है ।[81]

* * * * * * * * * * *

इस प्रकार डा० अम्बेडकर के सामाजिक विचारों को प्रतिष्ठा मिली बाबासाहेब की सामाजिकता मे मानवता का समावेश है समाज का केन्द्र "मनुष्य" है वे किसी जाति, वर्ण, वर्ग, सघ के विरोध मे नहीं थे । वे ब्राह्मण या सवर्ण के विरोध मे नहीं थें । वे ब्राह्मणवाद के विरोधी थे । वे एक ऐसी समाज व्यवस्था के लिये प्रयत्नशील थे जहा मनुष्य–मनुष्य के प्रति आदर रखता है, जहा मनुष्य, मनुष्य के प्रति प्रेम बन्धुत्व और मानवीयता से जुड़ा हो जहा मनुष्य, मनुष्य का शोषण न करता हो । मनुष्य को उसके न्याय का हक दिला देने के लिये वे संघर्षरत थे । वे इतिहास के गम्भीर अध्ययन से समतावादी समाज रचना के लिये अवश्यक दर्शन और चिन्तन की अभिव्यक्ति वे कर रहे थे ।

डा0 अम्बेडकर भारतीय समाज व्यवस्था के विरूद्ध आजीवन सघर्षरत रहे अपने शोधप्रबन्धों मे उन्होने शूद्र उत्पत्ति, निवास आदि तथ्यों की नयी समीचीन व्याख्या की । डा0 अम्बेडकर भारतीय समाजव्यवस्था को विश्रृखलित करने का सर्वोत्तम उपाय अन्तर्जातीय विवाहो को मानते थे । उनका मानना था कि बिना अन्तर्जातीय विवाहो के पारम्परिक व्यवस्था का विश्रृखलित कर पाना असम्भव है । डा0 अम्बेडकर महात्मा बुद्ध और कबीर से प्रभावित थे । जिनके विचारों में जाति व्यवस्था का कोई स्थान न था । डा0 साहब आर्य समाजियों द्वारा रक्त शुद्धि आन्दोलन की प्रक्रिया से बहुत अधिक सन्तुष्ट न थें उन्होने भारतीय समाज को क्लासवार से रोकेने में एक बडी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया । उन्होने हिन्दू समाज पर ब्राह्मणवाद की कलुषित मशाओ का पर्दाफॉश कर उसके उदान्त व विमल चरित्र को पुर्नस्थपित करने का प्रयास किया ।

गाधी जी के विचारो से अम्बेडकर का मौलिक मतभेद था । गांधी जी जहां वर्ण रचना को स्थान देने के पक्ष मे थे वहीं अम्बेडकर वर्ण को जाति की पितृ सस्था मानते थे बिना वर्ण की समाप्ति के जाति का समाप्त होना उनके मत मे सम्भव न था । यद्यपि अम्बेडकर जाति व वर्ण सिद्धान्त को अलग मानते है लेकिन दोनो की समाप्ति को अनिवार्य मानते है। डा अम्बेडकर ने ऐसे समाज की परिकल्पना की है जो समता स्वतत्रता व भ्रातृत्व की भावना के आधार स्तम्भों पर टिका है । डा0 अम्बेडकर ने अपने तर्को द्वारा सिद्ध किया कि हिन्दू शब्द देश वाचक नहीं है बल्कि जाति वाचक है ।

डा0 अम्बेडकर धर्म परिवर्तन के हिमायती थे लेकिन वे किसी विदेशी धर्म के समर्थक न थे वे बौद्ध हो सकते थें अथवा सिख लेकिन इस्लाम व ईसाई धर्म के प्रति उन्होने कभी भी प्रेम व आकर्षण का प्रदर्शन नहीं किया । जब किया तब विकर्षण का प्रदर्शन ही किया । वे धर्म परिवर्तन मात्र धर्म के लिये नहीं करना चाहते थे अपितु मानवता के सम्पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति के लिये करना चाहते थे ।

धर्म के सहारे वे जाति को चुनौती देना चाहते थे । यदि हिन्दू धर्म स्वय ही जाति उन्मूलन कर देता तो कदाचित वे धर्म परिवर्तन से इनकार कर देते ।

अम्बेडकर ने अपने सामाजिक दर्शन मे स्त्रियो को दलितो के समक्ष स्थान प्रदान किया जिसका प्रमाण उनका हिदू कोडविल है शिक्षा आदि विषयों को भी वे मूलाधिकारों क रूप में रखने के पक्ष मे थे । शिक्षा को वे अति आवश्यक मानते थे उनका मानना था कि चरित्रहीन व विनयहीन व्यक्ति पशु के समान है ।

अछूतों और चान्डालो को भी उन्होने अलग से परिभाषित किया दोनों की व्युत्पत्ति की विशद् विवेचना की उनके गाव से बाहर के निवास की भी व्याख्या की इसका एक कारण उन्होने मृत गाय के मास भक्षण को माना था ।

अस्तु लगभग समाज के समस्त पक्षो पर डा0 अम्बेडकर ने अपनी बेबाक व स्पष्ट राय रखी थी । इसका समष्टि रूप मे प्रदर्शन भारतीय सविधान में देखा जा सकता है । इसी के कारण भारतीय सविधान दुनिया का सबसे विशालकाय सविधान का रूप धारण कर गया । भारतीय समाज का अत्यन्त जटिल होना और इसको विश्रृखलित कर नया रूप देना डा0 अम्बेडकर जिन्हे आधुनिक मनु भी कहा जाता हे के उर्वर व चिन्तनशील मस्तिष्क के बस की बात थी । अस्तु नवीन भारतीय सामाजिक सरचना डा0 अम्बेडकर की देन कही जा सकती है ।

विवरणिका

1 हिन्दू ची जातिप्रथा वतीमोन्डयाचा मार्ग – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर पृष्ठ – 14, गजेन्द्र रघुवशी, पूणें – 1989 ।

2 वही – पृष्ठ –14 ।

3 डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार –डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, पृष्ठ –24 – जगतराम एण्ड सन्स प्रकाशन ,नई दिल्ली 1994 ।

4 रानाडे गाधी एव जिन्ना– भीम पत्रिका – पृष्ठ – 111 – पूना ।

5 डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – कृष्ण दत्त पालीवाल – पृष्ठ – 46, किताबघर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

6 बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर –सम्पूर्ण वाड मय – पृष्ठ – 17 – कल्याण मत्रालय भारत सरकार – भाग एक ।

7 डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था –कृष्ण दत्त पालीवाल – पृष्ठ – 46 – किताघर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

8 वही आगे ।

9 सम्पूर्ण वाड मय – खण्ड एक – पृष्ठ – 18 –कल्याण मत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

10 डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – पृष्ठ – 47 डा0 कृष्ण दत्त पालीवाल – किताबघर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

11 वही आगे ।

12 बाड मय भाग एक–पृष्ठ–120 कल्याण मत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ।

13 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर –सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 67 –राधाकृष्ण प्रकाशन – 1998 नई दिल्ली ।

14 हिन्दू ची जाति प्रथा वतीमोन्डयाचामार्ग डा0 अम्बेडकर – पृष्ठ – 14 – गजेन्द्र रघुवशी – पूणे – 1989 ।

15 मधुलिमये – वी आर अम्बेडकर ए सोशल रिवोल्यूशनरी प्राइम मूवर्स रोल आफ इन्डिविजुअल इन हिस्ट्री नई दिल्ली – पृष्ठ – 181–293 – रेडियन्ट पब्लिकेशन ।

16 डा0 बाबा साहेब –डा0 सूर्यनारायण रणसुभे – पृष्ठ – 69 – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली 1998 ।

17 हिंदू ची जाति प्रथा वतीमोन्डयाचामार्ग – डा0 अम्बेडकर – पृष्ठ – 50 – गजेन्द्र रघुवशी – पूणे 1989 ।

18 डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर पृष्ठ – 25 जगतराम एण्ड सस – नई दिल्ली 1994 ।

19 वही आगे ।

20 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – सूर्य नारायण रणसुभे पृष्ठ – 71 राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

21 वही आगे ।

22 वाङमय – भाग – 13 – पृष्ठ – 280 – कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

23 डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – पृष्ठ – 48 – कृष्ण दत्त पालीवाल किताबघर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

24 वाङमय – भाग – 13 – पृष्ठ – 130 – कल्याण मत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

25 वाङमय भाग – 13 – पृष्ठ – 28 – कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

26 वाङमय भाग–1–पृष्ठ–80 – कल्याण मत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

27 वाङमय – भाग – 7 – पृष्ठ – 543–544 – कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

28 यग इण्डिया – 29.12–1920 अहामदाबाद ।

29 वाङमय भाग – 19 – पृष्ठ – 179 – 180– कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

30 नवजीवन 11–10–1925 ।

31 डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – कृष्ण दत्त पालीवाल – पेज – 51 किताघर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

32 डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – राजेन्द्र मोहन भटनागर – पृष्ठ – 27 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

33 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित – धनजय कीर – पृष्ठ – 260 – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

34 वही आगे ।

35 वाङ मय–भाग–1–पृष्ठ–84–कल्याण मत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

36 वही आगे ।

37 डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – कृष्ण दत्त पालीवाल – पृष्ठ – 52 किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली – 1996 ।

38 वाङ मय–भाग–1–पृष्ठ–85–कल्याण मत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ।

39 डा0अम्बेडकर चिन्तिन और विचार – राजेन्द्र मोहन भटनागर – पृष्ठ – 32 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

40 वही आगे ।

41 डा0 बाबासाहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्यनारायण रणसुभे – पृष्ठ – 73 – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

42 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – धनजय कीर – पेज – 413 – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली 1996 ।

43 वही –पृष्ठ – 345 ।

44 डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – पृष्ट – 32 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

45 वही पृष्ठ – 34 ।

46 वही आगे ।

47 डा0 अम्बेडकर जीवन चरित – धनजय कीर – पृष्ठ – 258 – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

48 वही पृष्ठ – 260 ।

49 सम्पूर्ण वाङमय – खण्ड – 10 – पृष्ठ – 92 – कल्याण मत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली – 1996 ।

50 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित – धनजय कीर – पृष्ठ – 260 – पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली 1996 ।

51 वही पेज – 262 ।

52 वही पेज – 413 ।

53 डा0 बाबासाहेब अम्बेडकर – सूर्य नारायण रणसुभे – पेज – 75 – राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 1998 ।

54 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – भालचन्द फडके – पृष्ठ – 249 – श्री विद्या प्रकाशन, पुणे – 1985 ।

55 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर राचे प्रासगिक विचार – गजेन्द्र रघुवशी, पृष्ठ – 44 – पुणे – 1989 ।

56 मानव डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – प्रभाकर दीघे – पृष्ठ – 144 – गजेन्द्र रघुवशी – पुणे – 1989 ।

57. वही आगे ।

58 अस्पृश्य मूलचे कोण ? – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – पृष्ट – 5 – गजेन्द्र रघुवशी – पुणे – 1989 ।

59 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्यनारायण रणसुभे – पृष्ठ – 77 – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

60 अस्पृश्य मूलचे कोण ? – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – पृष्ट – 118–119 गजेन्द्र रघुवशी – पुणे – 1989 ।

61 वही पृष्ठ – 152 ।

(ख) धार्मिक चिन्तन

धर्म ही जीवन है और जीवन ही धर्म है । जैसे जीवन क्या है ? इस पर मानव का चिन्तन निरन्तर चलता आया है और भविष्य में भी अहर्निश चलता रहेगा । ठीक वैसे ही धर्म के सम्बन्ध मे सोचना कभी बन्द नहीं होगा । "जहां आज धर्म है वहा धर्म के झगड़े हैं, ये झगडे, आज से नहीं सदियो से है । इस धरती पर कोई भी धर्म ऐसा नही जो उत्थान पतन के दौर से न गुजरा हो । ईसाई धर्म जो करूणा, अहिसा और प्रेम का अप्रतिम उदाहरण है, अकरूणा, हिंसा, और घृणा की मिसाले, कायम करता रहा है । किसी भी धर्म में मानवतावादी दृष्टिकोण का रत्ती भर भी विरोध नहीं है । फिर भी बराबर धर्म युद्ध होते रहे है और धर्म ने अपने सहज स्वाभाव को छोडकर अधर्म का रूप अपना लिया है । धर्म कब अधर्म बनकर भी धर्म बना रहता है इसके किस्से धर्म के इतिहास में सहस्त्रो मिल जायेगें । कारण भी मालूम पड जायेगे । फिर भी धर्म अपने इस इतिहास को दोहराने से पीछे नहीं हटेगा । डा0 अम्बेडकर यही जानना चाहते थे ।[1]

धर्म मानव इतिहास की सबसे शक्तिशाली चालक शक्तियो में से एक है और उसकी गुणवत्ता केवल उसके द्वारा प्रस्तुत सामाजिक आदर्श की रोशनी मे ही समझी जा सकती है । प्रत्येक धर्म को न्याय और उपयोगिता द्वारा ही परखा जाना चाहिये । न्याय, मुक्ति, समानता और भाई चारे का ही दूसरा नाम 'धर्म' है ।[2] डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर के बचपन से ही धार्मिक सस्कार थे । उनके पिता कबीर पन्थी थे । सारी विद्वता और धार्मिकता के बावजूद वे धार्मिक थे, परन्तु उनकी धार्मिकता मे कर्मकान्ड और रूढियो का कोई स्थान नहीं था । 1917 ई0 से उनका सार्वजनिक जीवन शुरू हुआ । तब से लेकर 1935 तक वे हिन्दू धर्म में सुधार लाने के लिये वे प्रयत्नशील रहे । वे चाहते थे कि हिन्दू धर्म अधिक उदारता से अछूतो को स्वीकार करे । उन्हे उनके मानवीय अधिकार वापस लौटा दे । हिन्दू धर्म के प्रति उनकी शिकायत थी कि यह विषमता का समर्थन करता है ।[3] जो धर्म विषमता

का समर्थन करता है उसके विरोध का हमने निर्णय लिया है । अगर हिन्दू धर्म अस्पृश्यता का धर्म है तो अस्पृश्यों को मन्दिरों में मुक्त प्रवेश देकर बात बनने वाली नहीं है । इसके लिये चातुर्वर्ण्य उन्मूलन की नितान्त आवश्यकता है । इस धर्म और समाज की विषमता की जड चातुर्वर्ण्य व्यवस्था है । चातुर्वर्ण्य ही अस्पृश्यता की जननी है ।जाति भेद और अस्पृश्यता विषमता के अन्य रूप है । अगर इस जड़ को नष्ट नहीं किया गया तो अस्पृश्य वर्ग इस धर्म को निश्चित ही त्याग देगा ।[4]

ऐसे लोगो की कमी नहीं है जो अस्पृश्यो की दयनीय स्थिति से दुखी होकर चिल्लाकर अपना जी हल्का करते फिरते है कि हमें अस्पृश्यों के लिये कुछ करना चाहिये लेकिन इस समस्या का जो हल करना चाहते है उनमे से शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह कहता है कि हमे स्पृश्य हिन्दूओ को बदलने के लिये भी कुछ करना चाहिये । यह धारणा बनी हुयी है कि अगर किसी का सुधार करना होना है तो वह अस्पृश्यो का ही होना है अगर कुछ किया जाना है तो वह अस्पृश्यो के प्रति किया जाना है और अगर अस्पृश्यो को सुधार दिया जाये, तब अस्पृश्यता की भावना मिट जायेगी । सवर्णो के बारे मे कुछ भी नहीं किया जाना है । उनकी भावनाओं आचार–विचार और आदर्श उच्च है । वे पूर्ण है । उनमें कहीं भी कोई खोट नही है क्या यह धारणा उचित है ? यह धारणा उचित हो या अनुचित लेकिन हिन्दू इसमे कोई परिवर्तन नही चाहते ? उन्हे इस धारणा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वे अस्पृश्यों की समस्या के लिये बिल्कुल भी उत्तरदायी नहीं है ।[5]

इस अनुन्तरदायित्व के पीछे एक स्वार्थ भी छिपा है कि – अस्पृश्यता अस्पृश्यो के लिये दुर्भाग्यपूर्ण हो सकती है लेकिन इसमे कोई सन्देह नहीं है कि वह हिन्दुओं के लिये एक वरदान है । इससे उन्हें एक ऐसा वर्ग मिला है, जिसकी अपेक्षा वह अपने को श्रेष्ठ समझ सकते हैं । हिन्दू ऐसा समाज नहीं चाहते जिसमें हर कोई कुछ भी बन सके । वे तो ऐसा समाज चाहते हैं जिसमे वे ही कुछ हो और बाकी लोग कुछ भी न हो । अस्पृश्य कुछ भी नहीं हैं लोगो का वर्ग है । इससे

हिन्दू खुश हो जाते हैं । अस्पृश्यता हिन्दुओ के सहज गर्व को बनाये रखती हैं और उन्हें ऐसा अनुभव का अवसर प्रदान करती है कि वे अपने को बड़ा अनुभव करने के साथ बडे दिखे भी । यह एक अन्य कारण है जिससे हिन्दू उन लोगो के प्रति अस्पृश्यता को नहीं त्यागना चाहते है जो बहुताश तो है लेकिन वे छोटे लोग हैं ।[6]

डा0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म मे शुद्धता चाहते थे । तत्कालीन विद्वत्जनों से, धर्म प्रमुखो से वे बार–बार अपील कर रहे थे कि हिन्दू धर्म के दोषो को प्रयत्न पूर्वक हटाया जाये । वे खुद धर्म की दिशा मे इस धर्म को उन्मुख करने के लिये प्रयत्नशील थे । यवदार तालाब का सत्याग्रह, नासिक के कालाराम मन्दिर प्रवेश सत्याग्रह इस बात के प्रमाण है । वर्ण व्यवस्था की अशास्त्रीयता को वे अपने ग्रन्थो द्वारा सिद्ध कर रहे थे । परन्तु हिन्दू धर्म के तथाकथित ठेकेदार उनके इस प्रयत्न को गम्भीरता से नहीं ले रहे थे । गाधी जी जैसे व्यक्ति भी आरम्भिक वर्षो में वर्ण व्यवस्था का समर्थन कर रहे थे । वि0दा0 सातवलेकर के लेख के प्रत्युत्तर में उन्होने लिखा (पुरूषार्थ – जनवरी 1936) "हम हिन्दू है हिन्दुओं के साथ ही जियेगें, हिन्दू के साथ ही मरेगे, हिन्दू हमारे साथ चाहे जैसा व्यवहार करे, पर हम हिन्दुओं की, हिन्दू धर्म की ओर हिन्दू देवी–देवताओं की प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये ही अपना सर्वस्व अर्पित करेंगे – ऐसी घोषणा अस्पृश्य करे उनकी इस सहनशीलता से द्रवित होकर किसी दिन सवर्ण हिन्दू उन्हे मानवीय अधिकार देगें, तब तक हम प्रतीक्षा करें–ऐसी आपकी सलाह है । कोई दूसरा व्यक्ति भले इसे स्वीकार करे परन्तु मैं कत्तई इसे स्वीकार नहीं कर सकता । पत्र के अन्त मे वे आक्रोश के साथ कहते हैं – मेरी दृष्टि मे हिन्दू धर्म, धर्म न होकर लोगों को पागल करने की एक जडी–बूटी है ।[7] हिन्दू धर्म की आत्मा विषमता की है, इसके शास्त्र विषमता का प्रचार करते है । ऊच–नीच की धारणा इस धर्म की विशेषता है । इस धर्म के सिद्धान्त भले ही आकर्षक हो परन्तु मानवीय आधिकार विशेष वर्ग तक ही सीमित किये गये हैं। ऐसी इनकी स्थापना है।"[8]

डा0 अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म को जड से पकडा वे वेदो में गये, उन्होने मनुस्मृति का गहराई से अध्ययन किया और हिन्दू धर्म के ईश्वरावतार राम व कृष्ण को भी उन्होने समझने मे पूरी शक्ति लगा दी और उनकी 'रिडलस इन हिन्दूवजम' के द्वारा जोरदार समीक्षा भी कर दी । जिसमे दो अध्याय श्रीराम और श्रीकृष्ण से सम्बद्ध थे । जिसमे उनके चरित्र पर टीका टिप्पणी की गयी थी । हिन्दू रूढिवादियो को यह अच्छा नही लगा । इसी प्रकार डा0 अम्बेडकर ने रामायण की भी कटु आलोचना की ।[9]

अम्बेडकर पिछड़े और दलित वर्ग के हित के लिये सोचते थे । उनके अधिकारो के लिये लडते थे । पर वे धार्मिक व्यक्ति थे – धर्म को अफीम नही मानते थे । उनका धर्म पिछड़ो के बन्धनो को तोड़ने के लिये प्रेरित करता था । वे रामायण कालीन उस समाज व्यवस्था को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे, जिसमें राम चमचमाती तलवार से शम्बूक का वध कर सकते थे, वह सामाजिक सरचना उनकी छाती मे खटकती थी और उसे बदलने के लिये वे निरन्तर आवाज उठाते थे ।[10]

धर्म क्या है ? किसके लिये है ? धर्म की आवश्यकता क्यों है ? डा0 अम्बेडकर को यह प्रश्न अन्दर तक कुरेद रहे थे । वे जानना चाहते थे कि वे जिस धर्म में जन्मे है उस धर्म के लोग उनका अपमान क्यो करते हैं ? क्या धर्म का सृजन अपमान के लिये किया गया है ? यदि नहीं तो फिर हिन्दू धर्म में असमानता, अत्याचार और अस्पृश्यता का रोग क्यो ? क्या धर्म मानवता के विरूद्ध कार्य करने की अनुमति देता है ? वे हिन्दू धर्म की इन प्रमुख बातों को मानने को तैयार नहीं थे कि 'ब्राह्मण धरती पर देवता है, ब्राह्मण घोर पाप करके भी क्षम्म और अवध्य है ब्राह्मण राजस्व से मुक्ति का अधिकारी है । अस्पृश्यता तार्किक है । ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि कुलीन वर्ग को विशेष स्थान दिया जाना उचित है । क्या एक धर्म के अनुयायियो मे असमानता ठीक है । इन जैसे प्रमुख तत्वो को वह पूर्णतया अनुचित मानते थे ।"[11]

डा0 अम्बेडकर ने हिन्दू दर्शन की तुलना जर्मन दार्शनिक नीत्शे से जिसने सुपर मैन के शासन की वकालत की थी, से की । नीत्शे ने हिन्दू विधि निर्माता मनु को इस बात के लिये पसन्द किया है कि उसने ब्राह्मणो की श्रेष्ठता अर्थात – भूमि पर भगवान जो कि उसके सपुरमैन के समानान्तर है, कि वकालत की है ।"[12] हिन्दूवाद का दर्शन इस प्रकार का है कि इसे मानवता का धर्म नहीं कहा जा सकता है यदि यह कुछ करता है तो उसे नष्ट करता है । साधारण मानवीय कमजोरियो के लिये कोई सहायता क्रूरतम अधर्म से किसी भी तरह कम क्रूर नहीं है । यह मनुष्य को भगवान से जुड़ने से रोकता है । यहा तक कि यह लोगों के अधीन भी नहीं है । डा0 अम्बेडकर जाति व्यवस्था के हानिकारक प्रभाव इस प्रकार उल्लेख करते है कि जाति मनुष्य को सवेदन हीन बनाती है, यह बाझपन की एक प्रक्रिया है । शिक्षा सम्पत्ति एव श्रम प्रत्येक व्यक्ति के लिये जो कि स्वतत्र एव पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त करना चाहता है, आवश्यक है । कुछेक वर्गो को शिक्षा और धन एव दूसरों को श्रम तक सीमित कर देने से हिन्दू दर्शन ने समाज को सवेदनहीन बना दिया है । समाज का पिछड़ापन एव आलसी प्रकृति का दोष मुख्यत अप्राकृतिक एव अवैज्ञानिक सामाजिक व्यवस्था को दिया जा सकता है ।"[13]

डा0 अम्बेडकर प्रश्न करते है कि – छुआछूत हिन्दू धर्म मे क्यो है ? क्या कोई यह विश्वास कर सकता है कि पुरूष नाम का कोई ऐसा पशु भी है, जिसके स्पर्श मात्र से पानी गन्दा हो जाता है, मनुज भ्रष्ट हो जाता है और ईश्वर पूजनीय नहीं रहता । यदि ऐसा पुरूष है तो वह अछूत है जिसे हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज मे पशु से भी बुरा समझा जाता है । उनके स्वर लगातार तीखे और पैने होते गये थे वे अवर्ण और सवर्ण के अन्तर को वर्ग सघर्ष के रूप में देखते थे । एक धर्म में सबको समानता को अधिकार नहीं हो तो वह धर्म कहा रह जाता है । उन्होंने तो यहा तक कह डाला कि ऐसे लोगो के साथ मत रहो क्योकि ये लोग वह रट लगाये रहते है कि परमात्मा सर्व व्याप्त है, परन्तु अपने ही सहधर्मियों को पशु से भी गया–बीता मानते है । यथार्थत ऐसे लोग ढोगी हैं । इन लोगो के साथ रहने से

क्या लाभ जो कीडे–मकोडो के बिलो पर मीठी वस्तु बिखेरते हैं लेकिन वे अपने सहधर्मियों को पानी तक नहीं पिला सकते । उनका सहधर्मी भूखा मर जाये तो उन्हें इसकी चिन्ता नहीं होती है ।[14]

डा0 अम्बेडकर का निर्णय है कि हिन्दू हिन्दुस्तान के रोगी हैं । अगर हिन्दू समाज एक वर्णी समाज बनेगा तो ही उसमे अपनी रक्षा करने की शक्ति निर्मित होगी । इस आन्तरिक शक्ति के अभाव मे स्वराज्य हिन्दुओं की स्वतत्रता की सीढ़ी न बनकर गुलामी की एक सीढ़ी सिद्ध होगी –– । जाति भेद की वजह से हिन्दू एक राष्ट्रीत्व की भावना से वचित हुये हैं देश भक्ति और एकता की भावना से वे दूर हो गये है । जाति भेद राष्ट्रीय एकता का दुश्मन है ।[15]

डा0 अम्बेडकर अपने एक निबन्ध मे हिन्दूवादी दर्शन को स्पष्ट करते हुये लिखते है जिसके प्रारम्भिक नोट मे वह धर्म दर्शन पर विवेचन देते हैं । वह कहते है कि – वह नहीं जानते कि ठीक–ठीक दर्शन का अर्थ क्या होता है लेकिन वह इसका प्रयोग धर्म दर्शन के रूप मे करते है । आगे वह कहते हैं कि धर्म दर्शन को मैं प्राकृतिक धर्म दर्शन के रूप में देखता हूँ । जिसमें देव और ईश्वर का आस्तित्व है । जो कि प्रकृति से अभिन्न रूप से आबद्ध है ।[16] धर्म दशर्न के तीन आधार हैं ।

1. ईश्वर की सत्ता है और वही प्रकृति का निर्माता है । जिसे हम जगत कहते हैं ।
2 ईश्वर जगत का नियामक अर्थात नियन्त्रक है तथा
3. ईश्वर अपनी सत्ता मानवता पर नैतिकता के माध्यम से लागू करता है ।[17]

इस अवधारणा के स्पष्टीकरण के सन्दर्भ मे डा0 अम्बेडकर विशेषत इसे धर्म से सम्बन्धित करके देखते हैं । धर्म की दैवी सत्ता का आरोपण विशिष्ट आदर्श सत्ता

के रूप मे हम जानते है । जिसका उद्देश्य मात्र सामाजिक व्यवस्था के श्रेणी क्रम में नैतिकता का आवरण पहनाना है ।[18] डा0 अम्बेडकर धर्म पर अपना विचार स्पष्ट ढग से लिखते है कि धर्म कोई विवरणात्मक या वैज्ञानिक विश्लेषण की विषयवस्तु नहीं है । यह धर्म की शिक्षाओ के आधार पर सचालित हैं । धर्म दर्शन तब तक विश्लेषणात्मक दर्शन होता है जब तक कि वह अपने मे तर्क को समाहित नहीं करता है । परन्तु तर्क को समाहित करने के बाद वह मानक वैज्ञानिक विषय वस्तु हो जाता है ।[19] आगे वह कहते है कि मैं नहीं समझता कि सभी धर्म दर्शनों का एक ही दर्शन होगा बल्कि सभी धर्मो मे कुछ न कुछ अलगाव होता है ।[20] किसी भी आन्दोलन या सस्था का एक क्रान्तिकारी दर्शन होता है । जिसके आधार पर वह सस्था सचालित होती है ।[21] प्राचीन समाज में मानव अपने राजनीतिक ईश्वर को सब कुछ के रूप मे मान्यता देता था । आधुनिक समाज मानवीय पहलुओं को मान्यता देती है । जो कि ईश्वर को समाज के बाहर रख देता है तथापि वह ईश्वर को स्वीकार करता है । प्राचीन समाज मे प्रत्येक समुदाय के लिये एक ईश्वर था । आधुनिक समाज की भाति एक सयुक्त विश्वव्यापी ईश्वर था नहीं वह मानवीयता को सामूहिकता मे रखकर सोचता था वह मात्र अपने समुदाय के विषय मे सोचता था । जबकि वर्तमान में ऐसा नहीं है ।[22]

डा0 अम्बेडकर बाहय. व अन्त के रूप मे दो प्रकार की क्रान्तियों की सत्ता को स्वीकार करते हैं कि एक क्रान्ति का उद्भव जीवन मे निरपेक्षता की दशा लाता है और जीवन को उस दशा में ले जाता है जहा धर्म की सत्ता सफल होती है । दूसरे मे धार्मिक विचारों की 'वास्तविक सत्ता' की अवस्थापना होती है । जिसमें दैवी शक्ति द्वारा अच्छी मानवता के सृजन की अवधारणा होती है । यह प्रणाली बदलाव की है । ईश्वर मानव समुदाय में दीर्घ जीवी नहीं होता है । भौतिक अर्थो में ईश्वर मानवता का पितृ पुरूष नहीं है । मानव अन्ध भक्त बहुत दिनों तक होकर नहीं रहता है । वह स्वतत्र होना चाहता है वह उत्तरदायी होना चाहता है अपने अवचेतन के ईश्वर पर विश्वास का परीक्षण करना चाहता है । जबकि दैवी सत्ता के श्रेणी

जाति व्यवस्था का दुष्परिणाम हिन्दुओ की नीति कल्पना पर भी हुआ है । उसने सार्वजनिक हित बुद्धि विनष्ट की है । धर्मादाय बुद्धि का विनाश किया है । जातियो की वजह से शुद्धि आन्दोलन व्यर्थ ठहरता है क्योकि शुद्ध होकर हिन्दू धर्म मे आये मनुष्य की जाति नही होती। इसलिये जाति और शुद्धि विसगत होती है। जाति व्यवस्था ने हिन्दु धर्म के प्रसार की प्रवृत्ति ही मार डाली है। पहले हिन्दु धर्म कर्म प्रसार का कार्य करता था। जहा जाति हे वहा शुद्धि नहीं। जब तक सगठन नही तब तक हिन्दू दीन व दुर्बल रहेगा। यदि हिन्दुओ को पछतांवा न हुआ और वे अपनी आदिम दशा मे ही रहे तो अन्य धर्म वाले उन्हे अपनी ओर खीचेगे और अन्ततः हिन्दू धर्म के दुश्मनो की सख्या में असीम वृद्धि हो जायेगी।

यद्यपि समूचे विश्व मे कीं भी सारा का सारा समाज पूर्णतया किसी एक ही वर्ण का नही बना है और प्रत्येक समाज में वर्ग होते है फिर भी अन्य समाज के वर्ग मूलत भिन्न होते है । यातायात सहयोग और एकता की दृष्टि से हिन्दुओ की जातिया वैसी नही है । हिन्दू समाज मे प्रत्येक जाति का खुद का अस्तित्व होता है । यद्यपि हिन्दुओ के रीति रिवाज, धर्मश्रद्धा, और विचार मे साम्य दिखाई पड़ता है तो भी वे असगठित है । सही माने मे राष्ट्रअभिमान के लिये वे पात्र नहीं है । हिन्दू समाज जतियो का समूह है । हिन्दुओ की हानि का मूल जाति भेद मे है । जाति व्यवस्था ने हिन्दू वश का नाश दिया है उसने हिन्दू समाज को नीति भ्रष्ट और दुर्बल बना रखा है ।

ऐसी बात नही कि हिन्दू अमानुष और सिरफिरे लोग है, इसलिये वे जाति–पांति मानते है, इसका प्रमुख कारण है कि वे धर्मिक रूढि के अभिमानी है । यह बात नही कि वे जाति पाति मानकर गलती कर रहे है, अगर गलत है तो वह उनका धर्म वह उनके मन मे जाति भेद की भावना भरता है। जाति–पाति मानने का धर्म सिखाने वाले हिन्दुओं के धर्म शास्त्र विषयक ग्रन्थ ही उनके सच्चे दुश्मन हैं धर्म

शास्त्रो की पवित्रता पर जो श्रद्धा है उन्हे नष्ट करो और उनकी सत्ता उखाड फेको ।[25]

"बुद्ध और उसके भवितव्य" नामक लेख मे जिसे उन्होने 1950 में लिखा था जिसमे वे व्यक्ति के जीवन मे धर्म की आवश्यकता के चार कारणो को स्पष्ट करते हुये कहते है कि–

1. समाज की स्थिरता और नियत्रण के लिये नीति की आवश्यकता होती है । इनमे से किसी एक के अभाव मे समाज रसातल को जा सकता है। इसलिये किसी भी समाज को धर्म की आवश्यकता होती है।
2 धर्म अगर बना रहना हो तो उसे बुद्धि प्रमाण्यवादी होना चाहिये विज्ञान बुद्धि प्रमाण्यवादी है।
3 केवल नीति की सहिता का अर्थ धर्म नही है। धर्म की नीति संहिता में स्वतत्रता समता और वन्धुत्व इन मूलभूत तत्वो को मान्यता प्राप्त होनी चाहिये।

दरिद्रता को पवित्र मानने का आग्रह किसी भी धर्म को नही करना चाहिये अथवा दरिद्रता का उदात्तीकरण भी नही होना चाहिये ।[26]

इसी भाषण अश को उधृत करते हुये डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर लिखते हैं कि डा0 अम्वेडकर निम्नवत निष्कर्ष पर पहुचे थे कि –

1 प्रारम्भ में चार वर्ण थे। वर्ण का आधार धर्म था और बाद मे ये चार वर्ण चार जातिया बन गयी ।
2 चार वर्ण एक ही अश के विभाजन थे ।
3 यह कार्य नहीं अपितु मजदूरो का विभाजन था ।
4. इस धर्म के द्वारा जातिवाद का उद्‌भव हुआ है ।
5 इसने एक व्यक्ति को उसकी जाति तक सीमित कर दिया है ।

6 इससे मानव की विशेषताये गौण हो गयी है ।

7 जहा जाति है वहा कोई पवित्रता नहीं है ।

8 ये हिन्दुओ के धर्मशास्त्र हैं जो उन्हे जाति का धर्म पढाते है ।

9 परम्परागत पुरोहित प्रथा समाप्त हुये बिना हिन्दू धर्म के व्यवहार में कोई परिवर्तन सम्भव नही हैं ।

10 भारत मे शायद ही कोई जाति ऐसी हो जिसमें विदेशी का मिश्रण न हो ।[27]

डा0 अम्बेडकर के चिन्तन का आधार वस्तुत विज्ञानवादी था । वे प्रत्येक को तर्क के तराजू से तौलते और गहन विचारणा करते थे । उन्होने पाया कि जिस धर्म समाज मे रहकर समाजिक धार्मिक आर्थिक स्थिति पशुवत हो उस समाज में रहने का क्या अभिप्राय । उन्होने धर्म के निम्नवत् परिभाषित करने का प्रयास किया –

"1 धर्म मानव की अन्तरात्मा की मुक्ति का व्यक्तिगत प्रकरण है ।

2 धर्म नीतियों के आधार पर मानव के पारस्परिक सौहार्द और सदाचार को कायम रखता है ।

3 धर्म मन आत्मा और शुद्धि की पहचान का मार्ग है ।

4 धर्म की नींव सदाचार और शुद्ध आचरण पर रखी होनी चाहिये ।

5 धर्म ग्रन्थो से नहीं, व्यवहार से मुखरित हो ।

6 धर्म भेदभाव को नहीं मानता है ।

7 धर्म, करूणा, प्रेम और त्याग का दूसरा नाम है । धर्म घृणाको प्रेम से जीतता है और वह बिना शासक हुये लोगों के दिलो पर राज करता है ।

8 धर्म विचलित मन को शान्ति प्रदान करने का अमृत व्यवहार है । जो धर्म मे है, वह प्रेम मे है और सबके साथ समान है ।

9 धर्म असहाय, गूगो और अपाहिजो का सहायक है । वह उनकी अमिट शक्ति है ।[28]

वस्तुत डा0 अम्बेडकर 1935–1956 के काल खन्ड मे धर्म मन्थन मे डूबे हुये थे । प्रत्येक धर्म की सीमाओं से परिचित हो रहे थे । बौद्ध धर्म उनको आकर्षित कर रहा था । अन्य धर्मो के प्रति उनकी शिकायत थी कि –"ये धर्म अपरिवर्तन शील होने का दावा करते हैं । प्रचलित सभी धमो की नीव श्रद्धा है । ईश्वरी कृपा प्राप्त करना और उसकी अनुकम्पा से बचना यह धर्म मार्ग है । इसके सिवा बाकी सभी अधर्म और निषिद्ध माना गया है । परमेश्वर और श्रद्धा इसके सिवा अन्य तथ्य का धर्म कोई स्थान नहीं हैं । मनुष्य की बुद्धि, उसके विचार चर्चा आदि को किसी भी धर्म ने मान्यता नही दी है । इस कारण ईश्वर के अस्तित्व के सम्बध में चर्चा ही नहीं कि जा सकती है । जिन्हें ईश्वर की कृपा प्राप्त है, उन्हे ही धर्म चर्चा का अधिकार प्राप्त है। इसी वृत्त के कारण धर्म पीठ तैयार होते है।और इन धर्मपीठो में स्थित आचार्य महन्त और ब्राह्मण राज्य आरम्भ हो जाता है। ईश्वर के राज मे नाम पर अखन्ड रूप से इनका राज्य चलने लगता है । यह सब ईश्वर के नाम पर चलता है। इस कारण इसमे परिवर्तन की सम्भावनायें ही खत्म हो जाती है। इसी कारण सभी ईश्वरीय धर्म ईश्वर की भाति अनादि, अनन्त, सर्वस्पर्शी, सर्वगामी, सनातन और अपरिवर्तनीय हो जाते है । ऐसे धर्म मनुष्य की बुद्धिमत्ता को चुनौती नही दे सकते। सिद्धार्थ नामक व्यक्ति ने जिस धर्म की बात की है वह इन प्रचलित कमजोरियों से परे है एक व्यक्ति द्वारा अनेक व्यक्तियो से कहा गया यह धर्म है। इस धर्म मे गूढता का कोई स्थान नही है । ईश्वरी कृपा वरदान या शाप, स्वर्ग या नरक इसकी कोई गुजांइश इस धर्म मे नही है । सिद्धार्थ का यह धर्म हाड़–मांस के व्यक्ति द्वारा उसके ही जैसे हाड़मास के लोगो के लिये उनकी ही भाषा में उनके ही शब्दो में कहा गया है । इस धर्म मे श्रद्धा के लिये कोई स्थान नही है । उलटे किसी व्यक्ति या वस्तु पर अन्ध श्रद्धा न रखने का इसमें आग्रह किया गया है । प्रश्न करो, शकायें उपस्थित करो, विचार करो, और अगर विवेक को मान्य हो तो ही

स्वीकार करो–ऐसा इस धर्म का आग्रह है सिद्धार्थ कही भी सर्वज्ञता का दावा नही करता वह किसी का सन्देश देने की बात नही करते । वास्तव में वह किसी प्रकार का आदेश नही देता। कोई निर्णायक बात नही करता । यही इस धर्म की शक्ति है ।[29]

डा0 अम्बेडकर का धर्म एक विशेष स्वरूप मे 1955 के आस–पास आता है । जैसा कि यह अपने एक भाषण 'बुद्धि धर्म के आधार' में बम्बई में कहते है कि – एक सच्चा धर्म समान अवसरो की घोषणा व प्रतिष्ठापना करता है बाकी सभी धर्म झूठे व बकवास है ।[30] उसी भाषण मे वह आगे उल्लेख करते हें कि–मेरे बाद मेरे अनुयायियो बुद्ध धर्म तुम्हारे द्वारा सचालित होगा । यदि तुम इसको आत्मसात नही कर सकोगे तो इसका पालन कैसे करोगे। धर्म मानसिक शुद्धता को तुम्हारे आचारण मे स्वीकार करता है । अम्बेडकर कहते है कि धर्म एक नैतिक चरित्र निर्माण स्वतत्रता, समानता, बन्धुत्व के आधार पर करना चाहता है । और मात्र बुद्धवाद ही मानवता के समान अवसरो की बात करता है ।[31] परानुभविक सत्ता पर यह विश्वास 1930 से 1950 के दशक के बीच मे परिवर्तित होता है यथा वह 4 मार्च 1933 को बम्बई के एक भाषण मे कहते हैं कि– तुम्हारे पास इस बात का कोई कारण नही है कि धरती पर ईश्वर है या नही है तत्पश्चात वह कहते है कि–यह निश्चित है कि सम्पूर्ण कियाकलाप मानव के हाथो सम्पन्न किया जाता है ।[32]

वह जिन अर्थो मे अपनी आध्यात्मिकता का प्रयोग करते है उसका विवेचन वह 1936 के महार सम्मेलन मे करते हैं । जहां वह परामौमिक चीजो का कोई उल्लेख नही करते है। वह कहते है कि हमारी व्याख्या का एक वास्तविक आधार है जो कि हिन्दू समाज की सामाजिक विषमता और हमारे असन्तुष्टीकरण में व्याप्त है । यह एक ऐसा धर्म है जो किसी व्यक्ति के पूर्ण विकास में सहायक नही हो सकता है । हिन्दूवाद प्रायश्चित व करूणा का पाठ नही पढ़ा सकता है न ही वह प्रत्येक की स्वतत्रता व वन्धुता का ही पाठ पढ़ा सकता है ।[33]

अस्पृश्य वर्ग को जो भयानक कष्ट भुगतने पडते हैं, उनका वर्णन करते हुये डा0 आम्बेडकर ने कहा कि जब तक अस्पृश्य वर्ग हिन्दू समाज मे समाविष्ट है तब तक उसकी उन्नति नही होगी। सच्ची स्वतत्रता प्राप्त करने के लिये उनको हिन्दू समाज छोड देना चाहिये। इससे उन्हे कपडे बनाना, खाना, पीना, नौकरी करना, शिक्षा लेना सुसस्कृत समाज मे रहना आदि की स्वतत्रता मिल जायेगी । आगे उन्होने कहा कि तुम्हारे पास गवाने के लिये कुछ भी नही हे तुम सिर्फ अपनी बेडियो को ही गवाने वाले हो। धर्मान्तरण से तुम्हे अनेक लाभ होने वाले है। सामाजिक दृष्टि से धर्मान्तरण की समस्या की ओर देखा जाये तो, यह संघर्ष ऊपरी तौर पर भले ही सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये दिखाई पड़े तो भी वह प्राय: वर्गीय सघंर्ष ही है । हकदार और बेरोजगार मे जो निरन्तर संघर्ष चल रहा है उसका वरिष्ठो का जुल्म एक हिस्सा है ही । सघर्ष फलदायक करने के लिये आवश्यक तीन शक्तियो की अस्पृश्यो मे कमी है, वे शक्तियॉं है–मनुज शक्ति, द्रव्य शक्ति और बौद्धिक शक्ति, ये तीनो शक्तियॉं जब तक हिन्दू धर्म मे रहेगें तब तक तुम्हे प्राप्त नही होगी । अध्यात्मिक दृष्टि से धर्मान्तरण की समस्या की ओर देखा जाये तो कहा जा सकता है कि वैयक्तिक विकास सच्चे धर्म का उद्देश्य है । मुझे धर्म की वह परिभाषा स्वीकार है जिससे सारी प्रजा की धारणा होती है । उसके लिये धर्म को बन्धुता, समता और स्वतंत्रता इन सद्‌गुणो की सीख देनी चाहिये । हिन्दू धर्म ये सद्‌गुण नहीं सिखाता इसलिये अस्पृश्यो के लिये हितकारी वातावरण का निर्माण नहीं कर सकता है । अस्पृश्यों के विकास के लिये विद्या, वित्त और शास्त्र की वैयक्तिक स्वतत्रता को नकारे जाने से उन्हें हिन्दू धर्म छोड़कर अपनी उन्नति के लिये जो धर्म अनूकूल परिस्थिति का निर्माण करेगा, उस धर्म की खोज करनी पड़ रही है । अस्पृश्यता के कारण तुम्हारे गुण व्यर्थ साबित हुये । तुम्हारे अस्पृश्यता की वजह से तुम्हें सेना में पुलिस विभाग में या नाविक दल में प्रवेश नहीं मिलता । अस्पृश्यता तुम्हारे लिये अभिशाप है । अस्पृश्यता ने तुम्हें जगत के सही जीवन से, सम्मान से, और प्रतिष्ठा से वचित किया है । अस्पृश्यो के लिये कानूनी स्वतत्रता की अपेक्षा सामाजिक स्वतत्रता की आवश्कता है ।[34]

आगे वह राजनीतिक स्वरूप देने वाले लोगो की आलोचना करते हुये पुन: अपने उद्देश्य की व्यापकता पर आते हैं – "मैं तुम्हें बताता हूँ, धर्म मनुष्य के लिये है, मनुष्य धर्म के लिये नहीं, इस विश्व मे अगर तुम्हें सगठन करना है, समाज इकट्ठा करना है और इस विश्व मे यश प्राप्ति करनी है तो हिन्दू धर्म का त्याग करो । जो धर्म तुम्हे मनुष्य के रूप मे पहचानने के लिये तैयार नहीं, जो तुम्हे पानी प्राप्त नही करता । वह धर्म 'सज्ञा' के लिये अपर्याप्त है । जो धर्म तुम्हें शिक्षा प्राप्त नहीं कराता, तुम्हारी ऐहिक उन्नति के मार्ग मे बाधा बनकर प्रस्तुत होता है । वह धर्म होने का पात्र नहीं है । जो धर्म अपने अनुयायियो को अपने धर्म बान्धवों के साथ इन्सानियत से बर्ताव करना नहीं सिखाता है, परन्तु मनुष्य से मनुष्य का स्पर्श अमगल मानता है । वह धर्म न होकर एक रोग है, शुद्ध पागलपन है । जो धर्म अज्ञानियो को अज्ञानी, निर्धनो को निर्धन रहने के लिये कहता है वह धर्म न होकर एक सजा है ।"[35]

अपना भाषण समाप्त करते हुये उन्होने सकेतो में भविष्य का संकेत कर दिया कि– उन्होने मरणोन्मुख बुद्ध के शब्दो का सहारा लेते हुये अपना भाषण समाप्त करते हुये कह कि–तुम अपनी बुद्धि की शरण लो। बुद्ध के शब्द अम्बेडकर के मुह से सुनते ही लोगो को बौद्ध धर्म के चयन का सकेत मिल गया । डा0 गोकुल चन्द नारग लिखते है कि–उन्होने बिना धूर्तता का अवलम्ब लिये अपना संकेत कर दिया। इलियट, बर्नाडशा, मैक्समूलर,, एमर्सन, कार्लायल श्लेगल,थोरो, वाल्टेयर जैसे इतिहासकारो विचारको और दार्शनिको ने हिन्दू समाज की महिमा गाई थी। उन्हे अम्बडेकर का हिन्दू धर्म पर किया गया हमला देखकर कब्र में भी सदमा पहुचा होगा। जिसने रोमन कैथोलियन धर्म का वर्णन हजारो निद्य बर्तावो से कलकित वेश्या के रूप मे किया है, उस जॉननॉक्स का हमला बहुत ही विदारक और मर्मभेदक था । इतना ही नही प्रतिद्वन्दी के मतो का कत्ल करते हुये धज्जियॉं उड़ाने वाला था ।[36]

डा0 अम्बेडकर ने अपने भोगे यथार्थ को 13 अक्टूबर 1935 को येवला (महाराष्ट्र) की एक सभा में व्यक्त करते हुये घोषणा की कि–धर्म परिवर्तन की बात करना वच्चो का खेल नही है, जिस प्रकार कोई नौका खेने वाला यात्रियो की संख्या पर अनुमान लगाकर ही नौका खेता हे और तदुपरान्त अपना शेष साज सामान सभालता है उसी प्रकार हमे भी करना होगा। उन्होने आगे कहा था – मै हिन्दू धर्म मे पैदा अवश्य हुआ हूँ परन्तु मै हिन्दू के रूप मे मरूगॉ नही । इससे उनकी पीड़ा का अनुभव किया जा सकता है उन्होने अपनी तीन प्रतिज्ञाये भी इसी कान्फ्रेंस में की थी ।

1 हिन्दू देवी – देवता की पूजा का त्याग ।

2 हिन्दू पर्व त्यौहार मनाने का निषेध।

3 हिन्दू तीर्थो पर जाने का निषेध ।[37]

इसी येवला सम्मेलन के प्रस्ताव को कार्यपालन में लाने का कार्य 30–31 मई के दादर सम्मेलन में किया गया था । जिसमें धार्मिक नेताओं ने सामूहिक धर्मान्तरण की घोषण व प्रतिज्ञाओ को कार्य रूप मे लाने का फैसला किया जिसका समर्थन महार जाति के वैरागियों ने भी किया था ।

अस्पृश्य नेताओ की धर्मान्तरण घोषणा से अन्य धर्मो के अधिपतियों के मुह से लार टपकने लगी । उनकी धार्मिक भूख बढ़ गयी । अम्बेडकर उनके धर्म को अपनाये, प्रयास होने लगे । अपने धर्म मे प्रवेश करने से उन्हें समता और स्वतंत्रता का लाभ होगा, ऐसा वे भरोसा देने लगे । तत्कालीन विधान सभा सदस्य श्री के. एल. गौस ने तार दिया कि – हिन्दुस्तान के समस्त मुसलमान उनका तथा अछूतों का स्वागत करनेके लिये तैयार है । बम्बई के मेथोडिस्ट एपिस्कोपल गिरजाघर के बिशप ब्रेनटन थावर्न बेडले ने कहॉ था कि – यदि पिछड़े वर्गो के लोग जीवन का नया मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं तो उन्हे ईसाई धर्म स्वीकार कर लेना चाहिये । महाबोधि सोसायटी सारनाथ के सचिव ने उन्हें तार भेजकर कहा कि वे अपने

अनुयायियो सहित बौद्ध धर्म स्वीकार करे क्योकि उनके यहा किसी प्रकार का कोई धार्मिक, सामाजिक भेदभाव नहीं है । न वहा वर्ण व्यवस्था है न ही जाति–पाति का भेदभाव । अमृतसर के हर मन्दिर के उपप्रधान सरदार दिलीप सिह दोआबिया ने डा0 अम्बेडकर को तार भेजा था और उसमें उन्होन प्रार्थना की थी कि वह सिख धर्म स्वीकार कर ले । सिख धर्म एक वाहे गुरू को मानता है और प्रत्येक के साथ प्यार करता है और अपने सभी मानने वालों के साथ समानता का व्यवहार करता है ।[38]

अपने लोग किस धर्म को स्वीकार करे इसके बारे मे डा0 अम्बेडकर ने सभी विभागो के अस्पृश्य नेताओ से चर्चा की आरम्भ मे सिख धर्म स्वीकार करने का चयन उन्होने किया था । "इसके पूर्व ही उन्होंने अपने बेटे यशवन्त और भतीजे मुकुन्द को अमृतसर के गुरूद्वारे मे भेजा था ।[39] इसके प्रति अपने झुकाव को स्पष्ट करते हुये डा0 अम्बेडकर कहते है कि – हिन्दू हित की दृष्टि से सामान्यतया कौन सा धर्म स्वीकार किया जाये ? इस्लाम, इसाई या सिख ? साफ कहना हो तो सिख धर्म ही सर्वोत्तम धर्म है यदि अस्पृश्यो ने इस्लाम ईसाई या अन्य कोई धर्म स्वीकार किया तो वे हिन्दू धर्म की कक्षा से बाहर जाते हैं । इतना ही नहीं हिन्दू संस्कृति की परिधि से भी बाहर जाते है इसके विपरीत यदि सिख हुये तो वे हिन्दू सस्कृति में ही रहते है । यह हिन्दुओ के लिये कोई छोटा–मोटा लाभ नहीं है ।

अस्पृश्यो के धर्मान्तरण की वजह से आम तौर पर देश पर क्या असर होगा यह ध्यान में रखने के लायक है । यदि वे इस्लाम या ईसाई धर्म में गये तो अस्पृश्य लोग अराष्ट्रीय होगे । अगर वे मुसलमान हुये तो मुसलमानों की सख्या दुगुनी हो जायेगी । अगर वे इसाई हुये तो इसाइयों की सख्या पाच–छ. करोड़ हो जायेगी इसका नतीजा यह होगा कि इस देश पर ब्रिटिश शासन की सत्ता पर पकड़ और मजबूत हो जायेगी । इसके विपरीत अगर वे सिख धर्म में गये तो उससे हिन्दुस्तान की भवितव्यता को धोखा नहीं पहुँचेगा इतना ही नहीं देश की भवितव्यता

बनाने मे वे सहयोगी होगे । वे अराष्ट्रीय नहीं बनेगे । इसके विपरीत वे देश की राजनीतिक प्रगति में सहायता करेगें । इसलिये अगर अस्पृश्यों को धर्मान्तरण करना ही है तो वे देश हित की दृष्टि से सिख धर्म मे प्रवेश करे ।[40]

राजगोपालाचारी अम्बेडकर की योजनाओ का जिसमे हिन्दू महासभा के प्रवक्ता डा0 मुजे भी शामिल थे – अम्बेडकर – मुजें की शैतानी योजना कहते हैं ।[41] राजा जी के एक पत्र के जवाब मे डा0 अम्बेडकर लिखते है कि – अस्पृश्य वर्ग सिख धर्म की दीक्षा ले । इस योजना को शकराचार्य सहित अनेक मान्यवर हिन्दुओं की सम्मति है । सचमुच उन्होंने ही वह योजना मेरे सम्मुख रखी । मैंने यह स्वीकृत की । मै यह मानता हूँ कि हिन्दू समाज की भवितव्यता के लिये मैं अशत जिम्मेदार हूँ । इसीलिये मेंने यह पर्याय स्वीकार किया है ।[42]

गाधी और अन्यानेक नेताओ के विरोध करने पर भी धर्मान्तरण की दृष्टि से अम्बेडकर ने एक कदम और आगे बढाया । 18 सितम्बर 1936 को उन्होंने अपने अस्पृश्य नेताओ की एक टुकडी अमृतसर के सिख मिशन मे सिख धर्म का अध्ययन करने के लिये भेजी । उन 13 व्यक्तियों में से कोई भी विद्वान नहीं था । प्रथम श्रेणी का अम्बेडकरवादी भी नही था । उस टुकडी के अमृतसर पहुँचने पर उस टुकड़ी में से एक मनुष्य को पत्र लिखकर डा0 अम्बेडकर ने उन्हे प्रोत्साहन दिया । धर्मान्तरण के अग्रणी वीर के रूप में उनका अभिनन्दन किया । इसी समय अम्बेडकर सिख धार्मिक नेताओ से करीबी सम्बध जोड़ रहे थे । सिख मिशन और अम्बेडकर के बीच बम्बई मे एक महाविद्यालय शुरू करने के बारे मे बातचीत चल रही थी । जिसका लाभ सिख धर्म स्वीकारने वाले स्पृश्यो को मिलने वाला था । अफवाह थी कि अम्बेडकर उस कालेज के प्राचार्य व मार्ग दर्शक का पद धारण करेगें । उधर अमृतसर में उत्साह के आवेश में 13 अनुयायियों ने सिख धर्म स्वीकार कर लिया जिन्हे पूर्व मे धर्मान्तरण सम्बन्धी कुछ भी पता नहीं था । परन्तु बम्बई आने पर इनका कोई सम्मान नहीं हुआ बल्कि वे सब तिरस्कृत हो गये ।[43]

डा0 अम्बेडकर ने लन्दन प्रवास से वापस आने के बाद अपनी इस अवधारणा को त्याग दिया । और वह बौद्ध धर्म के नजदीक होते चले गये । एम.एस. गोर इस प्रवास को 1930 के मध्य का लन्दन प्रवास बताते हैं ।[44] इसके परिवर्तन के पीछे भी कुछ कारण थे । जैसे बौद्ध धर्म भी भारतीय धर्म था उसमे भी जाति–पांति की व्यवस्था नहीं थी । ईसाई व इस्लाम जैसे खतरे भी नहीं थे । अन्तत बौद्ध धर्म से सास्कृतिक पहचान मे कोई खतरा आने वाला नहीं था । वस्तुत: यदि सिख धर्म का एक लडका हिन्दू और सिख था (लाला लाजपत राय की मां सिख पन्थ से थी और हिन्दू सिखो मे वैवाहिक सम्बन्ध के भी प्रमाण प्राप्त होते है)[45] तो बुद्ध को सनातन धर्मियों ने विष्णु का 10वा अवतार घोषित किया है । यहा तक कि सनातनियों ने बुद्ध को पूर्णतया ब्राह्मण धर्म की एक शाखा – शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध के रूप में स्वीकार किया है । अत बौद्ध अपनाने से सामाजिक तिरस्कार का कोई खतरा नहीं था । जैसे शैव वैष्णव हिन्दू समाज के अग थे वैसे ही बौद्ध भी वृहद हिन्दू समाज के अग थे । फलत डा0 अम्बेडकर 'सिखो की अलग पहचान' के कारण व परिवर्तित लोगो के तिरस्कार को देखते हुये बौद्ध धर्म स्वीकारने का निर्णय लिया ।

जिसकी औपचारिक घोषणा उन्होंने मई 1950 में की और उसी वर्ष कोलम्बो मे युवा बौद्ध सम्मेलन मे बौद्ध धर्म के उत्थान–पतन पर एक भाषण दिया । यह घोषणा अचानक नहीं की गयी थी बल्कि इस के पूर्व अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन किया था ।[46] 1935–1956 तक यह गहन अध्ययन चलता रहा । बुद्ध के स्वतत्र जीवन दर्शन की खोज उन्होने की । बुद्ध धम्म का महल इसी जीवन दर्शन पर खड़ा है । इस जीवन दर्शन की खोज में अम्बेडकर जी ने अपनी सारी बुद्धिमत्ता, विद्वता, गवेषणापूर्ण वृत्ति, शास्त्रीय दृष्टि को दांव पर लगा दी । इतने प्रदीर्घ अध्ययन के बाद परम्परागत 'बुद्ध चरित्र' की कई विसंगतियां उनके ध्यान में आ गयी ।[47] डा0 अम्बेडकर लिखते है कि जब दीर्घनिकाय आदि पालि ग्रन्थों को आधार बनाकर भगवान बुद्ध की जीवनी लिखने की चेष्टा करते हैं तब हमे कठिनाई होती है ओर उनमें उपदेशों की सुसंगत तथा वैज्ञानिक अभिव्यक्ति बहुत कठिन

लगने लगती है । वास्तविकता तो यह है कि ससार मे जितने भी धर्म – सस्थापक हुये हैं, उनमें भगवान बुद्ध की चर्चा या विवरण हमारे सामने अनेक ऐसी समस्यायें लाता है जिनका समाधान असम्भव नहीं तो दूभर अवश्य है ।[48]

बुद्ध चरित्र और बौद्ध दर्शन की नई सीधी सादी तर्क बुद्धि और वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित व्याख्या करना वास्तव मे एक साहस का कार्य था । जिसे उन्होंने नव बौद्धो के लिये तैयार किया था । "बौद्ध धर्म का स्वीकार यह एक प्रासगिक विषय नहीं है । वह राजनीतिक भी नहीं है । वह केवल सामाजिक ही नहीं है । अपितु एक नये जीवन दर्शन को स्वीकारने का यह प्रश्न है । इस कारण बौद्ध धर्म मे प्रवेश एक विशिष्ट काल की घटना न होते हुये निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, ऐसी उनकी धारणा थी, इसलिये नव बौद्धो को स्थायी रूप से मार्ग दर्शन कराने वाला, सतत अध्ययन और चिन्तन के लिये घर–घर मे रखने के लिये सार्वजनिक और व्यक्तिगत अध्ययन और प्रवचन के लिये इस अभिनव ग्रन्थ की निर्मिति उन्होंने की है ।"[49]

बुद्ध धर्म के सम्बध मे उनके निष्कर्ष इस प्रकार हैं –

– बुद्ध का धम्म परलोक के सम्बंध मे नहीं है । इसका सम्बंध मात्र इहलोक से है ।
– यह न स्वर्गवादी है, न नरक वादी है, यह पृथ्वीवादी है ।
– यह धम्म व्यक्तिगत मोक्ष की बात नहीं करता है, सामाजिक मुक्ति का संदेश देता है ।
– यह धम्म निरीश्वरवादी, अनात्मवादी, भौतिकवादी और बुद्धिवादी है ।
– यह धम्म अपरिवर्तनीय नहीं है, परिवर्तनवाद इसका अग है ।
– यह धर्म विचारशील है ।[50]

अन्य धर्मो की तुलना मे बुद्ध धम्म आधुनिक, वैज्ञानिक निष्कर्षो पर, कसौटियों पर श्रेष्ठ सिद्ध होता है । आधुनिक युग की चुनौतियों को यह स्वीकार करता है । बुद्धिवाद, सामाजिक सत्ता, बन्धुता, स्वतत्रता, समाजवाद, जनतंत्र आदि आधुनिक मूल्यो के आलोक मे इस धम्म को सिद्ध किया जा सकता है । ऐसा अम्बेडकर का दावा था ।"[51]

बुद्ध की विचार पद्धति और तर्क मीमासा में शब्द प्रमाण्य, ग्रन्थ प्रमाण्य का कहीं भी स्थान नहीं है । प्रत्यक्ष, प्रमाण और अनुमान पर ही बुद्ध का तर्कशास्त्र खड़ा है । बुद्ध ने एक स्थान पर कहा कि – मेरे शब्दों को प्रमाण न मानो । तुम्हारी बुद्धि अथवा अनुभव से जो बात जचती हो उसे ही सत्य मानों । इस विश्व मे अतिम और अपरिवर्तनीय कुछ भी नहीं है । परिवर्तन और सतत परिवर्तन यही सत्य है ।[52]

बुद्ध का धम्म व्यक्तिनिष्ठ न होकर सामाजिक है । बौद्ध दर्शन – 'धर्म' अथवा 'रिलीजन' शब्द के अन्तर्गत नहीं आता । वह धम्म अथवा फिलासफी आफ रिलीजन है । बौद्ध धम्म ने नैतिकता को सर्वाधिक महत्व दिया । यह नैतिकता ही धम्म है । उसके अभाव में समाज–धारणा सम्भव ही नहीं है । यह नैतिकता, स्वतत्रता, समता, और बन्धुता के सवर्धन के लिये ही होनी चाहिये । परिवर्तित समाज मनकी विविध प्रवृत्तियो पर सम्यक नियत्रण रखने का कार्य इस नैतिकता को करना है । डा0 बाबा साहब इसी नैतिकता को धम्म कहते हैं । (बुद्ध एन्ड हिज धम्म) एक स्थान पर इसी को उन्होने जनतत्र (डेमोक्रेसी) कहा है । (एनीहिलेशन आफ कास्ट) ।[53]

धर्म मनुष्य के लिये है कि मनुष्य धर्म के लिये है, के सवाल का उत्तर देते हुये वे कहते है कि – 'जो धर्म हमारी चिन्ता करता हो, हमें अवसर प्रदान करता हो उसके लिये हम प्राण तक देने को तैयार हैं । जो धर्म हमारी परवाह ही नहीं करता

उसकी परवाह हम क्यो करे ? मनुष्य के लिये वे धर्म को अनिवार्य मानते हैं, धर्म उनकी दृष्टि मे नैतिकता का दूसरा नाम है ।[54]

डा0 अम्बेडकर की मान्यता थी कि – समाज धर्म और मजिस्ट्रेट दोनों का चुनाव कर सकता है – जितने अश मे समाज धर्म का पालन करे उतने अश में 'धर्म' और जहा धर्म का पालन न करे वहा मजिस्ट्रेट ।[55] वे प्रज्ञा और करूणा को धर्म का आधार मानने लगे थे । धर्म तो मनुष्य की अपनी मनुष्यता के लिये है, धर्म के विकास के लिये उसे बलि का बकरा नहीं बनाना चाहिये ।[56] उनका मानना था कि – सिद्धान्त प्रतिकूल कोई समझौता नही किया जा सकता, ऐसा किया भी नहीं जाना चाहिये । वे इतने अल्पज्ञानी न हो कि अपने ज्ञान को ही आन्तिम मान बैठें । वे अछूतो से अपनी बात पर विचार करने का सतत आग्रह करते थे ।"[57]

बौद्ध धर्म के पतन के कारणों पर प्रकाश डालते हुये उन्होने कहा कि – इस सम्बन्ध मे यद्यपि मै खोज कर रहा हूँ तथापि मेरे मत में वे कारण इस प्रकार हैं – बौद्ध धर्म के खिलाफ जोरदार प्रचार करने वालों शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के लोगों ने बौद्ध धर्म के कुछ आचारों और रीति रिवाजों को स्वीकार किया । जब अलाउद्दीन ने हमला किया तब बिहार के हजारो बौद्ध भिक्षुओ का कत्ल हुआ । उसका नतीजा यह हुआ कि उनमे से कुछ भिक्षु अपने प्राण बचाने के लिये तिब्बत, चीन और नेपाल भाग गये और बीच के समय मे बौद्ध धर्म के अनगिनत अनुयायियों ने हिन्दू धर्म को स्वीकार किया । तीसरा कारण यह है कि बौद्ध धर्म के संस्कारों का आचरण कठिन था । जबकि हिन्दू धर्म की बात वैसी नहीं थी । चौथा कारण यह है कि हिन्दुस्तान का राजनीतिक वातावरण बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अनुकूल नहीं थी ।[58]

डा0 अम्बेडकर ने अपना अन्तिम भाषण सारनाथ मे 1956 में दिया जिसमें उन्होंने हिन्दूवाद के असमानतावाद का उल्लेख किया था और उसकी तुलना

बुद्धवाद की मानवीय शिक्षाओ से की थी और कहा कि हमारा मूल कर्तव्य है कि हम बुद्धवाद को अपनायें और समानता व विकासवाद की प्राप्ति करें ।"[59]

अन्तत डा0 अम्बेडकर 14 अक्टूबर 1956 । नागपुर शहर में गोरखपुर के कुशीनगर मे रह रहे भारत के सबसे वयोवृद्ध बौद्ध भिक्षु चन्द्रमणि को दीक्षा के लिये आमन्त्रित किया गया । विख्यात बौद्ध विद्वान का पवित्र स्वर 'आकाश पाताल एक करो, 'बुद्ध धर्म ग्रहण करो' का गूज उठा । — प्रात डा0 अम्बेडकर श्वेत शिल्क की धोती ओर श्वेत बुर्राक सा कोट पहने सपत्नीक पान्डाल में पहुचे वहा भिक्षु चन्द्रमणि व अन्य चार भिक्षुओ से बौद्ध धर्म की दीक्षा प्राप्त की ।[60] जहां उनके साथ लगभग 5 लाख लोग थे ।[61]

* * * * * * * * * * *

इस प्रकार निष्कर्षात्मक तौर पर कहा जा सकता है । डा0 अम्बेडकर को धर्म दर्शन की व्यापक समझ थी । उनकी धर्म विवेचना का महत्वपूर्ण सार यह था कि वह धर्म के आधार पर समानता और समानता के आधार पर विकास चाहते थे । साथ ही उनकी धर्म विवेचना का लक्ष्य समाज के एक बड़े और पशुवत वर्ग को उसका सत्व उसे वापस करने का था । अछूत वर्ग को सछूत वर्ग के साथ वह एकाकार करना चाहते थे ।

धर्म परिवर्तन के समय उन्होंने दो खास बिन्दुओं पर ध्यान दिया प्रथम हिन्दू धर्म को चोट न पहुचे दूसरे अस्पृश्य को स्पृश्य बनाया जाये । डा0 अम्बेडकर को समाज की एक व्यापक समझ थी और वह जानते थे कि अछूत हिन्दू धर्म द्वारा लाख प्रताडित हो लेकिन उन्हे भी अपनी मातृभूमि अपनी परम्पराओं से प्यार है और इस दशा मे वह इस्लाम व ईसाई जैसे विदेशी धर्म को स्वीकार नहीं कर सकते है । उन्हें अपनी परम्पराओ के साथ समता चाहिये थी । विदेशी धर्म की गोद में जाने से समता तो प्राप्त होती परन्तु परम्पराओं से हाथ धोना पड़ता । इस दशा में उन्होंने

भारतीय परम्परा मे व्याप्त गैर हिन्दू धर्म पर ध्यान दिया । इस श्रेणी में उन्हें सिख और बौद्ध धर्म की प्राप्ति हुयी । सिख धर्म यदि भारतीय है तो उसकी पहचान अलग है और स्वतत्रता के समय तक अलग सिख राज्य की मॉग भी होने लगी थी । डा0 अम्बेडकर अखन्ड भारत चाहते थे भारतीय सस्कृति से प्यार करते थे परन्तु वह नहीं चाहते थे हिन्दू धर्म का असमानतावाद और अछूतवाद । अत उन्होने सिख धर्म से भी अपना विराग जाहिर करते हुये बौद्ध धर्म की ओर ध्यान लगाया । यहां उन्हें समतावाद की प्राप्ति भारतीय सस्कृति के साथ सम्भव हो गयी । बुद्ध स्वयं वैष्णव अवतारवाद के 10वे अवतार हिन्दू धर्माचार्यो द्वारा घोषित किये गये हैं । इस दशा में अलगाव व तिरस्कार का खतरा भी नहीं था । फलत उन्होने 1935 – 1950 के गहन अध्ययन – मनन के बाद बौद्ध धर्म अपनाने का निर्णय किया ।

धर्म का उद्भव मानव समाज के कल्याण के लिये हुआ है परन्तु हिन्दू धर्म का स्वरूप सम्पूर्ण मानव समाज के लिये कल्याणपरक न होकर अकल्याणपरक हो गया है । यदि पाप, मुक्ति, समानता और भाई चारे का दूसरा नाम धर्म है तो इन तत्वों की न्यूनता हिन्दू धर्म मे आ गयी थी । चातुर्वर्ण्य व्यवस्था जाति भेद और अस्पृश्यता इस न्यूनता के उपागम हैं । यदि इन न्यूनताओं का उत्सादन न किया गया तो अछूत समाज या पीडित समाज अन्य विकल्प की खोज कर लेगा ।

यहां सर्व प्रथम स्पृश्य समाज को यह स्वीकार कराना होगा कि अस्पृश्य समाज की दुर्दशा या हिन्दू धर्म की न्यूनताओं के प्रति जिम्मेदार वही है । डा0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म में जीना चाहते थे लेकिन शर्त थी कि इन न्यूनताओं को त्याग कर । वे बार–बार 'सहनशक्ति की सीमा' की चेतावनी दे रहे थे । इसके लिये उन्होंने हिन्दू धर्म का अध्ययन वेद, मनुस्मृति, राम–कृष्ण अदि के माध्यम से किया । उनकी समीक्षायें लोगों को अच्छी नहीं लगी । वे ब्राह्मण विशेषाधिकार व अपने धर्म के लोगो द्वारा की जाने वाली प्रताड़ना को स्वीकारने को तैयार नहीं थे । इन्होंने नीत्शे के सुपरमैन से ब्राह्मणों की तुलना कर दी जो पृथ्वी पर भगवान हैं । इसके

अस्पृश्तावादी जाति व्यवस्था के कारण स्वातत्रता संघर्ष के बाद प्राप्त होने वाली स्वतंत्रता में राष्ट्रीयता के तत्वों की न्यूनता निश्चितत होगी ।

वह कहते है कि धर्म का मूल उद्देश्य समाज को नैतिक आवरण पहनाना है । धर्म दर्शन के लिये उसको तर्कपूर्ण होना आवश्यक है । यदि उसमें तार्किकता का अभाव है तो वह समाज के लिये अकल्याणपरक होगा । तार्किकता व कल्याणकारिता मे अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध है । प्राचीन समाज की भाति आधुनिक समाज अपने ईश्वर व धर्म तत्र को स्वीकार नहीं कर सकता है । आधुनिक समाज के ईश्वर को उसकी व्यवस्था को आधुनिक मानवीय तत्वों के साथ मानवीय व कल्याणकारी होना चाहिये ।

यहा हमारी व्यवस्था का जाति विभक्तिकरण मात्र श्रम का विभक्तिकरण नहीं है बल्कि यहा जाति उत्पन्न मनुष्यता अनैच्छिक कर्म को करने हेतु बाध्य है । उसे स्वतंत्रता समानता मानवीयता जैसे आधुनिक तत्वों के साथ कुछ मध्ययुगीन तत्व यथा – धन्धे की स्वतत्रता, ज्ञान की स्वतंत्रता भी अप्राप्त है । इस दशा के कारण उनके रीतिरिवाजो, धर्म श्रद्धा आदि में एकरूपता होते हुये भी राष्ट्रीयता जैसे विशिष्ट तत्वों का सचयन असम्भव है और इसके लिये उत्तरदायी हिन्दू धर्म के परम्परागत धर्म शास्त्र है ।

डा0 अम्बेडकर के चिन्तन का आधार मूलत विज्ञानवादी व तार्किकतावादी था । इस वैज्ञानिकता में समाज में व्याप्त पशुवत दशा को वह स्वीकार नहीं कर पाते थे । उनका मानना था कि सभी धर्मो का धार्मिक मूल 'श्रद्धा' है । ईश्वरी कृपा को प्राप्त करना धार्मिकों का लक्ष्य है । शेष सब पाखन्ड और त्याज्य है । व्यक्ति और ईश्वर का 'विशिष्ट अनवरत सम्बन्ध' प्रतिष्ठा में अन्य उपागमो का हस्तक्षेप अवाक्षित है । ऐसा न होने की दशा मे धर्म पीठो की स्थापना होती है जहां से मानवता के शोषण का आरम्भ होता है । जिससे बचना चाहिये । अन्तत सभी

क्रियाकलापो का सचालन व्यक्ति स्वय ही करता है । यह उक्ति उन्हे भौतिकवाद के नजदीक ले जाती है । अन्तत वह हिन्दू धर्म को छोड़ने का मन्तव्य प्रकट करते है क्योकि हिन्दू धर्म स्वय अपने भाइयो के साथ चलने को तैयार नहीं है । दलितों को गैर दलित वह अधिकार देने को तैयार नहीं है जिससे कि दलितों को भी मनुष्य शक्ति, द्रव्य शक्ति और बौद्धिक शक्ति की प्राप्ति हो सके । विद्या, वित्त और धर्म से वचित करना ही उन्हे धर्मान्तरण की ओर उत्प्रेरित करती है । इससे उन्हे कानूनी समकक्षता के साथ सामाजिक स्वतत्रता भी प्राप्त हो सकेगी ।

धर्म मनुष्य के लिये है मनुष्य धर्म के लिये नहीं है । सगठन, समाज और यशप्राप्ति हेतु हिन्दू धर्म का त्याग करना होगा । इसका सकेत उन्होंने येवला की सभा मे कर दिया । वहा उन्होने घोषणा कर दी कि मैं हिन्दू धर्म मे पैदा तो हुआ पर मैं हिन्दू धर्म मे मरूगा नहीं । साथ ही हिन्दू तीर्थ, देवी–देवता, पर्व–त्यौहार न मनाने की प्रतिज्ञा भी कर ली । इस येवला सम्मेलन को पूर्णता दादर सम्मेलन में दी गयी ।

तत्पश्चात डा0 अम्बेडकर के पास सभी धार्मिक मठाधीशों के सम्पर्क होने लगे परन्तु उनका झुकाव किसी भारतीय सस्कृति वाले धर्म की ओर ही था । पूर्व मे वह सिख धर्म था जिसकी एक अलग पहचान थी और उस अलग पहचान के कारण परम्परावादी भारतीय समाज में तिरस्कार व अलगाव का भय था । अत: बाद में वह बौद्ध धर्म की ओर झुक गये । वहा उन्हें पूर्ण समानता, बन्धुता, की प्राप्ति भी हुयी और अलग पहचान न होने से सामाजिक तिरस्कार का भय भी नहीं था ।

मूलत वह न तो भारतीय अखन्डता को चोट पहुचाना चाह रहे थे और ना ही वह भारतीय संस्कृति में विखन्डन चाहते थे यहां तक कि वह हिन्दू धर्म में विध्वंस भी नही चाहते थे । वह तो मात्र समतावाद, तार्किकतावाद, मानव–ईश्वर का सीधा सम्बध, विज्ञानवाद व विकासवाद का समावेश हिन्दू धर्म में चाहते थे । यदि यह

चीजे हिन्दू धर्म उन्हे दे सकता तो कदाचित उन्हे "हिन्दू दर्शन" से घृणा नहीं थी। क्योंकि अपनी योजना में वह हिन्दू महासभा के नेताओं को साथ लेकर चल रहे थे। साथ ही आरम्भ मे उन्होने हिन्दू धर्म मे सुधारवाद की ही वकालत की थी। सुधारवाद की अपील असफल होने पर ही उन्होने त्याग का रास्ता अपनाया था।

अन्तत वह बौद्ध धर्म की मीमासा मे लग गये और उसकी विचारशीलता उनको आकर्षित कर गयी। उन्होने भारत में बौद्ध धर्म के पतन के कारणों की भी मीमासा की। अन्तत अपने दलित समाज के हित मे 5 लाख लोगों के साथ 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर मे भिक्षु 'चन्द्रमणि' से बौद्ध धर्म की दीक्षा स्वीकार कर ली। यहा ध्यातव्य है कि इस परिवर्तन मे 1936 से 1956 तक अर्थात 20 वर्षो का समय लग गया। इस दौरान उन्होने बुद्धत्व की गहन मीमासा की थी।

विवरणिका

1 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार 1994 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली पृष्ठ – 42।

2. थामस मैथ्यू सावन्त राम, अशोक भारती – क्रान्ति प्रतीक अम्बेडकर धम्म बुक्स – 1994 – नई दिल्ल – पृष्ठ – 13।

3 डा0 सूर्य नारायण रण सुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 – पृष्ठ – 80।

4 महामानव डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – प्रभाकर दीघे – पृष्ट – 146, गजेन्द्र रघुवशी – पुणे – 1989।

5. अम्बेडकर वाड मय – खन्ड – 9 – डा0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मत्रालय – नई दिल्ली – 1995 – पृष्ठ – 17।

6 वही पृष्ठ – 140।

7. भाल चन्द्र फड़के – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – पृष्ठ – 186, श्री विद्या प्रकाशन – नई दिल्ली – 1985।

8 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 – पृष्ठ – 81 ।

9 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार 1994 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली पृष्ठ – 43 ।

10 कृष्ण दत्त पाली बाल – डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – किताब घर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 28.

11 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार 1994 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशक – नई दिल्ली पृष्ठ – 45 ।

12 थामस मैथ्यू, सावन्त राम, अशोक भारती – क्रान्ति प्रतीक अम्बेडकर धम्म बुक्स – 1994 – नई दिल्ल – पृष्ठ – 17 ।

13 वही पृष्ठ – 16 ।

14 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार 1994 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली पृष्ठ – 46 ।

15 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1916 – पृष्ठ – 260 ।

16. बसन्त मून भाग – एक, अध्याय – एक, 1987 ए. डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एन्ड स्पीचेस – बम्बई – शिक्षा विभाग – महाराष्ट्र सरकार – पृष्ठ – 4 ।

17. वहीं पृष्ठ – 5–6 ।

18. वहीं पृष्ठ – 6 ।

19 वहीं पृष्ठ – 5 ।

20 वहीं पृष्ठ – 8 ।

21. वहीं पृष्ठ – 8 ।

22. एम एस गोर – 9 सोशल कान्टेक्स्ट आफ एन आइडियोलोजी सेजपब्लिकेशन – नई दिल्ली – 1993 – पृष्ठ – 232 ।

23. वही बसन्त मून पृष्ठ – 21 ।

24 वही एम एस गोर – पृष्ठ – 234 ।

25 जाति तोडक मन्डल के समक्ष एनीलिशन आफ कास्टके रूप में पढा गया – डा0 अम्बेडकर का भाषण ।

– धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाश – 1996 – नई दिल्ली – पृष्ठ – 257 – 259 मे उघृत ।

26 'बुद्ध और उसके भक्तिव्य' नामक लेख – सन् 1950 में डा0 अम्बेडकर द्वारा लिखित –

– डा0 सूर्य नारायण रण सुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 – पृष्ठ – 82 ।

27 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार 1994 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली पृष्ठ – 47 ।

28 वही पृष्ठ – 48 ।

29 डा0 अम्बेडकर आणि त्याचां धम्म – प्रभाकर वैध – पृष्ठ – 133 – 34, शलाका प्रकाशन – मुम्बई – 1986 ।

30 रमेश रघुवशी – सम्पादित डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर राची गजलेली भाषणे – पूणे – रघुवशी प्रकाशन – पृष्ठ – 135 ।

31 वही पृष्ठ – 81 – 83 ।

32 वही आगे ।

33 एम एस गोर – द सोशल कान्टेक्स्ट आफ एन आइडियालोजी सेज पब्लिकेशस – नई दिल्ली – 1993 पृष्ठ – 239 ।

34 30 – 31 मई 1936 को – दादर में आयोजित महार माणिक के समय दिये गये भाषण का अश –

धनजंय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 261–62 ।

35 वही " आगे पृष्ठ – 262 ।

36 डा0 गोकुल दास नारग – रियल हिन्दूइजम – पृष्ठ – 13, उघृत डा0 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र में पृष्ठ – 263 मे उघृत ।

37 येवला कान्फ्रेन्स मे – 13 अक्टूबर 1935 का भाषण – राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – 1994 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – पृष्ठ – 56 में ।

38 टाइम्स आफ इन्डिया – बम्बई – 11 मई 1936 ।

39 डा0 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 263 ।

40 द टाइम्स आफ इन्डिया – 24 जुलाई 1936 – बम्बई ।

41 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 267 ।

42 द टाइम्स आफ इन्डिया – 9 अगस्त 1936 – बम्बई ।

43 डा0 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 270 ।

44. एम एस गोर – द सोशल कान्टेक्स्ट आफ एन आइडियालोजी सेज पब्लिकेशस – नई दिल्ली – 1993 पृष्ठ – 248 ।

45 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 268 ।

46. एम एस. गोर – द सोशल कान्टेक्स्ट आफ एन आइडियालोजी सेज पब्लिकेशस – नई दिल्ली – 1993 पृष्ठ – 248 ।

47. डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 – पृष्ठ – 85 ।

48 भगवान बुद्ध और उनका धर्म – डा0 अम्बेडकर – अनु – भदन्त आनन्द कौसाल्यायन – पृष्ठ – 23 ।

49 डा0 अम्बेडकर आणि त्याचा धम्म – प्रभाकर वैध – पृष्ठ – 117, शलाका प्रकाशन – मुम्बई – 1986 ।

50 वही पृष्ठ – 120 ।

51 डा0 सूर्य नारायण रण सुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 – पृष्ठ – 85 ।

52 डा0 अम्बेडकर आणि त्याचा धम्म – प्रभाकर वैध – पृष्ठ – 137, शलाका प्रकाशन – मुम्बई – 1986 ।

53 डा0 अम्बेडकर तत्वाज्ञान – प्रचिती आणि आविष्कार – तारा चन्द्र खाण्डेकर प्रज्ञा पकाशन – नागपुर – 1981 – पृष्ठ – 77 ।

54 महामानव बाबा साहेब अम्बेडकर – प्रभाकर दिघे – पृष्ठ – 137, गजेन्द्र रघुवशी पुणे – 1989 ।

55 भगवान बुद्ध और उनका धम्म – नामक पम्फलेट ।

56 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर -- डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार 1994 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली पृष्ठ – 60 ।

57 अछूत कौन और कैसे ? डा0 भीम राव अम्बेडकर – पुणे – पृष्ठ – 14 ।

58 जनता – 10 जून – 1950 – बम्बई – सम्पादक – पुत्र यशवन्त राव अम्बेडकर ।

59 रमेश रघुवशी – सम्पादित डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर रांची गजलेली भाषणे – पूणे – रघुवंशी प्रकाशन – पृष्ठ – 14 – 146 ।

60 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार 1994 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली पृष्ठ – 57 – 58 ।

61 वही " पृष्ठ – 68 ।

(ग) आर्थिक चिन्तन

डा0 अम्बेडकर अपने समय के सर्वाधिक विवादग्रस्त अप्रतिम मनीषी थे । वे उदभट तार्किक थे और मनीषा उनके स्वभाव की निर्माणकर्त्री थी । वे चिन्तन के प्रति समग्र समर्पित थे । स्वय दासानुदास परम्परा के प्रतीक थे । निर्धनता का अभिशाप उनकी नियति थी और बेकारी मे जोता जाना उनका कर्म । अपमान उपेक्षा और अवमानना उनका जन्मसिद्ध अधिकार था । फिरभी वे अपनी लगन, तपस्या, कर्मठता और न्याय प्रियता के कारण निरन्तर पढ़ते गये और योग्यतम व उद्भव मनीषी सिद्ध हुये । उन्होने उच्च शिक्षा प्राप्ति के बाद अपने समाज की ओर देखा और अपने जीवनानुभव की कटुता का स्मरण कर गुरूदक्षिणा चुकाने का संकल्प लिया । वे प्रोफेसर बनते–बनते समाज सुधारक अर्थवेत्ता व राजनीतिज्ञ बन गये । कदाचित यही उनकी सक्रिय नियति थी ।

"एक बहुत बडा समाज उनके सामने पशुवत जीवन जीता हुआ विलाप कर रहा था । अग्रेंजी सरकार अन्यायी, अत्याचारी और दायित्व की भावना से शून्य थी । वे पानी की तरह नौकरशाही पर पैसा
बहा रहे थे, उन्हे समाज मे उन्नत जीवन की तनिक भी परवाह नहीं थी । ना उनका ध्यान शिक्षा की ओर था और ना ही उद्योग की ओर ।"[1]

डा0 अम्बेडकर को लगा था कि ' "माता–पिता शिशु को केवल जन्म देते हैं भविष्य नहीं । भविष्य तो उनके बनाने से बनेगा । ऐसा ज्ञान उन्हें विदेशी सामाजिक परिवेश मे अध्ययन के समय ही हो गया था । भारत में समस्त दरिद्र और दलित लोग रौरव को ईश्वर का दण्ड मानकर चुपचाप भोग रहे हैं वे उसे समाज और अर्थव्यवस्था की रूग्णता नहीं मान रहे है । वे शोषण, अन्याय, अत्याचार, बलात्कार, सहन कर लेगें परन्तु न्यायालय नहीं जायेगें । यह उनके कर्मो का फल नहीं था बल्कि तत्कालीन समाज के अन्याय का परिणाम था । सामाजिक अर्थ पर

पूजीपतियो और शासको ने कब्जा कर लिया था । उन्होने अपने कुकर्म की ढाल ईश्वर के न्याय का बना लिया था ।"[2]

डा0 अम्बेडकर ने अपना अध्ययन अत्यन्त गरीबी की दशाओं को सहन कर पूर्ण किया था । अत उन्हे गरीब की भावनाओ व सघर्षो का एहसास था । "अमेरिका मे वह 18 घन्टे पढते थे, कम से कम व्यय करते थे, काफी के एक कप से अपनी भूख मिटा लेते थे, एक डालर दस सेन्ट के भोजन से काम चला लेते थे । वहा उन्होने आर्थिक विषयों का गहन अध्ययन किया था । "प्राचीन भारतीय व्यापार" नामक लघु शोध प्रबन्ध अपने एम ए के लिये लिखा था । "भारत का राष्ट्रीय लाभाश" नाम से शोध ग्रन्थ प्रस्तुत किया था जिसे कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने स्वीकार कर लिया था और 8 वर्षो के चिन्तन के बाद डी फिल. की उपाधि प्रदान की थी । बाद मे यह प्रबन्ध" ब्रिटिश भारत मे राज्यीय पूजी का विकास "नाम से छपा था । जिसकी भूमिका विद्वान डा0 आर. ए सैलिगमन ने लिखी थी । उन्होंने लिखा कि – यह पुस्तक अकेली पुस्तक है जिसमें ब्रिटिश सरकार की अति धनेच्छा की नीति, नौकरशाही आदि की सप्रमाण आलोचना की गयी है । — इसी आधार पर रायल कमीशन ने उन्हें अपनी गवाही हेतु आमंत्रित किया था ।"[3]

डा0 अम्बेडकर वूकर टी वाशिंगटन के नीग्रो स्वतंत्रता दर्शन से अत्यन्त प्रभावित थे । वे अमेरिका से लन्दन 'डाक्टर आफ साइंस' में दाखिला लेने चले आये । वहा उन्हे अर्थशास्त्र ज्ञान के कारण दाखिला प्राप्त हो गया । छात्रवृत्ति समाप्त होने के कारण वे भारत आकर अध्यापक हो गये । — 1920 में पुन: लन्दन अध्ययन हेतु चले गये । जहा वह 8 पौन्ड में एक माह का गुजारा कर लिया करते थे । " वहां उन्होने "ब्रिटिश भारत में साम्राज्यीय पूजी का विकेन्द्रीकरण" नामक ग्रन्थ पूरा कर लिया । और डाक्टर आफ साइस की उपाधि प्राप्त कर ली । रूपये की समस्या पर उन्होंने अलग शोध **'The Problem of Rupee its origin and solution'** तैयार किया था । इस प्रबन्ध में उन्होंनें रूपये की समस्या पर स्थापनायें की ।

उन्होने बताया कि रूपये व पौन्ड के सम्बन्धो का लाभ उठाकर अग्रेज कैसे भारतीयों का शोषण कर रहे है उन्होने कहा कि मुद्रा विनिमय से भारत लाभान्वित नही हो सकता है । इसे स्वर्ण स्तर की देशीय स्थिरता प्राप्त नही होने के कारण लागू नहीं करना चाहिए ।[4]

डा0 अम्बेडकर एक व्यावहारिक अर्थवेत्ता थे । उन्होने अपने अर्थचिन्तन को मानव विकास केन्द्रित बनाया था । आर्थिक स्वाधीनता के क्षेत्र में उन्होनें अपने मौलिक चिन्तन से गाधी जी के चरखा वादी अर्थतंत्र को बेकार प्रमाणित कर दिया था और साथ ही ब्रितानी सरकार की धन लोलुपता व अर्थ चक्रव्यूह को दुनिया के सामने ला दिया था जिससे ब्रितानी सरकार का प्रचार सम्मोहन टूट सके ।[5]

13 अप्रैल 1929 को चिपलूण रत्नागिरी मे आयोजित रत्नागिरी जिला परिषद की अध्यक्षता करते हुये डा0 अम्बेडकर ने कहा आप अपनी गुलामी खत्म करें स्वाभिमान विहीन जीवन नामर्दपन का लक्षण है । कष्ट होगा, छल होगा, लेकिन टाकी के आघात बर्दास्त करो । इसके बाद इन्होने कोंकण की भूमि के बारे मे जिस की वजह से अस्पृश्यों का रक्त शोषित किया जाता था उस खोटी पद्धति का उल्लेख किया । इस परिषद को अम्बेडकर ने आश्वासन दिया कि इस पद्धति का उन्मूलन करने के लिये आवश्यकतानुरूप सभी कष्ट उठायेगें । उसके लिये किसी भी विघ्न का सामना करने की हमारी सिद्धता है । फिर आगे उन्होने कहा कि खूटी के जुर्म से जिन्हें मुक्ति करवानी है वे स्थानान्तरण करें । उनके लिये किसी दूर स्थान मे खेती के लिए भूमि दिलवाने का हम प्रयास करेंगें । कोंकण से अफ्रीका जाकर अमीर होकर लौटे । मुसलमान पडोसियों को आर्दश रूप में रखने का उदाहरण दिया । इससे पूर्व वह कुछ पार्षदों के साथ सक्कर बाँध देखने गये थे । जहा कि बजर भूमि कालान्तर में उपजाऊ बनने वाली थी । सिंध प्रान्त को दी गयी इस भेंट से अस्पृश्यों के सिंध स्थानान्तरण की योजना उनके दिमाग में आयी

होगी । इन्दौर महाराज से भी मित्रता के आधार पर कुछ भूमि प्राप्त होने की आशा थी ।

दूसरे दिन उसी मण्डप मे आयोजित किसानो की परिषद का अध्यक्ष स्थान अम्बेडकर ने ही विभूषित किया । वहा उन्होने कहा कि मेरा जन्म सर्वसाधारण जनता की जिम्मेदारी लेने के लिए हुआ है । मैं एक गरीब परिवार में पैदा हुआ और बम्बई के इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट चाल मे गरीब लोगों की तरह ही बड़ा हुआ । मुझे आपकी शिकायते मालूम है । "खोती आपके खून का शोषण कर रही है । वह खोती की पद्धति विनष्ट की जानी चाहिए ऐसा होने पर आपको शान्ति एवं समृद्धि प्राप्त होगी । अपना ध्येय प्राप्त करने तक यह आन्दोलन आपको इसी तरह चालू रखना चाहिए ।[6]

खोती प्रणाली का उन्मूलन करने के लिए 1937 में ही डा0 आम्बेडकर ने बम्बई विधान सभा में एक बिल पेश किया । बिल के उद्‌देश्य और उनके समर्थन में तर्कों से जुड़े वक्तव्य में डा0 अम्बेडकर ने कहा कि – जब खोती प्रणाली सरकार को राजस्व देने के लिए खुत को बाध्य करती है तो छोटे असामियों के साथ दुर्व्यव्यहार, शोषण और उनके निकृष्टतम गुलामी में बदली है । बिल में खोती प्रणाली के उन्मूलन की माग की गई थी । और यह सरकार व वास्तविक खोतदार के जो भूमि पर खेती करता था के बीच सीधे सम्बन्धों की स्थापना करना चाहता था ।[7]

किन्तु वह काल देश मे स्वतंत्रता संघर्ष का काल था । जिसमें राजनीतिक स्वतत्रता की बात अधिक जोर–दार ढंग से उठायी जा रही थी । अन्य किसी भी माग की स्वीकृति करना सभव नहीं थी । वह भी जिससे राजनीतिक आन्दोलन में बाधा पड़ने का भय है । अम्बेडकर के इस प्रस्ताव से स्वतंत्रता संघर्ष की अगुवाई

कर रहे भूमिपति वर्ग व अन्य वर्गो के बीच खाई चौड़ी होने की सम्भावना थी । फलतः विधेयक अस्वीकृत हो गया ।

सविधान सभा को आल इन्डिया शिडूल्ड कास्ट फेडरेशन की ओर से दिये गये एक ज्ञापन मे डा0 अम्बेडकर ने कहा कि – "इसे जोतने वालो तथा भूमिहीनों का `खेती के लिये विशेष वित्तीय सहायता देने का प्रावधान का प्रस्ताव रखा । विभिन्न राज्य सरकारो द्वारा पारित किये गये विधायी उपायों में वस्तुतः छोटे असामियो के प्रति अनेको हानिकारक प्राविधान मौजूद है । ऐसा ही एक उदाहरण बाम्बे इन्फीरियर विलेज वतन एवोलिशन ऐक्ट 1858 है । इससे तमाम लोगों की भूमि छिन गयी ।[8]

डा0 अम्बेडकर भूमि पर आयकर के समान लगान लगाना चाहते थे । कारण, लगान व्यवस्था अराजकतापूर्ण थी । यह लगान वसूलने वालों की इच्छा पर निर्भर थी । जमीदारी प्रथा का सहजार्थ उनकी स्वेच्छाचारिता या निरंकुशता से था । वे जमीन पर आय के आधार पर लगान चाहते थे । डा0 जान मथाई की अध्यक्षता में बना कराधान जाच आयोग का प्रतिवेदन भी डा0 अम्बेडकर का ही समर्थन करता है । जमीदारी प्रथा, खोती प्रथा, महार, वतन, आदि को तुरन्त समाप्त करने की राय इस आयोग ने दी थी ।[9]

डा0 अम्बेडकर अछूतो की दशा से भली प्रकार परिचित थे । वे जानते थे कि अधिकाश अछूत भूमिहीन है और जिनके पास भूमि है तो भी बहुत कम है । उस पर वे अपना जीवन अवलम्बित नहीं रख सकते है । वे भारतीय कृषि समस्या को भारतीय अर्थव्यवस्था पर निर्भर मानते थे ।उनकी मान्यता थी कि इस समस्या को राष्ट्रीय विकास के प्रसग मे देखा जाना चाहिए ।

डा0 अम्बेडकर "सामूहिक खेती के पक्षधर थे । परन्तु इसकी व्यवस्था होना तात्कालिक परिस्थितियो में उन्हें कठिन नजर आ रहा था क्योंकि जमीदार कायदे कानून के उपर थे । सरकार उनका साथ दे रही थी । "महार वतन" के कारण उनकों आर्थिक शोषण चक्र का शिकार होना पड़ा । अपितु वे आत्म सम्मान से भी वचित हो गये । वे चाहते थे कि वतन भूमि महारो को दे दी जाये । इसके लिये उन्होने हड़ताल की धमकी भी दी थी ।[10]

महाराष्ट्र मे प्रमुख अस्पृश्य जाति महारो की है । इनकी अस्पृश्यता को देख कर परम्परा से उन्हें गाव के बाहर रखा जाता था । यह गाव के पहरेदार होते थे । महाराष्ट्र अलूतो–वलूतो के वर्ग मे इनकी गिनती थी । यह प्राय सेवक वर्ग था जिसको जीवन यापन के लिये कुछ भूमि या फसल का अंश दे दिया जाता था । परन्तु यह भूमि इनकी नही होती थी बल्कि यह मात्र इस पर कृषि करने के अधिकारी थे । कृषि के बाद मालिकाना भूमिपति वर्ग का था ।

डा0 अम्बेडकर ने महारो की हालात का बयान निम्न शब्दों में किया था – "महार महाराष्ट्र की सबसे प्रमुख अछूत जाति है । निम्न तथ्य महार व स्पृश्य हिन्दुओ के अधिकारो को परिभाषित करते हैं –

1 महार प्रत्येक गाव मे पाये जाते है ।
2 महाराष्ट्र के प्रत्येक गाव दीवारो से घिरे है । बारी–बारी जिसकी पहरेदारी महारों को करनी पड़ती थी ।
3 महारो के कुछ अधिकार भी थे । जिनमें वतन भूमि का अधिकार भी था ।

महारों के पास वतन भूमि का होना एक पुराना रिवाज था । जिसकी पुष्टि हिन्दु मुस्लिम अभिलेखो द्वारा की गयी थी । परन्तु अग्रेंजी सरकार ने इस भूमि पर बहुत अधिक कर भार लाद दिया था जिससे महारों पर मुसीबतें काफी ज्यादा बढ़ गयी । 1920 के दशक के आरम्भ से ही अम्बेडकर ने दर्शाया कि – क्रूर वतन

व्यवस्था के कारण ही महार जाति गुलामी की ओर अग्रसर हुयी । उन्होंने महार परिषद आयोजित कर निम्न मागे उसके सामने रखी थी ।

1 वतन प्रणाली का उन्मूलन किया जाये अर्थात प्रत्येक गाव में हिन्दुओं की गुलामी कर रहे महारो को अन्य नागरिकों की भाति आजाद किया जाये ।

2 महारो द्वारा की जाने वाली पुश्तैनी सेवा को सशर्त किया जाये ।

3 भूमि को स्थायी भूमि मानकर मालिकाना दिया जाये ।"[11]

सन् 1928 मे डा0 अम्बेडकर ने बम्बई विधान सभा के ऊपरी सदन के सदस्य की हैसियत से हेरीडेटरी आफिसेज ऐक्ट 1874 मे कुछ परिवर्तन करने के लिये एक सशोधन बिल पेश किया । उन्होने वतनदारो जिन्हे निम्न श्रेणी का किसान कहा जाता था कि कठिनाइयो का सक्षिप्त ब्यौरा सूचीबद्ध किया ।

1 यद्यपि वतनदारों का कार्य, सेवा, समय और मेहनताना अनिश्चित था तथपि वतनदारो को सरकारी नौकर माना जाये ।

2. वतनदारों का पूरा परिवार न केवल सरकार की अपितु ग्रामीण अधिकारियों तथा पाटिल और कुलकर्णी की भी, किसी भी समय सेवा के लिये मजबूर थे ।

3 चूकि वतनदारो के अपने से ऊपर की श्रेणी वाले को संतुष्ट करना होता है, जो भूमि हथियाने के लिये आजाद थे । अत उनके वतन की कोई सुरक्षा नहीं थी।

4. महारो की शिक्षा व मेहनताना के अधिकार को मान्यता दिया जाये ।

यह बिल सेलेक्ट कमेटी द्वारा पास नहीं हो सका तब 1937 में अम्बेडकर ने नया बिल पेश किया । बिल के तीन लक्ष्य थे । पहला वतन का इच्छानुसार त्याग, वतन पर पारिश्रमिक का नियमन, वतनदारों की सेवा का स्पष्ट नियमन ।"[12]

डा0 अम्बेडकर सतत् दलितो की आर्थिक आजादी के लिये भूमि पर मालिकाने की मॉग उठाते रहे । वे जानते थे कि आज भूमि ही आर्थिकता की रीढ़ है और यदि भूमि अधिकार दलितो को मिल जाये तो उनकी आर्थिक दशा मजबूत हो सकती है । दलित अधिकाशत खेती तो करते थे परन्तु मालिकाना उनका न होने की वजह से उपज का अधिकांश भाग प्राप्त नहीं कर सकते थे ।

डा0 अम्बेडकर ने अनेक अवसरों पर भूमिहीन, श्रमिकों, खोती प्रथा, महार वतन, छोटे कृषक, सयुक्त कृषि, जमींदारी उन्मूलन, भूराजस्व, महिला श्रमिक, बाल श्रमिक काम के घन्टे वाले श्रमिक आदि पर अपने मौलिक चिन्तन एवं नूतन चिन्तन से सबका ध्यान आकृष्ट किया था । जो व्यक्ति यह विश्वास करते हैं कि ब्रिटानिया सरकार को अपने यहा श्रमिक सहिता बनाने में जल्दी नहीं करनी चाहिये बल्कि ब्रिटानिया श्रमिक सहिता की भाति प्रतीक्षा करनी चाहिये उनको डा0 अम्बेडकर ने स्मरण कराया था कि "इतिहास हमेशा एक उद्धरण नहीं होता है । बल्कि वह प्राय. चेतावनी भी होता है । डा0 अम्बेडकर ने उन लोगों को भी समझाया जो यह मत व्यक्त कर रहे थे कि भारत मे उद्योग बल्यावस्था में हैं फलत उन पर श्रमिक सहिता का भार नहीं डालना चाहिये । अव्वल तो श्रमिक संहिता भार नहीं है । दूसरे इनके होने से मालिक एव श्रमिक दोनो के न्यायोचित सम्बन्धों का विकास सम्भव है । यही तो वास्तविक अवस्था है जब श्रम कानून बनकर लागू हो जाना चाहिये ।"[13]

डा0 अम्बेडकर समानता और स्वतत्रता पर बहुत जोर देते थे ।वे समानता को सामाजिक सिद्धान्तों के आधार पर विचार करते थे । वे धन के समान वितरण की समानता से समानता का अर्थ नहीं लेते थे । वे इस सम्बन्ध में लास्की को याद करते है । सब को अवसर मिले । यह तो कदापि सम्भव नहीं है कि सब समान होने का एक सार्वजनिक फार्मूला तैयार कर लें । आवश्कताओं तथा शक्ति के अनुसार सदैव परिवर्तन आते रहेंगे । गाधी जी यन्त्रों के विरूद्ध थे और उसे शैतान

की सृजन शक्ति मानते थे ।[14] वे पश्चिमी सभ्यता को शैतान का सृजन कहते थे । डा0 अम्बेडकर का मानना था कि लोकतान्त्रिक समाज यत्रीकरण के प्रतिकूल नहीं हो सकता । आधुनिक सभ्यता का नारा यन्त्र है । यन्त्रो के कारण बुराइंया पैदा नही हुयी हैं और न आधुनिक सभ्यता की वजह से, वे गलत सामाजिक सरचना का प्रतिफल हैं । गांधी प्रकृति की ओर ले जाना चाहते थे ।

यदि स्वतत्रता दैवी अधिकार है तो सत्याग्रह (हड़ताल) करने का अधिकार भी दैवीय है । उद्योग प्रवाद बिल्स के द्वारा हडताल को गैर कानूनी करार देने की बात थी । डा0 अम्बेडकर ने इस क्रूर, निर्दय, और छलप्रपंच भरे पड़यन्त्र का पर्दाफाश किया और आर्थिक शोषण चक्र को इस बिल की सहायता से प्रभावी बनाने के षडयन्त्र को छिन्न–भिन्न कर दिया ।[16] उसके द्वारा पूजीपति ताकतों को मनमानी करने का अधिकार मिल गया । डा0 अम्बेडकर ने 7 नवम्बर 1938 को हड़ताल करवायी थी जो जबर्दस्त सफल रही ।

वह हडताल के हिमायती थे परन्तु उन्होने 1929 में बम्बई कपड़ा मिलो में गिरनी कामगार यूनियन द्वारा की गयी हडताल का उसमें दिखावटी प्रवृत्ति के कारण विरोध किया था । उसके दलितो के लिये कुछ नहीं था ।[17] 1935 के चुनाव के आधार पर चुनाव लड़ने के लिये डा0 अम्बेडकर ने 1936 मे "इन्डिपेंडेन्ट लेबर पार्टी" का गठन किया । जिसके घोषणा पत्र मे भूमिहीनों गरीब काश्तकारो, किसानो और मजदूरो की अत्यावश्यक जरूरते और शिकायते प्रस्तुत की थी । घोषणा पत्र में उन्होने कहा कि – "हमारे दल का यह ठोस मत है कि खेती की भूमि के टुकड़े करना और उस पर बढती हुयी जनसख्या का बोझ पड़ना, ये सही अर्थो मे किसानों की दरिद्रता के कारण है । पुराने धन्धे फिर से चलाना और नये शुरू करना यही सुधारात्मक उपाय है । जनता की उत्पादन शक्ति और उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि हो, इसलिये तकनीकी शिक्षा विषयक धन्धे, और जहां जरूरत हो वहां शासन के स्वामित्व और नियंत्रण में चलने वाले धन्धे शुरू करने का बड़ा विस्तृत कार्यक्रम हम

हाथ मे लेने वाले है । काश्तकारो को मालिको द्वारा चलाये गये शोषण से रक्षा प्राप्त हो, मालिक उन्हे भगा न दे इसलिय काश्तकारो को सुरक्षा का आश्वासन दिया गया था । श्रमिको के हित मे कानून बनाये जायेगे, नौकरिया देना, पदच्युत करना, कारखानो मे बोनस देना काम के घन्टे नियत करना, छुट्टी देना, आवास व्यवस्था करना, आदि हेतु आवश्यक कानून बनाये जायेगे । बेकारी से मुक्ति के लिये भूमि हीनो को भूमि देकर उपनिवेश स्थापित किये जायेगे ।"[18]

11 नवम्बर 1936 को वह यूरोप के लिये निकल गये । जाने का मूल मकसद दो था । प्रथम – सिख धर्म अपनाने पर दलितो की राजनीतिक दशा क्या होगी । दूसरे–अपनी पार्टी का प्रचार कर धन व्यवस्था पर ब्रिटानी कूटनीतिज्ञों से विमर्श करना था।[19] यूरोप जाने से पूर्व उन्होने टाइम्स आफ इन्डिया मे साक्षात्कार मे कहा कि 'स्वतत्र मजदूर दल' जनता को लोकतत्र और उसकी पद्धति कि शिक्षा देगा,उसके सामने योग्य मत प्रणाली रखेगा और विधानमडल की राजनीतिक सघटना के लिये प्रयास करेगा ।[20]

जवाहर लाल नेहरू ने दल के प्रगतिशील घोषणापत्र पर कहा कि इस घोषणा पत्र की वजह से जो नया वातावरण बना है वह लोगो के मन पर दूर गामी परिणाम डालेगा। मुझे ऐसा लगता है उससे दलितो की आर्थिक समस्या हल करने मे सहायता मिलेगी।[21] हिन्दू महासभा ने अनुरोध किया कि ग्वालियर और इन्दौर के महाराज भी त्रावणकोर के महाराज के कदम पर कदम रखकर अस्पृश्यों के लिये मदिर खोले व अर्थ मे भागीदारी दे ।[22]

डा0 अम्बेडकर ने अपनी बात बम्बई के कमिश्नरो के समक्ष रखते हुये कहा कि "शक्ति द्वारा औद्योगिक शान्ति संभव नहीं है । कानून के माध्यम से औद्योगिक शाति का प्रयास किया जा सकता है परन्तु गारन्टी नहीं दी जा सकती है। यदि सामाजिक न्याय को औद्योगिक शान्ति का आधार बनाया जाता है तो उसके परिणाम

सर्वथा अनुकूल हो सकते हैं, क्योकि सामाजिक न्याय स्वामी और श्रमिक दोनो का हितचिन्तन करता है। यह लडाई तो इतनी सी है कि– स्वामी चाहता है कि वह श्रमिक को कम से कम देकर अधिक से अधिक लाभ कमाये। और श्रमिक की मशां है कि उसको जीवनयापन के लिये यथोचित धन मिल जाये । मालिक का दृष्टिकोण पूजीवादी होता है और श्रमिक का सदा समाजवादी। जब पूंजीवाद, श्रमिकवाद या समाजवाद को निगलने का प्रयत्न करता है तो स्वामी और श्रमिक आमने सामने आ जाते हैं। श्रम के शोषण मे परिणामस्वरूप श्रमिक को आर्थिक विषमताओ से ही नहीं मानसिक परेशानियो से भी जूझना पडता है जिससे अशान्ति पैदा होती है जो कि हडतालो के रूप में सामने आती है। आखिर पूजीपति के सोचने का आधार यह क्यो नही बनता है कि वह और श्रमिक दोनो सामाजिक प्राणी हैं और उत्पादन दोनो के सयुक्त प्रयत्नो का परिणाम है। श्रम भी तो पूँजी है । वह श्रम–पूजी को नकारना क्यो चाहता है ।[23]

12 फरवरी 1938 को मनमाड़ मे रेल मजदूरो की बडी परिषद को सम्बोधित करते हुये उन्होने कहा कि–"किशोरावस्था में मैने अपने रिश्तेदारो को खाने के डिब्बे पहुँचाने का काम किया था अत मजदूर समस्याओ की कुछ जानकारी मुझे है। अब हमने आर्थिक कटिनाइयो को दूर करने की शुरूआत की है। आज तक हम दलित अस्पृश्य के रूप मे इकटठ़ा होते थे आज हम मजदूर के रूप मे इकटठा हैं आज तक माना जाता था कि मैं देश का दुश्मन हूँ । अब माना जाता है कि मैं मजदूरों का दुश्मन हूँ । वास्तव में ब्राह्मणशाही और पूंजीवाद यही दो मजदूरों के दुश्मन है। आगे उन्होने कहा– मैं ब्राह्मणों को मिली हुयी सत्ता, विशेषाधिकार, व कल्याण के रूप मे ब्राह्मणशाही का प्रयोग नहीं करता । मेरे अनुसार स्वतंत्रता, समता, बधुंता का जहा भी अभाव है वही ब्राह्मणशाही है । अर्थात ब्राह्मणशाही का प्रभाव सभी वर्गो तक है। ब्राह्मणशाही के उत्पादक ब्राह्मण ही है तथापि इसकी सीमायें ब्राह्मण वर्ग से परे है । ब्राहाणशाही का दुष्परिणाम केवल सामाजिक अधिकार,, अन्तर्जातीय विवाह, और सहयोग पर ही नहीं होता । बल्कि उसने नागारिक अधिकारो को भी

प्रतिबन्धित किया है। ब्राह्मणशाही के सर्वदर्शी होने के कारण आर्थिक क्षेत्र के अवसरों पर भी उसके परिणाम होते है ।[24]

हमारे दलित वर्ग को जो मौका मिलता है वह काफी सीमित है । ऐसी अनेक अवसर होते है जहां अस्पृश्यता के कारण अवसर नहीं मिलता है । कपड़ा मिलों के कुछ विभागो मे अस्पृश्य नौकर नही लिये जाते । रेलवे में वे गैगमैन के रूप में सडते हैं । कुली भी नहीं बन पाते हैं । जब तक तात्विक दृष्टि से खुला अन्याय और पक्षपात है तो इनके पराभव के बिना मजदूर एकता कैसे सम्भव है । अतः मजदूरों में एकता लानी है तो उन्हें ब्राह्मणशाही का उन्मूलन करना चाहिये तभी सच्ची मजदूर एकता स्थापित होगी ।"[25]

इसी बीच औद्योगिक कलह विधेयक सितम्बर 1938 में बम्बई विधान सभा में विचार हेतु प्रस्तुत किया गया । अम्बेडकर और जमनादास मेथा ने उसका कड़ा विरोध किया था । जिस अर्थ में यह है वह रक्त के धब्बों से भरा हुआ है, रक्त पिपासु है, उन्होने बताया कि – हड़ताल करना एक दीवानी अपराध है । फौजदारी गुनाह नहीं मनुष्य की इच्छा के विरूद्ध उससे काम कराना गुलामी है । अन्ततः लगभग 60 मजदूर सघो ने मिलकर देश में हड़ताल कर दी । जमनादास मेंथा, अम्बेडकर, डागे, पेरूलेकर,, मिरजकर, निभकर,, आदि प्रमुख नेता विरोध मे एक जुट हो गये । हडताल से पूर्व 6 नवम्बर 1938 को एक प्रचन्ड सभा 80 हजार मजदूरों की अम्बेडकर ने की । अन्ततः 7 नवम्बर 1938 को हड़ताल रही । इस हड़ताली प्रकरण से अम्बेडकर की ख्याति मजदूर नेता के रूप में देश में स्थापित हो गयी ।"[26] अन्ततः स्वामी सहजानन्द द्वारा कांग्रेस से स्वतत्रता पर सहयोग के प्रश्न पर डा0 अम्बेडकर ने कहा कि "कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिये पुकारा होता तो मैं उस दल से सहयोग अवश्य करता लेकिन यथार्थ ऐसा नहीं है । कांग्रेस दल अपने हाथ में आये सविधानात्मक शासनतंत्र को पूंजीवादी और निरन्तर स्वार्थ में

लिप्त लोगो के कल्याण के लिये ही कार्यान्वित कर रहा है । उसने किसान और मजदूर के कल्याण की बलि दे दी है ।"[27]

डा0 अम्बेडकर ने सामाजिक – आर्थिक समस्याओं को अनुसन्धानपरक नजरिये से जाचा – परखा । 'द प्राब्लम आफ रूपी – इट्स ओरिजिन एन्ड इट्स सालूशन' ने अर्थशात्रियो को सोचने को मजबूर कर दिया कि – "यदि मुद्रा स्फीति तथा अन्दरूनी मूल्य असन्तुलन दूर करना है तो उनका सुझाव था कि टकसाल बन्द कर दी जाये । मुद्रा मे लचीलेपन के लिये सोने को मूल्य का मानदन्ड बनाना चाहिये । इसी आधार पर उन्हें हिल्टन यंग कमीशन में गवाही देने हेतु बुलाया गया था । भूमिका मे एडविन केनन ने लिखा कि – इसमे अनेक नयी स्थापनाये है ।"[28]

इसके द्वारा अम्बेडकर ने अग्रेजों की पोल खोली थी । जिन्होंने मुनाफा कमाने की दृष्टि से पौन्ड के सम्बन्ध का नया षड़यन्त्र रचा था । जिससे बेचारा रूपया अपना वास्तविक मूल्य नहीं पा सका था । जिससे अने संकट आये और रूपया अपनी क्रयशक्ति को गवॉं बैठा था । अम्बेडकर के इस मत के कि "दो देशो की मुद्रा के एक्सचेन्ज में अनुपात सन्तुलन होना आवश्यक है ।"[29] चैम्बरलेन समिति व अग्रेंज सरकार इससे सहमत नहीं थी । उच्च एक्सचेन्ज रेट उद्योग के लिये लाभप्रद होगी, क्योकि उनको यन्त्र चाहिये परन्तु निम्न एक्सचेंज रेट के द्वारा उपभोक्ता के लिये महगांई आयेगी । इस आधार पर उन्होंने अन्त तक सघर्ष किया और अन्तत ब्रिटिश सरकार को पुनर्विचार हेतु बाध्य कर दिया । इस पुस्तक की 'दी टाइम्स' पत्र ने काफी प्रशसा की इसमें उन्होंने स्वर्णमुद्रा–मान की वकालत की थी । साथ ही रूपये की अपरिवर्तनीय स्थिति का परमर्श दिया था ।[30]

डा0 अम्बेडकर का मानना था कि हड़ताल और कृषक आन्दोलन सदैव उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाने वाले होते हैं । अम्बेडकर की दृष्टि में – गांधी जी की 'ट्रस्टीशिप थ्यिरी' एक मूर्खता थी । "उनकी दृष्टि में गांधी जी पुन: गांव की ओर

ले जाना चाहते थे । जबकि विकास का सूर्य निकलने के बाद पीछे नहीं लौट सकता, गाव शहरोन्मुखी होगें, सुविधाओं को सजायेगें और विश्व विकास के रथ के साथ चलने का प्रयास करेगे । यन्त्र ने मानव चिन्तन गति को त्वरण प्रदान कर दिया है और उसे सोचने हेतु नवीन आयाम दिये है । यहा तक कि मजदूरी तय करने हेतु उसने मालिक से बराबरी के स्तर पर बात की थी – न कि मालिक व दास के रिश्ते से । मालिक का विशेषाधिकार सामान्यीकरण की ओर प्रवृत्त हुआ और श्रमिक का दासत्व समानता की ओर बढा । डा० अम्बेडकर इस नव जीवन का आधार हडताल के अधिकार को मानते थे । जिसे लेकर वह बराबर सतर्क रहे ।"[31]

अपनी अन्य पुस्तक "ब्रिटिश भारत मे राजकीय पूजी का विकास" मे डा० अम्बेडकर ने 1833 के चार्टर ऐक्ट से लेकर साम्राज्य प्रणाली के अन्तर्गत पूंजी के प्रबन्धन का परिचय दिया था । उनका मत था कि – इस बात से सभी परिचित है कि – भारतीय नीति – निर्धारण ब्रिटिश कारखानों के मालिकों एव उद्योगपतियों के हितो को दृष्टि रखकर किया जाता है । यह पुस्तक केन्द्रीय सभा व विधान सभा सदस्यों में काफी लोकप्रिय हुयी थी । वे वर्ट्रेड रसेल से प्रभावित थे । उनसे सामाजिक जीवन के मानसिक आधार का विचार ग्रहण किया था । वे सामाजिक सक्राति के साथ–साथ मानसिक सक्रान्ति को भी लेकर चलना चाहते थे । वे खेती के राष्ट्रीयकरण की वकालत करते थे । अतिवादी विज्ञानवाद का विरोध करते थे । मिश्रित व्यवस्था की हिमायत करते थे ।"[32]

डा० अम्बेडकर के विचारों की नवीनता ही उनकी क्रान्ति धर्मित थी । उनका मत था कि निर्धनता की समस्या का हल समाजवाद द्वारा पाया जा सकता है । डा० अम्बेडकर ने यथा सम्भव भारतीय संविधान में शामिल करवाने की चेष्टा की उनका मत था कि – प्रस्तावित संविधान न केवल राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना करेगा अपितु आर्थिक लोकतत्र की आकांक्षाये भी पूरी होगी ।"[33] उन्होने सरकारी

पारम्परिक व्यवस्था का आधार कृषि मे वह परिवर्तन चाहते थे उनका आर्दश सहकारिता था परन्तु वह विकल्प भी रखते थे । उनके विकल्पों मे सर्वप्रथम खोती प्रणाली का उन्मूलन था । इस प्रणाली को वह एक शोषक, और बिना अधिकार के सेवक वाली अवधारणा की भाति स्वीकार करते हैं । इसके उन्मूलन के लिये उन्होने जन जागरण और विधिक दोनो उपायो का सहारा लिया ।

वह महार वतन प्रणाली मे भी सुधार चाहते थे । वतन भूमि पर खेती महार करते थे परन्तु उपज का बडा हिस्सा जागीदार के हाथ मे चला जाता था । क्योंकि महार उस भूमि के स्वामीं नही थे । मालिकाना की एवज में उपज का बड़ा भाग परजीवी वर्ग को देना पडता था । वह इस भूमि पर महारो को मालिकाना दिलाना चाहते थे इससे महारो के शोषण मे कमी आ जाती ।

उनका भूमि हेतु एक अन्य विकल्प भी था । वे जानते थे कि आज भूमि ही जीवनाधार है और भारतीयों के मन में भूमि के लेकर अपूर्व लगाव है । वे बिना भूमि के नही रह सकते । इसके लिये उन्होने अन्यत्र बसाने का विकल्पतलाशा । अन्यत्र उन्होंने खाली भूमि की तलाश की जहा वे दलितों का बसाकर उन्हें भूमि देकर उनके हाथ में अर्थ समृद्धि देना चाहते थे । वे बराबर सरकार से मांग करते थे कि – देश की खाली भूमि पर "दलितो को बसाकर उन्हे इसका मालिकाना दे दिया जाये ।" भूमि विकास के लिये सहयोग के तौर पर वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाये ।

वह बडे काश्तकारों पर आयकर लगाने के पक्षधर थे ।वे जानते थे कि भूमि ही आज देश की आय का साधन है तो जो परजीवी की भाति बहुत सारी भूमि अपने पास रखे है और उससे ढेर सारी आय प्राप्त कर रहे हैं उन्हें अवश्य आयकर देना चाहिये ।

वे समानता के साथ–साथ तीव्र विकास भी चाहते थे । तीव्र विकास से ही अतिरिक्त रोजगार पैदा हो सकता था । जिसपर दलितों की नियुक्ति सम्भव थी । वस्तुत दलित तमाम रोजगारो मे अपनी अस्पृश्यता के कारण रोजगार नहीं प्राप्त कर पा रहे थे । परन्तु "तीव्र विकास" में मजदूरो की आवश्कता स्वत समझौता करा लेती । यह तीव्र विकास यन्त्रो के द्वारा ही सम्भव था इसलिय वह यन्त्रीकरण चाहते थे । जबकि गाधी यन्त्रीकरण को शैतान की व्युत्पत्ति बताते थे । गांधी प्रकृति की ओर ले जाना चाहते थे जिसमें दलित का स्थान कमजोर था।

अम्बेडकर स्वतत्रता की तरह सत्याग्रह (हडताल) को भी दैवी अधिकार मानते थे । वे हडताल के हिमायती थे । हडताल के माध्यम से मजदूरो के पास पूंजीपति से समानता के आधार पर बात करने की शक्ति प्राप्त होती है । इससे मजदूरों को अतिरक्त लाभ मे हिस्सेदारी प्राप्त होती है अन्यथा पूंजीपति उसको मार ले जायेगा।

वह श्रमिको के हित की बात करते थे । श्रमिकों के अच्छे आवास, कानूनी अधिकार के पक्ष में उनका र्तक था कि अभी शुरूआत है और यदि हमने अभी से अपने मानक तय कर लिय तो भविष्य के लिये हमारी नींव मजबूत होगी । साथ ही मजदूर के कानूनी अधिकार प्रतिगामी न होकर अग्रगामी होगे । इसे हमें स्वीकार करना चाहिये । इन सारी बातो का विवरण वह अपनी पार्टी के घोषणा पत्र में करते है । जिसके कारणयह घोषणा पत्र समय से आगे का घोषण पत्र बन जाता है । इसी अवधारण से प्रेरित हो वह राष्ट्रीयकरण के हिमायती थे । अन्तत वे मिश्रित अर्थव्यवस्था के पोषक थे । इसी कारण उन्होंने 1938 हड़ताल – बिल का विरोध किया था ।

उनका मानना था कि शक्ति द्वारा औद्योगिक शान्ति सम्भव नहीं है । यह सामाजिक न्याय के आधार पर ही सम्भव हो सकती है । सामाजिक न्याय स्वामी और श्रमिक दोनो को हित चिन्तन करता है और ट्रस्टीशिप के माध्यम से नहीं हो

सकता है । श्रमिक की आर्थिक और मानसिक परेशानिया से बचाने के लिये उद्योगपति वर्ग को आगे आना होगा । दोनो ही समाज के अंग है झगड़ा मात्र अतिरिक्त लाभ को लेकर है तो समाजिक न्याय ही इसका बटवारा कर सकता है शक्ति नही ।

डा0 अम्बेडकर भारतीय दरिद्रता का आधार ब्रिटानी नीतियो को मानते थे । कहना न होगा कि जो तत्व अम्बेडकर को राष्ट्रद्रोही घोषित करते है उन्हें उनकी अर्थमीमासा अवश्य देखनी चाहिये । उन्हे उनके और मु0 लीग सम्बन्धों को अलग से देखना चाहिये । डा0 अम्बेडकर आधुनिकता के तत्वों व विचारों को स्वीकार करते है । वे औद्योगीकरण, यत्रवाद, रोजगार की अवधारणा, हड़ताल, कृषक आन्दोलन, सामूहिक खेती, राष्ट्रीयकरण, मालिकाना आदि की वकालत करते थे । वे "लोकतत्र' की मजबूती के लिये समाजवाद चाहते थे ।"

विवरणिका

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – पृष्ठ – 128 – जगतराम एन्ड संस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।
2 वही पृष्ठ – 129 ।
3. वही पृष्ठ – 129 ।
4 वही पृष्ठ – 130 ।
5. वहीं पृष्ठ – 131 ।
6 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 127–128 ।
7. स्माल होल्डिंग्स इन इन्डिया – डा0 अम्बेडकर – पृष्ठ – 28 ।
8. थामस मैथ्यू सावन्तराम अशोक भारती – क्राति प्रतीक अम्बेडकर – धम्मबुक्स 1994 – नई दिल्ली पृष्ठ – 53 ।

9 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – पृष्ठ – 136 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

10 वही पृष्ठ – 137 ।

11 थामस मैथ्यू सावन्तराम अशोक भारती – क्राति प्रतीक अम्बेडकर – धम्म्बुक्स 1994 – नई दिल्ली पृष्ठ – 50–51 ।

12 वही पृष्ठ – 52 ।

13 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – पृष्ठ – 132 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

14 यग इन्डिया – गाधी – जनवरी 1921 – अहमदाबाद ।

15 काग्रेस और गाधी – डा0 अम्बेडकर – पृष्ठ – 84 ।

16 राइटिग्स एन्ड स्पीचेस – बसन्त मून (डा0 अम्बेडकर) पृष्ठ – 201 ।

17 थामस मैथ्यू सावन्तराम अशोक भारती – क्राति प्रतीक अम्बेडकर – धम्माबुक्स 1994 – नई दिल्ली पृष्ठ – 55 ।

18 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 272 ।

19. वही पृष्ठ – 273 ।

20 टाइम्स आफ इन्डिया – 28 अक्टूबर 1941 – बम्बई ।

21 टाइम्स आफ इन्डिया – 28 अक्टूबर 1941 – बम्बई ।

22 हिन्दु हेराल्ड – 20 नवम्बर 1936 – बम्बई ।

23 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – पृष्ठ – 133 –134 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

24 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 289 ।

25 टाइम्स आफ इन्डिया – 14 फरवरी 1938 – बम्बई ।

26. धनजंय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र – पापुलर प्रकशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 297 – 300 ।

27 जनता – 31 दिसम्बर – 1938 ।

28 दी प्राब्लम आफ रूपी – प्रीफेस – पृष्ठ – 6 ।

29 माइनूट्स आफ ऐविडेन्स – 11 फरवरी 1949 – बम्बई ।

30 टाइम्स आफ इन्डिया – 11 फरवरी 1949 – बम्बई ।

31 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – पृष्ठ – 134 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

32. वही पृष्ठ – 138 – 139 ।

33 वही पृष्ठ – 140 ।

34 वही पृष्ठ – 141 ।

(घ) राजनीतिक चिन्तन

डा० अम्बेडकर ने जब राजनीति मे प्रवेश किया उस समय भारत देश राजतत्र, सामन्तवाद, अभिजात्यवाद, कुलीनवाद से ग्रस्त ब्रिटिश साम्राज्य का अंग था । ब्रिटेन की महारानी भारत की भी महारानी थी । साम्राज्यवाद औद्योगिक क्राति के प्रति फलस्वरूप आया था । ब्रिटिश सरकार इंग्लैन्ड में लोकतात्रिक थी जबकि भारत मे वह पूर्णतया साम्राज्यवादी थी । ब्रिटेन में रानी व लोकतंत्र दोनों था जब कि भारत में मात्र साम्राज्यवादी राजतत्र था । प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था । यद्यपि युद्ध का स्वरूप सतत अभिशाप का होता है परन्तु युद्ध से अनेक क्रातिकारी परिवर्तन भी सम्पन्न होते है । सकारात्मक पहलू भी होते है । प्रथम विश्वयुद्ध की महाविभीषिका की कोख से ही लोकतत्र की चेतना का अप्रतिम विकास हुआ था । इस लोकतांत्रिक चेतना ने विश्व को एक नवीन दृष्टि प्रदान की थी । युद्ध ने उन देशों को सोचने का नया मौका प्रदान किया जो साम्राज्यवाद के शिकार थे । युद्ध मे सैन्य–असैन्य माध्यमो से जनता का सम्पर्क विश्व की अन्यतम लोगों से हुआ जिससे जनता मे भी एक नवीन चेतना का आगमन हुआ । यह चेतना थी समता की, समरूपता की और एकता की । "भारत देश में यह समता की चेतना कुछ अधिक गहरी थी क्योकि यहा एक वर्ण ऐसा था जो दोहरी शासन व्यवस्था की मार झेलता हुआ (राज्य और समाज के सत्ताधारी उच्च वर्ग) अन्दर ही अन्दर मृत्यु के कठोर और विष बुझे अदृश्य तेजों का अनुभव करता–करता अपनी सवेंदनशीलता खो चुका था और पाषाणवत होकर हर आने जाने वाले के द्वारा ठुकराया जा रहा था । "(1)

स्वतत्रता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है । यह मत्र जनता व उसके राष्ट्र की आवाज बन गया था । काग्रेस की स्थापना हो चुकी थी, गाधी जी दक्षिण अफ्रीका से वापस भरत आ चुके थे । गाधी जी संघर्ष के नये अस्त्रों को साथ लाये थे । अंग्रेज सरकार भी इस नवीन उत्साह, उन्माद व चेतना को बड़े करीब से देख

रही थी । इन्ही परिस्थितियो मे डा0 अम्बेडकर का उदय भारत के राजनीतिक क्षितिज पर होता है । जो कि देश के पढ़े–लिखे लोगो मे आयी बहुमुखी चेतना के दलित प्रतीक थे ।

"डा0 अम्बेडकर एक समतावादी राजनेता थे जो जीवन को चहु ओर से समुन्नत बनाना चाहते थे । उनकी राजनीति मानवतावादी आधार पर आधृत थी । वे दलित समाज के प्राणदाता थे । वे राज्य की नीति को जीवन की नीति से जोड़कर एक नवीन पन्थोन्मुखी बनाना चाहते थे । उनकी राजनीति मानव नीति थी, वे समग्र समाज को समता, स्वतन्त्रता और भातृत्व भावनात्मक समाज देना चाहते थे ।"[2]

"वे जन तान्त्रिक व्यवस्था के जबर्दस्त समर्थक थे । परन्तु जनतत्र बहुसख्यक के मतो पर निर्णय लेता है और इस निर्णय प्रक्रिया मे परम्परा से नकारे गये लोगो को स्थान मिलना सम्भव न था । अत दलितों को उनका अधिकार दिलाने के लिये उन्होंने हिस्सेदारी की माग की । परम्परा द्वारा नकारे गये एक समूह को मानवीय अधिकार दिलाने के लिये उन्होने जो आन्दोलन किये जो संघर्ष किये और धर्म और परम्परा को जो गवेषणापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया वह अपने आप में विशिष्ट है । वे 1917 से लगातार हिस्सेदारी की मांग कर रहे थे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जब तक दलितो को राजनीति मे साझेदारी प्राप्त नहीं होगी तब तक उन्हें उनके अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते है ।"[3]

"बाबा साहेब ने अस्पृश्य और दलितों के लिये जो संघर्ष किये हैं उनकी मुक्ति हेतु जो दर्शन प्रस्तुत किया है वह किसी जाति या वर्ण तक सीमित नहीं है । वे एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें धर्म, राज्य, सत्ता, पूंजीवाद, पौरोहित्यवाद आदि द्वारा स्त्री और पुरूष का शोषण समाप्त हो जाये ।"[4]

उनके समग्र राजनीतिक विचारों के केन्द्र में मनुष्य है । इस मनुष्य की स्वतंत्रता को नष्ट करने वाले आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक बन्धनों

के विरोध मे वे अपने विचार प्रस्तुत करते हैं । उनका राजनीतिक दर्शन व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बन्धों से, परस्पर अनुभव और एहसास के साथ जुडा हुआ है ।"[5]

"किसी भी जाति या समुदाय के अभिजन अपनी जाति एव समुदाय की उन्नति मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है क्योकि उनकी प्रास्थिति एव शक्तिया इतनी व्यापाक होती है कि वे अपने वर्ग के लोगो की सहायता कर सकते हैं । उनसे से यह भी अपेक्षा भी की जाती है कि वे अपने समुदाय की प्रगति में सहायक बनें । दलितों के अभिजन भी इसके अपवाद नहीं हो सकते हैं । चूकि अभिजन अपने–अपने क्षेत्रो मे मान्यता प्राप्त एव प्रतिष्ठित सदस्य होते हैं । अत दलित उनसे यह अपेक्षा करते है कि अभिजन उनके विकास में सहायक सिद्ध होगें ।"[6]

डा0 अम्बेडकर दलितो मे काफी सम्मानित थे । उच्च शिक्षित थें, कठिन परिस्थितियों से गुजरकर सम्भ्रान्त बन गये थे । इस दशा में बाबा साहेब का प्रभाव भी उनके समाज पर एक अलग तरह का था । कतिपय अभिजनों के विषय में यह अवधारणा प्रचलित है कि "अभिजन श्रेणी में आने के बाद परकीकृत हो जाता है और अपने उद्‌भव स्थल के प्रति सचेत न होकर दायित्वहीन बन जाता है ।"[7]

हरिजन अभिजनों के विषय मे सच्चिदानन्द का मत है कि हरिजनो में से एक शिक्षित अभिजन उभर कर आता है, यह शेष समुदाय के लिये एक सन्दर्भ समूह तथा भावी परिवर्तनो का अभिकर्ता बन सकता है, दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो पाता । अभिजन पद प्राप्ति के बाद वह अपने भूतकाल निम्न उत्पत्ति एवं जाति सम्बन्धी सीधी बातो को भूलना चाहता है, हरिजन अभिजन अपने समुदाय की अपेक्षा अन्य उच्च वर्गो के निकट आना चाहता है ।"[8]

डा0 भीमराव अम्बेडकर ने अपनी पृष्ठभूमि को त्यागा नहीं उन्होने उस पृष्ठभूमि को उपरि भूमि बनाने का प्रयास किया । "वस्तुत मानवता की अन्तिम सीढ़ी वह वर्ग था जिसे गांधी और अम्बेडकर दोनों ने दलित नाम दिया था । (

डिप्रेस्ड कास्ट) ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे इनका शोषण उच्च वर्गो द्वारा हमेशा हाता रहा है ।"[9] "उन्होने मनुस्मृति को अग्नि के हवाले किया वेदों की आलोचना की और उन सभी ग्रन्थो की कुछ आलोचना की जिनको हिन्दू धर्म ईश्वर प्रदत्त मानता था । यह उनकी राजनीतिक रणनीति थी । जिसने सवर्ण हीं नहीं तत्कालीन सरकार का भी ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया और अवर्णो को राजनीति मे सहभागिता के लिये विचार किया ।"[10]

"डा0 भीमराव अम्बेडकर की इस विरोधात्मक रणनीति को हम "मूकनायक" पत्र के सम्पादन में देख सकते हैं । 1920 में इसकी स्थापना कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति के आर्थिक सहयोग से की गयी थी ।"[11] मूकनायक एक मराठी पत्र था जो कि अछूतो को समर्पित था ।" "इसके प्रथम 12 सम्पादकी स्वय अम्बेडकर ने लिखे है जिसमे से मात्र छ ही प्राप्त होते हैं ।"[12] डा0 अम्बेडकर प्रथम सम्पादकीय मे लिखते है कि – शिक्षा पर ब्राह्मणो का एकाधिकार है जिससे वह नौकरियों में पहुच जाते है जबकि अन्य जाति के लोगों ने शिक्षा को महत्व नहीं दिया फलत: वह पिछडे ही रह गये ।" [13] अपने दूसरे सम्पादकीय में वह लिखतें हैं कि स्वा सरकार पर्याप्त नहीं है बल्कि एक अच्छी सरकार चाहिये जो कि समाज के सभी वर्गो के विकास के लये प्रतिबद्ध हो ।"[14] "अपने अगले अक मे अम्बेडकर लिखते है कि मात्र स्व सरकार पूर्ण नहीं मानी जा सकती जबकि काग्रेस की माग स्व सरकार की थी। स्वतत्रता तब पूर्ण मानी जायेगी जब समाज का प्रत्येक नागरिक इस स्वतत्रता का अनुभव करे और सरकारी तथा गैर सरकारी प्रतिष्ठानों में बराबर भागीदारी निभाये ।"[15] अगले अक 27 मार्च 1920 में अम्बेडकर सवैंधानिक निकायों मे अछूतो के नामाकन की आलोचना करते है और उनके चुनाव की वकालत करते हैं ।"[16] जबकि छटें अंक में 10 अप्रैल 1920 को अम्बेडकर काग्रेस पर दलितों की दशा पर विचार न करने का आरोप लगाते है ।"[17] इस प्रकार अपने आरम्भिक दौर मे डा0 अम्बेडकर अपनी दलितोत्थान राणनीति का विवेचन करते है ।

"जब माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के रूप मे साउथवरो कमेटी भारत की विभिन्न जातियो से मताधिकार के विषय मे पूछताछ कर रही थी । अस्पृश्य वर्ग की ओर से कर्मवीर शिन्दे और अम्बेडकर की आयोग के समक्ष गवाही हुयी थी ।"[18] अम्बेडकर ने क्या कहा होगा इसका अनुमान बाम्बे टाइम्स मे प्रकाशित उनके एक पत्र से कर सकते है । पत्र मे अम्बेडकर ने लिखा था "स्वराज्य जैसा ब्राह्मणो का जन्मसिद्ध अधिकार है वैसा ही महारो का भी है यह बात कोई भी स्वीकार करेगा । इसलिये उच्च वर्ग के लोगो का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वे दलितों को शिक्षा देकर उनका मनोबल और सामाजिक स्तर ऊचा करने की कोशिश करें, जब तक यह नहीं होगा तब तक भारत की स्वतत्रता का दिन बहुत दूर रहेगा, इसमें सन्देह नहीं ।"[(19)] "डा० अम्बेडकर मूकनायक के एक अक में कहते है कि भारत के स्वतत्र होने से ही सब कुछ साध्य होगा ऐसी बात नही । भारत एक ऐसा राष्ट्र बनना चाहिये जिसमे प्रत्येक नागरिक के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार समान हो और हर एक को व्यक्तित्व विकास के लिये उचित अवसर प्राप्त हों । अग्रेंजी राज्य के खिलाफ उठाया गया एतराज ब्राह्मणों के मुह से जितना शोभायमान होता है उका हजार गुना शोभायमान ब्राह्मणो के खिलाफ बहिष्कृत व्यक्ति के उठाने पर होता है ।"[(20)]

मूकनायक के लेखो और अम्बेडकर के विचारो को देखकर ही 1920 में ही जब महाराष्ट्र के माणगाव नामक स्थान पर पहली दलित परिषद बुलायी गयी तभी "महाराजा छत्रपति ने कह दिया कि – मेरे राज्य के बहिष्कृत प्रजाजनो, तुमने अपना सच्चा नेता खोज निकाला है । इसलिये मैं तुम्हारा हृदय से अभिनन्दन करता हूँ । मेरा विश्वास है कि डा० अम्बेडकर तुम्हारा उद्धार किये बिना नहीं रहेगें । इतना ही नहीं एक समय ऐसा आयेगा कि वे समस्त हिन्दुस्तान के नेता होगें । मेरी अन्तरात्मा मुझसे ऐसा कहती है ।"[(21)]

डा0 अम्बेडकर सृजनात्मक राजनीतिज्ञ थे । "वे राजनीति मे भावुकता, श्रद्धा भक्ति आदि को स्थान नही देते थे, वे तर्कवादी थे । बुद्धि को प्रधानता देते थे और नियम के महत्व को सर्वोपरि मानते थे । नियम को स्वीकारने से पहले वे नियमों को भी कसौटी पर कसकर देख लेते थे । यही कारण है कि जब राजनीति करने वालों ने उनके सविधान मे प्रयुक्त 'भारत के लोग पर आपत्ति की थी और चाहा था कि उसके स्थान पर भारत राष्ट्र लिखा जाये, तब उन्होने कहा था कि सहत्रों जातियो मे विभाजित लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं । उनका यह भी आग्रह था कि – जितनी जल्दी हो सके सबकी समझ मे यह बात आ जानी चाहिये कि सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से अभी तक हम लोग एक राष्ट्र नही है ।[22] अस्तु वे बहुत स्पष्ट, सचेत तथा जागरूक राजनीतिज्ञ थे । वे एक–एक शब्द का प्रयोग सोच समझकर सटीक ढग से करते थे ।

डा0 अम्बेडकर अन्य राजनेताओ से सम्पृक्त थे । वे दलितों व निर्धनों का कल्याण चाहते थे । "उनका मानना था कि बहुमत का राजनीतिक आदर्शवाद समाज का आर्दशवाद हो जायेगा । यदि उनके वर्ग तथा निर्धनों को स्वतंत्रता व समानता मिल जाती है तो उनके लिये स्वराज्य मिल जाने जैसा था । उन पर पश्चिम का प्रभाव था और धर्म जाति आदि से ऊपर उठकर वे सोचते थे । यही कारण है कि उन्होने भारतीय राजनीति को "धर्म निरपेक्ष" बनाने की चिरन्तन चेष्टा की और अन्तत इस तत्व को उन्होने सविधान का आधार बना दिया । यथार्थत वे अखण्ड भारत को अपने मन मे सजोये थे ।[23]

जनतत्र की व्याख्या करते हुये उन्होने लिखा कि –"जनतंत्र सार्वजनिक जीवन जीने की पद्धति है, जनतत्र एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र मे बिना रक्त की बूद बहाये क्रातिकारी परिवर्तन लाये जा सकते हैं ।"[24] जनतत्र के दर्जे से नीचे वह जहां एक तरफ धर्म एक अफीम की गोली है वाले मार्क्सवाद को रखते थे वहीं शोषणात्मक पौरोहित्यवाद की व्यवस्था भी उन्हें

स्वीकार्य नही थी । यह जनतत्र की ओर उनका विशाल आकर्षण भारतीय सविधान मे भी हमे दिखाई पडता है । जनतत्र की वह पूर्ण सफलता चाहते है और इस पूर्ण सफलता हेतु, विपक्ष के मजबूत होने को आवश्यक मानते है । "एक ही व्यक्ति अथवा एक ही राजनीतिक दल के हाथो यदि सत्ता सुरक्षित रह जाये तो ऐसी स्थिति मे उस राष्ट्र मे ससदीय प्रणाली और जनतत्र की हत्या हो जाती है । अराजकता का राज्य पैदा हो जाता है ।"[25] मजबूत विरोधी दल सत्ताधारियों पर नियत्रण रखेगा तथा उसे व्यापाक लोकहित की ओर ले जाने का प्रयास करेगा ।

इसी क्रम मे उन्होंने 1936 में "स्वतत्र मजदूर पार्टी" नामक दल का गठन किया । उनका मानना था कि भारतीय राजनीति में अभिजन की महत्वपूर्ण पकड़ है और यह लोक कल्याणकारी नहीं रह गया है इससे सम्पूर्ण समाज, किसान, मजदूर का भला नही होगा । मजदूरो की एक सभा मे उन्होने कहा कि –"दुनिया में दो ही वर्ग है – गरीब और अमीर, शाषित और शोषक एक और मध्य वर्ग है, वह वास्तव में बहुत छोटा है, किसान और मजदूर शोषित हैं और इसी कारण उनका संगठित होना आवश्यक है ।"[26] आगे चलकर रिपब्लिक पार्टी का उन्होंने जो मार्गदर्शक पत्र तैयार किया उसमें उन्होंने अपने मूल राजनीतिक विचारों का समावेश किया । मार्गदर्शक पत्र मे उन्होने लिखा कि –"

1 सभी भारतीयो को समता का व्यवहार मिलना चाहिये ।
2 जीवन के सभी क्षेत्रो मे ऐसी व्यवस्था हो, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि और प्रतिभा के बल पर विकास कर सके ।
3 प्रत्येक भारतीय को आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक स्वतत्रता मिले ।
4 प्रत्येक भारतीय को समान अवसर मिलें ।
5. प्रत्येक भारतीय अपनी जरूरतों से और भय से मुक्त हो जाये । उसे इन दोनो से मुक्त रखने की जिम्मेदारी राज्य की है ।
6. एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का, एक वर्ण दूसरे वर्ण का एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण न करें ।[27]

स्वतत्र भारत के कानून मत्री का पद डा0 अम्बेडकर को दिया गया था । परन्तु वह 1952 के चुनाव मे जब खडे हुये तो चुनाव हार गये वहा से काग्रेस का प्रत्याशी जीता । तब उन्होने पुन सोचा कि आखिर ऐसा क्या है कि मुझे लोग अभी भी बहिष्कृत ही मानते हैं । "शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के घोषणा पत्र मे जबकि ऐसा कुछ नही था जिसे कि मात्र दलितो तक सीमित कहा जा सके –यथा–फेडरेशन–

1 प्रत्येक नागरिक को धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता दिलाएगी ।

2 नागरिको को अभाव तथा भय से मुक्ति दिलायेगी ।

3 स्वतत्रता, समता तथा भ्रातृभाव बनाये रखने की चेष्टा करेगी ।

4 राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का, वर्ग द्वारा वर्ग का और व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का दलन एव शोषण बर्दाश्त नहीं करेगी ।

5 ससदीय लोकतत्र को अपनाएगी ।

6 बीमा कम्पनियो का राष्ट्रीयकरण करेगी ।"[28]

डा0 अम्बेडकर वस्तुत भारतीयता के प्रेमी थे । वे 2–3 हजार साल से चल आ रहे सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचार से लडना चाहते थे, परन्तु महात्मा फूले, जी.जी. अगरकर, एम जी रानाडे की भारतीयता को भूलकर नहीं । वे पूर्णतया भारतीय होना चाहते थे । उनके शब्द हैं "मुझे अच्छा नहीं लगता जब कुछ लोग कहते हैं कि हम पहले भारतीय हैं और बाद मे हिन्दू और मुसलमान । मुझे यह स्वीकार्य नहीं है । धर्म, सस्कृति, भाषा, आदि की प्रतिस्पर्धी निष्ठा के रहते हुये भारतीयता के प्रति निष्ठा नही पनप सकती । मैं चाहता हूँ कि लोग पहले ही भारतीय हैं और अन्त तक भारतीय रहे, भारतीय के अलावा कुछ नहीं ।"[29] बाबा साहेब में भारतीयता की एक अटूट लय है जिसे खन्डित नहीं किया जा सकता है देश के प्रति उनमें अपार आदर और प्यार है । "और मैं इस सदन में पूरे जोर से कहना चाहता हूँ कि जब कभी देश के हित और अस्पृश्यो के हित के बीच टकराव होगा तो मैं अस्पृश्यो के हित को तरजीह दूंगा यदि कोई आतताई बहुमत देश के नाम पर बोलता है तो मैं

उसका समर्थन नही करूगा । मै किसी पार्टी का समर्थन सिर्फ इसलिये नहीं करूगा कि वह पार्टी देश के नाम पर बोल रही है । जो यहा है और जो यहा नहीं है सब मेरी इस भूमिका को समझ ले । मेरे अपने हित और देश के हित के साथ टकराव होगा तो मै देश को तरजीह दूगा । लेकिन अगर देश के हित और दलित वर्ग के हित मे टकराव होगा तो मै दलित वर्गो के हितो को प्रथमिकता दूगा ।"[30] "ऐसा वे इसलिये कहते थे क्योकि वे समझ गये थे कि दलितो की स्थिति में परिवर्तन समतामूलक समाज की स्थापना के लिये जरूरी है । जाति–प्रथा न केवल मानव गरिमा के विरूद्ध है, बल्कि समतामूलक समाज के स्वपन के भी विरूद्ध है ।"[31] यही कारण था कि वे अर्थशास्त्र के अध्ययन के साथ–साथ जाति प्रथा के उद्भव, विकास प्रभाव के समाजशास्त्र पर निरन्तर कार्य करते रहे । "हिन्दू विधि व्यवस्था के आशिक रूप मे प्रणेता मनु महाराज को वे जाति प्रणाली का निर्माता नहीं मानते थे क्योकि अपने अनुसधान से वे इस निष्कर्ष पर पहुचे थे कि – जाति व्यवस्था मनु से पहले ही अस्तित्व मे थी ।"[32] इसलिये यह कहना भूल है कि जाति श्रेणियों का निर्माण शास्त्रों और स्मृतियो ने किया । इन शास्त्रो – स्मृतियों ने तो ब्राह्मणों की शक्ति पाकर जाति–प्रथा को धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक आधार मात्र प्रदान किया था । "गैर ब्राह्मण जातियो पर जाति प्रथा को लादने की शक्ति ब्राह्मणों मे नहीं थी । ब्राह्मण चाहने पर भी वंश और नस्ल की ठेकेदारी करने में कभी समर्थ न था । उसकी पुरोहिताई राजा की शक्ति पर टिकी थी ।"[33] राम और कृष्ण के निथक नस्लवादी रग सिद्धान्त से नहीं पनपे थे । उनके पीछे गोचारण सस्कृति की एक परम्परा का पूरा जीवन दर्शन काम कर रहा था । इसलिये उनका मत है कि –"वन्श की दृष्टि से सभी लोग शंकर है । सांस्कृतिक एकता उनकी एकरूपता का कारण है । इस बात को मानकर चलते हुये मैं यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि शकर रचना के बावजूद सास्कृतिक एकता में कोई भी देश भारत का मुकाबला नहीं कर सकता । इसमें न केवल भौगोलिक एकता है, अपितु दुख: से ज्यादा गहरी और मूलभूत एकता है, सांस्कृतिक एकता जो एक छोर से दूसरे छोर

तक सारे देश मे व्याप्त है । लेकिन इस सस्कृतिजन्य एकरूपता के कारण ही जाति का गुत्थी को सुलझाना अत्यन्त कठिन हो जाता है ।"(34)

डा0 अम्बेडकर सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता महसूस करते थे । इसके लिये उन्होने 1944 ई मे एक स्मारिका का प्रकाशन किया जिसमे उन्होने कहा कि "जाति व्यवस्था को तोड़ने के लिये सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है सामाजिक सुधार पर्याप्त नही हैं । यहा वे मार्क्सवाद के आर्थिक सिद्धान्त को चुनौती देते हैं । यथा समाजवादी यह मानकर चलते हैं कि यूरोपीय समाज की वर्तमान व्यवस्था मे सम्पत्ति ही शक्ति का प्रमुख स्त्रोत है । परन्तु यह विचार धोखा है । भारत के सन्दर्भ मे धार्मिक दार्शनिक विचारधाराओ की बडी भूमिका रहीं है और यह भूमिका भारतीय मार्क्सवादी समझने मे असमर्थ रहे है । मार्क्सवादियों से कहा – तुम किसी तरफ जाओ जातिवाद के दामन से तुम्हे लड़ना होगा । जब तक इस दानव को नहीं मारोगे कोई भी आर्थिक या राजनीतिक परिवर्तन नहीं ला सकते हो ।"(35)

यहा ध्यातव्य है कि मनु का धर्म अब किस स्वरूप मे शेष रह गया है । "यहा स्वीकार करना होगा कि कानून के रूप मे, उन नियमों के रूप में जो किसी न्यायालय के लिये विवादो के निर्णय के लिये बाध्यकारी होते है, मनु के धर्म की कोई प्रवर्तन–शक्ति नहीं रही है । इसमे अपवाद विवाह, उत्तराधिकार आदि जैसे मामले है, जिनका प्रभाव केवल व्यक्ति पर पडता है । सामाजिक आचरण तथा नागरिक अधिकारो को नियमित करने वाले कानून के रूप मे उसे लागू नहीं किया जा सकता है । लेकिन भले ही कानून के रूप उसकी मान्यता नहीं रही है, प्रथा के रूप में वह अब भी विद्यमान है । कानून के मुकाबले प्रथा भी कोई नगण्य चीज नहीं है । यह सच है कि कानून को राज्य अपने पुलिस बल के माध्यम से लागू करता है और प्रथा यदि वैध नहीं है तो उसे राज्य लागू नहीं कर सकता है । लेकिन व्यवहार मे इस अन्तर का कोई महत्व नहीं है । राज्य जितनी शक्ति से कानून लागू करता है उतनी ही शक्ति से प्रथा को जनसमूह लागू करता है । इसका कारण है कि

सगठित जन समूह की बाध्यकारी शक्ति राज्य की बाध्यकारी शक्ति से कहीं अधिक प्रबल होती है । मनु का धर्म तकनीकी दृष्टि से कानून नहीं रहा है फिर भी इस कारण उसकी परिवर्तनीयता पर कोई आच नही आई है ।[36]

डा0 अम्बेडकर बढ़ते हुये भ्रष्टाचार के प्रति चिन्तित थे । वे मानते थे कि भ्रष्टाचार ससदीय लोकतात्रिक व्यवस्था के लिए हानिकारक है "भ्रष्टचार बढ़ेगा तो लोकतत्र नष्ट हो जायेगा । वे नहीं चाहते थे कि लोकतत्र मात्र शब्द बन कर रह जाये । उनका राजनीतिक लक्ष्य था –

1 पद दलितो को राजनीतिक अधिकार दिलवाना ।
2 राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक सन्तुलन बनाते हुये इन क्षेत्रो में लोकनुभूति को लोकतत्र का आधार देना ।
3 जाति व धर्म के भेद के बिना मजदूर मोर्चे का सगठन करना ।
4 राजनीतिक शक्ति से जनशक्ति का आभास देना ।
5 शिक्षित सगठित और सघर्षशीलता का लक्ष्य प्राप्त करना ।"[37]

उन्होने अपने इस्तीफे के बाद कहा था कि देश में – भ्रष्टाचार रिश्वत और परिवार पोषण की कुरीतियो का दौर है । इस पर प0 नेहरू ने कहा था कि – भारत से कही अधिक भ्रष्टाचार दूसरे देशो मे है । देश का प्रधानमत्री भ्रष्टाचार की तुलना कर सन्तोष प्राप्त कर रहे थे । जिस समय चुनाव लोक सभा का हुआ उस समय काग्रेस ने डा0 अम्बेडकर के समक्ष काजरोलेकर को अपना उम्मीदवार बनाया था । उनको 123576 मत मिले थे, काजरोलेकर को 137950 मत मिले थे । 50 हजार मत अवैध किये गये थे । 14374 मतो से अम्बेडकर चुनाव हार गये थे ।

जनतत्र और संसदीय प्रणाली के सम्बन्ध में उनके अपने स्वतंत्र विचार है । "प्रौढ़ मताधिकार के कारण जन सामान्य की सरकार प्रस्थापित होने की केवल सम्भावना मात्र होती है परन्तु ऐसी प्रणाली में लोगों के द्वारा, लोगों के लिये चलाई

गयी सरकार अस्तित्व मे आयेगी ही ऐसी गारन्टी नहीं होती ।"[38] जनतांत्रिक व्यवस्था एक परिवर्तनशील व्यवस्था है । ऐसा वे कहते है । इग्लैण्ड की जनतान्त्रिक व्यवस्था के इतिहास को प्रस्तुत करते हुये वे उपर्युक्त सिद्धान्तो को सिद्ध करते है । जनतत्र की सफलता के लिये उसमे अनुकूल पृष्ठभूमि की जरूरत होती है । "उनके अनुसार किसी भी देश की समाज रचना मे निम्न बाते हो तभी जनतत्र की सफलता सम्भव होती है –

1 उस समाज व्यवस्था मे विषमता अधिक मात्रा मे न हो ।
2 वहा विरोधी दल का अस्तित्व हो ।
3 कानून और प्रशासन में समानता हो वे एक दूसरे के लिये पूरक हो, विरोधक नही ।
4 सवैधानिक नैतिकता के पालन की वृत्ति जनता तथा शासन मे ही असवैधानिक आचरण न हो ।
5 बहु सख्यको की दादागीरी न चलती हो ।
6 उस समाज मे नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि महत्व दिया जाता हो । नैतिक मूल्य आचरण से प्रस्थापित हुये हो ।
7 जागृत जनमत हो, देश के प्रशासन के प्रति सवेंदनशील हो । देश में घटित घटनाओ, पारित कानूनो के प्रति उनमें अत्यधिक जागरूकता हो ।"[39]

जनतत्रिक प्रणाली उपर्युक्त नींव पर खडी होती है । दरिद्रता, अशिक्षा, जाति और वर्णभेद जनतत्र के लिये बहुत बडे खतरे होते है । उनके मतानुसार "वर्गीय समाज रचना जनतत्र के लिये हमेशा खतरनाक साबित हुयी है । क्योंकि वर्णीय समाज मे एक ओर जुल्म झूठा अहकार, दुरभिमान लोभ और स्वार्थ फैला हुआ होता है तो दूसरी ओर स्वतत्रता, अस्मिता, स्वाभिमान और प्रतिष्ठा का पूर्ण अभाव होता है । असुरक्षा, दरिद्रता तथा भय भी ऐसे समाज में होता है ।"[40] कानून के सम्बध मे उनकी यह स्पष्ट धारणा थी कि कानून व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के लिये बनाये

जाते है । "कानून मनुष्य के लिये नही है अपितु मनुष्य ने मनुष्य के सुख के लिये कानून बनाये है ।"[41] कानून में सतत सशोधन की आवश्यकता होती है । परन्तु यह सशोधन भी सबकी सहमति से होना चाहिये । सभी के लिये सभी स्थानों पर एक कानून हो । सभी मे सभी का हित सुरक्षित होता है । कानून सामाजिक हो, मानवीय हो अर्थात उसका परिणाम सार्वत्रिक हो । शिक्षा द्वारा कानून का महत्व सिद्ध हो, उसका प्रसार–प्रचार हो, परन्तु कानून की ओर जनता भय की दृष्टि से न देखे । "कानून पाच मानवीय मूल्यो पर आधारित होना चाहिये –

1. कानून लोगो के हित के लिये होता है ।
2 कानून स्वच्छन्द अथवा भय के श्रोत से मुक्त होता है ।
3 कानून धर्म निरपेक्ष होता है ।
4 वह ईश्वर प्रेरणा के बजाय मानव प्रेरणा से बनता है ।
5 आवश्यकतानुसार वह परिवर्तनीय है ।"[42]

राजनीति में समता और आर्थिक क्षेत्र में विषमता – इस दृश्य को बदलना जरूरी है । दोनो के मध्य की खाई को जल्दी से जल्दी समाप्त करना होगा निकट भविष्य मे यदि ऐसा नही हो सका तो विषमता मे जा छटपटा रहे है ऐसे वर्ग जनतत्र के मुखौटे का पर्दाफाश कर देगे ऐसा इशारा वे संविधान सभा में देते हैं ।"[43]

ब्रिटिश शासन के दौरान अस्पृश्यता का व्यापक विकास हुआ । "यद्यपि अग्रेज जाति व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे लेकिन उन्होंने सत्ता में रहते हुये भी अस्पृश्यता उन्मूलन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया ।"[44] ब्रिटिश सरकार की आलोचना मे डा० अम्बेडकर ने कहा था कि – "यद्यपि सरकार ने यह महसूस किया कि जमीदार लोग असहाय गरीब एव दलितो का खून चूस रहे हैं फिर भी सरकार ने उन बुराइयों का अन्त नहीं किया, जिनसे दलितों का जीवन सदियों से मुरझाया पड़ा है । सरकार के पास इन बुराइयों को समाप्त करने की कानूनी शक्ति है पर

उसने समाजार्थिक जीवन की वर्तमान सहिता को नहीं बदला । अम्बेडकर ने आगे कहा कि – ब्रिटिश सरकार से पूर्व हम अस्पृश्य थे । क्या ब्रिटिश सरकार ने उसकी समाप्ति के लिये कुछ किया है ? ब्रिटिश सरकार से पूर्व हम कुओ से पानी नहीं भर सकते थे क्या ब्रिटिश सरकार ने इसे हमे दिलाया है। ब्रिटिश सरकार से पूर्व हमे मन्दिर, पुलिस एव सेना मे प्रवेश का अधिकार नहीं था ? क्या इस सरकार ने हमें वह दिलाया है। यद्यपि ब्रिटिश शासन के भारत मे 150 वर्ष बीत चुके हैं परन्तु अस्पृश्यो की दशा ज्यो की त्यों है ।"[45]

ब्रिटिश सरकार के इस दृष्टिकोण का मूल्याकन करते हुये ओमेली का कहना है कि – "ब्रिटिश भारत मे न तो जाति पर कोई प्रतिबन्ध था और न ही जातिगत रीति – रिवाजो मे राज्य का कोई हस्तक्षेप था । सरकार अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण करती थी, इसके लिये सरकार का यह निश्चित सिद्धान्त था कि वह सामाजिक कानूनों एवं व्यक्तिगत रीति–रिवाजो में तब तक कोई हस्तक्षेप नहीं करती जब तक सामान्यतया लोग ना चाहें ।"[46]

यहा 1920 में काग्रेस का दलितों पर क्या दृष्टिकोण था जानना समीचीन होगा । 1920 मे तिलक का निधन हो गया था । "इस समय काग्रेंस में एक दौर का अन्त और दूसरे दौर यानि गाधीवाद का जन्म हो रहा था । इस गांधी युग का वर्णन अम्बेडकर ने तमोयुग के रूप मे किया है ।"[47] इसके पीछे उनका एक सास्कृतिक आधार था । "दिसम्बर 1923 में काकीनाड़ा में काग्रेंस के वार्षिक अधिवेशन मे गांधी के निकटस्थ और अध्यक्ष मोहम्मद अली ने एक घोषणा की थी कि – अस्पृश्यो का बटवारा हिन्दू, मुसलमानो मे समान रूप से किया जाये ।"[48] एक अन्य मुसलमान नेता ने मद्रास में गांधी जी के सत्कार में कहा था कि – "अस्पृश्य लोगों को मुसलमान बना लेना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है ।"[49]

"काग्रेस की राष्ट्रीय सभा ने तिलक की मृत्यु पर तिलक कोष इकट्ठा किया था । अस्पृश्यता निवारण उसके उद्देश्यों में एक था । परन्तु अब राष्ट्रीय सभा की कार्यकारिणी ने फैसला किया कि अस्पृश्यता निवारण का कार्य हिन्दू महासभा का है, उससे राष्ट्रीय सभा का कोई सम्बन्ध नहीं है । इसके साथ पैसा देने से भी इनकार कर दिया ।"[60] जब इस तरह की घटनाये गाधी जी के सामने होती थी तब गाधी जी जरा भी विरोध नही करते थे । गाधी और कांग्रेस दोनों ही दलित समस्या से अलग–थलग दिखते थे । "जबकि काग्रेस के 1918 की बम्बई बैठक में अछूत उन्मूलन प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया था ।[61]

"अम्बेडकर गाधी जी व काग्रेस से इसलिय नाराज थे क्योकि वह अछूत उन्मूलन को प्राथमिकता मे नही ले रही थी वह तिलक और उनके जैसी चमत्कारिता की व समर्पण की उम्मीद कर रहे थे और जब गाधी जी 1927 मे अस्पृश्य उन्मूलन को जोर–शोर से उठाते है तो अम्बेडकर उनकी प्रसशा भी करते हैं । जब कि वह परम्परावादियो को लेकर शकित रहते है ।"[62]

वर्ष 1924 को इतिहास में एक महत्वपूर्ण वर्ष के रूप में देखा जाना चाहिये । "इस वर्ष तीन महान शक्तिया भारत के सामाजिक क्षेत्र में अवतरित हुयीं यरवदा कारागार से वीर सावरकर 6 जनवरी को मुक्त हुये । रिहाई शर्त के अनुसार राजनीतिक कार्य में भाग लेना मना था । फलत उन्होंने सारी शक्ति समाज कार्य में झोक दी । गाधी जी की रिहाई स्वास्थ्य के आधार पर 11 फरवरी को की गयी । मुक्ति के बाद उन्होने भी अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन आरम्भ किया । और 9 मार्च 1924 को डा0 अम्बेडकर ने अस्पृश्य वर्ग की सामाजिक और राजनीतिक समस्यायें सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिये एक मध्यवर्ती संस्था के निर्माण हेतु एक कान्फ्रेस बुलाई और 20 जुलाई 1924 को "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" नामक सगठन का उदभव हुआ ।"[63] अम्बेडकर की भूमिका गाधी और सावरकर की भूमिका से मूलत अलग थी । वे स्वयं अस्पृश्य समाज में पैदा हुये थे तुम्हें क्या

करना चाहिये ऐसा कहने की बारी उन पर नही आती थी । हम क्या करे इस आत्मतेज का पाठ उन्हें पढाना था । अस्पृश्य समाज पर होने वाले जुल्मों से वह अवगत थे । अनुभव जैसा गुरू कोई और नही होता है । अछूतो के जुल्मो को उन्हे आवाज देनी थी उनकी दबी हुयी भावनाओ को व्यक्त करते समय वे गुस्से में आकर तिलमिला उठते थे । "उन्हे दया का दान नहीं चाहिये था, उन्हे अधिकार चाहिये था । "उद्धरेदात्मानात्मानम्" यही उन्होने अपने आन्दोलन का ध्येय निश्चित किया । आत्मोद्धार हर एक को स्वयं करना चाहिये । यह महामत्र अम्बेडकर ने अपने समाज को दिया । इतिहास भी यही कह रहा था कि खुद की गुलामी के खिलाफ जब तक गुलाम विद्रोह नहीं करते तब तक उनका छुटकारा और उद्धार नही होगा । अम्बेडकर कहते थे – गुलाम को उसकी गुलामी की जानकारी करा दो वह स्वय अपने आप ही विद्रोह कर देगा । इसलिये उनका सदेश था आत्मोद्धार के लिये लडते रहो ।"[64]

जब अम्बेडकर लडने की तरफ बढ रहे थे उस समय काग्रेंस दलित प्रश्न पर सशय की दशा में थी । काग्रेंस कार्यकारिणी ने 17 अप्रैल 1923 को अपनी पूना बैठक में निम्नवत् सकल्प पारित किया था – "सकल्प किया गया कि जहां कांग्रेस की नीति के फलस्वरूप तथाकथित अस्पृश्यो के प्रति व्यवहार मे कुछ सुधार हुआ है, वहा यह कमेटी इस बारे में सजग है कि – इस सम्बन्ध मे अभी बहुत कुछ करना बाकी है, और अस्पृश्यता के इस मसले का सम्बन्ध विशेषत हिन्दू समाज से है, अत अखिल भारतीय हिन्दू महासभा से अनुरोध किया जाता है कि वह इस मसले को अपने हाथ में ले और हिन्दू समाज में से इस अभिशाप को मिटाने के लिये जोरदार प्रयास करे ।" इस प्रकार काग्रेस ने अछूत समस्या हिन्दू महासभा को सौंप दी । वस्तुत बारदोली प्रस्ताव मात्र एक सुधारात्मक कदम था क्योंकि न तो इसमें सहभोज की बात की गयी थी और न ही इसमे अन्तर्जातीय विवाह को स्वीकार किया गया था । अन्तत काग्रेस इसे लेकर कभी भी आगे न बढ़ सकी ।"[65]

यहां ध्यातव्य है कि गाधी धीरे–धीरे स्थापित भारतीय नेता बन रहे थे । वस्तुत गाधी स्थापित हो पाते है 1924 के बाद । गाधी के समक्ष इस समय ज्यादा महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्र की आजादी का था और दूसरा महत्वपूर्ण कार्य हिन्दू–मुस्लिम एकता का था । अपना सम्पूर्ण समय गाधी इसी पर जाया कर रहे थे । यद्यपि अस्पृश्य समस्या और प्रशासन की भूमिका उनके परिदृश्य से ओझल नहीं थी परन्तु जिस प्रकार का योगदान अस्पृश्यता के लिये वह सविनय अवज्ञा या उसके बाद करते हैं वह इस समय दिखाई नहीं पडता है । यथा – "1920 नवम्बर के यग इन्डिया मे उन्होने "ब्राह्मण और ब्राह्मणेत्तर" शीर्षक निबन्ध मे लिखा कि – फिरंगी सरकार ने आपस में फूट डालकर स्वाधीनता आन्दोलन को कमजोर करने के लिये "ब्राह्मण–ब्राह्मणेत्तर" के प्रश्न को राजनीतिक रंग दे दिया । यह खतरनाक खेल शुरू करके अग्रेज हमे भीतर से तबाह करना चाहते है – गाधी जी के शब्द है कि मुझे साफ नजर आ रहा है की सरकार अपनी मुस्तकल नीति के मुताबिक ब्राह्मणेत्तरो को काग्रेस मे रखकर उनका इस्तेमाल ब्राह्मणों के विरूद्ध करेगी और दोनो में झगड़ा पैदा करके और ब्राह्मणेत्तर को राजनीतिक प्रलोभन देकर ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन यथा सम्भव बन्द नहीं होने देगी ।"[56]

गाधी जी हिन्दू धर्म के माथे पर कलक – (गोधरा 5 नवम्बर 1917) में यह अफसोस जाहिर करते है कि – "वर्ण की मेरी व्याख्या या तारीफ के हिसाब से तो आज हिन्दू धर्म में वर्ण धर्म का अमल होता ही नहीं । ब्राह्मण नाम रखने वाले विद्या पढाना छोड़ बैठे है वे और–और धन्धे करने लगे है । यही बात थोड़ी बहुत अन्य वर्गो के लिये भी सच है । इतना ही नहीं उन्हें जाति प्रथा को समूल नष्ट करने की बेचैनी नही थी, जो बेचैनी डा0 अम्बेडकर की नींद हराम किये हुये थी । एक बार गांधी जी ने कहा कि – मैं दलित वर्गो का किन्हीं अन्य वर्गो की कीमत पर स्वराज नहीं चाहता । मेरे विचार से वह स्वराज होगा ही नहीं । मेरा विचार है कि जिस क्षण भारत अन्तःशुद्धि प्राप्त कर लेगा तभी वह आजाद होगा । उसके पूर्व नहीं ।"[57]

इन विचारो से आहत अम्बेडकर गाधी और काग्रेस से सहयोग नहीं कर पाते थे । अम्बेडकर का दिमाग इस बात मे एकदम साफ था कि जाति प्रथा को एकदम नष्ट किये बिना अस्पृश्यता को इस देश से दूर नहीं किया जा सकता । इसी विचार से वे अग्रेज राज्य को शैतान न मानकर जाति–प्रथा को ही सच्चा शैतान घोषित करते थे ।

इसी अवधारणा के कारण अम्बेडकर भारतीय स्वतत्रा सघर्ष में महत्वपूर्ण भागीदारी नही निभा सके । इस कारण अग्रेजो को काफी सहायता भी मिली – "दलित वर्ग एक असाधारण बन्धन मे बधे हुये है । दलितो ने सनातनी हिन्दुओं के सदियो पुराने अत्याचार से निजात दिलाने वालो के रूप मे अग्रेजो का स्वागत किया था । उन्होने अग्रेजो के लिये हिन्दुओ, मुसलमानो और सिखो के खिलाफ लडाईया लडी और उनके लिये भारत का महान साम्राज्य जीता ।"[58]

परन्तु इसकी पृष्ठभूमि में वह तथ्य था जिसके अन्तर्गत भारतीयों ने अपनी सेना मे दलितो आदि को कोई स्थान नही दिया था । अम्बेडकर की स्वतत्रता सघर्ष मे गैर भागीदारी के पीछे एक विशिष्ट यथार्थ था । "सवर्ण हिन्दुओ का राजनीतिक सघर्ष राजनीतिक सत्ता परिवर्तन के लिये था । सवर्ण हिन्दू की गर्दन पर केवल ब्रिटिश सत्ता का जुआ था । ब्रिटिशो के जाने पर वे अपने आप ही सत्तारूढ़ होने वाले थे । लेकिन अस्पृश्यो को तो कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं थे । भारत की सामाजिक व राजनीतिक मानचित्र मे उन्हे कभी भी कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नही थी । भारत में सैकडो वर्षो से उनके हृदय मे दबी हुई भावना और मन की धारणाऐं कुचली जा रही थी । अम्बेडकर का भारतीय देश भक्तो से यह आवाहन था कि हमे सामाजिक धार्मिक गुलामी से मुक्त करों, तब हम तुम्हारे साथ कन्धें से कन्धा मिलाकर राजनीतिक स्वतत्रता के लिये अपने प्राणो की बाजी लगा देगे । अम्बेडकर को इस बात की पूरी जानकारी थी कि राज्यकर्ताओ से दुश्मनी मोल लेने का नतीजा अस्पृश्य जनता के लिये अहितकारी होगा । इसलिये उन्होंने स्वतत्रता सग्राम

मे हिस्सा नही लिया । यदि वे स्वतत्रता सग्राम मे हिस्सा लेते तो उन्हे सवर्ण हिन्दू और ब्रिटिश सत्ता दोनो मोर्चो पर एक साथ सघर्ष करना पडता । एक ही साथ दो मोर्चो पर सघर्ष करना कोई भी राजनीतिज्ञ स्वीकार नहीं कर सकता । स्पृश्य हिन्दुओ से लडते–लडते ब्रिटिश सरकार से जो अधिकार प्राप्त होगे उन्हे स्वीकार कर आगे बढना अम्बेडकर का राजनीतिक ध्येय था ।"[59]

गाधी और अम्बेडकर मे अपने–अपने "लक्ष्यो के क्रम" को लेकर मतभेद अवश्य था । गाधी जहा पहले स्वराज्य चाहते थे वहीं अम्बेडकर पहले जाति भेद समापन चाहते थे । परन्तु वास्तविकता यह थी कि स्वतत्रता और छुआछूत का समापन दोनो ही लोग मन से चाहते थे । सवर्ण हिन्दुओ ने दलित वर्गो पर जो अत्याचार किये है उन्हे लेकर गाधी का माथा स्वय शर्म से झुक जाता था । "रास्ते मे उसे बार–बार हमारे भय से अपनी अस्पृश्यता की घोषणा करनी पडती है । इससे बढकर और घृणासूचक व्यवहार कौन सा हो सकता है ।"[60]

गाधी का मन तो यहा तक कहता है – "मेरी यह दृढ धारणा है कि हिन्दू धर्म को पूर्वोक्त कलक से मुक्त करने मे यदि अपना शरीर भी देना पडे तो भी यह कोई बडी बात नही है । जिस धर्म मे नरसी मेहता जैसे समदर्शी भगवद्भक्त हो गये हो, उसमे अस्पृश्यता की भावना का रह पाना कदापि सम्भव नहीं है ।"[61]

गाधी जी छुआछूत और हिन्दू व्यवस्था को लेकर अलग मत सम्मत प्रकट करते है । गाधी जी का मत था कि "मेरे मत से हमारी वर्तमान दुर्गति का कारण जाति प्रथा नही है हमारी गुलामी का कारण है हमारा लोभ और अनिवार्य गुणो के प्रति हमारी उपेक्षा । मेरा विश्वास है कि जाति प्रथा ने हिन्दू धर्म को विघटन से बचाया है ।"[62]

यहा तक कि गाधी जी गीता व ऋग्वेद के चातुर्वर्ण्य को स्वीकार कर लेते है । जबकि अम्बडेकर हिन्दू व्यवस्था को जड मान लेते है और इसी जडता को तोडने के लिये वे बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेते है । वस्तुत ऐसा कर वे हिन्दू जडता को त्यागना चाह रहे थे । हम बौद्ध क्यो बने ? शीर्षक नागपुर के भाषण में बाबा साहेब ने कहा – अभाग्यवश असमानता और अन्याय के धरातल पर आधारित हिन्दू दर्शन के रहते उसमे उत्साह पनपने की गुजाइश नहीं है और जब तक अछूत वर्ग दासत्व परम्परा वाले पैशाचिक हिन्दू धर्म की गुलामी स्वीकार करता रहेगा, अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिये कभी भी आशा, स्फूर्ति और उत्साह प्राप्त नहीं कर सकता ।"[63] इतना ही नहीं नया उत्साह प्राप्त करने व जड़ता को तोडने के लिये वह इससे भी आगे बढकर आर्य–अनार्य सघर्ष का निर्माण करते है । "भारत मे बौद्ध इतिहास का अध्ययन करने वाले जानते है कि जिन लोगों ने बौद्ध धर्म का प्रचार आरम्भ मे किया वे नाग लोग थे । नाग लोग अनार्य थे । आर्यो और नागों के मध्य घोर शत्रुता थी । आर्य–अनार्यो के मध्य अनेको युद्ध लड़े गये । आर्य लोग अनार्यो को समूल नष्ट कर देना चाहते थे । इससे सम्बधित पुराणों में अनेक कथायें मिलेगी । आर्यो ने नागो को भष्म कर दिया । अगस्त्य मुनि ने एक नाग को बचा लिया था और हम उसी नाग के वशज माने जाते है ।"[64] बाबा साहेब के इस कथन को "डा0 भरत जैसे बौद्ध विद्वान निराधार घोषित करते है क्योकि इतिहास इस कथन का समर्थन नहीं करता ।"[65] वस्ततु इस प्रकार डा0 आम्बेडकर जाति व्यवस्था की निरर्थकता को प्रमाणित कर रहे थे और इन मिथकों की रचनाकर वे अस्पृश्यो को जागृत करना चाह रहे थे ।

यह कहना उचित नही कि अम्बेडकर को भारत की चिन्ता नहीं थी । 15 दिसम्बर 1925 को भारतीय मुद्रा के बारे में डा0 अम्बेडकर की गवाही रायल कमीशन के सामने हुयी । उस समिति को उन्होंने जो निवेदन प्रस्तुत किया । उसके आशय के अनुसार उनसे प्रश्न पूछे गये । "डा0 अम्बेडकर ने इस समिति को साफ–साफ बताया कि मुद्रा विनिमय के अदल–बदल में स्वर्ण परिमाण जारी रखना

भारत के हित मे नही है क्योकि मूलत स्थिरता नहीं है ।" "देशहितदक्ष" अम्बेडकर ने इस सम्बध में आगे बेसिल ब्लैकेट द्वारा प्रस्तुत किये हुये मुद्रा–सुधार–विधेयक का विरोध करने के लिये काफी परिश्रम किया ।"[86]

इसी समय के आस–पास अम्बेडकर के व्यक्तिगत जीवन मे कुछ विशिष्ट घटनाये घटित होती है यथा जब वह वकीलो के मध्य उपेक्षित जीवन व्यतीत कर रहे थे "तो 1926 मे उन्होने सिन्डन हैम कालेज बम्बई मे प्रिंसीपल पद के लिये प्रार्थना–पत्र दिया था परन्तु वहा समाज सेवा की शर्त के कारण नौकरी नहीं मिल सकी ।"[87] इसी बीच उनके बच्चे का देहान्त हो गया । तब उन्होंने अपने मित्र दत्तोपन्त पवार को बडा मार्मिक पत्र लिखा था कि "हम चार सुन्दर बच्चो को दफना चुके है । इनमे से तीन पुत्र थे और एक पुत्री । अगर वे जिन्दा होते तो अनागत उनका होता । उनकी मृत्यु का ध्यान आते ही हृदय बैठने लगता है । अब तो हम मात्र जिन्दगी गुजार रहे है जैसे सिर के ऊपर मेघमालायें निकल जाती हैं वैसे ही हमारे जीवन का आनन्द ही खत्म हो गया । जैसे बाइबिल में लिखा है कि – तुम धारिणी का आनन्द हो । अगर वह धारिणी का छोड़ जाये तो फिर धारिणी आनन्दमग्न कैसे रहेगा । उनका हृदय भर आया था । वे अत्यन्त सवेदनशील, सहृदय और भावुक व्यक्ति थे ।"[88]

डा0 अम्बेडकर ने राजनीतिक गतिविधियो व समाज सुधार का कार्य 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा के गठन से शुरू किया था जिसमे एक मासिक का सरस्वती विलास का प्रकाशन, छात्रावास स्थापना, वाचनालय स्थापना, क्लब स्थापना ।"[89] जैसे अनेक कार्यो द्वारा जागरण आरम्भ किया । जागृत कार्यकर्ता अब तहसील और जिलो में परिषदें आयोजित करने लगे थे ।

1927 से डा0 अम्बेडकर ने राजनीतिक गतिविधियों मे भागीदारी शुरू की । विधान परिषद के चुनाव होने जा रहे थे । "डा0 अम्बेडकर पर आरोप लगता था कि वे साम्प्रदायिक है । इसी समय के एम मुशी ने समस्त गुजराती स्नातकों से

स्वय को मत देने की अपील गुजराती होने के आधार पर की थी । इस पर डा0 अम्बेडकर ने प्रश्न किया कि गुजराती होने के आधार पर मत लेना क्या साम्प्रदायिकता नही है । वस्तुत अपने जीवन के आरम्भिक चरण मे ही डा0 अम्बेडकर ने साम्प्रदायिकता को पहचान लिया था ।"[70]

बरार अस्पृश्य प्रान्तीय सम्मेलन मे 13 नवम्बर 1927 मे भाषण करते हुये "डा0 बम्बेडकर ने अपने अधिकारो की प्राप्ति के लिये प्रतिकार व सत्याग्रह करने का सकल्प लिया । और अपने अस्पृश्य श्रोताओ से कहा कि कृष्ण के उपदेश की भाति और अर्जुन की तरह सत्य के लिये तुम्हे लडना होगा ।"[71] तत्पश्चात 27 दिसम्बर 1927 को स्वय सेवको के समक्ष पानी के लिये एक सम्मेलन मे अध्यक्षीय भाषण करते हुये डा0 अम्बेडकर ने कहा – "हमारा लक्ष्य मात्र जल की प्राप्ति और मन्दिर मे प्रवेश नही है बल्कि इससे आगे समतावाद तक है । हमारा लक्ष्य वर्ण व्यवस्था को ध्वस्त करना है जिसके कारण समाज मे असमतावाद का जन्म हुआ है ।"[72] इसी महार सम्मेलन मे डा0 अम्बेडकर ने प्रसिद्ध मनुस्मृति का ध्वस्तीकरण किया था । जिसमे वस्तुत डा0 अम्बेडकर का मनुस्मृति ध्वस्तीकरण की कोई योजना नही थी । यह प्रस्ताव प्रमुखता दो लोगों ने दिया था । पहले थे **गंगाधर नीलकण्ठ सहत्रबुद्धे** जो कि अम्बेडकर के एक ब्राह्मण सहयोगी थे और दूसरे थे एक अस्पृश्य नेता **पी.एन. राजा भेज** । अन्तत सात–साढ़े सात बजे शाय 25–12–1927 को मनुस्मृति की एक प्रति आग के हवाले कर दी गयी । जिसकी तुलना गाधी के विदेशी वस्त्रो की होली से की गयी थी ।[73]

यद्यपि अम्बेडकर मनुस्मृति को जलाने का समर्थन करते थे परन्तु अपने आपको सनातन हिन्दू भी घोषित करते थे । यथा 2 अप्रैल 1930 को न्यायालय में दिया गया उनका भाषण– "हिन्दू धर्म का आधार वर्ण व्यवस्था है, जो हमें अछूत बनाती है, मै हिन्दू व्यवस्था की वर्ण और अस्पृश्यता को स्वीकार नहीं करता हूँ । मै

भगवद्गीता के अलावा किसी अन्य सत्ता को स्वीकार नही करता, यद्यपि मैं वेदो की सत्ता को स्वीकार नही करता फिर भी मैं एक सनातन हिन्दू हूँ ।"[74]

यहा डा0 अम्बेडकर की सत्याग्रह व अहिसा का सिद्धान्त अलग था । उनका सत्याग्रह भगवद गीता से लिया गया था । "किसी भी कार्य की सफलता या विफलता जितनी साधन पर निर्भर करती है उतनी ही उसके नैतिक स्वरूप पर । यदि कार्य के मूल मे सत्य निहित है तो परिणाम की चिन्ता की कोई आवश्यकता नही क्योकि सत्याग्रहियो मे आत्मबल की आवश्यकता होती है । जिस कार्य से लोक सग्रह होता है वहीं सत्कार्य है । यही हमारी विचारधारा है । इसे हमने गीता से ली है । सत्याग्रह ही गीता का मुख्य प्रतिपाद्य है । गीता स्पृश्य–अस्पृश्य दोनों को स्वीकार्य है । हमारे आन्दोलन का आधार लोक सग्रह है ।"[75] भगवद्गीता का कर्मवाद डा0 अम्बेडकर को आकृष्ट करता था । किसी एक व्यक्ति का सत्याग्रह है या असत्याग्रह । यह उस आग्रह की सफलता के लिये उपायोजित साधनों पर निर्भर नही करता बल्कि पूर्णतया उसके नैतिक स्वरूप पर निर्भर करता है ।

"हिसा–अहिसा केवल उस आग्रह की सफलता के साधन हैं । यद्यपि कर्म या कर्ता के अनुराध पर क्रिया का रूप परिवर्तित होता है, परन्तु कुछ साधनों के अनुरोध से आग्रह का नैतिक स्वरूप परिवर्तित नही होता । क्योकि किसी एक दुराग्रही ने अपना आग्रह सिद्ध करने के लिये अहिसा का मार्ग स्वीकार किया तो उसके दुराग्रह को सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता । या किसी एक सत्याग्रही ने सत्याग्रह की सिद्धि के लिये हिसा की तो उसके सत्याग्रह को दुराग्रह नहीं कहा जा सकता । यदि ऐसा कहा जाता तो गीता मे परमात्मा श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सत्याग्रह सिद्धि के लिये जो हिसा का मार्ग स्वीकारने को विवश किया उसे क्या कहा जाये ।"[76]

अम्बेडकर साध्य की पवित्रता पर सूक्ष्म हिंसा को स्वीकार करते थे । जब वे अपने लोगों को सघर्ष के लिये तैयार कर रहे थे तब उन्होने कहा कि – "सच कहा

जाये तो अस्पृश्यता इतनी बडी भयकर बात है कि उसके निवारण के लिये कुछ लोगों के प्राण न्यौछावर हो तो भी कोई हर्ज नहीं । जीना ही जगत का पुरूषार्थ नही । जीने के अनेक तरीके है । काक बलि खाकर कौए भी बहुत साल जीते है, लेकिन यह कोई भी नही कहेगा कि उनके जीवन मे पुरूषार्थ है । मृत्यु के बारे मे रोना या घबराना किस लिये । नश्वर देह न्यौछावर कर इससे भी शाश्वत कोई चीज प्राप्त करने के लिये । उदाहरणार्थ देश के लिये, सत्य के लिये, ध्येय के लिये, यश के लिये, –अनेक महापुरूषो ने अनेक घटनाओ मे कर्तव्य रूपी अग्नि में अपने पचप्राणो की आहु   ति दी है । महाभारत मे वीर पत्नी बिदुला ने अपने बेटे को यह उपदेश किया था कि – सडते रहने वा 100 वर्ष व्यर्थ की जिन्दगी जीने की अपेक्षा कुछ क्षण वीरता की ज्योति दिखाकर बुझ जाएगा तो भी अच्छा है ।इस तरह का उपदेश हर माता अपने पुत्र को दे । इस तरह का समय नजदीक आ गया है ।"[77]

डा0 अम्बेडकर विधान परिषद मे सरकार के नामांकित व्यक्ति थे और जनकल्याण के कार्यो पर अपना पक्ष बेबाकी से रख रहे थे । जब विधान परिषद मे स्त्री श्रमिक वर्ग को प्रसूति काल मे सहूलियतों का विधेयक प्रस्तुत किया गया तब डाक्टर साहब ने अपने जोरदार भाषण मे कहा – "मैं यह मानता हूँ कि प्रत्येक माता को प्रसूति पूर्व और प्रसूति बाद की अवधि मे विशिष्ट समय तक विश्राम मिलना राष्ट्रहित की दृष्टि से लाभदायक है । यह विधेयक तो उसी तत्व पर आधारित है । इस पर होने वाला परिव्यय सरकार उठाये । तथापि तत्कालीन परिस्थिति मे यह बोझ मालिक वर्ग ही उठाये ।"[78]

तिलक द्वारा आरम्भ की गयी गणपति पूजा का भी उपयोग डा0 अम्बेडकर ने अस्पृश्य समाज के हित मे कर डाला । वस्तुत वह कोई भी मौका हाथ से जाने नहीं देना चहते थे । वे जानते थे कि जिस तरह तिलक इसका उपयोग जन जागरण मे कर सकते है उसी तरह इसका उपयोग वह अस्पृश्य जनता के जागरण

मे कर सकते है । "सितम्बर 1928 मे गणेशोत्सव मे उन्होने यह प्रश्न विवाद का बना दिया कि आखिर गणपति पूजा अस्पृश्य समाज कर सकता है अथवा नहीं । सनातनी व सुधारक आमने सामने आ गये । अन्तत अम्बेडकर की धमकियो व प्रयासो का उचित परिणाम मिला । सी.के. बोले, प्रबोधनकार ठाकरे आदि सुधारको ने अम्बेडकर का साथ दिया अन्तत सनातनी पीछे हट गये । अछूतो ने गणपति पूजा का अधिकार हासिल किया ।"[79]

डा0 अम्बेडकर दलितो के लिये अलग स्थानो का आरक्षण चाह रहे थे । यह प्रश्न भी उनके जागरण सिद्धान्त का एक अवयव था । हम उनके आरक्षण सिद्धान्त पर बात करे इससे पूर्व भारत मे दलितो की सख्या के विषय मे विश्लेषण अनिवार्य है । "1931 की भारत की जनगणना के आधार पर इसका उत्तर दिया जा सकता है । उसके अनुसार उनकी आबादी लगभग 5 करोड थी ।"[80] वस्तुत अस्पृश्य की न तो कोई परिभाषा है और ना ही कोई कानूनी मान्यता । जिससे अस्पृश्य सख्या का निर्धारण काफी कठिन कार्य जनसख्या आयुक्त के लिये रहा है । "जनगणना आयुक्त ने 1911 मे अस्पृश्यो की सख्या सुनिश्चित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया । इसके पीछे कारण था । 1909 मे मिन्टो-मार्ले सुधार प्रस्तुत किये गये थे और मुसलमानो को पृथक निर्वाचन आरक्षण प्रदान किया गया था ।"[81] अग्रेज सरकार "बाटो और राज करो की नीति" पर काम कर रही थी । माना गया कि अग्रेज सरकार का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यो को अलग करके हिन्दू समाज को विघटित करना था ।

अन्तत जनगणना आयुक्त ने उन जातियो और जन जातियो की अलग से गणना की "जो-

1 ब्राह्मणो की श्रेष्ठता को नहीं मानते ।

2 जो किसी ब्राह्मण या अन्य मान्यता प्राप्त हिन्दू से गुरू दीक्षा नहीं लेते ।

3 जो वेदो की सत्ता स्वीकार नहीं करते ।

4 जो बडे–बडे हिन्दू देवी देवताओ की पूजा नहीं करते ।

5 ब्राह्मण जिनकी यजमानी नहीं करते ।

6 जिनका कोई ब्राह्मण पुरोहित बिल्कुल ही नहीं होता ।

7 जो साधारण हिन्दू मन्दिरो के गर्भ गृह मे प्रवेश नहीं कर सकते ।

8 जिनसे छूत लगती है ।

9 जो अपने मुर्दो को दफनाते हैं ।

10 जो गाय की पूजा नहीं करते व गोमास खाते है ।

अतत प्रान्तवार निम्न सारणी के आकड़े प्राप्त हुये ।

प्रान्त	कुल आबादी दस लाख में	दलितो की आबादी दस लाख में	कुल सीटें	दलित वर्गो के लिये सीटें
मद्रास	39 8	6 3	120	2
बम्बई	19 5	0 6	113	1
बगाल	45 0	9 9	127	1
सयुक्त प्रान्त	47 0	10.1	120	1
पजाब	19 5	1 7	85	–
बिहार व उडीसा	32 4	9 3	100	1
मध्यप्रदेश	12	3 7	72	1
असम	6	0 3	54	–
8	221 2	41 9	791	7

अस्पृश्यो की कुल आबादी को प्रमाणित करने का काम 1921 की जनगणना तथ साइमन कमीशन ने किया । उनके समक्ष भी यहीं आकड़े प्रस्तुत किये गये ।"(82)

1919 के सविधान के आधार पर एक स्टेच्यूटरी कमीशन (सवैधानिक आयोग) की नियुक्ति की घोषणा साइमन ओडोनल की अध्यक्षता में 1927 में की गयी । जिसके सभी सदस्य गैर भारतीय थे और इस कारण सारे भारत मे इसका विरोध किया गया । आयोग की चुनौती पर काग्रेस ने एक सर्वदलीय आहूत किया और मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक कमेटी का गठन भारतीय सविधान निर्माण हेतु किया । "नेहरू समिति ने जून से अगस्त तक कार्य किया । सविधान निर्माण का यह पहला भारतीय प्रयास था ।"[83] इसका मूल उद्देश्य मुसलमानो के विरोध को समाप्त करना था । इसने अपना पूरा ध्यान हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर दिया । "इसमे दलित वर्ग से किसी को आमन्त्रित नहीं किया गया ।"[84] सम्मेलन और समिति दोनो से दलित वर्ग बाहर ही रहा । दूसरी तरफ "सायमन कमीशन को सहयोग देने के लिये केन्द्र सरकार ने एक अखिल भारतीय समिति की नियुक्ति की । इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्तीय विधान परिषद ने अपनी–अपनी समिति नियुक्ति की थी । बम्बई प्रान्तीय समिति ने 3 अगस्त 1928 को अन्य सदस्यो के साथ डा0 अम्बेडकर की भी नियुक्ति की थी ।"[85] डा0 अम्बेडकर की इस स्वीकृति को स्वतत्रता सघर्ष का आपमान माना गया और विरोध किया गया । विरोध मे उन्हे देशद्रोही तक घोषित कर दिया गया ।

दलित वर्ग की कुल अठारह सस्थाओ ने साईमन कमीशन के सामने अपनी गवाही पेश की और अपना निवेदन प्रस्तुत किया और उसमे 16 सस्थाओं ने दलित वर्ग हेतु स्वतत्र निर्वाचन मडल की माग की । बहिष्कृत हितकारिणी सभा की ओर से प्रस्तुत मागपत्र मे कहा गया था कि – "सयुक्त निर्वाचन मन्डल और दलित वर्ग के लिये आरक्षित सीटे होनी चाहिये । शिकायत थी कि – जिनके हाथ मे राष्ट्र के कारोबार के सूत्र है उन्हे लाखों अज्ञानी लोगो की याद नहीं रहती ।" इस पर डा0 अम्बेडकर के हस्ताक्षर नहीं थे ।[86]

तदुपरान्त "23 अक्टूबर 1928 को साईमन आयोग के समक्ष डा0 अम्बेडकर की गवाही सम्पन्न हुयी । जिसमे बहिष्कृत सभा और डिप्रेस्ड इण्डिया एशोसियेशन के मागपत्र रखे थे ।"[87] जिसमे जनसख्या के अनुपात मे प्रतिनिधित्व, वतन, फौज, पुलिस जैसे सस्थानो मे भर्ती के अधिकार की बाते थी । "अन्तत बम्बई विधान परिषद ने 7 मई 1929 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । जिसमे 140 सीट मे से मात्र 10 सीट अछूतो को देने की बात की गयी थी ।"[88] अम्बेडकर इस कमेटी के सदस्य थे परतु वे इससे सन्तुष्ट न थे और उन्होने अपनी रिपोर्ट अलग से प्रस्तुत किया । 17 मई 1929 को । कर्नाटक विभाजन का विरोध करते हुये उन्होने कहा कि – "भाषावार प्रान्त रचना का तत्व इतना विशाल है कि उसे प्रत्यक्ष कार्यान्वित करना मुश्किल है । उस तत्व का छोर तक युक्तिवाद स्वीकारने से इतने नये प्रान्त निर्माण करने होगे कि उनकी सख्या ही उस बात की अव्यावहारिकता सिद्ध करेगी । वे क्षेत्रवाद और वर्गवाद के विरूद्ध थे । उनकी दृष्टि से इससे राष्ट्रीय एकता को आघात पहुचता था । इस देश का नागरिक पहले भारतीय है और अन्त में भी भारतीय है । वे भारतीय राजनीति को परम्परावाद, सकीर्णता, तथा अर्थवाद से मुक्त कराने के पक्ष मे थे । राष्ट्रीय एकता के लिये उन्होने व्यावहारिक शक्तियो का ही उपयोग किया ।"[89]

एक भाषा, एक जीवन पद्धति और एक धर्म राष्ट्रीयता के आधार है ऐसा वे मानते है । "भाषा के सम्बन्ध मे वे हिन्दी के आग्रही प्रतिपादक थे ।"[90] साथ ही वह चाहते थे कि "जो केन्द्र की भाषा हो वही राज्य की भाषा हो इस आधार पर वह भाषिक प्रान्त रचना को आधार मानने को तैयार थे ।"[91] अनेक भाषी प्रान्तों की तुलना मे एक भाषी प्रान्तो मे जनतत्र का विकास अधिक तेज होता है । इसी कारण हिन्दी ही एक मात्र राजभाषा होनी चाहिये । "भावनात्मक सुसवाद और राष्ट्रीय एकात्मकता हिन्दी के कारण अधिक तेजी से हो सकती है । हिन्दी के लिये वे देवनागरी लिपि को स्वीकारते है ।"[92]

"भाषिक प्रान्त रचना करनी है तो एक भाषा और अनेक राज्य इस सूत्र को स्वीकार किया जाये एक राज्य एक भाषा को नहीं । एक राज्य एक भाषा के कारण उत्तर भारत के एकत्रीकरण की और दक्षिण भारत के विभक्तिकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जायेगी ।[93] वे छोटे–छोटे राज्यो के समर्थक थे वे नही चाहते थे "कि कोई राज्य अर्थ, जनसख्या व भूगोल मे ज्यादा बडा हो कि अन्य को निगल जाये । उन्होने इसके लिये एक योजना प्रस्तुत की थी और उसमे उत्तर प्रदेश को तीन राज्यो मे, बिहार को दो मे तथा मध्य प्रदेश को दो में बाट दिया गया था ।"[94] एक बार उन्होंने राज्य सभा मे कहा था कि – "मुझे हिन्दी के प्रति अधिक प्रेम है परन्तु हिन्दी भाषी लोग ही हिन्दी के सबसे बडे शत्रु हैं और यही मेरे लिये चिन्ता की बात है ।"[95] इस प्रकार वे भाषावाद के खिलाफ थे और उसे साम्प्रदायिकता का एक रूप मानते थे ।

अम्बेडकर ने साइमन आयोग के सामने जो मागे रखी थी उसमे उन्होंने प्रमुखत निम्नवत् तत्वो का उल्लेख किया था – "(1) बाम्बे प्रेसीडेन्सी को पूर्ण स्वायत्ता होनी चाहिये । (2) अछूतो का सचालन हिन्दू समुदाय के भाग के रूप मे न कर स्वतत्र निर्वाचन दिया जाये ।
(3) यह स्वतत्र निर्वाचन मुस्लिमो को दिये गये आरक्षण जैसा होना चाहिये । (4) उच्च वर्णो के पजो से बचाने के लिये अस्पृश्यो हेतु विशेष प्राविधान किये जाने चाहिये ।"[96]

नेहरू समिति पर डा0 अम्बेडकर ने यह आरोप लगाया कि यह अस्पृश्यों के साथ हो रहा एक षडयत्र है । उन्होने कहा "इसके द्वारा ब्राह्मण अपनी प्रभुता का गैर ब्राह्मणो पर बनाये रखना चाहते है । अलग निर्वाचन क्षेत्र मुस्लिमों को देकर और अछूतो को न देकर राष्ट्र के लिये अच्छा नहीं किया गया है ।"[97]

अम्बेडकर का मुस्लिमो के सम्बन्ध मे भी अलग मत था । उनका मानना था कि "हिन्दू और मुस्लिम भारत मे मात्र दो समुदाय नही है बल्कि वे दो राष्ट्र है । भारतीय मुस्लिम भावुकता की सीमा तक मुस्लिम परिचय से जुडे हुये हैं । उनकी अपनी सास्कृतिक विरासत है । जिसके लिये वे मुस्लिम राष्ट्रों की तरफ देखा करते है । मुस्लिम भारत मे रहते है लेकिन उनकी आखे तुर्किस्तान और अफगानिस्तान की ओर लगी रहती है ।"[98]

डा0 अम्बेडकर मुसलमानो को दिये गये पृथक निर्वाचन के खिलाफ थे । उनका तर्क था कि – "ग्रीस, युगोस्लाविया, रूमानिया, बुल्गारिया आदि में भी मुसलमान अल्पसख्यक है परन्तु वहा तो पृथक निर्वाचन क्षेत्र नहीं है । यूरोप में विभिन्न धर्म व पथ के लोग सयुक्त मतदाता सघ का विरोध न करते हुये एक ही शासन के नीचे पडोसी–पडोसी के रूप मे सुख–शान्ति से रहते है । उन्होने कहा कि – "मुसलमान अल्पसख्यक होने वाला हिन्दुस्तान विश्व का कोई एकमेव देश नहीं है, ऐसा नही लगता कि यह बात किसी को पता न हो । बहुत से अन्य राष्ट्रों मे भी इसी तरह की स्थिति है । अल्जीरिया मे मुसलमानो की बड़ी संख्या है । बुल्गारिया, ग्रीस, रूमानिया में मुसलमान अल्पसख्यक हैं । युगोस्लाविया व रूस में काफी सख्या मे मुसलमान रहते है । वहा के मुसलमानो का काम तो बिना स्वतत्र निर्वाचक मण्डल के प्रयोग के चल रहा है । यह राजनीति विषयक सभी अध्येताओ को मालूम है । यहा मुझे लगता है कि उन्होने अपना पक्ष अतिक्रमण करके प्रस्तुत किया है ।"[100] आगे उन्होने इस विषय पर और भी स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है कि – "कुछ वर्गो को अलग प्रतिनिधित्व प्राप्त हो इस मत का समर्थक होने पर भी इस प्रतिनिधित्व के लिये स्वतंत्र निर्वाचक मण्डल हो । इस मत के मैं पूरी तरह खिलाफ हूँ । प्रादेशिक मतदाता सघ और अलग मतदाता सघ – दो विपरीत ध्रुव हैं । जनतत्र के अभाव वाले अपने इस देश मे जनतत्र प्रधान राज्य पद्धति का बीज बोने के लिये जिन मतदान योजनाओं का अब अवलम्बन किया जायेगा उन

सारी योजनाओ से इन दो बातो को पूरी तरह टालना चाहिये । इन दोनो का समाधान है – आरक्षित सीटो वाली सयुक्त निर्वाचक मण्डल पद्धति ।"[101]

साईमन आयोग का प्रतिवेदन मई 1930 मे बाहर आया । जिसमे भारतीय राष्ट्रवाद को नकार दिया गया था । अखिल भारतीय बहिष्कृत वर्ग की परिषद 8 अगस्त 1930 को नागपुर मे सम्पन्न हुयी अपने अध्यक्षीय भाषण में अम्बेडकर ने भविष्य की योजनाओ का उदघाटन किया । यूरोप के राष्ट्रो मे अलग वशों के, अलग भाषाओ के अलग धर्म पथो के लोग भी स्वतत्र राष्ट्र के रूप मे अपना अस्तित्व रख सकते है । हिन्दुस्तान के स्वय शासित राष्ट्र के रूप मे अस्तित्व में रहने मे कोई हर्ज नही । मुझे नही लगता कि हिन्दुस्तान की समाजिक, धार्मिक अनेकता इससे अधिक है तथापि हिन्दुस्तान की परिस्थिति की विभिन्नता को परिलक्षित कर सविधान बनाया जाना चाहिये । जिस तरह किसी भी राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर राज्य करने का अधिकार नही है उसी तरह किसी विशिष्ट वर्ग को अन्य वर्ग पर अधिसत्ता जताने का अधिकार भी नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति को जीवन एक बार ही व्यतीत करना है । इसलिये उसी जीवन मे अधिक से अधिक उन्नति का मौका देने का मानवीय मूल्य स्वीकार करना जरूरी है । इस तरह की श्रद्धा रखना ही मानवीय आधुनिक जनतत्र राज्य पद्धति का मूल भूत सिद्धान्त है " । आगे उन्होने कहा कि – "स्वराज्य क्यो चाहिये इसका अन्य कोई भी कारण आपको स्वीकार नही है तो भी दरिद्रता का कारण आपको स्वीकार करना चाहिये । हिन्दुस्तान से तुलना करने लायक दरिद्रता विश्व के किसी भी कोने पर आपको नहीं मिलेगी । ब्रिटिश सत्ता मे स्थिर होने से भारत मे पिछली शताब्दी में कुल 31 अकाल पडे जिसमे लगभग ढाई से तीन करोड लोग भूख से मारे गये । यह सच है कि हिन्दुस्तान को परिष्कृत न्याय पद्धति और सुव्यवस्था दी हैं तथापि मनुष्य जाति केवल न्याय व सुव्यवस्था पर जीवित नही रहती वह अन्न पर जिन्दा रहती है । लोगो का कल्याण राजनीतिक अधिकार पाने के बाद ही होगा अत अपने कल्याण की ओर ध्यान देकर स्वतत्रता ही अपना ध्येय समझो ।"[102] इस प्रकार अम्बेडकर

ने दलित समाज को राजनीतिक अधिकार और स्वतत्रता की ओर उन्मुख किया । उन्होने असदिग्ध घोषणा की कि हमारा समाज समतावादी और स्वतत्रतावादी है ।

साइमन अयोग ने भारतीयो पर विचारार्थ एक गोलमेज सम्मेलन बुलाने की सिफारिश की थी । जिसमे अग्रेज सरकार ने सभी दलो के नेताओ को निमन्त्रित किया था कुल 89 प्रतिनिधि शामिल हुये "डा0 अम्बेडकर और मद्रास के रायबहादुर श्री निवासन ने दलित प्रतिनिधित्व किया था । अम्बेडकर के सम्मान मे दशहरे पर बम्बई मे एक बडी सभा आयोजित की गयी । 4 अक्टूबर 1930 को वह वायसराय आफ इण्डिया नामक जहाज से लन्दन के लिये गये ।"[103] युवा काग्रेसियो ने इसकी तीव्र भर्त्सना की यथा 'इन्डियन स्ट्रगल मे सुभाष बोष ने लिखा कि – अम्बेडकर पर (मा बाप) ब्रिटिश सरकार ने बडी कृपा से नेतृत्व इसलिये लाद दिया कि राष्ट्रवादियो को विपत्ति मे डालने हेतु उन्हे इनकी सहायता चाहिये थी ।"[104] इसका कारण था कि राष्ट्रवादी इस समय असहयोग आन्दोलन चला रहे थ । लन्दन पहुचने पर डा0 अम्बेडकर सभी दलो के नेताओ से मिले और लन्दन का वातावरण उन्हे भारतीय दलितो के लिये बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण लगा ।"[105]

12 नवम्बर 1930 को इग्लैन्ड के महाराजा जार्ज पचम ने गोलमेज कान्फ्रेस का उदघाटन किया । बादशाह की अनुपस्थिति मे प्रधानमत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने अध्यक्षता सभाली । 17–21 नवम्बर तक सभी के भाषण हुये । डा0 अम्बेडकर ने कहा कि – जिन लोगो की स्थिति गुलामो से भी बुरी है, जिनकी जनसख्या फ्रांस देश के बराबर है । ऐसे भारत के 1/5 लोगो की शिकायते मैं परिषद के समक्ष रख रहा हूँ । दलितो की माग है कि – भारत सरकार लोगो द्वारा, लोगों के लिये चलाया गया लोगो का राज्य हो" अर्थात जनतत्र हो । उन्होने आगे कहा – 125 वर्ष के अग्रेजी काल मे क्या हमारी दशा मे सुधार आया, क्या हमे मन्दिरों में प्रवेश मिला, क्या हमे कुओ से पानी भरने का अधिकार मिला, क्या मजदूरो को पूरा वेतन

काग्रेस निष्ठावान नही रही यदि वह निष्ठावान होती तो खादी जैसा कोई अत्यावश्यक बन्धन काग्रेस की सदस्यता के लिये लगाती । मेरा आप पर और काग्रेस पर आरोप है कि – हम स्वय सेवा व आत्म सम्मान मे विश्वास रखते है किसी महात्मा मे नही । इतिहास से पता चलता है कि – महात्मा एक चक्रवात की भाति आये और उन्होने धूल उडायी वे भूमि स्तर से ऊपर नहीं उठ सके ।"[109]

यहा ध्यातव्य है कि "एक बार श्री गाधी ने केवल कोशिश की कि काग्रेस अपनी सदस्यता शर्तो को बदले । सदस्यता के लिये चार आने प्रति वर्ष की अदायगी के स्थान पर गाधी चाहते थे कि दो शर्ते रखी जाय –(1) अस्पृश्यता निवारण और दूसरी (2) सूत की कताई । काग्रेस जन सूत की कताई मानने को तो तैयार थे पर वे अस्पृश्यता निवारण की शर्त को मानने के लिये तैयार नहीं थे । काग्रेस जनो ने श्री गाधी से कहा कि यदि वह इसका आग्रह करेगे तो सभी काग्रेस कमेटियो को बन्द करना पडेगा । विरोध इतना प्रबल था कि गाधी जी को अपना प्रस्ताव ही वापस लेना पड गया ।"[110] कहना न होगा कि समस्या हजारों साल पुरानी थी और उसको एक झटके मे नही समाप्त किया जा सकता था ।

यहा भारतीय राजनेताओ को एक दूसरे को जानने विषयक यह उद्धरण समीचीन होगा कि "दूसरी गोलमेज परिषद तक गाधी जी को ऐसा लगता था कि डा0 अम्बेडकर हरिजनों के कल्याण के लिये सघर्ष करने वाले कोई ब्राह्मण नेता होगे । वे हरिजन नही होगे ।"[111] राजनीति का यह कितना अजीब अध्ययन है । "तिलक बडे चतुर राजनीतिज्ञ पुरुष थे, लेकिन वे गाधी जी को जैन समझते थे और दूसरी तरफ इन राष्ट्रवादी नेताओ के विरोधी प्रशासक 'एलफिस्टने थे जिनकी मेज पर इनके विषय में छोटी से छोटी जानकारी प्राप्त की जा सकती थी ।"[112]

डा0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यो की समस्या को जोरदार ढग से कान्फ्रेंस से उठाया जबकि गांधी जी अपनी हिन्दू–मुस्लिम समस्या में ही उलझे रहे । कुछ लोगों

ने गाधी की आलोचना की यथा "जान गुन्थर ने जहा उन्हे सन्त की सज्ञा दी वही उन्हे एश्वर्य से युक्त अवसरवादी बताया ।"[113] कान्फ्रेंस में अम्बेडकर दलितों की वकालत मे नायक बनते गये जबकि गाधी जी वहा अस्पृश्यो की वकालत बिलकुल न कर सके ।"[114] परन्तु यहा यह ध्यान रखना होगा कि गाधी जी वहा स्वराज्य पर बात करने गये थे, वह अछूत समस्यो को राजनीतिक के बजाय सामाजिक समस्या मानते थे, कुछ अग्रेज बाटो और राज करो के आधार पर काम कर रहे थे । इन परिस्थितियो मे गाधी जी के लिये अम्बेडकर की आक्रामकता का मुकाबला कम से कम दलित प्रश्न पर कर सकना सम्भव नही था । यथा गाधी जी ने वहा 15 सितम्बर को अपने पहले भाषण मे कहा कि – "काग्रेस सस्था किसी एक जाति, धर्म या वर्ग के लोगो का प्रतिनिधि न होकर सब धर्मो की जातियो की एकमेव प्रतिनिधि है काग्रेस ने दो प्रमुख ध्येय तय किये है –(1) अस्पृश्यता निवारण (2) हिन्दू मुस्लिम एकता । मै आपके सम्मुख यह दावा करता हूँ कि पूरे भारत की 85–95 प्रतिशत लोगो की आवाज बनकर मै यहा खडा हूँ । तब डा0 अम्बेडकर ने कहा कि 5% का प्रतिनिधित्व कौन करता है ।"[115] इस पर कहना न होगा कि गाधी जी ने प्रकारान्तर से 5% मे वहा उपस्थित सभी लोगो को समेट दिया था और अपने आपको राष्ट्र की आवाज घोषित कर दिया था । परन्तु अग्रेजो को दिखता है तो मात्र बाटो और राज करो की नीति के तहत अपना प्रशासन । रैमजे मैकडोनाल्ड ने कहा कि – डा0 अम्बेडकर ने अपनी बात हमेशा की आकर्षक पद्धति के अनुसार पूरी तरह से साफ तौर पर प्रस्तुत की है इसमे उन्होंने किसी प्रकार की सदिग्धता बाकी नही रखी ।"[116] अम्बेडकर ने कहा था कि – विशेष सुविधाये मागने वालो और ज्यादा सुविधाये देने वालो का हमारे हिस्से से कुछ भी देना गवारा न होगा ।[117]

इससे भारत मे अम्बेडकर की आलोचना और बढ गयी । "दूसरे किसी भी अन्य 10 व्यक्त्यिो की अपेक्षा अम्बेडकर पर अधिक चर्चा होने लगी ।"[118] कुछ समय बाद इस हमले का वर्णन करते हुये अम्बेडकर ने अपने ग्रन्थकार 'एडवर्ड थामसन'

को बताया कि – "सचमुच, मै केवल क्षुद्र मन का ही साबित हुआ इतना ही नहीं मैं कजूस भी साबित हुआ ।"[119]

एक अन्य पूरक निवेदन डा० अम्बेडकर और श्रीनिवासन ने प्रस्तुत किया था कि – "अस्पृश्य वर्ग की जनसख्या के अनुपात मे अस्पृश्य वर्ग को सर्वप्रातीय केन्द्रीय विधान मण्डल मे विशेष प्रतिनिधित्व के रूप मे कुछ सीटे प्राप्त हों । उन्होंने अलग निर्वाचक मण्डल की माग की परन्तु यह भी कहा कि अगर सयुक्त निर्वाचक मण्डल और आरक्षित सीटो की व्यवस्था रखनी हो, तो 20 साल बाद अस्पृश्य मत दाताओ का सर्वमत लेकर निर्णय लिया जाये । अस्पृश्य वर्ग को अवर्ण हिन्दू,, प्रोटेस्टेन्ट हिन्दू अथवा नानकफर्मिस्ट हिन्दू कहा जाये । ऐसा उन्होंने निवेदन किया ।"[120]

इसी समय कम्युनल एवार्ड को प्रधान मत्री रैमजे मैकडोनल्ड ने प्रस्तुत कर दिया । इसके अन्तर्गत अस्पृश्यो की सीटे दो गुनी आरक्षित कर दी गयी । "गाधी जी ने कहा कि – अल्पसख्यको के दावे तो समीचीन है लेकिन अछूतो का दावा एकदम बेबुनियाद है क्योंकि इसको स्वीकारने का अर्थ होगा कि छूत–अछूत का भयानक रोग अपना अस्तित्व बनाये रखेगा । गाधी जी का मानना था कि मुसलमान और सिख तो हमेशा मुसलमान और सिख बने रहेगे लेकिन अछूत हमेशा अछूत नहीं बने रह सकते । वे अस्पृश्यता जिन्दा रखने से हिन्दुत्व का मरना पसन्द करेगे । उन्होने स्पष्ट चेतावनी दी कि – मै अपना पूरा बल देकर कहना चाहता हूँ कि – चाहे मैं अकेला ही विरोध के लिये रह जाऊ, मैं अपनी जान देकर भी उसका विरोध करूगा ।[121] गाधीजी ने कहा कि – "मैं अछूतों के हितो की बलि नही चढने दूगा । छुआछूत तो आज नहीं कल समाप्त हो जायेगी लेकिन पृथक निर्वाचन का नासूर कभी नही भरेगा । इसके लिये मैं अनशन करूगा ।[122]

गाधी जी ने अपना अनशन यरवदा जेल (पूना) मे आरम्भ कर दिया । गाधी जी ने कहा कि "यदि पृथक निर्वाचन की माग स्वीकार कर ली गयी तो यह हिन्दू समाज और राष्ट्रवाद का अन्त होगा ।"[123] अब अम्बेडकर की स्थिति खलनायक की बनने लगी तब मालवीय की अध्यक्षता मे गठित समिति ने बीच–बचाव का प्रयास किया । अम्बेडकर ने कहा कि – लेकिन मै आपको बतलाता हूँ कि मै अपने पवित्र कर्तव्य से विचलित नही होऊँगा और अपने लोगो के सच्चे एव न्यायोचित हितो पर कुठाराघात नहीं करूगा । चाहे आप मुझे सडक के नजदीक लैम्प पोस्ट पर लटका दे । अच्छा हो आप गाधी जी से निवेदन करे कि वह अपना अनशन एक सप्ताह के लिये स्थगित कर दे और समस्या का समाधान ढूढे ।" गाधी जी के प्रति रोष व्यक्त करते हुये अम्बेडकर ने कहा कि "महात्मा कोई अमर व्यक्ति नही है, न काग्रेस ही हमेशा रहने वाली है । भारत मे ऐसे अनेक महात्मा हुये है, जिन का लक्ष्य मात्र छुआछूत मिटाना था, उनका सुधार करना था और उन्हे समाज मे मिला देना था । लेकिन वे सभी अपने लक्ष्य मे सफल नही हुये । अनेक महात्मा आये और चले गये लेकिन अछूत जहा थे वहीं रह गये ।"[124]

अतत काग्रेस के नेता डा0 अम्बेडकर के पास आये, गांधी जी के पुत्र देवदास आये । "तब जाकर 21 सितम्बर 1932 को रात मे यरवदा जेल मे गांधी की अम्बेडकर से बातचीत हुयी । 24 सितम्बर को शाय 5 बजे यरवदा जेल पूना मे एक समझौता हुआ । हिन्दुओ की ओर से मालवीय व अस्पृश्यो की ओर से अम्बेडकर ने प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किये ।" जिसके अनुसार अब 148 सीटे अस्पृश्यों को दी गयीं । जिसे प्रधानमत्री रैमजे मैकडोनल्ड ने मान्यता दे दी ।"[125]

डा0 अम्बेडकर ग्राम प्रजातत्र के विरूद्ध थे । उनका कहना था कि – "ग्राम पचायतो के कारण ही जाति समूहीकरण बढा है एक आरक्षित देश में विकेन्द्रीकरण लोकतत्र का अर्थ अधिनायकवाद है ।" 1935 के अधिनियम के तहत जब राज्य सरकारों को स्वशासन का अधिकार मिला तब डा0 अम्बेडकर ने इन्डिपेडेन्ट लेबर

पार्टी का गठन किया जिसने बम्बई मे शीघ्र ही कांग्रेस को चुनौती लायक अपनी स्थिति बना ली । डा0 अम्बेडकर ने मुस्लिम लीग की भाति मात्र अछूतों की पार्टी नही बनायी थी उनकी पार्टी एक श्रमिक सगठन थी । इस पार्टी ने 15 मे 13 सीटें जीती जिनमे दो सामान्य सीटे थी । अम्बेडकर ने प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाडी "पाल बनकर बालू" को हराया था । उन्होने 1937 मे सरकार के मन्त्रियो के बिल की आलोचना की, औद्योगिक विकास बिल का विरोध किया ।"[126] वे हडताल का समर्थन करते थे ।

डा0 अम्बेडकर के सामने जीवनमरण का प्रश्न 1946 मे कैबिनेट मिशन सिफारिशो के आधार पर हो रहे सविधान सभा के चुनाव के समय आया । "अनुसूचित जाति को हिन्दू वर्ग मे स्थान मिला था । कलकत्ता से अम्बेडकर ने पर्चा भरा । 17 जुलाई 1946 को चुनाव तय किया गया । डा0 अम्बेडकर कठिन परिस्थिति मे चुनाव जीते थे । चुनाव के दिन सहस्त्रो की सख्या में अस्पृश्य विधान सभा के अन्दर तलवारे लहरा रहे थे । अम्बेडकर के हारने पर खून की होली का उदघोष कर रहे थे ।"[127] यह भारत राष्ट्र के लिये शुभ नहीं था । भारत गृह युद्ध की ओर बढ रहा था ।

"अन्तत 15 अगस्त 1947 को डा0 अम्बेडकर को आजाद भारत की प्रथम मन्त्रिमण्डल मे भागीदारी दी गयी । 30 अगस्त को अम्बेडकर को सविधान सभा की प्रारूप समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया ।"[128] अब उनके सामने अपने आदर्शो अपने मन्तव्यो को आजाद भारत की प्रथम पुस्तिका मे स्थान देने का उचित समय आ गया था ।

इस बीच भारत का बंटवारा हो गया और थके हुये राजनेताओं ने साम्प्रदायिकता के खिलाफ हथियार डाल दिये थे । गाधी विभाजन न होने पर अड़े थे । परन्तु विभाजन उनकी आखो के सामने हो गया । वस्तुत प0 नेहरू ने अपने जीवनीकार माइकल ब्रीचर को बताया था कि – "वास्तविकता तो यह है कि हम

थके हुये व्यक्ति थे और वृद्ध हो चले थे । यदि हम भारत की एकता के लिये अड जाते तो हमे कारागार की सजा भोगनी पडती । परन्तु हममे से तमाम ऐसे थे जो पुन कारागार की यात्रा नही करना चाहते थे ।"(129)

डा0 अम्बेडकर का मत विदेश नीति के मामले मे शान्ति की ओर उन्मुख था । वे सोवियत रूस को जनतन्त्र के लिये खतरा मानकर मित्रता को अच्छा नहीं मानते थे । चीन की मैत्री को भी वे सदेह की दृष्टि से देखते थे । सैनिक दृष्टि से वे भारत को मजबूत देखना चाहते थे । स्वतत्र अस्तित्व और शान्तिपूर्ण सहअस्तिव उनकी विदेश नीति के मूलभूत तत्व थे । हमे शान्ति चाहिये, वास्तव में युद्ध कोई भी नही चाहता । सवाल इतना ही है कि शान्ति के लिये हम कौन सी कीमत दे ।"(130)

उनके राजनीतिक विचारो का केन्द्रबिन्दु मनुष्य है । "इस मनुष्य की अस्मिता, स्वाभिमान, और स्वतत्रता की रक्षा सत्ता और राजनीति करे ऐसा उनका आग्रह था । मनुष्य की भूल मूत आवश्यकताओ की पूर्ति हो और समाज के प्रत्येक वर्ग को सत्ता मे साझेदारी मिले । ससदीय प्रणाली मे ही ऐसी नीति सम्भव है । मनुष्य प्रतिष्ठा के लिये सघर्षरत है और भारतीय संविधान में उन्होने मनुष्य की इस प्रतिष्ठा को स्थान दिया ।"(131)

* * * * * * * * * * * *

इस प्रकार हम निष्कर्षात्मक रूप मे कह सकते हैं कि डा0 अम्बेडकर का ध्येय आजीवन मानवतावाद, जनहित वाद बना रहा । उन्होने राजतत्र, कुलीनतंत्र, सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, मार्क्सवाद के बीच से मानवतावाद व जनतंत्र का चयन किया था । उनके मानवतावाद व जनतत्र को पारिपूरित करने वाला उनका संविधानवाद था । वह शान्ति चाहते थे । वह समता चाहते थे । वह विकास चाहते थे । उनके जीवन का दर्शन विकासवाद था । उनका विकासवाद विनाशवादी नहीं था । वह मानवता के पुजारी थे । मानवता का विशिष्ट विद्रूप चेहरा अस्पृश्यता के समापन के लिये वे आजीवन सघर्षरत रहे । उन्होने इस समस्या के समापन के

लिये सभी उपायो का आश्रय लिया । न चाहते हुये भी उन्होने अग्रेज सरकार का साथ दिया । न चाहते हुये भी उन्होने जिन्ना व मुस्लिम लीग का साथ दिया । न चाहते हुये भी उन्होने गाधी को अपशब्द कहे । लेकिन इसे हमे व्यापक परिप्रेक्ष्य मे देखना चाहिये कि उनका प्राथमिक लक्ष्य दलित समाज का कल्याण वह यह मानकर चल रहे थे कि अन्य सभी वर्गो के कल्याण के लिये तमाम लोग मौजूद हैं लेकिन अस्पृश्य वर्ग की समस्या के समाधानार्थ ज्यादा 'अभिजन' मौजूद नही है । साथ ही बिना अस्पृश्य जनो की उन्नति के भारतोन्नति सम्भव नहीं है ।

उन्होने अपने सविधान मे वे सब व्यवस्थायें की जिनसे एक राष्ट्र, एक कौम, एक समाज, एक सभ्यता, एक सस्कृति का उदय होता है । साथ ही पृथकतावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, अलगाववाद और अति व्यक्तिवाद का अवसान होता है । यद्यपि भारतीय सविधान मे केन्द्रीकरण धर्म निरपेक्षता, सुदृढ कार्यपालिका, राष्ट्रीयता और लोक कल्याणकारी सरकार के वे सारे गुण समाविष्ट हैं जो लोकतत्र के मूलमंत्र है परन्तु सविधान फिर भी निरपेक्ष है । उसकी सापेक्षता की अनुभूति उसके सचालको पर निर्भर है, कि वे कैसे है ।

डा0 अम्बेडकर कर्म मे आस्था रखते थे । कर्म सिद्धि के लिये नीति तथा वैधात्मक पक्ष का अनुगमन करते थे । उनका सत्य यथार्थ था । जिसे उन्होने भोगा था और गहरा अनुभव किया था । वे मानते थे कि लोकतत्र बदलता रहता है और वह सदा गतिशील बना रहता है । वह न तो स्थिर रह सकता है और नही अपरिवर्तित समाज धर्म लोकतत्र की अस्मिता को अभिव्यक्त करता है ।

डा0 अम्बेडकर राजनीति मे जीवन नीति को केन्द्र मे रखते थे । जीवन–नीति से राजनीति निर्देशित हो यह उनकी मशा थी । जीवन नीति का निर्धारण समाज–नीति करे । समाज वह तो समता स्वतत्रता व भ्रातृ भाव पर आधारित हो । सत्ता का सत्य भोग की नियति है । भोग से शोक जन्मता है । जीवन की आवश्यकताओं की सम्पूर्ति भोग नहीं है । आवश्यकताओं से आगे बहुत आगे जो

राजपथ शुरू होता है, वह भोग है उनका समग्र राजनीतिक चिन्तन व्यापक और गहन है । जिसके केन्द्र मे मानवता है । वे सामान्य थे, सामान्य ही बने रहे ।

वस्तुत डा0 अम्बेडकर का राजनीतिक जीवन दलित तथा पीडित मानव का सविवेक सघर्ष है । वे राजनीति करने के लिये नही जिये बल्कि उन्होने जो पददलित और मूक थे उनको एक आवाज दी । उनकी राजनीति के केन्द्र मे जन था, और समाज उनके चारों ओर । 1920 के आसपास विश्व युद्धोत्तर राजनीति की पैदाइश थे गाधी और अम्बेडकर । वे स्वराज्य चाहते थे परन्तु उसमे अस्पृश्यो की समतावाद के आधार पर बडी भूमिका चाहते थे । गाधी और अम्बेडकर उस नव शिक्षित अभिजन वर्ग के प्रतीक थे जिसका अभ्युदय ब्रिटिश सम्राज्य के परिणाम स्वरूप हुआ था । दोनो के विचारो मे जन की विशिष्ट भूमिका थी । अपने सघर्ष मे वे जन को लेकर आगे बढना चाहते थे ।

डा0 अम्बेडकर का समाज शोषित था पददलित था । उसमें स्वाभिमान भरने के लिये वे जहा एक ओर मनुस्मृति को जलाते थे वही दूसरी ओर गणेशोत्सव और भगवद्‌गीता का प्रयोग भी करते थे । उनका लक्ष्य था दलित समाज का जागरण । जो कि बिना सनातनी मिथको पर कुठाराघात किये सम्भव नहीं था । इस विरोधात्मक नीति को वे मूकनायक, बहिष्कृत भारत, जनता पत्रो के द्वारा आगे बढाते हैं । इसके द्वारा वे सिर्फ सवर्ण समाज का ध्यान दलित समाज की ओर आकृष्ट नहीं करते बल्कि वे अग्रेज सरकार का भी ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते है । तत्पश्चात वह अग्रेज सरकार के सामने आने वाले हर मौके को भुनाने से नहीं चूकते । चाहे वह 'साउथवरो कमेटी' के समक्ष उनकी गवाही रही हो अथवा 'साइमन आयोग' के समक्ष या फिर 'गोलमेज कान्फ्रेंस' मे उनका भाषण । हर क्षण को वे अपने समाज के जागरण मे, अग्रेज सरकार प्रशासन का ध्यान आकृष्ट करने मे, सवर्ण हिन्दुओं को धमकाने में खर्च करते है ।

वे जनतत्र को सार्वजनिक जीवन जीने की पद्धति मानते थे । जनतत्र के विकास के लिये विपक्ष की भूमिका को अत्यावश्यक मानते थे । अन्यथा उनका मानना था कि अराजकतावाद अधिनायकवाद सत्ता का अधिग्रहण कर लेगा । इसी प्रक्रिया मे उन्होने स्वतत्र मजदूर पार्टी और रिपब्लिक पार्टी आफ इन्डिया का गठन किया । यह पार्टिया मात्र अस्पृश्यो की पार्टिया नही थी जैसे कि मुस्लिम लीग, इसमे सभी का प्रवेश था । मूलत किसान–मजदूर के सघर्ष हेतु इसका गठन किया गया था । इन पार्टियो के घोषणा पत्र मे हमे वही बाते प्राप्त होती हैं जो कि किसी भी प्रगतिशील पार्टी के घोषणा पत्र मे हमे प्राप्त होती है ।

वे कट्टर भारतीय थे । जब लोग कहते थे कि हम पहले भारतीय है बाद मे हिन्दू, मुस्लिम, बगाली, तमिल आदि तब डा0 अम्बेडकर कहते थे कि नहीं हम पहले भी भारतीय है और अन्त तक भारतीय है । वे विखण्डनवाद के विरोधी थे । भाषा के प्रश्न पर उन्होने राज्यो के गठन का विरोध किया था । उनको आभास था कि यह अव्यावहारिक होगा । वह हिन्दी को एकमात्र भाषा बनाने के पक्षधर थे और उसकी लिपि देवनागरी रखे जाने के । वे जानते थे कि यह भाषा भारत के एक बडे क्षेत्र मे बोली और जानी जाती है । साथ ही यदि हम टिपिकल स्वरूप में इसकी खोज करेगे तो हमे यह कही प्राप्त नही होगी । अत हिन्दी मे ही राष्ट्रीय भाषा का दर्जा पाने का विस्तार व गहराई है ।

वे वश की दृष्टि से सभी को सकर मानते थे । आर्य–अनार्य संघर्ष का सृजन नाग देवता और ऋषि अगस्त्य के माध्यम से नये सिरे से करते थे । नयी सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता महसूस करते थे । मार्क्सवाद के वर्ग सघर्ष को चुनौती देते थे । वे समतामूलक समाज की सरचना चाहते थे ।

राजनीति में आ रहे भ्रष्टाचार पर वह चिन्तित थे । भ्रष्टाचार व कदाचार से राजनीति का स्वरूप विस्फरित होने के लक्षण उन्हें दिखाई पडने लगे थे । अग्रेंज

जाति व्यवस्था के समापन हेतु कुछ नही कर रहे थे आर्थिक विषमता समाज में बढ़ रही थी । डा0 अम्बेडकर को पश्चिम के समाज के अध्ययन से ज्ञान था कि यदि विषमता की खाई को कम करने का प्रयास नही किया गया तो वह जनतत्र को चलने नही देगा ।

काग्रेस 1920 मे दो मुखी रणनीति पर काम कर रही थी । काग्रेस पर वर्चस्व इस समय जमीदार, उच्च वर्णीय अभिजात्यो, ब्राह्मणो, कायस्थो, वैद्यों का था जो सिर्फ अपने लिये राजनीतिक स्वतत्रता चाह रहे थे । पद्धति प्रस्ताव के तौर पर वे छुआछूत उन्मूलन को अपना ध्येय बताते थे लेकिन कार्यवायी के स्तर पर कभी कुछ नही करते थे । गाधी के आने के बाद भी बहुत बदलाव नही आ रहा था क्योकि काग्रेस पर वर्चस्व तो सवर्ण अभिजनो का ही था ।

गाधी व अम्बेडकर मे टकराव बढ जाता है । यद्यपि यह टकराव वैचारिक ज्यादा था । गाधी और अम्बेडकर दोनो अस्पृश्यता उन्मूलन चाहते थे । दोनो ही स्वराज्य चाहते थे । परन्तु उनके 'लक्ष्य क्रम' मे अन्तर था । गांधी अस्पृश्यता को एक सामाजिक समस्या मानकर स्वय इसे हल करना चाहते थे जबकि अम्बेडकर इसे सर्वप्रथम हल करना चाह रहे थे । इसके लिये वह स्वराज्य पाने मे देरी भी मजूर करने को तैयार थे । इसलिये कि अम्बेडकर ने जिस बुरी दशा को भोगा था वे चाहते थे कि यह बुरी दशा जल्द से जल्द समाप्त हो जानी चाहिये । जबकि गाधी ने इस दशा का भोगा नही था । वे स्वराज्य पहले चाहते थे उनका मानना था कि दो–तीन हजार साल पूर्व से चली आ रही इस समस्या का समाधान इतनी जल्दबाजी में नही किया जा सकता है । साथ ही जिस प्रकार ब्राह्मणो ने अपना कर्म शिक्षा बदलकर सेना को अपना लिया वैसे ही समय के साथ अस्पृश्य व्यवस्था भी अपने आप और सरकारी प्रयासो के द्वारा अवश्य समाप्त हो जायेगी । अम्बेडकर दलित हित के लिय अस्पृश्यो की एक पृथक पहचान चाहते थे । जबकि डा0 अम्बेडकर के ठीक विपरीत गाधी जी दलितो को हिंदू, मुस्लिम, सिख की भाति

हमेशा के लिये 'अस्पृश्य' बनाये रखने के खिलाफ थे । अम्बेडकर का मत था कि जो कुछ अग्रेज सरकार हमे दे रही है । सवर्ण हिन्दू और गाधी उसमें रोडे अटका रहे है जबकि गाधी का मत था कि 'बाटो और राज करो' की नीति की धारा मे अग्रेंज प्रशासन दलित हित करना चाह रहे है । अम्बेडकर का भारतीय सेनानियों से अनुरोध था कि हमे सामाजिक गुलामी से मुक्त करो तब हम राष्ट्र सघर्ष में अपना योगदान दे पायेगे । गाधी का मत था कि अम्बेडकर को हम से नाराज होने का पूरा अधिकार है ।

अम्बेडकर प्रखर राष्ट्रवादी थे जब हिन्दू, मुस्लिम की बात आती थी अथवा जब आर्थिक राष्ट्रवाद की बात आती थी तब अम्बेडकर का राष्ट्रवादी मन जाग उठता था । हा जब बात स्वतत्रता सघर्ष की आती थी तो वह अपने समाज के लिये इस सघर्ष का उपयोग करना चाहते थे । जो कि इससे अलग रहकर ही उन्हे प्राप्त हो सकता था ।

अम्बेडकर का सत्याग्रह, अहिंसा का सिद्धान्त गाधी से कुछ अलग था । उनका यह आग्रह प्राय. सवर्ण समाज के खिलाफ था । अग्रेंज सरकार उसमें बाद में शामिल होती थी । मन्दिर, जल, रास्ता, राजनीतिक आरक्षण जैसे प्रश्नों पर उनका विवाद होता था । भगवद्गीता का कर्मवाद उनका आधार था जिसके द्वारा वे समस्त प्राधिकार मानवता के अपने लोगो को दिलाना चाह रहे थे । अम्बेडकर साध्य की पवित्रता पर सूक्ष्म हिंसा को स्वीकार करते थे । 100 वर्ष तक सड़ते रहने की अपेक्षा कुछ क्षण तीव्र ज्योति में जलकर बुझ जाने को वह अच्छा मानते थे ।

स्त्रियों के समस्त अधिकार को दिये जाने के वे हिमायती थे । माता, पत्नी, श्रमिक सभी रूपो में वे स्त्री के पूर्ण प्राधिकार के हिमायती थे ।

साइमन कमीशन के समक्ष डा0 अम्बेडकर ने एक लम्बी गवाही दी और अपने समाज के लिये जनसंख्या के अनुपात में, आरक्षण, प्रतिनिधित्व वतन, फौज, पुलिस

जैसे सस्थानो मे भर्ती की माग की । अम्बेडकर सरकार द्वारा बनायी गयी समिति के सदस्य थे परन्तु समिति की रिपोर्ट पर वे असहमत होकर अपनी अलग रिपोर्ट प्रस्तुत करते है । खासकर भाषिक आधार पर राज्य पुनर्गठन के वे खिलाफ थे । उन्होने कहा कि एक भाषा व अनेक राज्य के आधार पर राज्यों का गठन होना चाहिये । नेहरू रिपोर्ट को वह अस्वीकार करते है ।

डा0 अम्बेडकर मुसलमानो को दिये गये पृथक निर्वाचन क्षेत्र व द्विराष्ट्रवादी सिद्धान्त को पूर्णतया अस्वीकार करते है । कहते है कि यूरोप के अनेक राज्यो मे – यथा ग्रीस, युगोस्लाविया, रूमानिया, आदि में बहुधर्मी समाज है तो क्या वहा पृथक निवार्चन क्षेत्र या अलग राष्ट्रीयता के बिना काम नही चल रहा है और जब यूरोप में विविध धर्मो, पन्थो, भाषिको को एक साथ र,खा जा सकता है तो भारत में क्यो नही ।

पूना पैक्ट के समय अम्बेडकर का भावुक राष्ट्रवाद, अस्पृश्य समाज के उत्प्रेरण की तथ्यात्मकता अपनी चरम सीमा को प्राप्त कर लेती है । सम्प्रदायिक पचांट के जरिये अस्पृश्यों को पृथक निर्वाचन क्षेत्र अग्रेंज सरकार की तरफ से दिया जाता है । गाधी जी अनशन पर बैठ जाते है । अन्तत भारतीय राष्ट्रवादी अम्बेडकर को मनाने मे सफल हो जाते है और भावुक अम्बेडकर पृथक निर्वाचन क्षेत्र की माग पूर्व आरक्षित सीटों से लगभग दुगुनी सीटों के आधार पर संयुक्त निर्वाचन के द्वारा छोड़ देते हैं ।

तत्पश्चात गाधी और अम्बेडकर अस्पृश्य समस्या के निवारण का उपाय बड़े पैमाने पर करते है । अम्बेडकर अपनी गतिविधिया 1937 के चुनाव और 1946 के चुनावों के माध्यम से आगे बढ़ाते है । अन्तत भारत द्विराष्ट्रवादी सिद्धान्त पर आजाद होता है और निर्वाचित सदस्य डा0 अम्बेडकर सविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष नियुक्त किये जाते है और अब उनका कार्य अपने विचारों को

सविधान मे स्थान दिलाना था । कल्याणकारी सविधान के द्वारा वह अपने लक्ष्य में सफल भी होते है ।

विवरणिका

1 डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – राजेन्द्र मोहन भटनागर – 1994–जगतराम एन्ड सस प्रकाशक – नई दिल्ली, पृष्ठ – 88–89 ।

2 वही पृष्ठ – 89 ।

3 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – 1998 – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली । पृष्ठ – 90 ।

4 वही पृष्ठ – 91

5 डा0 अम्बेडकर तत्व ज्ञान प्रचिती आणि आविष्कार – ताराचन्द खान्डेकर पृष्ठ – 124 – प्रज्ञा प्रकाशन – 1981 नागपुर ।

6. अस्पृश्यता एव दलित चेतना – डा0 पूरनमल – प्वाइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999 – पृष्ठ – 162 ।

7 एस एस सिंह, हरिजन एलिट – ए स्टडी आफ दीयर आइडेन्टिटी – न्यू देलही, उप्पल पब्लिशिग हाउस – 1987 – पृष्ठ – 166 ।

– रविप्रताप सिह, – अनु जाति के विधान विधानमण्डलीय अभिजन–मित्तल पब्लिकेशन

दिल्ली, 1989 – पृष्ठ – 29 ।

8 सच्चिदानन्द – एजूकेशन एन्ड सोशल वैल्यूज – मैन इन इन्डिया, वा – 48 न0–1 जनवरी – मार्च – 1968 पृष्ठ – 25 ।

9 अस्पृश्यता एव दलित चेतना – डा0 पूरनमल – प्वाइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999 – पृष्ठ – 197 ।

10. डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – राजेन्द्र मोहन भटनागर – पेज 88, 1994, जगतराम एन्ड सन्स प्रकाशन नई दिल्ली ।

एम. एस गोर, दिशांशक कान्टेक्स्ट आफ एन आइडियोलाजी, साने पब्लिकेशन – नई दिल्ली – पृष्ठ – 105

11 वही पृष्ठ – 74 ।

12 मूक नायक के आरम्भिक 6 अको के सम्पादकीय, अम्बेडकर द्वारा लिखित ।

Of these twelve issues has – 1, 2, 3, 5, 6, 10, have been published in the government of Maharashtra Publication Institute or Babasaheb Ambedkar Yanche Bahishkrit Bharat and Mooknayak – 1990 edited by – Vasant moon and are this available to the cammon reader.

13 Vasant Moon – mook nayak – No – 1

14 " " N – 2

15 " " No – 3

16 " " No – 5

17 " " No. – 6

18 धनजय कीर – डा0 बाबासाहेब अम्बेडकर जीवन चरित पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 – पृष्ठ – 40 ।

19 दी टाइम्स आफ इण्डिया – 16 जनवरी 1919 बम्बई ।

20 डा0 धनजंय कीर – डा0 बाबा साहब अम्बेडकर जीवन चरित –पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 पृष्ठ – 41

21. बहिष्कृत भारत – 20 मई 1927

22 डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – 1994 जगतराम एण्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – पृष्ठ – 89 ।

23 वहीं पृष्ठ – 90 ।

24. डा0 अम्बेडकर एक्रिटिकल स्टडी – व्हीं एन कुबेर, लोकवाड मयगृह मुम्बई – 1982 ।

25 अम्बेडकर तत्वज्ञान प्रचिती आणि अविष्कार – डा0 ताराचन्द खांडकर पृष्ठ – 131 – प्रज्ञा प्रकाशन – नागपुर – 1981 ।

26. डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – भाल चन्द फड़के – पृष्ठ – 203 श्री विद्या प्रकाशन, पुणे – 1985 ।

27 डा0 अम्बेडकर तत्वज्ञान प्रचिती आणि आविष्कार – डा0 ताराचन्द खाडेकर पृष्ठ – 139 । प्रज्ञा प्रकाशन, नागपुर – 1981 ।

28 डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, पृष्ठ – 90 – 91– 1994, जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली ।

29 राइटिग्स एन्ड स्पीचेस आफ डा0 अम्बेडकर – खण्ड – 2 पृष्ठ – 1951 बम्बई, शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार – 1990 ।

30 वही पृष्ठ – 298 ।

31 डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – डा0 कृष्ण दत्त पालीवाल – पृष्ठ – 22, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली – 1996 ।

32 राइटिग्स एन्ड स्पीचेस, खण्ड – 2, पृष्ठ – 16 – मुम्बई शिक्षा विभाग महाराष्ट्र सरकार ।

33 डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – कृष्ण दत्त पालीवाल – पृष्ठ – 22, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली – 1996 ।

34 डा0 अम्बेडकर राइटिग्स एन्ड स्पीचेस – पृष्ठ – 22 खण्ड – 2 बम्बई, शिक्षा विभाग – महाराष्ट्र सरकार – 1990 ।

35 वहीं पृष्ठ – 47 न0 – 6

36 अम्बेडकर वाङमय – खण्ड – 10, पृष्ठ – 194 – डा0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मन्त्रालय, नई दिल्ली – 1996 ।

37 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – 1994 जगत राम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली पृष्ठ – 92 ।

38 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली – 1998, पृष्ठ – 93 ।

39 डा0 अम्बेडकर विचार मन्थन – श्री वा0ना0 कुबेर – पृष्ठ – 212 लोक बाङमय गृह, मुम्बई – 1982 ।

40. " वहीं ।

41. " वहीं ।

42 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – पृष्ठ – 95, राधा कृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

43 डा0 अम्बेडकर विचार मन्थन – पृष्ठ – 216 – श्री वा0 ना0 कुबेर लोकवाङमयगृह, मुम्बई – 1982 ।

44 डा0 पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – प्वाइन्टर प्रकाशन – जयपुर 1999, पृष्ठ – 8 ।

45 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राइटिंग्स एन्ड स्पीचेस – 2, गवर्नमेन्ट आफ महाराष्ट्र – 1982 पृष्ठ – 504 ।

– डी0 आर0 जाटव – डा0 अम्बेडकर व्यक्तित्व एव कृतित्व – जयपुर – समता

साहित्य सदन, तृ0 स0 1993, पृष्ठ – 124 ।

46 ओमेली, एल एस एस – इन्डियाज सोशल हेरिटेज, आक्सफोर्ड ऐट दी क्लेरेन्टन प्रेस – 1934 पृष्ठ – 63 ।

47 डा0 धनजंय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – जीवन चरित – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996, पृष्ठ – 46 ।

48 वहीं पृष्ठ – 53 ।

49 खैरमोडे, या मा0 डा0 भीमराव अम्बेडकर पृष्ठ – 66 – 67 श्री विद्या प्रकाशन, पुणे – 1980 ।

50 डा0 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित, पापुलर पकाशन नई दिल्ली – 1996, पृष्ठ – 46 ।

51 वहीं पृष्ठ – 53 ।

52. रत्नाकर गणावीर – 1985 पृष्ठ – 442 – 60 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर, बहिष्कृत भारत अग्रलेख, रत्नमित्र प्रकाशन, नागपुर ।

53. डा0 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र, पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली – 1996 पृष्ठ – 53 ।

54. वहीं पृष्ठ – 57 ।

55 डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर सम्पूर्ण वाडमय – खण्ड – 10, कल्पाजय मोला भारत सरकार नई दिल्ली, पृष्ठ – 213 ।

56 यग इन्डिया – 17 नवम्बर 1920 ।

57 दि कलेक्टिव वर्क्स आफ महात्मा गाधी – खन्ड – 14, पृष्ठ – 15 ।

58 दि राइटिंग्स एन्ड दि स्पीचेस – खण्ड – 2, पृष्ठ – 504, बम्बई, महाराष्ट्र सरकार, शिक्षा विभाग – 1982 ।

59 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित, पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली – 1999, पृष्ठ – 58 ।

60 गाधी सस्मरण और विचार, पृष्ठ – 345 ।

61 वही पृष्ठ – 345 ।

62 वहीं – पृष्ठ – 83 ।

63 हम बौद्ध क्यों बने ? प्र0 स , 1987, कल्चरल पब्लिशर्स लखनऊ, पृष्ठ – 42 ।

64 वहीं पृष्ठ – 34 ।

65 कृष्ण दत्त पालीवाल – डा0 अम्बेडकर और समाज व्यवस्था – किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली – 1996 पृष्ठ – 26 ।

66 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित, पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली – 1996, पृष्ठ – 60 ।

67 जनता – विशेष अक – अप्रैल 1933 । (बहिष्कृत भारत का नाम बदल कर जनता कर दिया गया था) ।

68 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – 1994, जगतराम एन्ड संस प्रकाशन – नई दिल्ली – पृष्ठ – 95 ।

69 धनजंय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित – पृष्ठ – 58 – पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

70 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – 1994 – जगतराम एन्ड सस प्रकाशन नई दिल्ली – पृष्ठ – 95 ।

71 रत्नाकर गणवीर – 1985, पृष्ठ – 337 – 75 । डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – बहिष्कृत भारत अग्रलेख, नागपुर ।

72 एम एस गोर – द सोशल कान्टेस्ट आफ ऐन आइडियोलाजी – सेज पब्लिकेशन – न्यू देलही – 1993 पृष्ठ – 104 ।

73 रत्नाकर गणवीर 1981 (बी) पृष्ठ – 35, महार समतासघ रत्नमित्र प्रकाशन जलगाव ।

74 एम एस गोर – द सोशल कान्टेंस्ट आफ ऐन आइडियोलाजी – सेज पब्लिकेशन – न्यू देलही – 1993 पृष्ठ – 106।

75. अग्रलेख – बहिष्कृत भारत – 27 नवम्बर 1927 – सत्येन्द्र गणवीर, रत्नमित्र प्रकाशन – 1985 – नागपुर ।

76 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित, पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996, पृष्ठ – 88 ।

77 वहीं पृष्ठ – 108 ।

78 वहीं पृष्ठ – 110 ।

79 बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाड मय खण्ड – 10, पेज – 133, कल्याण मन्त्रालय भारत सरकार नई दिल्ली – 1996 ।

80 वहीं पृष्ठ – 136 ।

81. वहीं पृष्ठ – 137 – 41 ।

82 धनजंय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली 1996, पृष्ठ – 112 ।

83 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – पृष्ठ – 95, 1994 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन नई दिल्ली ।

84 धनजंय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित – पृष्ठ – 113, पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

85. वहीं पृष्ठ – 114 ।

86- वहीं पृष्ठ – 115 ।

87- बसन्तमून 1982 पृष्ट – 465

88 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – पृष्ठ – 98 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।

89. डी आर जाटव – ए पोलिटिकल थियरी आफ डा0 अम्बेडकर जयपुर, समता साहित्य सदन – 1993 ।

90 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998, पृष्ठ – 100 ।

91 डा0 अम्बेडकर विचार मन्थन – श्री वा0ना0 कुबेर पृष्ठ – 228 लोकवाड. मयगृह, मुम्बई – 1982 ।

92 डा0 सूर्य नारायण रणसुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – पृष्ठ – 100 राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 ।

93 डा0 अम्बेडकर विचार मन्थन – श्री वा0 ना0 कुबेर – पृष्ठ – 235 लोकवाड मयगृह, मुम्बई – 1982 ।

94 डा0 सूर्य नाराण रणसुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर – पृष्ठ – 100 राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली – 1998 ।

95. डा0 अम्बेडकर विचार मन्थन – श्री वा0 ना0 कुबेर – पृष्ठ – 239 लोक वाद मय गृह, मुम्बई , 1982 ।

96 एम एस गोर – द सोशल कान्टेंस्ट आफ ऐन आइडियोलाजी – सेज पब्लिकेशन – न्यू देलही – 1993 पृष्ठ – 113 ।

97 वही पृष्ठ – 116 ।
रत्नाकर गणवीर पृष्ठ – 447 – 1985 ।

98- वहीं एम एस गोर – पृष्ठ – 117 ।

99. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – पृष्ठ – 97 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन नई दिल्ली – 1994 ।

100 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित – पृष्ठ – 121 पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

101 वही आगे ।

102 वही पृष्ठ – 139 – 42 ।

103 वही पृष्ठ – 144 ।

104 सुभाष चन्द्र बोस द इन्डियन स्ट्रगल पेज न0 – 41 ।

105 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित – पृष्ठ – 145 पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

106 वहीं पृष्ठ – 148 ।

107 अम्बेडकर राचे पत्र – 19 दिसम्बर 1930 ।

108 डा0 राजन्द्र मोहन भटनागर – भारतीय काग्रेस का इतिहास – पृष्ठ – 3 – 5 ।

109 डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार पृष्ठ – 98 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।
– धनजंय कीर – पृष्ठ – 162 – 66 – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996 ।

110 बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वाडमय – खण्ड – 10, पृष्ठ – 34, कल्याण मत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली – 1996 ।

111 दि डायरी आफ महादेव देसाई – नवजीवन पब्लिशिग हाउस, खण्ड – 1, पृष्ठ – 52 ।

112 धनजय कीर – बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित, पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली 1996 – पृष्ठ – 1661 ।

113 द इनसाइड एशिया – जान गुन्थर, पृष्ठ – 382 ।

114 दि ट्रेजेडी आफ गांधी जी – ग्लोर्ने वाल्टन, पृष्ठ – 266– 267 ।

115. धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित, 1996, पापुलर प्रकाशन – नई दिल्ली – 1996, पृष्ठ – 171 ।

116 प्रोसीडिग आफ फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी एन्ड माइनारिटीज कमिटी पेज – 563–564 ।

117 धनजय कीर – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन और दर्शन, पृष्ठ – 174, पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली 1996 ।

118 **The Illustrated weekly of India & 14 June 1936.**

119 **Thompson Edward – Enlist India for freedom . P. P. 75.**

120 **Proceedings of federal structure committee and minorities committee P. P. 536 – 64.**

121 राजेन्द्र मोहन भटनागर – डा0 अम्बेडकर जीवन और चरित्र पृष्ठ – 14, 1990 जगतराम एन्ड संस प्रकाशन – नई दिल्ली ।

122 दि बाम्बे क्रानिकल – 18 अगस्त 1932 ।

123 दुर्गादास – इन्डिया फ्राम कर्जन टू नेहरू – आफटर कोलैप्स लन्दन – 1963, पृष्ठ – 163 ।

124. महात्मा ज्योतिबा फूले – पावर आफ सोशल रिवोल्यूशन – धनजय कीर – पृष्ठ – 202, पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली ।

125. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर चिन्तन और विचार – 1994 जगतराम एन्ड सस प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 103 – 104 ।

126 वही पृष्ठ – 105 ।

127 वहीं पृष्ठ – 107 – 10 ।

128 वही पृष्ठ – 115 – 17 ।

129 हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इडिया – भाग–3, पृष्ठ – 801 ।

130 डा0 अम्बेडकर विचार मन्थन, श्री वा0 ना0 कुबेर – पृष्ठ – 252, लोकवाड मयगृह, मुम्बई ।

131 सूर्य नारायण रणसुभे – डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली – 1998 – पृष्ठ – 101 ।

अध्याय — तीन

दलित समाज के जागारण में काशीराम का योगदान

(क)सामाजिक क्रियाविधि

(ख)धार्मिक क्रियाविधि

(ग) आर्थिक क्रियाविधि

(क) सामाजिक क्रियाविधि

बाबासाहेब डा0भीमराव अम्डेकर ने दलित समाज के जागरण हेतु अथक परिश्रम किया। आजीवन वह दलित समाज के उत्थान हेतु संघर्ष करते रहे। हालाकि डा0 अम्बेडकर से पूर्व जातिवाद से प्रताडित व दुखी होकर महात्मा ज्योतिबा फूले ने, मनुवाद के आधार पर बनाई गयी गैर बराबरी वाली सामाजिक व्यवस्था को बदलकर समता मूलक समाज व्यवस्था बनाने हेतु सधर्ष आरम्भ किया थाा। 1890 ई0 में उस महान सामाजिक आन्दोलन के पितामह का निधन हो गया। इनके एक वर्ष बाद डा0 अम्बेडकर का जन्म हुआ और जब डा0 अम्बेडकर की मृत्यु हुई उससे पूर्व 15 मार्च 1934 को पजाब राज्य के रोपड जिले मे अनुसूचित जति के रामदासी समाज मे मा काशीराम जन्म ले चुके थे। जिन्होने सर्वप्रथम 6 दिसम्बर 1978 को 'बामसेफ' (बैकवर्ड एन्ड माइनारिटीज कम्युनिटीज एमपलाइज फेडरेशन) और 6 दिसम्बर 1981 को डी एस फोर (दलित शोषित समाज सर्धष समिति) नाम से आरम्भिक सगठन दलित जागरण हेतु बनाये। अन्तत मान्यवर काशीराम ने अपने साथियों के साथ 14 अप्रैल सन 1984 को बहुजन समाज पार्टी के नाम से एक राजनीतिक पार्टी की स्थापना की । [1]

मान्यवर काशीराम जी ने बहुजन समाज पार्टी के माध्यम से दलित शक्ति का, दलितो को आभास कराया। जिस शक्ति को जागृत और सगठित करने का प्रयास डा0 अम्बेडकर ने किया था उसे काशीराम ने वास्तव मे सत्ता प्रदान कर दी डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि राजनीतिक सत्ता वह मास्टर चाबी है जिसके द्वारा दलित समाज के लोग अपनी तरक्की और सम्मान के सभी दरवाजे खोल सकते है ।[2] इस चाबी की खोज 1995 मे पूर्ण हो गयी जब कि बहुजन समाज पार्टी की सुश्री मयावती उत्तर प्रदेश जैसे बडे व महत्वपूर्ण राज्य की मुख्यमत्री बन गयी ।

भारतीय समाज स्पृश्य व अस्पृश्य दो भागो मे बटा है । भारतीय संविधान में अस्पृश्यता को अनुच्छेद 17 के अन्तर्गत अपराध धोषित किया गया है । परन्तु

सविधान मे इसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी गयी है । "भारतीय संसद ने 1955 मे अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 पारित किया जिसमें अस्पृश्यता के कुछ लक्षण बताये गये हैं लेकिन निश्चित परिभाषा नही दी गयी है ।[3] डा0 अम्बेडकर ने कहा कि "अस्पृश्यता का आधार गन्दगी अपवित्रता तथा छूत लग जाने की कल्पना तथा उससे मुक्त होने का तरीका व साधन है । यह एक स्थायी व वशानुगत साधन है जो मिट नही सकता है।"[4] इसी क्रम में प्रभात मुखर्जी ने अपने अध्ययन विआन्ड द फोर वर्णडाज, द अनटचेबिलस इन इडिया में 1988 में लिखा कि स्पष्ट रूप से अस्पृस्यता का प्रथम लक्षण है कि वे हिन्दू जातियो के लिए अस्पृश्य है तथा द्वितीय हिन्दू आबादी से पृथक आवास , और हिन्दू जातियों के साथ सहभोज एव वैवाहिक सम्बन्धो का निषेध सामयिक लक्षण है ।[5] जबकि काशीराम विचार छुआछूत पर थोडा भिन्न है । गरीब ब्राह्मण चमार के हाथ का छूआ पानी नही पीते । दोनो ही गरीब है लेकिन उनके बीच जाति की खाई है जो गरीबी व गरीब को एक नहीं होने देती हैं इसलिए मैं कभी वर्ग संघर्ष का पक्षधर नहीं रहा । मैं तो जाति–सघर्ष चाहता हूँ ।[6] काशीराम के इस बदले विचार के आधार में कुछ विशेष तथ्य थे। यथा आर्य समाजियो के तथा सिख सम्प्रदाय के प्रभाव के नाते पजाब में छुआछूत जैसी समाजिक बीमारी प्राय समाप्तप्राय थी अत काशीराम को कभी अपनी निम्न सामाजिक पृष्ठभूमि का ज्ञान नहीं होने पाया था । उनके दादा व चाचा सेना मे थे ।[7] अत परिवार भी प्रतिष्ठित था।

वैदिक धर्म के चारो वर्णो में चौथा वर्ण शुद्रो का था। वैदिक व्यवस्था से वर्ण व्यवस्था बनी ,फिर वर्ण व्यवस्था से जाति व्यवस्था बनी वैसे ही जाति व्यवस्था के कारण घृणा और उससे अस्पृश्यता का उदय हुआ। हिन्दू समाज को जातियों का समुच्चय कह सकते है। इसी आधार पर पुरी के शकराचार्य का मत है कि हिन्दू धर्म की सबसे बडी विशेषता जाति है जो जाति को नही मानता वह हिन्दू नही है ।[8] परन्तु इस जाति प्रथा के विरूद्ध एक जागरण समाज मे आया है इसी जागरण के फलस्वरूप एक दलित बुद्धिजीवी माता प्रसाद का मानना है कि भ हिन्दू धर्म में एक

अन्तर्विरोध है जहा इसमे जाति–पाति है, छुआछूत है, जन्म के आधार पर ऊच नीच है, वहीं पर यह भी सत्य है कि यह सहिष्णु है, उदार है, समन्वयवादी है । हिन्दू समाज और हिन्दू सस्कृति मे असहमति और सुधार दोनो की ही परम्परा रही है ।[9] इस असहमति को स्वर दिया काशीराम ने । काशीराम का मानना है कि जो लोग जाति बनाये रखना चाहते है वे कहते है कि जाति की बात ही मत करो। यह करनी भी हो तो हम ही करेगे अपमानित लोग नही करेगें । यानि जुल्म सहते रहो । हम जाति के आधार पर सगठित कर रहे है, ताकि जाति व्यवस्था का खात्मा हो जाय, इसलिए जिन लोगो को जाति के आधार पर नुकसान पहुँचाया गया है, उन लोगो के हित की बात है कि वे सगठित हो । हम जुल्म करने वालो की नहीं सहने वालो की निन्दा करते है ।[10] इतना ही नही समाज के अगुवा वर्ग ब्राह्मण को वह व्यवस्था का प्रतीक घोषित करते हैं और उसे ब्राह्मणवाद का नाम देते है । कहते है कि ब्राह्मणवाद (सनातनी व्यवस्था) गैर बराबरी की रूह है, जब तक ब्राह्मणवाद है तब तक हिन्दू समाज मे पिछड़ी जातियों का मान सम्मान नही मिल सकता। ब्राह्मणवाद रहता है तो जातिवाद रहता है, गॉधी जी ने वर्ण व्यवस्था कायम रहने की बात की थी ।[11] आगे काशीराम दलित जातियो मे उपविभाजन को स्वीकार करते है और उनको भी अपने एजेन्डे पर लेते हुए कहते है कि सच है कि अनुसूचित जाति हजार डेढ हजार वर्गो मे बटी है इसी तरह अनुसूचित जन जाति के लोग भी करीब डेढ़ हजार भागो मे बटे है । इसी प्रकार पिछड़ी जातियों के लोग 3743 जातियो विभाजित हैं तो जब तक यह जाति–पाति रहेगी बंटवारा तो रहेगा ही । हम सब वर्गो को हटाकर एक 'बहुजन समाज' का निर्माण करना चाहते है ।[12]

सामाजिक व्यवस्था का ही एक पहलू शिक्षा हैं। जागरूकता का माध्यम सदैव शिक्षा रही है। सदैव से पददलित शोषित दलितों ने अपनी पृथक पहचान और कुछ अधिकारों को प्राप्त करने के पश्चात अनुसूचित जाति–जनजातियों ने बड़ी संख्या में शिक्षा ग्रहण की वे शिक्षित लोग बड़ी सख्या में सरकारी सेवा में पहुंच गयें । आज

इन शिक्षित दलिततो की सख्या लगभग (1982 मे) बीस लाख है । इस प्रकार पददलित दलितों के बीच एक नया आभिजात्य वर्ग उदित हुआ है ।[13]

पाश्चात्य विद्वानो कोलाम्ब्रिस्का–1912, मिल–1956, लासवैल– 1966 मिलीलैन्ड – 1970 एव प्रमुख भारतीय समाज वैज्ञानिको सच्चिदानन्द 1977, अब्बासायुलू 1978 शर्मा–1979 राय तथा सिह – 1987 ने शिक्षा को अभिजन प्रस्थिति के लिए प्रमुख उत्प्रेरक माना है ।[14] आज से लागभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व ज्योतिबा फूले ने शिक्षा के महत्व को समझकर 1848 मे पूणे मे मात्र हरिजन लडकियों के लिए, एव हरिजन लडके लडकियों दोनों के लिए 1851 में प्रथम स्कूल खोला। **1884** मे हन्टर आयोग समक्ष हरिजन बच्चो के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव रखा ।[15] सभी प्रकार के पदो के लिए निश्चित स्तर की शिक्षा होना प्रारम्भिक एव अनिवार्य शर्त है । शैक्षिक योग्यता के अभाव मे कोई भी व्यक्ति अभिजन पद प्राप्त करने की कल्पना भी नही कर सकता है ।[16] दलितो में शिक्षा का प्रसार हुआ है । पहले ऐसे कस्बे व गॉव मिलते थे जहाँ एक भी दलित शिक्षित नहीं होता था आज प्रत्येक गॉव या कस्बे मे (यदि वहा दलितो की सख्या अधिक है) कोई न कोई दलित शिक्षित मिल जायेगा । यहा तक कि हाई स्कूल या ग्रेजुएट भी मिल जायेगा ।[17] परन्तु अभी शिक्षा विकास प्रत्येक क्षेत्र में नहीं हो पाया हैं । यथा–तकनीकी व चिकित्सीय शिक्षा मे तकनीकी शिक्षा में दलित अभी भी पिछड़े हुऐ है, आरक्षित तकनीकी पद खाली पडे रहते है। दलितो में निरक्षरता का प्रतिशत अभी भी 50 प्रतिशत से ऊपर है ।[18]

दलितों का इस समृद्धि अथवा अभिजन के रूप में पद प्राप्ति के अनेक आयाम है। जिसे डा0 पूरनमल ने अपने विस्तृत अध्ययन में दर्शाया है । उन्होने सर्वे के आधार पर पाया कि 20 प्रतिशत दलित अभिजन एक कारक को 40.67 प्रतिशत दो एवं 39.33 प्रतिशत अभिजन 3 कारक का योगदान अपने वर्तमान पद प्राप्ति में सहायक मानते हैं एक कारक को वर्तमान पद प्राप्ति के लिए उत्तरदायी मानने वाले

अभिजनो मे 10 प्रतिशत शिक्षा को, 6 67 प्रतिशत सवैधानिक प्रावाधानो एव 2.67 प्रतिशत पारिवारिक ख्याति को सहायक मानते है।

लगभग 40 67 प्रतिशत दलित अभिजन दो कारको का योगदान अपने वर्तमान पद पर पहुँचने मे सहायक बताते है, जिनमे शिक्षा एव सवैधानिक प्रावधानो को 26. 67 प्रतिशत तथा शिक्षा एव परिवारिक ख्याति को 13 33 प्रतिशत अभिजन उत्तरदायी मानते है। 39 33 प्रतिशत अभिजन अपने वर्तमान पद के लिए तीन कारकों को सामूहिक रूप से उत्तरदायी मानते हैं जिनमे से सर्वाधिक 17 33 प्रतिशत शिक्षा सवैधानिक प्राविधान एव पारिवारिक ख्याति को 8 प्रतिशत शिक्षा, सवैधानिक प्राविधान एव सम्पत्ति को 6 67 प्रतिशत शिक्षा सवैधानिक प्रवधान एव समाज सेवा का उल्लेख करते है ।[19]

क्रमसख्या	वर्तमान पद प्राप्ति के सहायक कारक	आवृत्ति	प्रतिशत
	एक कारक–30		
1	शिक्षा	15	10.00
2.	सवैधानिक प्रावधान	10	6.67
3	पारिवारिक ख्याति	4	2 67
4	समाज सेवा	1	0 67
	दो कारक – 61		
5	शिक्षाएव सवैधानिक प्राविधान	40	26.67
6.	शिक्षा एव पारिवारिक ख्याति	20	13.33
7.	समाज सेवा एव पारिवारिक ख्याति	01	0.67
	तीन कारक		
8.	शिक्षा संवैधानिक एव पारिवारिक ख्याति	26	17.33

9	शिक्षा पारिवारिक ख्याति एव सम्पत्ति	8	5 33
10	शिक्षा सवैधानिक प्राविधान एव सम्पत्ति	12	8 00
11	शिक्षा सवैधानिक प्राविधान एव समाज सेवा	10	6.67
12	शिक्षा समाज सेवा एव सम्पत्ति	3	2.00
योग		150	100

वस्तुत ब्रितानी काल मे ही शिक्षा व अर्थपूर्णता के आधारभूत उपागम मिशनरियो द्वारा आरम्भ किये जा चुके थे। यथा आगरा, अलीगढ, कानपुर में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद चमड़े के करोबार की व्यापक शुरूआत हुई। सैनिको के जूते व अन्य समानो की आपूर्ति यही से की जाने लगी । इसमें तमाम जातियां शामिल थीं जबकि पूर्व में यह मात्र चमार व मोचियो का कारोबार था परन्तु अब यह लाभ का कारोबार था। इससे छोटे कस्बों में नये सामाजिक सम्बन्धों का विकास हुआ ।[20] इसमें पौराणिक समाजिक सम्बन्धो पर आधुनिक सामाजिक समबन्धों का आरम्भ हुआ । जिसमे पूँजी ही सब कुछ मानी जाती है अत ब्राह्मणवाद का स्थान पूँजीवाद ने तिरोहित किया। साथ ही जागरण का अन्य प्रयास शिक्षा का था, इसे भी इसाई मिशनरियो ने आरम्भ कर रखा था। सयुक्त प्रान्त, पजाब, महाराष्ट्र इसके केन्द्र मे थे । उन्नीसवी सदी के प्रथमार्ध मे मिशनरियों ने अपनी गतिविधिया आरम्भ की ।[21] 1911 की एक रिपोर्ट के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय इसाई शैक्षिक गतिविधियों में सलग्न थे साथ ही चार कालेज भी महिलाओं के लिए संयुक्त प्रान्त में गतिशील थे ।[22] इन मिशनरी के स्कूलो में पारम्परिक जाति भेद का कोई स्थान नही था ।इसके साथ–साथ आर्य समाज भी सयुक्त प्रान्त और पंजाब में ही गतिशील था। इसमें भी जाति प्रथा की कोई मान्यता नही थी। 1931 में आर्य समाज के द्वारा 43 स्कूल सयुक्त प्रान्त के बच्चो के लिए चलाये जा रहे थे ।[23]

वस्तुत सर्वप्रथम दलित जागरूकता तीनो प्रेसीडेन्सीज मे आती हैं। तत्पश्चात यह जागरूकता सम्पूर्ण देश में प्रसार पाती है। इसका कारण है कि प्रेसिडेन्सीज में मिशनरी गतिविधिया अधिक मजबूत थीं । तत्पश्चात जागरूकता सयुक्त प्रान्त, पंजाब आदि प्रान्तो मे फैलती है । वस्तुत उत्तर प्रदेश का दलित आन्दोलन हमेशा ही महाराष्ट्र के आान्दोलन के सम्पर्क मे रहा । उत्तर प्रदेश का दलित आन्दोलन बाबा साहेब के कुशल नेतृत्व और दबदबे के आधार पर चलाया गया था परन्तु बाद के समय मे उत्तर प्रदेश ने इस दलित आन्दोलन की अगुवाई का प्रभार स्वय ग्रहण कर लिया ।[24]

बहुजन समाज ने अपने सामाजिक इतिहास की खोज की । बहुजन समाज पार्टी मनुवादी राजनीतिक पार्टियो की तरह केवल राजनीतिक ही नही है, बल्कि राजनीति के साथ–साथ समाजिक पार्टी भी है। इसलिए बहुजन समाजपार्टी ने अपने मैनिफेस्टो का मुख्य आधार सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति को ही रखा है ।[25] दलित समाज को जागरूक बनाने के लिए उसके इतिहास की जानकारी पर जोर दिया गया है। जिस समाज का इतिहास नही होता है, वह समाज कभी भी शासक नही बन पाता है, क्योकि इतिहास से प्रेरणा मिलती है, प्रेरणा से जागृति आती है, जागृति से सोच बनती है, सोच से ताकत बनती है, ताकत से शक्ति बनती है और शक्ति से शासक बनता है। अवएव बाबा साहेब ने ठीक ही कहा था कि —जिस समाज को मिटाना हो, उसका इतिहास मिटा दो वह समाज अपने आप मिट जायगा ।[26]

अपने इसी विश्लेषण के क्रम मे काशीराम ने आजादी की स्वर्ण जयन्ती पर संसद में दिये गये अपने भाषण में उपलब्धियों का विश्लेषण करते हुए कहा कि — **हमें सावधानी पूर्वक इस बात का विश्लेषण करना चाहिए कि किन कारणो से हम गुलाम बने। इस बात को हमें समझना चाहिये कि आम आदमी पर गुलामी का क्या–क्या प्रभाव था तथा आजादी से उसमें क्या–क्या उम्मीदें बंधी थीं । दो पीढ़ियों**

तक लगातार स्वराज चलाने के पश्चात हम इस जिम्मेदारी से मुँह नही मोड़ सकते कि हमने ऐसे कौन–कौन से कदम उठाये जिनसे वह कारण नष्ट हो जायें जो आजादी को उस जनमानस के लिए अर्थहीन बना देती है जिसके लिए आजादी लड़ी और प्राप्त की गयी थी । (आगे इसका और विवेचन करते हुए कहते है कि) जब हम आम जनता की बात करते है जिनके लिए आजादी हासिल की गयी थी, तो हमारे दिमाग में विशेषत. दलित शोषित समाज के लोगो की तस्वीर होती है। अनुसूचित जाति,जनजाति शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े, अल्पसंख्यकों, शिल्पकारो तथा कारीगरों और इस प्रकार सभी दलितो से मिलकर बहुजन समाज बना है, जिसे पैसें वालें तथा अन्य प्रभावशाली लोगो ने शोषण का शिकार बनाया । इसी शोषित जनसमूह की दुहाई देकर हमारे नेताओ ने साम्राज्यवाद से मुक्ति प्राप्त की थी ।[27] साम्राज्यवाद से भारत को मुक्ति उसके विकास के नाम पर हुई परन्तु भारत में ना तो सामाजिक व्यवस्था बदली और न ही विकास की रोशनी समाज के अन्तिम व्यक्ति तक पहुँची ।

इस समस्या की जड में सामाजिक, सास्कृतिक वा धार्मिक विशेषताएं है । मान्यवर काशीराम शेष सारी चीजों को इन्ही विशेषताओं का परिणाम मानतें हैं । वे कहते हैं कि भारत मे विचित्र धार्मिक विचारों वाला शास्त्रों का एक धर्म है । धार्मिक विचार न सिर्फ हावी रहते है, बल्कि वे सस्कृति का निर्माण भी करते है इन धार्मिक विचारों का प्रभुत्व एक ऐसी विचित्र सस्कृति में परिणत हो गया है जिसे जातियों की संस्कृति का नाम दिया जा सकता है। दूसरे देशों मे ऐसा कहा जा सकता है कि धर्म व्यक्तिगत चीज है और संस्कृति साझी एव सामूहिक चीज हैं, लेकिन भारत में दोनों एक ही चीज है ।[28] यही समस्या की जड़ है । यहाँ काशीराम अपना त्यागपूर्ण लक्ष्य बताते है कि बड़े से बडे पद अथवा सत्ता हमारा लक्ष्य नहीं है यह तो माध्यम है उस बदलाव का, उस सामाजिक परिवर्तन का, जो हम लाना चाहते है न हम ऐसा परिवर्तन चाहते है जिसमे दलितों को, मजलूमों को, अति पिछड़े वर्गो को, धार्मिक अल्पसंख्यकों को, महिलाओं को स्वाभिमान के साथ

सम्मानपूर्वक जीने का अवसर मिले, पढने लिखने और आत्म निर्भर बनने का मौका मिले । यही परिकल्पना थी सविधान के रचयिता बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर की और उन महान समाजसुधारको की जिन्होने बहुजन समाज की स्थिति मे सम्मानजनक परिवर्तन के लिए विपरीत परिस्थितियो के बावजूद निरन्तर सघर्ष किया ।[29]

वैदिक कालीन शूद्र और वर्तमान मे अधिकारो से वचित जनों जिन्हें समय–समय पर, दास, दस्यु, हरिजन, चान्डाल, अनुसूचित जाति–जनजाति आदि नाम दिया गया है । इन वचित जनो के समूह को इकट्ठा कर मान्यवर काशीराम ने बहजन समाज कहा। बहुजन समाज से तात्पर्य देश की 85 प्रतिशत जनसख्या है अर्थात–अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति एव अन्य पिछ्डा वर्ग एव धार्मिक अल्पसख्यक समुदायो से सम्बन्धित है । आबादी के हिसाब के इन समुदाय के लोगो की संख्या 85 प्रतिशत है और शेष 15 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिन्हें वे मनुवादी के नाम से पुकारते हैं । मण्डल आयोग की रिपोर्ट के आधार पर लगभग 1500 जातियाँ अनुसूचित जाति, 1000 अनुसूचित जन जाति, और 3743 जातियाँ अन्य पिछड़ा वर्ग के अर्न्तगत आती हैं जिनकी कुल सख्या लगभग 6000 जाति है । यदि यह सभी जातियाँ आपस में भाई चारे के साथ सगठित हो जाती हैं तो बहुजन समाज का निर्माण हो जाता है ।[30] इस बहुजन समाज को इकट्ठा कर काशीराम भारत की सत्ता पर कब्जा करने चाहते है। इस प्रकार का लक्ष्य आरम्भ से उनके केन्द्र में रहा है । वे बिना किसी लाग लपेट के कहते है कि राजनीति सत्ता के लिए होती है और सत्ता सघर्ष के बिना नहीं मिलती । आरम्भ से ही उनका मत रहा है कि–15 प्रतिशत सवर्ण 85 प्रतिशत पिछड़ी जातियो पर शासन कर उनका शोषण कर रहा है । काशीराम ने जातिविहीन और समतामूलक समाज की परिकल्पना तथा राजनीतिक महत्वाकाक्षा को लेकर 1981 में डी.एस.फोर का गठन किया । अपने आन्दोलन को उन्होंनें समता और सम्मान के लिए संघर्ष का नाम दिया ।[31] अपने इस संघर्ष में उन्होंनें जागरूकता के अन्य उपागमों का भी सहारा लिया। काशीराम

ने बुद्धिस्ट रिसर्च सेन्टर नामक सगठन बनाया, 1981 मे बहुजन सगठक नामक पत्रिका निकाली। उनके सम्पादन में यह पत्रिका 13 भाषाओं मे छपती थी । अग्रेंजी की एक पत्रिका "ओपरेस्ट इन्डिया" भी निकाली।जिसे उन्होने पार्टी का मुखपत्र बनाया। अन्तत 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी का निर्माण डी एस फोर के विलय से किया । इससे पूर्व गठित कर्मचारी सगठन बामसेफ अभी भी विद्यामान हैं ।[32]

अपनी स्थापना के बाद बहुजन समाज पार्टी ने लगातार बहुजन समाज की 6000 जातियों को एकत्रित करने का प्रयास किया है। एक पार्टी के रूप में उसकी ताकत मे लगातार बढोत्तरी हुयी है । आज वह एक राष्ट्रीय पार्टी बन गयी है। काशीराम 1893 मे स्वय स्वीकार करते है कि हमारी पार्टी का नाम बहुजन समाज पार्टी है, मगर बहुजन समाज बनाने में अभी सफलता नही मिली है। हमे तो पूरे देश में बहुजन समाज बनाना है इसके लिये धीरज से काम करना होगा . .... । जिस तरह से बसपा की राजनीतिक ताकत बढ़ती जा रही है, उसको देखते हुये तो ऐसा लग रहा हे कि शीध्र ही देश की सत्ता का कारोबार बसपा के हाथो मे होगा मगर सत्ता प्राप्त करना बसपा का लक्ष्य नहीं है इसे व्यवस्थित करके सुचारू रूप से चलाना ही बसपा का लक्ष्य है ।[33]

इस जाति व्यवस्था के परिवर्तन में नयी पूजी वादी व्यवस्था का भी एक बड़ा योगदान है । ए वी वर्धन का मानना है कि –व्यवस्था के पूजीवादी विकास ने जाति के ढांचे और उनके अन्तर्सम्बधों के बदलाव में बड़ी भूमिका निभाई है। यहा तक कि उसने अति पिछड़े इलाकों मे भी सास्कृतिक सम्बन्धो को बदला है ।[34] आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था ने पारम्परिक सामाजिक ताने बाने को करारी चोट पहुँचाई है ।

बहुजन समाज में अनुसूचित जाति , अनुसूचित जनजाति के साथ मुस्लिम, ईसाई, सिखों के दलित तबके को शामिल करने के पीछे एक पृष्ठभूमि है। यथा विनोद कुमार चिराग लिखते है कि–ऐसा नही है कि हिन्दू धर्म में रहते हुये दलितों

पर अन्याय अत्याचार व शोषण का आतक कायम रखा जाता है तथा अन्य धर्मान्तरित जाति दलितों पर न हो । सच्चाई है कि ब्राह्मणवाद उनका पीछा करता हुआ वहा तक पहुच जाता है जो दलित इसाई बन गये है वे आज आर एस एस की आख की किरकिरी बने हैं । हिन्दू मुस्लिम दगो का शिकार कौन होता आया, है, वह भी धर्मान्तरित दलित ही है। बौद्ध धर्मी लोगो को प्रताडित करने की भी घटनाये प्रकाश मे आ चुकी है वे भी धर्मान्तरित दलित ही है ।[35] अर्थात यहा मानना होगा कि देश के मूलवासी आर्य व अनार्य थे, इस्लाम,इसाई, व बौद्ध नही । जिन लोगो ने इस्लाम, इसाई, बौद्ध, सिख धर्म अपनाया वे स्वयं शूद्र व शोषित थे, हिन्दू समाज में उनके मानवीय अधिकारों का हनन होता था अत उन्होने अन्य धर्म की ओर मुख किया । विशेषाधिकार युक्त आर्य समाज ने धर्मान्तरण नही किया । अत इस्लाम, इसाई, सिख आदि भी मूलत बहुजन समाज के है ।

इस बहुजन समाज का शोषण सवर्ण समाज द्वारा किया जा रहा है यथा महावीर का मानना है कि–15 प्रतिशत हमारे देश में परजीवी मनुष्य हैं जो दूसरों के श्रम पर पलतें हैं । इन्हे जोक खानदान का भी माना जा सकता है ये 15 प्रतिशत लोग देश की 95 प्रतिशत सम्पत्ति के मालिक हैं । जबकि 85 प्रतिशत लोगों के पास मात्र 5 प्रतिशत सम्पत्ति है ।[36] जब जातिविहीन समाज की कल्पना करने के बजाये वह जाति युक्त स्वाभिमानी समाज की बात करते है तब भी उनका अपना एक दर्शन होता है यथा उन्होने क्वालालम्पुर के अन्तर्राष्ट्रीय दलित कन्वेंशन में कहा कि – जब मैंने 1962–63 मे बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर का निबन्ध 'इन्हिलेशन आफ कास्ट' पढ़ा तो मुझे लगा की जातिविहीन समाज का निर्माण सम्भव है परन्तु जब गहराई से अध्ययन किया तो लगा कि जातिहीनता असम्भव है। जो लोग करोड़ों की संख्या में अपने–अपने गॉवों को छोड़कर दिल्ली, मुंम्बई, कलकत्ता तथा अन्य बड़े शहरों में आते हैं वे अपने साथ और कुछ नही, केवल जाति को लाते है । वे अपने छोटे झोपड़े, छोटी–छोटी जमीनें और मवेशी आदि सब कुछ गॉव में ही

छोड आते है । जब लोगो को अपनी जाति इतनी ही प्रिय है तो इसे कैसे समाप्त किया जा सकता है ।[37]

इसका अर्थ यह कदापि नही है कि वे जातिविहीन समाज नही चाहते थे वे कहते है कि – मेरा उद्देश्य भी एक जातिविहीन समाज की स्थापना करना है। लेकिन जाति कोई ऐसी चीज नही है जिसे मात्र चाहने भर से नष्ट किया जा सके । ..जब हम जाति विनाश की बात कहते हैं तो इसके लिए हमे सर्वप्रथम जाति के अस्तित्व को स्वीकार करना होगा, जाति की अनदेखी या उपेक्षा करके हम जाति का विनाश नहीं कर सकते है ।[38] वस्तुत वर्तमान स्थिति को देखते हुए ही काशीराम इस प्रकार का वक्तव्य देते है । जब वह देखते है कि वर्तमान समाज पिरामिडीय समूह मे जकडा है तो उसकी उपेक्षा कर समतामूलक समाज नहीं बनाया जा सकता हैं । वह आगे कहते है कि – हमारे अन्दर जाति विहीन समाज का निर्माण करने की भावना हो सकती है, लेकिन इसके साथ यह भी सत्य है कि अभी निकट भविष्य में जाति के विनाश की सभावना लगभग नहीं के बराबर है । तो जब तक जाति का पूरी तरह विनाश न हो जाये तब तक हमे क्या करना चाहिये ? मेरा यह मानना है कि जब तक हम जातिविहीन समाज की स्थापना करने में सफल नहीं होते तब तक जाति का उपयोग करना होगा ।[39]

काशीराम इस जाति का उपयोग बहुजन समाजके निर्माण मे करना चाहते है। वह 6000 जातियो को इकट्ठा कर एक विशिष्ट शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं । इसके लिये बसपा एक नये प्रकार के सामाजिक न्याय का वादा करती है, वह नये बहुजन राज्य मे नया सामाजिक एव राजनीतिक श्रेजी बनाना चाहती है। नये राज्य में मनुवादियों को सत्ता से बेदखल किया जायेगा जो कि स्वतत्रता से आजतक सत्ता में है। नया श्रेणी क्रम बसपा अपनी सोशल इन्जीनियरिग (सामाजिक चेतना) के माध्यम से पाना चाहती है ।[40]

अपनी सोशल इन्जीनियरिंग के लिये काशीराम और बसपा ने अति आक्रामकता की नीति अपनाई । उन्होने मनुवादी समाज को ललकारा अपने समाज मे स्वाभिमान लाने का प्रयास किया। इसका एक आधार हम उनके नारो मे प्राप्त कर सकते है । यथा –

1– वोट हमारा राज तुम्हारा । नही चलेगा, नही चलेगा।।
2– जिसकी जितनी सत्ता भारी । उसकी उतनी भागी दारी ।।
3– तिलक तराजू और तलवार । इनको मारो जूते चार ।।
4– ब्राह्मणवादी होशमे आओ । बहुजन समाज से मत टकराओ ।।
5– बहुजन समाज जागेगा । चोर लुटेरा भागेगा।।
6– जो बहुजन हित की बात करेगा । वही दिल्ली पर राज करेगा।।
7– बाबा तेरा मिशन अधुरा । बी एस पी करेगी पूरा ।।
8– ब्राह्मण बनिया ठाकुर छोड । बाकी सब है डी,एस,फोर ।।
9– गाँधी वाद की क्या पहचान । नगा भूखा हिन्दुस्तान ।।
10– जो जमीन सरकारी है । वह जमीन हमारी है।।

यह नारा अत्यन्त तेजी से लोक की जबान पर चढ गये। नारो की विशिष्ट आक्रामकता ने समाज में जागरण का सचार किया ।

मा काशीराम समाज ओर सत्ता पर मनुवाद की व्यापक गिरफ्त को स्वीकार करते हैं । वह कहते है– समाज के सभी अवयवों पर इन 15 प्रतिशत मनुवादियों की मजबूत पकड हैं । यहा सत्ता व अधिकार के 5 आधार बताये गये हैं – ब्यूरोक्रेसी, आनुवांशिक, अर्थव्यवस्था, धर्म और संस्कृति और इन सभी अवयवों पर मनुवादियों की मजबूत पकड़ है जिसके द्वारा वे बहुजन का शोषण करते है ।[41] इसके समाधान के लिये मा काशीराम का मानना है कि – जब देश

की राजनीतिक सत्ता स्वय दलितो के हाथ मे आ जायेगी तो वह स्वय अपने को मनुवादी गिरफ्त से बचाने मे सक्षम हो जायेगा ।[42]

मा काशीराम लोकतान्त्रिक व्यवस्था मे ही इस व्यवस्था का समाधान खोज लेते है । डबलू एन कुबेर ने लिखा कि – वह पूरी तरह ससदीय व्यवस्था में अपना विश्वास व्यक्त करते है तथा माग करते है कि सवैधानिक नैतिकता को लागू किया जाना चाहिये । वह राजनीतिक लोकतत्र को सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र का स्वरूप देना चाहते है । वे लोकतान्त्रिक सस्थाओ का विकास चाहते है, वे जन चेतना की बात करते है ।[43] वे सविधान में अनुच्छेद 330 और 332 द्वारा दिये गये आरक्षण को धोखा बताते हुये कहते है कि – पूना पैक्ट के बाद जो काम दलितो को दिया गया वह मात्र धोखा था। उससे मात्र कठपुतली बनाये जा सकते थे और यह कठपुतली उच्च वर्गो व उनकी पार्टी के लिए काम करते ।[44] इसके लिये वे बहुजन नेतृत्व की बात करते है । जिसके कि नेतृत्वकर्ता स्वय बहुजन समाज का हो।

बसपा पारम्पारिक कर्म सिद्धान्त को नकार देती है क्योंकि वही जाति सिद्धान्त की जननी है । वह जातिगत शोषण के बजाय सामाजिक व्यवस्था को ही बदलना चाहती है । इनका दावा है कि यह डा0 अम्बेडकर के "एजूकेट एजिटेट एन्ड आगेनाईज" सिद्धान्त के आधार पर ही बनाया गया है ।[45] जिसमें समय को देखते हुये थोडा सा परिवर्तन किया गया है। यथा हम मान सकते हैं कि यह रणनीति लेनिनवाद कि दो कदम पीछे एक कदम आगे के रूप में मार्क्सवाद से बदलाव जैसी है ।

व्यवस्था सेलाभ ब्राह्मण

लेने वाले क्षत्रिय
15 प्रतिशत वैश्य

व्यवस्था से पीडित ——— मध्यम जातिया
85 से 90 प्रतिशत ——— अन्य पिछडी जातिया
———अनुसूचित जातिया
———अनुसूचित जनजातिया
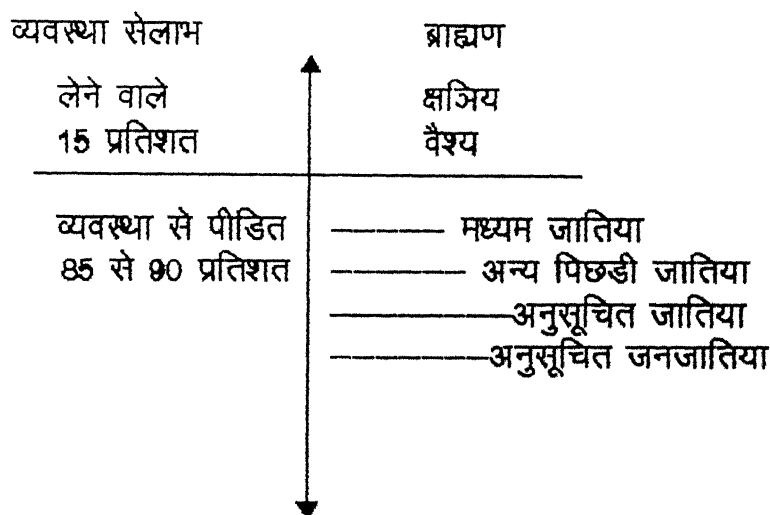
प्रस्तुत रेखाचित्र पर ध्यान देने से शोषक–शोषित की अवधारणा स्वत पुष्ट हो जाती है ।[46]

मा काशीराम इस व्यवस्था को ध्वस्त करने का आहवान करते हुए कहते है कि आजादी के चार दशको बाद भी तुम लोग जानवर की तरह रह रहे हो । अब तुम्हारे पास आदमी बनने का मौका है । एक होकर उच्च जातियो के प्रभुत्व को उखाड़ फेको । आगे कहते है हम लोग समानता व आत्मसम्मान के लिये लड़ रहे है हमारा उद्देश्य किसी कीमत पर केवल ताकत पाना ही नहीं अपितु सम्मान पाना भी है ।[47] वह अपने उद्देश्यो मे पूरी तरह से स्पष्ट है और वे अपना क्रम बताते हुए कहते है कि हमारे सामने सबसे बडी चुनौती है ब्राह्मणवाद की उसके बाद दूसरी चुनौती है – मनी, माफिया और मीडिया । मनी हमारे खिलाफ है और माफिया को मनी कन्ट्रोल करती है और मीडिया को मनी क्रियेट करती है जो चुनौती है ।[48] अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिये ही वे न तो अपनी पार्टी की कोई कार्यकारिणी रखते है न सविधान न ही घोषणा पत्र । वह कहते हैं कि – हमारी कोई पार्टी नहीं है, हम एक मूवमेन्ट चला रहे है, हमारे लिए बहुजन समाज पार्टी बनाना कतई मुश्किल नही है मुश्किल है बहुजन समाज बनाना । 6000 जातियों में 75 प्रतिशत लोगों को तोड़ा गया है सबको जोडकर बहुजन समाज बनाना हमारा काम है ।[49]

अस्पृश्यता पर चोट करते हुये फर्रूखाबाद मे जन्मे अछूतानन्द ने 1927 मे कानपुर मे घोषणा की कि – स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । जिस प्रकार भारत मे सवर्ण हिन्दू और मुसलामान आजादी चाहते है उसी प्रकार दलितो को भी पूर्ण आजादी चाहिये ।[55] अस्पृश्यता निवारण पर शोध करते हुये राय व सिह ने अपने प्रबन्ध मे बताया कि – गरीबी व भुखमरी अस्पृश्यता उन्मूलन मे एक प्रमुख बाधा है । इसी के कारण न तो अपने बच्चो को सही शिक्षा दिला पाते है और ना ही स्वच्छता, भोजन, कपडे की ही व्यवस्था कर पाते है ।[56] वास्तव में गरीबी छुआछूत व्यवस्था को पुख्ता करती है। शिक्षा पारिवारिक स्थिति एव बुद्धि के साथ–साथ सम्पत्ति भी व्यक्ति विशेष की सफलता मे महत्वपूर्ण कारक होता है। व्यक्ति जो व्यष्टि मे है वही समष्टि मे समाज का रूप धारण कर लेता है । – आमदनी सम्मान का प्रतीक है तथा कार्य के लिये प्रेरणा स्त्रोत है । इससे जीवन शैली के निर्धारण के साथ ही साथ सामाजिक मूल्यो को दिशा मिलती हैं। महत्वाकाक्षाये प्रभावित होती है एव जीवन स्तर मे सुधार होता है ।[57] आजादी के पूर्व तक दलित जातियों की आय अत्यल्प थी क्योंकि उनको स्वच्छ व सम्मानजनक व्यापार करने का अधिकार नही था ।[58] उनका मुख्य कार्य उच्च बर्णों की सेवा करना तथा उनके द्वारा प्रद्रत्त जूठन एव फटे–पुराने कपडों के सहारे जीवन यापन करना था ।[59] कुछ हद तक ब्रिटिश शासन मे तथा आजादी के बाद जाति बन्धन एव जाति के व्यवसाय का नियत्रण शिथिल हुआ है – व्यावसायिक सरचना परिवर्तित होने तथा शहरीकरण औद्योगीकरण एव नौकरशाही नियन्त्रित शासन से जाति गत व्यवसाय तथा जजमानी प्रथा का कोई महत्व नही रहा है। दलितो में शिक्षा की वृद्धि,सचार के नवीन साधनो का विकास तथा शहरी प्रभाव ने हिन्दू समाज की परम्परागत संरचना को ध्वस्त कर दिया है ।[60]

परिवार सामाजिक सरचना की मूल इकाई है। यह व्यक्ति के समाजीकरण व्यक्तित्व के विकास तथा व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओं के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान देता है – नगरीकरण औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण के प्रभाव से आज

पारिवारिक सरचना एव कार्यो मे परिवर्तन आ रहे है लेकिन अनेक परिवर्तनो के बावजूद सयुक्त परिवार की भावनाये अब भी मौजूद हैं ।[61] इसी प्रकार की अवधारणा की पुष्टि कापडिया भी करते है कि – हिन्दू मनोवृत्तिया आज भी सयुक्त परिवार के पक्ष मे है। परिवार जब तक जीवित रहेगा, इसका भविष्य अन्धकारपूर्ण नही है। आने वाली पीढी मे सयुक्त परिवार के लिये सुदृढ भावनाये विधमान है ।[62] इसी प्रकार की भावना का पुष्टिकरण सिह एव राय के उत्तर प्रदेश में हरिजनो पर किये गये अध्ययन से भी होता है जिसमें एकाकी एव सयुक्त परिवार का प्रतिशत बराबर–बराबर पाया गया है ।[63]

असुरक्षित दलितो की बात करते हुए मा काशीराम स्वय कहते है कि – राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार देशकी उन्नति के साथ दलितो के प्रति अपराधों मे कमी नही हुयी है बल्कि उनमे बढोत्तरी हुयी है। आकडो से पता चलता है कि –अनुसूचित जाति व जनजाति के प्रति अपराध के 1992मे 24922 मामले दर्ज किये गये थे जिसकी सख्या बढ़कर 1994 में 33908 होगयी । कुल1994 के अपराधों मे आधे लगभग 47 7प्रतिशत अकेले उत्तर प्रदेश में हुये ।[64] इस प्रकार स्वतत्र भारत में लगातार सघर्ष अपराध बढा है लेकिन आरम्भ में ही काशीराम ने कहा था कि वह वर्ग सघर्ष के भय से अपना आन्दोलन अपनी जागृति नही रोक सकते है यथा – जब हरिजन मारे जाते है तो लोग मान लेते है कि कुछ कीडे–मकोड़े मर गयें, मैं सोचता हूँ कि लोकतत्र में इस डर से चुप नही बैठना चाहिये कि वर्ग सघर्ष छिड़ जायेगा। वर्ग सघर्ष की चिन्ता उन्हें करनी चाहिए जिनका वश नाश हो जायेगा । हमारे बहुजन यदि सवर्ण के बराबर 15प्रतिशत घट भी जाये तो भी 70प्रतिशत शेष बचेगे ।[65] काशीराम ऐसा भावावेश में नही कहते बल्कि एक सोची समझी रणनीति के तहत कहते हैं । उन्हें दलित समाज को जागृत करना है उसमें आत्माभिमान को जगाना है । दलित समाज की सदियों से दबी कुचली मानसिकता को आक्रमक बनाना है। इसी आक्रामकता के द्वारा वह शक्ति की चाबी हासिल करना चाहते हैं। जैसा कि वह स्वयं कहते है – द्रमुक ब्राह्मणों के खिलाफ है, हम

ब्राह्मणो के नही बल्कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ है ।[66] नयी व्यवस्था में ब्राह्मण, ठाकुर वैश्य सभी को स्थान दिया जायेगा । जैसा कि वह 1996 में स्वयं कहते है कि – हमे कोई शिकायत नही पूरे समाज के साथ मीडिया मे भी बदलाव आ रहा है । हमारी पार्टी की तरफ ब्राह्मण, ठाकुर,, बनियों का भी रूझान बढ़ा है अब हमारी पार्टी मे ब्राह्मण, बनिया, कायस्थ, ठाकुर सब है । हम सब को यह कहकर पार्टी मे रखते है कि बसपा का मकसद परिवर्तन का है – मानवतावादी व्यवस्था लाने का है ।[67] अर्थात नया परिवर्तित समाज समतावादी, मानवतावादी होगा जहा कोई अछूत नही होगा कोई शोषित नही होगा परन्तु यह परिवर्तन तब आया है जब बहुजन समाजकी विचारधारा की स्वीकार्यता लोगो में बढी है यथा – 1991 मे 8 प्रतिशत बसपा का वोट बढ़कर 1996 मे उत्तर प्रदेश मे 21प्रतिशत हो गया और बिहार पजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश आदि राज्यो मे मिले मतो के आधार पर वह एक राष्ट्रीय पार्टी बन गयी ।[68]

विवाह, परिवार, आदि सामाजिक सस्थाओं पर यद्यपि मा. काशीराम ज्यादा कुछ नहीं बोलते लेकिन तमाम साधनो या छोटे–छोटे वक्तव्यों के द्वारा इसे समझा जा सकता है । "सम्पन्न दलितों व ऊँची जातियों के बीच अन्तर्जातीय विवाहों की सख्या एक प्रतिशत से भी कम है। अत हमे इन विवाहों को प्रोत्साहन देना चाहिये । आज नही तो भविष्य मे सभी को यह समझना होगा कि सभी मनुष्य बराबर है और सभी को आपस में विवाह का अधिकार है ।"[69]

मा काशीराम समाज के सभी लोगो मे समानता के आधार पर विवाह व स्त्री – पुरूष सम्बन्धों को मान्यता देते है जबकि वह स्वयं विवाह नही कर सकें – मैंनें शादी नही की है, जब मेरी शादी की बात चल रही थी कि मैने फैसला किया कि मुझे सामाजिक और राजनीतिक जीवन मे रहना है तो मुझे शादी नही करनी चाहिये, मेरा कोई अपना परिवार, मोह माया का जजाल नही है ।[70] कमोवेश यही दशा सुश्री मायावती की भी है । यद्यपि विवाह न करने से मा. काशीराम का परिवार

सदैव इनका विरोध करता रहा । परिवार का विरोध इन्हे अच्छा नहीं लगा । यद्यपि वह परिवार को एक इकाई के रूप मे मान्यता देते है परन्तु सामाजिक, राजनीतिक उद्‌देश्यो के कारण उन्होने अपना परिवार छोड दिया वे कहते हैं कि – हा मेरे परिवार को हमेशा शिकायत रही है, काफी विरोध भी किया गया तो मैने उसी दिन फैसला कर लिया कि मै अब इस परिवार से एक दम अलग हो जाऊगा। चाहे घर मे किसी की शादी हो, कोई नवजात शिशु पैदा हो या कोई मर जाये, मै घर नही जाऊगा। शायद भारत में मै ही एक ऐसा आदमी हू जो कि भारत के प्रत्येक जिलो मे कही पैदल, कहीं बस मे कही सायकिल से घूमता रहता हूँ ।[71] उनका परिवार सम्पूर्ण भारत का बहुजन समाज हे उससे भी आगे एक सर्वजन समाज है जिसमे मनुवादी तिरोहित होकर बहुजन की तरफ आ जाते है। विवाह मे वह समाज का समन्वय चाहते हैं।

बसपा की व काशीराम के समाजार्थिक कार्यक्रमो पर दृष्टिपात करते हुये मार्क्सवादी ए.वी वर्धन आरोप लगाते हैं कि – बसपा देश के कुछ भागो मूलत: ह्रदय प्रदेश उत्तर प्रदेश में जिस प्रकार उभर रही है वह सम्माननीय के साथ–साथ चिन्तनीय भी है । क्योंकि वह मात्र जाति आधारित एक आन्दोलन है। ठीक है कि मनुष्य मात्र रोटी के सहारे जीवित नही रह सकता परन्तु इस आधर पर बसपा को दलित कामगारो का भावनात्मक शोषणत्मक लाभ नही उठाना चाहिये। क्योंकि इसके अतिरिक्त उनके पास कोई आर्थिक–राजनीतिक योजना नही है ।[72] इसका प्रत्युत्तर भी काशीराम इसी लहजे मे देते हुए कहते हैं कि – ये कम्युनिस्ट सब से ज्यावा खतरनाक है जो भी नारे लगाते है वे बड़े लुभावने होते है, कमजोर वर्ग के लिए जितने अच्छे नारे इनके पास है वैसे किसी के पास नहीं है । इसीलिए लोग उनकी तरफ उम्मीद से देखते रहे, पहले ये लोग क्रान्ति की बात करते थे, तो लोगो को लगता था कि क्रांन्ति होगी और जल्दी ही हमारा कल्याण हो जायेगा लेकिन जब उनकी क्रान्ति नारों तक सिमट कर रह गयी तब लोगों ने उनके बारे में दूसरी तरह से सोचना आरम्भ कर दिया । कुछ जगह इनकी सरकार बनी तो इन्होने

क्रान्ति की बात करनी बद कर दी । जमीन के राष्ट्रीयकरण की बात भी भूल गये ।[73]

सामान्यत 1970 के दशक के पूर्व दलित आधार पर बनायी गयी पार्टियों की अपेक्षा बसपा के गठन का स्वरूप बदला हुआ है . । बाद मे गठित दल उन ग्रुपो द्वारा सगठित किये गये जो कि नवशिक्षित थे और लड़ाकू तेवर को स्वीकार करते थे । जो कि राज्य द्वारा छुआछूत, जाति, शोषण आदि अवयवों के समापन में असफल हो जाने से उपजा था । इसके सगठनकर्ता नयी पीढी के शिक्षित लोग थे यह लोग राज्य की कल्याणकारिता और प्राकृतिक स्वतत्रता के तथ्य को नकारते थे। वे गरीबी के साथ परिचय देने और ब्राह्मणवादी व्यवस्था को नकारने के लिये तैयार थे ।[74] इसका एक बड़ा कारण शिक्षा का तीव्र विकास था। शिक्षा का विकास 1980 के दशक मे काफी तेजी से हुआ । "1971 से 1981 के मध्य उत्तर प्रदेश के दलितों में मात्र चार प्रतिशत शिक्षा दर की बढ़ोत्तरी दर्ज की जाती है जबकि 1981–1991 के मध्य यह वृद्धि दर 8 प्रतिशत की हो जाती है। जबकि कुल दलित शिक्षा 26.85 प्रतिशत की हो जाती है ।"[75]

इसके लिये मा0 काशीराम ने जागरणात्मक उपाय किये। उन्होंने दलित समाज को जागृत करने हेतु – पहियो पर अम्बेडकर मेला, पूना पैक्ट का धिक्कार,, जनससद, दो पैरो और दो पहियो का चमत्कार,, मदिरा विरोधी यात्रा, डी एस, फोर की प्रचार यात्रा जैसे तमाम कार्य किये – यह सब दलितों की आत्मशक्ति को जगाने व उसको पहचानने तथा सगंठित होकर मुक्ति हेतु आन्दोलन चलाने के लिए किया गया था ।[76] शराब विरोधी आन्दोलन उत्तर प्रदेश में चलाया गया इसके अन्तर्गत सायकिल पर सवार दलित कार्यकर्ता उन दुकानों पर विरोध प्रदर्शन करते थे जिन्हे दलित बस्तियों में खोला गया था ।[77] इन सब कार्यो से आधारभूत जागरण कर आम जनता तक अपनी बात को पहुचाया गया। जिसका परिणाम सकारात्मक रहा और देश के सबसे बड़े प्रदेश उत्तर प्रदेश में बहुत कम उम्र में 3

जून 1995 को सुश्री मायावती (दलित) मुख्यमत्री बसपा की ओर से बनायी गयी ।[78] सस्थापना के लगभग 21 वर्षो बाद बसपा ने मुख्यमत्री का पद प्राप्त कर लिया । वस्तुत वह शक्ति आन्दोलन को प्राप्त हो जाती है जिसमें समतामूलक समाज का मूल अन्तर्निहित है ।

* * * * * * * * * * *

अस्तु निष्कर्षात्मक रूप से कहा जा सकता है कि – बाबा साहेब अम्बेडकर की परम्परा को मान्यवर काशीराम ने आगे बढ़ाया है । बाबा साहेब अम्बेडकर ने शक्ति की अभिलाषा व्यक्त की थी परन्तु वह शक्ति प्राप्त करने में वह असफल रहे थे । उन्ही की पृष्ठभूमि को पहले रिपब्लिक पार्टी आफ इन्डिया ने हथियाना चाहा लेकिन वह दुर्गति को प्राप्त हो गयी । वस्तुत मान्यवर काशीराम ने महात्मा फूले, डा0 अम्बेडकर आदि की परम्परा को आगे बढाया है । उन्होने अपने इस आन्दोलन का वाहक बामसेफ, डी एस फोर और बहुजन समाज पार्टी जैसे सगंठनो को बनाया है । इन सगंठनो का प्रमुख आधार बहुजन समाज है । डा0 अम्बेडकर ने जिस चाबी की तलाश राजनीतिक शक्ति के रूप में अपनी सामाजिक समस्याओं को सुलझाने हेतु की थी वह तलाश सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश मे मायावती के अल्पकाल के लिये मुख्यमत्री बनने के रूप में पूर्ण हो गयी । यद्यपि उससे पूर्व भी दालित समाज के लोग मत्री, नेता, सब कुछ बने थे परन्तु उनहे मा काशीराम चमचा यानि Stooge के रूप मे सम्बोधित करते है । यह चमचे सभी पार्टियो मे थे परन्तु इनका निर्माण मनुवादी समाज के लोगों द्वारा अपने हितार्थ किया गया था । इनका निर्माण बहुजन समाजने नही किया था । फलत जिस समाज ने जिसका निर्माण किया वही उस समाज के हितों का शुभ चितक भी हो सकता है । इनका निर्माण बहुजन समाज ने नही किया था अत इनसे बहुजन समाज को लाभ प्राप्त नहीं हो सकता था ।

यद्यपि सामाजिक रूप से भारतीय समाज स्पृश्य–अपृश्य दो भागो में विभक्त है । स्पृश्य समाज के लोग मनुवादी है जब कि अस्पृश्य समाज के लोग बहुजन के विशिष्ट अग हैं । संविधान में इनको सरक्षित किया गया है, परन्तु कोई परिभाषा नही दी गयी है । जहा डा अम्बेडकर को अपने जीवन में बारम्बार छूत–अछूत की

समास्याओ से जूझना पडा था वही मा काशीराम को आर्य समाज और मिशनरी गतिविधियों की जागृति के परिणामस्वरूप कभी छुआछूत से सघर्ष नही करना पड़ा। वह स्वय स्वीकारते है कि वह कक्षा मे सबसे आगे बैठने वाले बालक थे ।[79] जबकि डा0 अम्बेडकर को काफी सघर्ष करना पड़ा था ।

मा काशीराम जाति व्यवस्था को तोडना नही चाहतें, वह उस पर मौन भी नही साधना चाहते है । वह तो जातियो को जोड़ना चाहतें है । इसमें उनका लक्ष्य वे 6000 जातिया है, जो कि दलित उत्पीड़ित शोषित जातिया है । इनकी सख्या भी कमोवेश कुल जनसख्या की लगभग 85प्रतिशत के आस पास कही जाती है तह जातियों समुदायो को जोडकर बहुजन समाज की स्थापना करना चाहते है । वे ब्राह्मणवाद मनुवाद की व्यवस्था को ध्वस्त करना चाहते हैं क्योकि इसमें असमानता है, छुआ–छूत है, जाति है । वे बहुजन समाज को जोडकर एक समता मूलक समाज की स्थापना करना चाहते है। इस समाज मे सभी स्पृष्य होगें सभी एक जाति के होगें ।

इसके लिए शिक्षा व्यवस्था का व्यापक प्रसार करना चाहतें है स्वयं कहते हैं कि "दलितो में मेधा की न्यूनता नहीं है प्राय महाराष्ट्र में 10वीं कक्षा में परीक्षा परिणामो मे जो ऊपरी 25 विद्यार्थियो की सख्या होती है उसमें प्राय. 8 नाम हरिजनो कें होते है ।[80] स्वतत्र भारत मे व्यापक शिक्षा प्रसार हुआ है इससे पारम्परिक व्यवस्था में शिथिलन आई है और दलितो की आक्रामकता के परिणामस्वरूप शिक्षा व जागृति की दर और तेज हो गयी है। शिक्षा के महत्व को सर्वप्रथम ज्योतिबा फूले ने पहचाना था । आज हर गाव में कोई न कोई दलित ग्रेजुएट अवश्य मिल जायेगा। यद्यपि अभी भी शिक्षा का प्रसार पूरा नही हो सका है और तकनीकी, मेडिकल, प्रभागों में दलितों की भागीदारी पूरी नही है। शिक्षा का विकास ब्रितानी काल से ही आरम्भ हो गया था । मिशनरियों का बड़ा कारोबार शिक्षा का प्रसार करना था साथ ही आर्यसमाज महात्मा फूले व अन्य जागरूक लोगों द्वारा शिक्षा प्रसार पर व्यापक

ध्यान दिया गया था। इस नयी शिक्षा व्यवस्था मे जाति भेद का कोई स्थान नही था ।

सर्वप्रथम यह जागरूकता वही आती है जहा सबसे पहले अग्रेज आते है अर्थात प्रेसीडेन्सीज मे आती है । तत्पश्चात सम्पूर्ण भारत फैलती है । सयुक्त प्रान्त यद्यपि बाबा साहेब के सतत् सम्पर्क में था । परन्तु यहा की चेतना मद्रास व महाराष्ट्र जितनी प्रखर नहीं थी । दलित समाज ने चेतना जागृति के ही सम्बन्ध में अपने इतिहास की खोज की । कहा गया कि जिस समाज को मिटाना हो उसकी जड़ो से उसके इतिहास का मिटा दो । अत नयी ऐतिहासिक सर्जना आरम्भ हुयी। इसी इतिहास विवेचना के क्रम मे स्वतत्र भारत मे दलित समाज की वास्तविक अपेक्षा और उपलब्धि पर मा काशीराम द्वारा मूल्याकान किया जाता है तथा व्यवस्था से आजादी का अर्थ और साम्राज्य वाद से मुक्ति के कारण पर बहस की माग की जाती है। इसी क्रम मे धर्म व सस्कृति की विवेचना करते हुये माना जाता है कि भारत मे धर्म ने एक जाति सस्कृति की सर्जना की तथा भारत में धर्म ने ही सस्कृति का रूप धारण कर लिया । धर्म व्यक्तिगत के बजाय साझे स्वरूप मे आ गया। इस व्यवस्था में वह आमूलचूल परिवर्तन चाहते है क्योकि इसमें जाति ने संस्कृति का और सस्कृति ने शोषण का स्वरूप धारण कर लिया है ।

वह 85 प्रतिशत बहुजन समाज को इकट्ठा करना चाहते है और इसके लिये तमाम सगठनो और पत्र पत्रिकाओ को स्थापित करते है । वह स्वय कहते है कि हमारा लक्ष्य सत्ता की प्राप्ति करना नही है । हमारा लक्ष्य समता मूलक समाज की स्थापना करना है जिसमे सहायक बनकर पूजीवादी वयवस्था आती है।

शोषण की व्यवस्था धर्मान्तरण से भी समाप्त नही होती है। वह साथ–साथ चली जाती है। अन्य धर्मो मे जो अनुसूचित जाति, जनजाति के लोग है वे वस्तुत अनार्य शूद्र लोग ही है । 15 प्रतिशत मनुवादी जोक प्रवृत्ति के लोग है जो

परजीवी है । इनके पास अधिकाश सम्पत्ति का मालिकाना है । डा0 अम्बेडकर की भाति मा काशीराम भी जातिविहीन समतामूलक समाज चाहते है परन्तु वह कहते है कि इसे समाप्त करने के लिये पहले इसे हमे स्वीकार करना होगा । स्वीकार के बाद ही हम इसे समाप्त कर सकते हैं । जब तक जाति को हम समाप्त नहीं कर सकते तब तक हमे इसे स्वीकार कर लेना चाहिए । उनका वादा नये प्रकार के समाजिक न्याय का होता है । वह इस न्याय के लिये मनुवादियों को सत्ता से बेदखल कर स्वय सत्ता की चाबी प्राप्त करना चाहते है । यह चाबी वह अपनी सोशल इन्जीनियारिंग के माध्यम से प्राप्त करना चाहते है अपनी इस जागृति को धार देने के लिये वह अति आक्रामक नारो की सर्जना करते हैं । जिससे बुद्धिजीवी भयभीत होते है, जनता क्रोधित होती है, और उनका व्यक्तित्व विवादास्पद होता है । अन्तत जागृति व चेतना का प्रसार होता है ।

वह लोकतान्त्रिक व्यवस्था के जबर्दस्त हिमायती है । इसी में उनके 85 प्रतिशत की सत्ता की चाबी छिपी है। उनका ससदीय लोकतन्त्र से गहरा लगाव है । भारतीय सविधान से उनका आत्मीय सम्बन्ध है। वह बहुजन नेतृत्वकर्ता की चाहत पालते है क्योंकि वही इसका अधिकारी है। वह अपनी आक्रामक शैली में बहुजन समाज का आहवान करते है ।

अस्पृश्यता का जन्म यद्यपि पाचवी शताब्दी मे हो गया था परन्तु विकास क्रमशः हुआ। तमाम अस्पृश्य जातियो को सूची क्रम मे रखकर अनुसूचित जाति का निर्माण सविधान की धारा 341 में किया गया । समय–समय पर संसद स्वयं भी इस पर विनियम बनाती रहती है। परन्तु फिर भी दलित समाज पर अत्याचार घटने के बजाय लगातार बढ़ता जा रहा है । इनके व्यापक आकडे उपलब्ध है परन्तु स्थान की कमी के कारण इनको सक्षिप्त किया गया है ।

अस्पृश्यता निवारणार्थ कार्य डा0 अम्बेडकर से भी पूर्व अछूतानन्द ने आरम्भ किया था । समस्या पर अग्रेजो की तटस्थता ने उनके नकारात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया । परन्तु ब्रितानी आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, व विकासपरक नीतियो ने पारम्परिक व्यवस्था मे तमाम गत्यावरोध खडे किये । नवीन व्यवस्था ने पुरातनपथी समाज व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया । मा काशीराम यद्यपि बहुजन समाज को एकत्रित करना चाहते है, सत्ता प्राप्त करना चाहते है परन्तु 15 प्रतिशत मनुवादियों को वह शूद्र कदापि नहीं बनाना चाहते हैं । इसीलिये जब वह अनुभव करते है कि समाज मे जागरूकता का आगमन हो चुका है तो वह **'सर्वजन'** की बात करने लगते है क्योंकि – राष्ट्र एक है और सबको साथ रहना है । अन्तिम लक्ष्य समता मूलक समाज की स्थापना ही है।

विवाह, परिवार, आदि सामाजिक अर्थिक विषयो पर मा काशीराम अपना ज्यादा समय जाया नहीं करते हैं, क्योकि उनको लगता है कि जब दलित जागृत हो जायेगे, बहुजन समाज इकट्ठा हो जायेगा, सत्ता की चाबी प्राप्त हो जायेगी तो इन छोटी–छोटी समस्याओ का निपटारा स्वत ही हो जायेगा जिसे न समझते हुये तमाम बुद्धि जीवी लोग उनपर भ्रन्ति फैलाने का आरोप लगाते है ।

बसपा का गठन नवशिक्षित, अभिजन लोगो द्वारा किया गया है । यह लड़ाकू है, सम्भ्रान्त है इन्हे सत्ता, आत्म सम्मान मे बराबरी चाहिये इसके लिये लड़ना भी पड़े तो बुरा नहीं । क्योकि जो सदियो से दबे कुचले है उनको आत्मसम्मान दिलाना इतना आसान नहीं कि कहा जाय और आ जाये । उसके लिये आक्रामकता एक सटीक तकनीकी होगीं । इसी के द्वारा जन–जागृति का सचार होगा । आक्रामकता तकनीक है लक्ष्य समता मूलक समाज है, रास्ता सत्ता की प्राप्ति से होकर जाता है ।

विवरणिका

1- मायावती– बहुजन समाज और उसकी राजनीति पृष्ठ – 30, द्वितीय सस्करण, अक्टूबर 2000, प्रकाशन – ई ए 44 इन्द्रपुरी, नई दिल्ली।

2- वही .... पृष्ठ– 12 ।

3- आर के क्षीर सागर– अनटचेबिलिटी इन इन्डिया – इम्पली मेन्टेशन आफ दी ला एन्ड एबोलिशन – दीप एन्ड दीप पब्लिकेशन – 1986 पेज–21।

4- डा बी आर अम्बेडकर – दा अनटचेबिल्स गोडा , प्रकाशन –भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद – द्वितीय सस्करण – 1969 – पेज – 126 ।

5- प्रभाती मुखर्जी –वियोन्ड द फोर वर्णाज– द अनटचेबिल्स इन इन्डिया – शिमला , इन्यिन इन्स्टट़ीयूट ऑफ एडवास्टड स्टडी – 1988 , पृष्ठ– 146 ।

6- ए आर अकेला – सकलन – काशीराम प्रेस के आइने मे – पृष्ठ– 12 2001 आनन्द साहित्य सदन– तृतीय सस्करण – अलीगढ ।

7- पाक्षिक पत्रिका माया – प्रथम पाक्षिक – 1986 – इलाहाबाद

8- माता प्रसाद – उत्तर प्रदेश की दलित जातियो का दास्तावेज – पृष्ठ – 5 देहली किताब घर, नई दिल्ली – 1995। –

– (7 अक्टूबर 1978– ओमप्रकाश थान्वी को साक्षात्कार)

9- माताप्रसाद – उत्तर प्रदेश दलित जातियों का दस्तावेज – पृष्ठ 11 – देहली किताबघर – नई दिल्ली – 1995 ।

10- धर्म युग – 10 सितम्बर 1989 को दिया गया साक्षात्कार ।

11- ए आर अकेला – सकलन – काशीराम प्रेस के आइने मे – पृष्ठ –44, आनन्द साहित्य सदन, तृतीय सस्करण – अलीगढ, 2001 ।

12- सरिता – मार्च द्वितीय पाक्षिक – 1990 ।

13- काशीराम – चमचायुग – पृष्ठ 96 – अनुवादक रामगोपाल आजाद – समता प्रकाशन – नागपुर – चतुर्थ सस्करण – 2000।

14- डा0 पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पृष्ठ – 107, – पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999।

15– डी वेकटेश्वर लू – हरिजन अपर क्लास कान्फिलक्टस – न्यू देहली, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, 1990, पेज, 5–6 ।

– धनजयकीर – महात्मा ज्योतिबा फूले – फादर ऑफ इन्डियन सोशल रिवोल्यूशन – बाम्बे – पापुलर प्रकाशन – द्वितीय सस्करण –1975–पेज–26

16- डा0 पूरनमल – अस्पृश्यता एवं दलित चेतना – पृष्ठ – 107, पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999 ।

17- प्रेम कापड़िया व प्रकाश लुइज सम्पादक – नई सदी भी तोड नहीं पायी उत्तर प्रदेश मे अछूतपन को – प्रकाशन – भारतीय सामाजिक सस्थान 2001 – नई दिल्ली – पेज– 140।

18- वही ,, पृष्ठ – 141 ।

19- डा पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पृष्ठ 110, पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपूर – 1999 ।

20- सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोलूशन (द बी0एस0पी0 इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन्स – न्यू देहली – वा0 – 3 पृष्ठ – 39, 2002 ।

21- वही पृष्ठ – 40 ।

22- एस. के गुप्ता – 1985 – द शिडयूल्ड कास्ट इन मार्डन इन्डियन पालिटिक्स – दियर ऐमरजेन्स ऐज ऐ मार्डन पावर – न्यू देहली – मनोहर पब्लिशर्स – पेज – 130–31 ।

23- गुलशन स्वरूप सक्सेना – 1990 – आर्य समाज मूवमेंट इन इन्डिया – 1857 – 1947 – न्यू देहली – कामनवेल्थ पब्लिशर्स ।

24- विवेक कुमार एन्ड उदय सिन्हा दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए पर्सकैप्शन फ्राम वेलो – 2001 – पब्लिशर्स बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ – पेज – 14 ।

25- मायावती –बहजन समाज और उसकी राजनीति – पृष्ठ – 15 आमुख – द्वितीय सस्करण – अक्टूबर 2000 – प्रकाशन –ई ए 44 इन्द्रपुरी –नई दिल्ली।

26- वही पेज – 1 ।

27- सम्पादक अनुज कुमार – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मणीय भाषण – प्रकाशन – गौतम बुक सेन्टर – 2000 – दिल्ली – पृष्ठ – 20 ।

28- काशीराम – चमचायुग – पृष्ठ – 223, अनुवादक – रागोपाल आजाद – समता प्रकाशन – नागपुर – चतुर्थ सस्करण – 2000 ।

29- मयावाती – बहुजन समाज और उसकी राजनीतिक – पेज – 45 – द्वितीय सस्करण , अक्टूबर 2000 – प्रकाशन –म। –44 इन्द्र पुरी नई दिल्ली ।

30- वही „ पेज – 30 ।

31- माया पाक्षिक – फरवरी 15– 1990 , इलाहाबाद – सुरेश द्विवेदी का साक्षात्कार ।

32- ए. आर. अकेला – सकलन – काशीराम प्रेस के आइने मे – पृष्ठ – 46 2001 – आनन्द साहित्य सदन – तृतीय सस्करण अलीगढ ।

33- बहुजन नायक – नागपुर – साक्षात्कार – अनामीशरण ववल – 6 दिसम्बर 1993 ।

34- के एल शर्मा (इ) पेज – 413 – राइटर ए वी वर्धन – कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, एन्ड न्यू देहली – 1998 ।

35- डा. प्रकाश लुइस एव प्रेम कापडिया – नई सदी भी तोड़ नही पायी उत्तर प्रदेश में अछूतपन को – पृष्ठ– 15, – प्रकाशन –भारतीय सामाजिक सस्थान – 2001 नई दिल्ली ।

36- वही „ पृष्ठ – 92 ।

37- अनुज कुमार – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण – पेज – 67 – क्वालालम्पुर में दिया गया भाषण – प्रकाशन – गौतम बुक सेन्टर – 2000 – नई दिल्ली ।

38- वही – „ पृष्ठ – 68 ।

39- वही – ,, पृष्ठ –69।

40- सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोलूशन (द बी0एस0पी0 इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन्स – न्यू देहली – वा0 – 3 पृष्ठ – 39, 2002 ।

41- आर के सिह – काशीराम और बसपा –कुशवाहा बुक वितरक ' इलाहाबाद–1994.–पेज – 14 ।

42- विवेक कुमार एन्ड उदय सिन्हा दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए पर्शकैप्शन फ्राम वेलो – 2001 – पब्लिशर्स बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ – पेज – 71 ।

43- डबलू. एन. कुबेर – ए क्रिटिकल स्टेडी – पेज – 300 – 1991 – प्यूपिल्स पब्लिशिग हाउस – न्यू देहली ।

44- विवेक कुमार एन्ड उदय सिन्हा दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए पर्शकैप्शन फ्राम वेलो – 2001 – पब्लिशर्स बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ – पेज – 72 ।

45- सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोलूशन (द बी0एस0पी0 इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन्स – न्यू देहली – वा0 – 3 पृष्ठ – 114, 2002 ।

46- काशीराम – चमचायुग– पृष्ठ – 125 – अनु रामगोपाल आजाद , समता प्रकाशन – नागपुर – चतुर्थ सस्करण –2000।

47- अनुज कुमार सम्पादक – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण – पृष्ठ – 87– प्रकाशन – गौतम कुक सेन्टर – 2000– नई दिल्ली

48- बहुजन नायक – नागपुर – 15 मार्च 1994 – जनार्दन ठाकुर व रजत शर्मा – जी टी वी. –दिसम्बर सुबह – 10 बजे 1993 – ।

49- वही ,,

50- पेरूमल निल्कान , दे अनटचेबिल्स मद्रास, आर जे. राम एन्ड कम्पनी – 1934 – पेज – 45 ।

51- रेवकर रतन, द इन्डियन कास्टीट्यूशन – एकेस स्टडी आफ बैकवर्ड क्लासेज – फेयर लीध , डिकिन्सन यूनिवर्सिटी प्रेस – 1974, पेज – 112 ।

52- डा0 पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पृष्ठ – 10 – पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999

53- टाइम्स आफ इन्डिया – न्यू देहली – 23 अप्रेल 1994।

54- डा पूरनमल – राजस्थान के दलितो पर बढते अत्याचार, डा अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, वर्ष –3, अक – 3 – 1995 –पृष्ठ–10 ।

55- दलित एशिया टूडे लखनऊ, सयुक्ताक जुलाई अगस्त – 1995 –पृष्ठ–53 ।

56- वी पी सिह एवं रामाश्रय राय – ए हिस्ट्र आफ हरिजन एलीटस – विटवीन टूवर्ल्डस – देहली, डिस्कवरी पब्लिशिग हाउस – 1987।

57- डा पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पेज– 92– पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999 ।

58- एस एन श्रीवास्तव हरिजन इन इन्डियन सोसायटी लखनऊ द अपर इन्डिया पब्लिशिग हाउस प्राईवेट लिमिटेड – 1980 – पेज – 5 ।

59- आर के क्षीर सागर – अनटचेबिलिटी इन इन्डिया – न्यू देहली – दीप एन्ड दीप पब्लिकेशन्स – 1986 – पेज – 31–34 ।

60- योगेन्द्र सिह – कास्ट एन्ड क्लास – सम आस्पेक्ट आफ कम्यूनिटी एन्ड चेन्च सोसियोलाजिकल बूलेटिन वा0 – 7 – न0 – 1 – 1968 – पेज – 178 – 179 ।

61- डा0 पूरनमल –अस्पृश्यता एव दलित चेतना–पेज– 98– पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर –1999 ।

62- के एम कपारिया – मैरेज एन्ड फेमिली इन इन्डिया – बाम्बे – आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस – पेज – 232 – 1958 ।

63- एस एस सिह एन्ड एस सुन्दरम – एमरजिन हरिजन एलिट ए हिस्ट्री आफ दीयर आइडेन्टीटी – न्यू देहली – उप्पल पब्लिशिग हाउस – पेज – 72–73 – 1987 ।

64- अनुज कुमार समादक – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण पेज– 31 – प्रकाशन – गोतम कुक सेन्टर – 2000नई दिल्ली ।

65- ए.आर अकेला – काशीराम प्रेस के आइने मे – पृष्ठ– 14 – अमयभारती का साक्षात्कार–आनन्द साहित्य सदन – 2001– तृतीय सस्करण अलीगढ ।

66- वही पृष्ठ– 15।

67- 17 सितम्बर 1996– अमर उजाला – अतुल सिन्हा को सासात्कार आगरा ।

68- आज – 1996 – 11जून – आगरा – काशीराम का सासात्कार।

69- बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण – स0 अनुज कुमार पेज – 87 – गौतम कुक सेन्टर – 2000– नई दिल्ली ।

70- बहुजन नायक नागपुर–5 दिसम्बर 1993– आनामीशरण ववल को साक्षात्कार ।

71- वही – आगे।

72- के. एल शर्मा (इ.) पेज – 416 – राइटर ए वी वर्धन – कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, एन्ड न्यू देहली – 1998 ।

73- चौथी दुनिया 2–8 अप्रैल – 1989 – वीरेन्द्र साबर द्वारा काशीराम का साक्षात्कार ।

74- ओम्बेट गेल – 1998 – पीजेस एन्ड दलित वोमन – डेमोक्रेसी एन्ड इन्डियाज न्यू सोशल मूवमेन्टस इन मनोरजन मोहन्ती – पार्श्वनाथ मुखर्जी विद टार्नक्यूस्ट – (इ) प्यूपिल्स राइट्स सोशल मूवमेन्टस एन्ड द स्टेट इन द थर्ड वर्ल्ड – न्यू देहली – सेज पब्लिकेशन ।

75- सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोलूशन (द बी0एस0पी0 इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन्स – न्यू देहली – वा0 – 3 पृष्ठ – 82, 2002 ।

76- बारबरा जोशी – अप्रेस्ड इन्डियन – अप्रैल – 1983 ।

77- राजन अम्बेट (एन ए) 7.8 – 1994 – न्यू होप फार द बैकवर्ड्स एससीज, एसटीज, ओबीसीज, एन्ड माइनार्टीज – न्यू देहली – ए बुकलेट प्राइवेटली प्रिन्टेड बाई द सेन्टर फार द दलित एजूकेशन ।

78- मायावती – बहुजन समाज और उसकी राजनीति – पेज– 207– द्वितीय सस्करण – अक्टूबर 2000– प्रकाशन – इ ए 44 इन्द्रपूरी नई दिल्ली ।

79- बहुजन नायक नागपुर – 5 दिसम्बर 1993– अनामीशरण बबल को दिया गया साक्षात्कार ।

80- ए आर अकेला – सकलन – काशीराम प्रेस के आइने मे – 2001 – आनन्द साहित्य सदन – तृतीय सस्करण – अलीगढ पेज – 16, साक्षात्कार कर्ता – अभय भारती ।

(ख) धार्मिक क्रियाविधि

धर्म मानव इतिहास की सबसे शक्तिशाली चालक शक्तियो मे से एक है । धर्म की भूमिका और उसकी गुणवत्ता केवल उसके द्वारा प्रस्तुत सामाजिक आदर्श की रोशनी मे ही जानी जा सकती है । प्रत्येक धर्म को न्याय और उपयोगिता द्वारा ही परखा जाना चाहिये । "न्याय, मुक्ति, समानता और भाई चारे को ही दूसरा नाम धर्म है । भाई चारा और स्वतत्रता वस्तुत समानता और मानव व्यक्तित्व के सम्मान के मौलिक विचार से जन्मे आदर्श है । गहराई से देखने पर यह कहा जा सकता है कि समानता मौलिक धारणा है, जहा समानता की मनाही की जाती है, वहा बाकी सभी चीचो से इकार करना माना जा सकता है ।[1] डा0 अम्बेडकर लार्ड ऐक्टन के इस अवलोकन का जिक्र करते है कि असमानता ऐतिहासिक घटनाक्रम के परिणाम स्वरूप पैदा हुयी है । परन्तु इसे कभी भी एक नियम स्वीकार नहीं किया गया । परन्तु "हिन्दूवाद मे असमानता एक धार्मिक विचारधारा है और जानबूझकर इसे पवित्र विश्वास के रूप मे प्रचारित किया गया है । यह दैविक शक्ति द्वारा सुझाया गया जिन्दगी का रास्ता है जो हिन्दू समाज में अवतरित हो गया है , यह विचार और कार्यो से असमानता मे ढाला गया है ।"[2]

"बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर ने तमाम शोध काने के बाद लिखा कि – ऋग्वेद के पुरूष सूक्त के अतिरिक्त अन्य तीनों वेदों में शूद्र शब्द का प्रयोग नही मिलता है, उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि – ऋग्वेद जो चारों वेदों में सबसे पुराना है, स्वार्थी ब्राहणों द्वारा चातुर्वर्ण–व्यवस्था को ईश्वर कृत सिद्ध करने के लिये, उसमें पुरूष सूक्त वाद मे रचकर बड़ी चतुराई से जोड़ दिया गया है । चूंकि अधिकाश हिन्दू वेदो को ईश्वर कृत मानते हैं । अत चातुर्वर्ण व्यवस्था को भी वह ईश्वर की ही व्यवस्था मानते है । अत चातुर्वर्ण व्यवस्था को भी वह ईश्वर की ही व्यवस्था मानते हैं । ब्राह्मणों ने इतना ही नही किया बल्कि समस्त पूर्ववर्ती पुराणों, स्मृतियों एवं महाभारत, रामायण जैसे प्रमुख ग्रन्थों में उस व्यवस्था की पुष्टि कर दी

है । प्राय समस्त स्मृतिकारो ने विशेषकर मनु महाराज ने शूद्रो मे अतिशूद्र अछूतो को जानवरो से बदतर जिन्दगी व्यतीत करने के लिये मजबूर बना दिया है । उनकी परछाई भी सवर्ण हिन्दूओ को अपवित्र कर देती है । इस प्रकार एक मनुष्य दूसरे मानव समूह के प्रति कितना निर्दय, क्रूर और कठोर हो सकता है । इसकी मिसाल समस्त हिन्दू समाज के अतिरिक्त ससार के किसी अन्य सभ्य समाज मे नही मिल सकती है ।"[3]

चौथा वर्ण शूद्र वर्ण था जिसका कार्य अन्य वर्णो की सेवा करना था । इससे भी नीचे का वर्ण चान्डालो का था । जिनका सामाजिक व्यवस्था में कोई स्थान नहीं था । इसीलिये राजनारायण आर्य कहते है कि –"वर्ण व्यवस्था एक भ्रम उत्पन्न करने वाला शब्द है, जिसे ब्राह्मणो ने प्रचार करके यह भ्रम फैलाया है कि – यह ईश्वरीय व्यवस्था है अत अपरिवर्तनीय है, गीता के रचयिता ने भगवान कृष्ण के मुह से यह कहलाया है कि – उन्होने ही (कृष्ण ने) गुण–कर्म के अनुसार चारो वर्णो को बनाया । आज की नवीनतम ऐतिहासिक खोज यह है कि वैश्य और शूद्र तो भारत आर्यो के आने के पहले से ही मौजूद थे, जबकि क्षत्रियो और ब्राह्मणो की उत्पत्ति बल्कि बहुत बाद में हुयी । जहा तक शूद्रो की बात है, उस समय वे दलित नहीं थे, बल्कि वे सम्मानित कारीगर थे ।"[4]

शूद्र कौन थे यह प्रश्न खोजा था डा0 अम्बेडकर ने और विचारधारा को आगे बढ़ाती हुयी बहुजन समाज पार्टी की उपाध्यक्षा लिखती है कि "इस विषय मे पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानो के मत भिन्न–भिन्न है । कुछ का मत है कि सभी शूद्र इस देश के मूल निवासी थे, जिन्हें अनार्य कहते थे और आर्य जो इस देश के मूल निवासी नहीं थे, ये लोग सीमा पार पश्चिमोत्तर एशिया से भारत में आये और यहां उन्होने अनार्यो के किलो व सैन्य बलों को ध्वस्त कर उन्हे पराजित किया तथा फिर उन्हें अपना दास बनाकर, उनसे सेवा का कार्य लिये, जिन्हें आगे चलकर शूद्र की संज्ञा प्रदान की । इतना ही नही बल्कि उन्होने उसके बाद सेवा की श्रेणी के

अनुसार शूद्रो मे भी "सछूत शूद्र" और "अछूत शूद्र" दो अलग वर्गो का निर्माण किया तथा सछूत को ऊचा शूद्र और अछूत को सर्वाधिक नीच शूद्र घोषित किया । ---- डा० अम्बेडकर ने अपने शोध ग्रन्थ 'अछूत कौन ओर कैसे' तथा 'शूद्रो की खोज' शीर्षक ग्रन्थ लिखकर यह निष्कर्ष दिया कि -- जिन्हे ब्राह्मण ग्रन्थो मे शूद्र घोषित किया गया है वे वास्तव मे क्षत्रिय है, जो कभी भारत के शोषक हुआ करते थे । इनके शूद्र होने का कारण वे ब्राह्मण-क्षत्रिय सघर्ष बताते हैं । वे बताते हैं कि अपने महत्व एव प्रभुत्व को लेकर ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्गो में लोमहर्षक सघर्ष हुये, जिनमे अपने सगठन के छल-बल से उन्होने जिन क्षत्रियो को पराजित किया, उन्हे अपनी सेवा वह परिश्रम के कार्यो के लिये विवश कर अपना दास बना लिया तथा जिन्होंने आसानी से शीघ्र ही उनकी दासता स्वीकार कर ली उन्हे कम दण्ड देने के विचार से सछूत शूद्र बनाकर घरेलू काम-काज निपटाने व सेवा के कार्य हेतु लिया । किन्तु जिन क्षत्रियो ने ब्राह्मणो की दासता स्वीकार की, उन्हे कठोर दन्ड देने के विचार से ब्राह्मणो ने उनसे गन्दे व निकृष्ट सेवा कार्य लेकर फिर अछूत शूद्र अर्थात अति शूद्र की सज्ञा प्रदान की ।"[5] वस्तुत यही विचार धारा बहुजन समाज पार्टी की समाज निर्माण की घोषित मान्य अवधारणा बन गयी । इसे ही ऐतिहासिक स्वीकार कर लिया गया । यही विचारधारा दलित आन्दोलन की सर्व स्वीकृत विचारधारा बन गयी ।

भारत मे हिन्दू धर्म की सामाजिक सरचना जाति व्यवस्था पर आधारित है । जाति व्यवस्था के उत्पन्न होने से पूर्व भारतीय समाज वर्ण पर आधारित था, जिसे वर्ण व्यवस्था कहा जाता था । वर्ण शब्द का प्रयोग आर्य और दास इन दो वर्गो के रंगों क्रमश: गोरे व काले में अन्तर के लिये किया गया ।"[6] ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में कहा गया है कि संसार की समृद्धि के लिये विराट पुरूष ने अपने मुख से ब्राह्मण भुजा से क्षत्रिय, जघों से वैश्य एव पैर से शूद्र को पैदा किया ।"[7] अगो से सम्बधित यह विभाजन उस समय के सामाजिक स्तर को दर्शाता है ।"[8] हिन्दू धर्म ग्रन्थों एवं विचारको ने इस व्यवस्था को श्रम विभाजन का प्रमुख आधार माना जिसमें

प्रत्येक वर्ण का अपना पृथक कार्य निर्धारित था । नैतिक दृष्टि से प्रत्येक वर्ण का स्थान कर्तव्यों के आधार पर ही निश्चित था, न कि अधिकारो की माग पर । जैसा कि डा० राधाकृष्णन ने कहा है "यदि सभी वर्गो के लोग अपने–अपने निश्चित कर्त्तव्य करते रहं तो वे उच्चतम अमिट आनन्द की अनुभति कर सकते है ।"[9] हिन्दू धर्म मे अज्ञानी ब्राह्मणो को भी ईश्वर के समान समझा गया एव बिना किसी योग्यता व कार्य कुशलता के ब्राह्मण पुत्र को जन्म के आधार पर ही ब्राह्मण बना दिया गया ।"[10] जाति व्यवस्था भारतीय समाज पर एक कलक है जो नागरिको में असमानता एव भेदभाव पैदा करती है । निम्न एव स्पृश्य जातियों के लोग भय की स्थिति में जी रहे हैं । इन जातियों के सदस्य यदि सामाजिक अयोग्यताओं, धार्मिक भेदभाव और राजनीतिक दमन के विरूद्ध आवाज उठातें है तो उसे सामाजिक व्यवस्था का उल्लघन माना जाता है ।"[11] डा० श्री निवास इस पर लिखते हैं कि "शिक्षित भारतीयो मे यह सुविस्तृत धारणा है कि जाति अपनी अन्तिम सास ले रही है, और नगरो मे रहने वाले उच्च शिक्षा प्राप्त उच्च वर्णो के लोग इसके बन्धन से मुक्त हैं । परन्तु ये दोनों धारणायें गलत है । ये लोग भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्धों का अनुसरण चाहे न करते हों, जाति एवं धर्म के बाहर विवाह करते हों, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वे जाति बन्धनों से पूर्णत मुक्त है ।"[12]

शूद्रों की स्थिति को सक्षेप मे जानना समीचीन होगा । यथा माता प्रसाद कहते है कि – "शूद्रों की बस्ती दूर बसाई गयी । फटे–पुराने कपड़े पहनने व जूठे भोजन खाने को विवश किया गया । शिक्षा पर हर प्रकार से पाबन्दी लगा दी गयी । इनकी परछाई पड़ना दोष माना गया । साफ कपड़े पहनने से रोक दिया गया । इनको प्रताड़ित करना अच्छा माना गया । इनको मारने पर उतना ही दोष माना गया जितना गिद्ध, नेवला, गधा, उल्लू को मारने पर पाप लगता । उनके पास यदि दौलत हो तो उसे छीन लेना उचित माना गया । इस प्रकार इनको सामाजिक धार्मिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से पंगु बना दिया गया ।"[13] अत इस व्यवस्था में परिवर्तन करने हेतु धार्मिक व्यवस्था में परिवर्तन को आधार बनाना आवश्यक हो जाता

है । व्यवस्था मे सुधार हेतु धर्म मे सुधार आवश्यक हो जाता है । "महात्मा बुद्ध को प्रथम (500ई0पू0) सामाजिक एव धार्मिक सुधारों का प्रेणता कहा जा सकता है । इन्होने सर्वप्रथम जन्म पर आधारित हिन्दू जाति–व्यवस्था को अस्वीकार कर अस्पृश्यों को एक नये धर्म मे प्रवेश करने को मार्ग प्रशस्त किया ।"[14] केरल में व्यापक सामाजिक एव धार्मिक सुधार आन्दोलन "श्री नारायण धर्म परिपालन" श्री नारायण गुरू के निर्देशन मे चलाया गया । उनका आन्दोलन "एक जाति एक धर्म और एक ईश्वर" का था ताकि भिन्नता समाप्त कर मानवमात्र आपसी भाईचारे, एकता और आत्मिक उत्थान की दिशा मे स्वतंत्रतापूर्वक अग्रसर हो सके ।"[15] डा0 अम्बेडकर आर्य समाज, कबीर पन्थ, शिव नारायन पंथ आदि समाज सुधारकों पर दृष्टिपात करते हुये कहते है कि – "किसी भी सन्त ने जाति प्रथा (वर्णाश्रमधर्म) पर चोट नहीं की, वरन वे जाति प्रथा मे दृढ़ता से विश्वास रखते थे उनमें से अधिकाश उसी जाति के सदस्य के रूप मे जिये और मृत्यु को प्राप्त हुये, जिसमें वे पैदा हुये ।"[16] वस्तुत वर्णभेद पर कठोर आघात महात्मा फूले, अछूतानन्द, डा0 अम्बेडकर एव मान्यवर काशीराम ने किया है ।

"महात्मा फूलेने 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थापना की ओर महाराष्ट्र में अस्पृश्यता उन्मूलन को गति प्रदान की । उन्होंने पुणे में अछूत लड़के–लड़कियों के लिये 1899 एवं 1851 प्रथम बार विद्यालय खोले एव 1884 में हन्टर आयोग के समक्ष अस्पृश्यों के लिये अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था का प्रस्ताव रखा ।"[17] दलितों में सामाजिक एव राजनैतिक जागृति के उद्देश्य से 1922 मे दिल्ली में अस्पृश्यों का एक विशाल सम्मेलन अछूतानन्द के नेतृत्व में बुलाया गया जिसमें अछूतोद्धार, जमींदारी प्रथा उन्मूलन जैसे अनेक कार्यक्रम निर्धारित किये गये ।"[18] अस्पृश्यों एवं दलितों की दशा सुधारनें एवं अस्पृश्यता को वैधानिक रूप से समाप्त कराने का श्रेय डा0 अम्बेडकर को है ।[19] उन्होंने अपने संघर्ष और स्वतंत्रता आन्दोलन मे भागीदारी के उपरान्त संविधान में दलितों को मानवीय अधिकार प्रदान किये । "आज दलित सर्वाधिक डा0 अम्बेडकर के ही ऋणी है, जिन्होंने संविधान के माध्यम से अस्पृश्यता

को अपराध घोषित करते हुये पूरी तरह से समाप्त किया एव सभी को समान नागरिक अधिकार दिलाये ।[20] अतत दलितों को आत्म सम्मान दिलाने तथ वर्ण व्यवस्था पर अन्तिम कील ठोंकने का उपादान मान्यवर काशीराम और उनकी पार्टी 'बहुजन समाज पार्टी' ने किया ।

मान्यवर काशीराम लिखते है कि – "भारत मे हमारी वास्तविक और मूलभूत समस्या, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक है, बाकी सारी चीजें इसी मूलभूत समस्या का परिणाम हैं । भारत मे विचित्र धार्मिक विचारो वाला शास्त्रों का एक धर्म है । धार्मिक विचार न सिर्फ हावी रहते है बल्कि वे सस्कृति का भी निर्माण करते हैं । इन धार्मिक विचारों का प्रभुत्व एक ऐसी विचित्र संस्कृति में परिणत हो गया है जिसे "जातियों की सस्कृति" का नाम दिया जा सकता है । दूसरे देशो में ऐसा कहा जाता है कि धर्म व्यक्तिगत चीज है और सस्कृति साझी एवसामूहिक चीज है लेकिन भारत मे दोनो एक ही चीज है ।"[21]

जाति व्यवस्था ने हिन्दुओं को "भारत के रोग ग्रस्त लोग" बना डाला और उनमे इस रोग ने अन्य भारतीयों के स्वास्थ्य और खुशी को भी प्रभावित कर दिया है । यह सभी भारतीयों के लिये एक बडी समस्या बन गयी है । इस बुराई के खिलाफ तमाम लोगों ने बहुत कुछ कहा, तथा और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है, किन्तु हमें यहां यह कहते हुये समापन कर देना चाहिये कि जाति भारत के लिये अतीत मे एक विकट समस्या रही है और आज भी यह समस्या की जड़ बनी हुयी है ।"[22]

मा0 काशीराम अपने पूर्ववर्तियों के आन्दोलनों एवं उनकी सफलता पर दृष्टिपात करते हुये कहते हैं कि "महात्मा फूले का सत्यशोधक समाज, पेटियार ई0वी0आर0 का बुद्धिवाद, और नास्तिकतावाद तथा बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर का बौद्ध धम्म पुनर्जागरण इस परिवर्तन को सक्रिय करने के लिये अपनाये गये तरीके

थे । जब हम आज इन तरीको के अजाम पर नजर डालते है तो निराशा होती है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस जातीय सस्कृति के पास पराजय से उबरने का मजबूत पुष्ट पोषण या समर्थन और शक्ति उपलब्ध है । लेकिन फिर भी हमारे सघर्षकर्ताओं के प्रयासों की परिणति दिमागी मुक्ति मे हुयी है । हमारी सक्रियता के और अधिक विस्तार करने मे यह बडी सहायक और उपयोगी होगी ।"[23] यहा काशीराम भूतकाल के दलित आन्दोलन की असफलता को स्वीकारते हुये अपने आपको सभी परम्परा में फिट करते हुये भविष्य के आन्दोलन का वाहक घोषित करते हुये कहते है कि – "विगत अनुभवों को देखते हुये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भविष्य का काम बहुत बडा है, खासकर जब हम यह जानते है कि" – इस जातीय संस्कृति को इस व्यवस्था से लाभ उठाने वाले लोगो का छिपा और खुला समर्थन मिल रहा है किन्तु पूर्ण असमानता की सस्कृति को परम समानता मे बदलना हमारा अभीष्ट लक्ष्य होना चाहिये । वर्तमान सस्कृति व्यवस्था से लाभ उठाने वाले लोगों द्वारा नियंत्रित है । किन्तु परिवर्तित परम समानता की संस्कृति सदैव वर्तमान व्यवस्था से पीड़ित होने वाले लोगो के हाथों में ही रहना चाहिये ऐसा करना भितरघात या तोड़–फोड़ और विध्वंस से बचने के लिये निहायत जरूरी है । मौर्य साम्राज्य के पतन से सीखने लायक यही सबक है ।"[24]

माता प्रसाद हिन्दू धर्म की विचित्रता पर सवाल उठाते हुये कहते है कि – भारत में हिन्दू धर्म जैसा धर्म कभी नही था । शैव, शाक्त और वैष्णव जो कभी–कभी आपस में लड़ते थे वे भी हिन्दू थे । अनीश्वरवादी बौद्ध और जैन भी हिन्दू कहे जाते थे । लोकायत तथा बाहर से आने वाली जातिया भी हिन्दू कही जाती थी । बहुत से सम्प्रदायों , पन्थों के समुच्चय को हिन्दू धर्म या हिन्दू संस्कृति कह सकते हैं । — भारत पर आक्रमण करके जब विजेता जातियां हिन्दू धर्म ग्रहण कर लेती थी तो उन्हें भी सम्मान दिया जाता था । किन्तु यहां के हिन्दू धर्म मानने वालों को सम्मान नहीं दिया जाता था ।[25]

यह सम्मान न देने की परम्परा आज भी धार्मिक दृष्टि से बदस्तूर जारी है । आज भले ही देश में सभी मनुष्यों के समता–सूचक राजनैतिक अधिकार एव कर्तव्य हों किन्तु आज भी ब्राह्मणवाद का आतक बहुजन समाज के अधिकाश नर–नारियों पर विद्यमान हैं । आज भी भारत के तमाम गावो मे शादी के मौके पर दूल्हे को घोडे पर बैठाकर नही ले जा सकते है । शान–शौकत मान–सम्मान का जीवन नहीं जी सकते हैं । अपनी इच्छा से दल विशेष को अपना मत भी नहीं दे सकते हैं । मन्दिर विशेष में पूजा–पाठ नहीं कर सकते हैं । कुआ, तालाब विशेष का प्रयोग नही कर सकते हैं । स्वनिर्मित अथवा थोक व्यापारी द्वारा देय खाद्य–वस्तुओं को बाजार हाट में बेच नहीं सकते है । आज भी दलित व पिछड़े वर्ग के लोगों, को पर्व, सामाजिक धार्मिक सस्कार विशेष के अवसर पर ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य कोई शादी–मुहूर्त रस्मे आदि सम्पन्न नहीं करा सकता है ।बालक के जन्म लेने पर जन्मकुण्डली तथा मृत्यु होने पर पिन्डदान आदि रस्म ब्राह्मण ही करा सकता है । अन्यथा सम्बंधित व्यक्ति, परिवार समाज को सम्मान की नजर से नहीं देखा जायेगा । इस तरह इहलोक बिगडने का भय तो रहता ही है, परलोक भी खतरे में पडता नजर आने लगता है । दास बनाना था, बने रहे हैं ।"[26]

भारत मे यद्यपि इस धार्मिक संरचना का एक लम्बा इतिहास रहा है जिसमें कि धार्मिक भक्तो स्वामियो आदि ने इस असमानवादी व्यवस्था को समाप्त करने का असफल प्रयास किया । जिसमें कबीरपन्थी, शिवनारायनी रविदासी आदि भक्त गुरू और उनके अनुयायी थे ।[27] इन भक्ति गुरूओं का जन्म दिन 1920 के आस पास मनाने की परम्परा विकसित हुयी । नारा, प्रदर्शन, भजन, सत्संग धार्मिक व्याख्यान आदि के द्वारा जागरण का प्रयास किया गया । इसमें बाबा सीताराम दास, गोपी डोम, स्वामी शिव नारायन आदि लोग उत्तर प्रदेश मे दलित जागृति, समानता, मानवतावाद की बात कर रहे थे ।[28] तत्पश्चात स्वामी अछूतानन्द (–1879–1933) ने लखनऊ व बाबा रामचरन दास ने कानपुर में मानवतावादी धारा प्रवाहित की । आर्यसमाजी भी निचले तबके को ऊपर उठाने का प्रयास अनेकानेक माध्यमों से कर

रहे थे । आर्य समाजी शुद्धि के द्वारा हिन्दू धर्म को मजबूत कर रहे थे । उसके नेता "स्वामी बोधानन्द" ने 'मूल भारतवासी और आर्य' नामक किताब लिखी ।"[29] इस आदि हिन्दू सिद्धान्त और शुद्धि का सवर्ण हिन्दुओ द्वारा विरोध भी किया गया । "सवर्णो ने कहा कि – यह छुआछूत समाप्ति और शुद्धि वस्तुत उच्च जातियों को समाप्त करने की चाल है"[30] और विरोध किया ।

आर्य समाजी नेता आदि हिन्दू विचारधारा को सयुक्त प्रान्त के बाहर अन्तर्क्षेत्रीय सम्मेलनो के द्वारा अन्य राज्यो मे फेला रहे थे । इसी समय वह आन्ध्र प्रदेश और पजाब के धर्म सुधारको के सम्पर्क में आया था । "स्वामी अछूतानन्द द्वारा 1926 में दिल्ली मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें हैदराबाद के धर्म सुधारक व आदि हिन्दू समाज के नेता भाग्यारेड्डी वर्मा तथा पजाब के धर्म सुधारको ने हिस्सा लिया । जिसका लक्ष्य सम्पूर्ण देश की दलित शक्तियो को अलग–अलग मनुष्यों से एक मच पर लाना था ।"[31] इन्हीं आन्दोलनों के क्रम में आगरा के जाटवो का सस्कृताइजेशन स्वीकृत किया गया । "वहां सेठ सीताराम और मानसिंह ब्राह्मण स्वामी आत्माराम के सम्पर्क मे आये और स्वामी जी ने 'ज्ञान समुद्र' नामक पुस्तक लिखकर जाटवों का गोत्र शिव का और वर्ण क्षत्रिय बताया ।"[32] अन्तत कहा जा सकता है कि यह धार्मिक जागरण की परम्परा बसपा द्वारा चलाई जा रही है । बसपा की सफलता मे पूर्व मे दलित चेतना के लिये धार्मिक नेताओं के द्वारा किये गये समाज के निचले स्तर पर सघर्ष का परिणाम है ।"[33]

हिन्दू धर्म के प्रश्न पर नाराज होते हुये मा0 काशीराम का अभिमत है कि – "हिन्दू धर्म धर्म नहीं अधर्म है, जिस धर्म से लोगों को नीचा दिखाना, उनकी बेइज्जती करना, छुआछूत करने की शिक्षा मिलती हो उसे धर्म कैसे कहा जा सकता है ।"[34] आगे वह इस अन्याय की दशा को सविस्तार बताते हुये स्पष्ट कहते हैं कि "अनुसूचित जातियों जनजातियों के साथ पिछले चार हजार वर्षो से लगातार

अन्याय हो रहा है । पहले आर्य लोग आये उन्होने उन्हे दास बनाकर रखा । दास प्रथा इसलिये बनाई गयी कि इनका मनोबल गिरा रहे । बाद में पठान आये, मुगल आये, अग्रेज आये परन्तु उनके साथ यही होता रहा । पिछले कुछ वर्षो मे इनमे चेतना आई है । डेढ सौ साल पहले पुणे मे पहले ज्योतिबा फूले ने जो आन्दोलन शुरू किया, जिसे शाहू महाराज ने आगे बढाया, फिर पेरियार, नारायण गुरू और डा0 अम्बेडकर के प्रयत्नो से यह आन्दोलन आगे बढ़ा । 1930 और 1932 के गोलमेज सम्मेलनों में डा0 अम्बेडकर ने यह स्टैंड लिया कि अग्रेज इस देश को छोड़कर जाने से पहले हमारा हमे देकर जाये । इस कारण अग्रेजो के समय से ही उनको कुछ अधिकार मिलने शुरू हो गये थे । अब यह चेतना इतनी आगे बढ चुकी है कि इसे रोका नही जा सकता ।"[35]

यह चेतना तीन चरणो मे चल कर आती है । ऐसा विश्लेषण सुधापाइ ने 'डकन' और 'लिच' के विश्लेषण के आधारो पर करते हुये कहा कि – प्रथम चरण उपनिवेशवाद के अन्तिम चरण में आया (डकन–1979) जब चमार – जाटवों का संस्कृतिकरण हुआ । द्वितीय चरण अम्बेडकर की रिपब्लिक पार्टी आफ इन्डिया के माध्यम से आया । यह चरण 1960 ई0 के दशक का था । अन्तिम चरण 1980 के बाद बहुजन समाज पार्टी की स्थापना के साथ आया ।"[36] अछूतो ने ब्राह्मणवाद के विरूद्ध अपनी मागे रखी । यह मागे सामाजिक, व राजनीतिक शक्ति की थी ।" तुलनात्मक रूप से देखे तो उच्च जातियों के समानुपातिक रूप से ज्यादा स्वत्वाधिकार था, उत्तर भारत के मैदानो मे यह शोषणात्मक प्रवृत्ति कुछ अधिक मुखर थी और वही अस्पृश्यो द्वारा एक दम निचले स्तर से अपने सामजिक स्तर को बढाने व राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने का कार्य आरम्भ किया ।[37] जिलेट महोदय अपने शोध में इस बात को और मुखर करते हुये कहते है कि अतिशिक्षित और गतिशील लोग (अभिजन) निम्न जातियों मे भी थे । यह शूद्र ब्लाक और ब्राह्मण वर्ग के बीच की कड़ी थे । यह दोनो एक दूसरे से सहयोग करते थे और ब्राह्मणो की तरह या तो सत्ता सुख लेते थे या फिर प्रयास करते थे ।[38]

धार्मिक आधार पर ही जाति की तरह विशिष्ट 'जजमानी प्रथा' भी थी । नील का मानना है कि – "राज्यों में असमानतावादी व्यवस्था अबाध गति से जारी रही जिसके आधार मे 'जाति' व जजमानी प्रथा थी ।"[39] निम्न जातियों के अधिकाश लोग गरीबी मे जीवन यापन करते थे और अपनी जीविका के लिये सवर्णो की सेवा करते थे बदले मे उन्हे कुछ प्रतिदान प्राप्त होता था । इस व्यवस्था मे कुछ सुधार सस्कृतिकरण और शैक्षिक सुधार के द्वारा आया यथा लिच अपने लेख में स्पष्ट करते है कि – "आगरा के आस–पास के जाटवों ने जो कि नवशिक्षित और सम्पन्न लोग थे ने नयी सामाजिक सविदा की खोज कर अपने आपको जाटव–क्षत्रिय घोषित कर दिया । अपनी ऐतिहासिकता को सिद्ध किया । इसमें नवशिक्षित लोगो ने पुराने धार्मिक नेताओ की अपेक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभायी ।"[40] इसी प्रकार डकन महोदय अलीगढ़ के चौधरियों के सस्कृतिकरण को स्पष्ट करते हैं कि – "अलीगढ़ में चौधरी जो कि जागरूक लोग थे ने सस्कृतिकरण के द्वारा उच्चता प्राप्त कर ली ।[41] उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग इलाहाबाद में भी जागृति और प्रभुता के साथ जजमानी प्रथा से उबरने के लिये जागृति आ रही थी । "सामाजिक जागृति का केन्द्र इलाहाबाद था जहां रैदास, कबीर और रामानन्द कि शिक्षायें काफी लोकप्रिय थी । वे अपने आपकी सन्त रैदास से और महात्मा बाल्मीकि से जोड़ रहे थे ।"[42] बाल्मीकियो ने कहा कि ऋषि बाल्मीकि भी निम्न जाति में पैदा हुये थे जिनके अनेकों मन्दिर तक बनाये गये । जिसके नेता चुन्नी लाल, बाल मुकुन्द, चौधरी सन्तराम आदि थे ।[43]

इस प्रकार एक व्यापक जागृति भारत देश में धार्मिक रूप से आ रही थी जिसका आधार संस्कृतिकरण की धारा थी । "इसी जागरण के परिणाम स्वरूप 1944 में डा0 अम्बेडकर और कुछ अन्य अनुसूचित जाति के लोगो द्वारा ए.आई.एस. सी.एफ. (आल इन्डिया सिड्यूल कास्ट फेडरेशन) का गठन किया गया । इसका गठन लम्बे समय से आ रही दलित चेतना और आक्रामकता के परिणाम स्वरूप किया गया था ।[44] यह मूलत दलित समाज को एक शक्ति के रूप में खड़ी करने

की प्रक्रिया थी जिसे अम्बेडकर के वक्तव्य मे देखा जा सकता है । "अछूत हिन्दू धर्म की एक उपधारा नहीं है । बल्कि वे भारतीय राष्ट्र की जीवन धारा के एक उपांग हैं । वे उसी तरह हिन्दूओ से अलग हैं जैसे कि – मुस्लिम ।"(45) इसके बाद दलित जागृति के लिये लोकतत्र मे अनके दलगत मच्चो का गठन किया गया । यथा – "जाटवमहासभा आगरा मे, चमार महासभा कानपुर मे, आदि हिन्दू रविदास महासभा इलाहाबाद में जैसे तमाम नये सगठनों का उद्भव हुआ । इन सगठनों के द्वारा दलित जागृति में धार्मिक राजनीतिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की गयी ।"(46)

इसी बीच 6 दिसम्बर 1956 को दलित जागृति अभियान को महान नायक डा0 अम्बेडकर को खोना पड़ा । "इसके बाद उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन की अगुआई रिपब्लिकन पार्टी आफ इन्डिया आगरा शाखा द्वारा किया गया । जिसकी स्थापना 1958 मे सिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन के अनुयायियों द्वारा की गयी ।"(47) लेकिन स्वतत्र रूप से संगठित होने के बाद आर.पी.आई. की सफलतायें काफी अल्पदायी साबित हुयी । 1967 के राज्य के सामान्य निर्वाचन तथा 1969 के मध्य कालिक चुनाव में कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकी ।"(48)

आन्दोलन पर दृष्टिपात करते हुये काशीराम कहते है कि – "किन्तु जैसा कि 26 वर्षो के पीछे पटलकर हम देखते है तो स्पष्ट रूप से पाते है कि कारवां आगे नही ले जाया जा सका । बाबा साहेब के अनुयायी इसे जहां वह था वहां भी नहीं रख सके बल्कि वह इतनी तेजी से फिसला कि लगभग टूट–फूटकर बिखर गया । अम्बेडकरवादी आन्दोलन का पीछे जाना व्यापक रूप से सर्वतोमुखी है । सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक रूप से आन्दोलन लगभग निष्प्राण हो गया ।"(49) तत्पश्चात दलित समाज को जागृत और सगठित करने हेतु उन्होंने बहुजन समाजपार्टी का निर्माण किया । इसके पूर्व उन्होने बामसेफ व डी.एस.फोर नामक संगठन बनाया था।

बहुजन समाज की सरचना स्पष्ट करते हुये मा0 काशीराम कहते है कि – बहुजन समाज अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और इनमें से धर्म परिवर्तन करने वाले अल्पसख्यक समुदाय के लोगो से बना है । बहुजन समाज की जनसख्या इस देश मे 85 से 90% है ।"[50] इसमे वह अन्य धर्मो के लोगों को भी सम्बद्ध करते है वस्तुत अन्य धर्मो मे भी दलित वर्ग के लोग अछूत ही है जैसे विनोद कुमार चिराग लिखते है कि – ऐसा नहीं है कि "हिन्दू धर्म में रहते हुये दलितों पर अन्याय अत्याचार व शोषण का आतंक कायम रखा जाता हो ओर अन्य धर्मान्तरित दलितो पर न हो । सच्चाई यह है कि – ब्राह्मणवाद उनका पीछा करता हुआ वहां भी पहुँच जाता है ।"[51] इस आधार पर अन्य धर्मो में भी बहुजन समाज के लोग प्रताड़ित रहते है । अत उनको शोषण से मुक्त करने के लिये उन्हें भी नयी व्यवस्था मे उनका अधिकार देना होगा । इसीलिये धर्मान्तरण में मुद्दे पर काशीराम सीधे कहते है कि – "मुसलमानो की तो इस देश में और भी दुर्गति हो रही है । हरिजन बने रहने से उन्हे कुछ सुविधायें तो मिल जाती हैं । असल में धर्म वगैरह धर्म के ठेकेदारों द्वारा लोगो को बेवकूफ बनाने के हथकण्डे है ।"[52]

बहुजन समाज का निर्माण मा0 काशीराम ने नयी व्याख्या के आधार पर किया । "असमानता जातिवाद की शिकार लगभग 6000 जातियों को भाईचारे के आधार पर आपस मे जोड़ने का कार्य आरम्भ किया गया क्योकि मनुवादी व्यवस्था के अनुसार – अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व अन्य पिछड़े वर्ग के लोग शूद्र वर्ण की ही विभाजित सन्ताने हैं ।"[53] इसी प्रकार का विचार डा0 अम्बेडकर ने भी व्यक्त करते हुये कहा था कि – अन्य पिछड़े वर्ग से कहे जाने वाले लोग, जो वर्ण व्यवस्था के अनुसार चौथे वर्ण अर्थात शूद्र वर्ण में आते है जिनकी समस्यायें अनुसूचित जाति–जनजाति के समान है । मैं नही कहता कि वे आपस में रोटी–बेटी का सम्बन्ध बनायें, परन्तु अपनी समस्याओं के समाधान के लिये उन्हें उनके साथ मिलकर आगे आना चाहिये ।[54] अल्पसंख्यक मुसलमानों के विषय में अब धारणा बनायी गयी कि – "मनुवादी पार्टियां अपनी सत्ता के लिये फूट डालो और राज

करो की नीति अपनाती हैं । हिन्दू–मुस्लिम दगे फसाद अक्सर देश मे होते रहते है । इस बारे में हमारा ऐसा मानना है कि ये दगें होते नही थे बल्कि काग्रेस पार्टी सत्ता मे काबिज रहने के लिये दगे कराया करती थी । दगे की आड में काग्रेंस पार्टी अक्सर पिछड़े–दलित को आगे करके मुसलमानो से भिडवाती थी जिससे ये लोग आपस मे एकजुट न हो सके । दगे के उपरान्त नेतागण वहा जाकर भाईचारा दिखाते थे ।"[55]

दगो पर अपना विश्लेषण देते हुये विनोद कुमार चिराग लिखते हैं कि – हिन्दू–मुस्लिम दगों का शिकार कौन होता आया है ? वह भी (शिकार) धर्मान्तरित दलित ही है । बौद्ध धर्मी लोगों के मकानों, झोपडियों, खलिहानों मे आग लगाने, गाव से मार–पीट कर भगाने जैसी तमाम घटनाये पूर्व काल मे प्रकाश मे आ चुकी है । वे भी धर्मान्तरित दलित ही है । कहने का तात्पर्य है कि – जाति व्यवस्था है तो ब्राह्मणवाद है और ब्राह्मणवाद भूल–भुलैया में डालने वाली एक ऐसी मानसिकता है, दृष्टिकोण है जो आवश्यक नही है कि सवर्णो में ही पायी जाये । "[56] इस्लाम में दलितवाद की अवधारणा को पुष्ट करते हुये छेदी लाल साथी लिखते हैं कि – "इस्लाम के भारत आगमन पर उसके भाई चारे और मसावात ने हिन्दुओं की शूद्र जातियों को अपनी ओर आकर्षित किया । इसलिये बहुत बड़ी सख्या मे उन्होने इस्लाम गृहण कर लिया किन्तु आगे चलकर अकबर के समय में जब मुगलों और राजपूतों मे निकटता बढ़ी और अकबर ने जयपुर के राजा भारमल की पुत्री और जहागीर ने मानसिंह की पुत्री से विवाह कर लिया तब राजपूत मनसबदारो की राजदरबार में घुसपैठ हो गयी । यहीं पर इस्लाम में बराबरी की जगह ऊंच नीच की भावना पैदा हो गयी और हिन्दू धर्म से इस्लाम में जाने वालों में भी ऊंच नीच की भावना आ गयी हिन्दू धर्म के खटिक और काछी, कबाड़िया, कोरी, बेहना, जुलाहा, अहीर, गड़ेरिया, घोसी, गद्दी, कहार, भिश्ती, मेहतर, हलाल खोर कहे जाने लगे । मुसलमान राजपूत शेख, सैयद, पठान हो गये । हिन्दुओं के ब्राह्मण ठाकुरों की तरह ऊंची जाति के मुसलमान बन गये । बाकी बेहना, जुलाहा, रगरेज,

उसमानी, चिकवा, कसाई, मीरासी आदि रजील और नीच कौमे हो गयी और इनमे शेख, सैयद, पठान के लिये शादी–विवाह बेइज्जती की बात हो गयी ।"[57] इसी कारण जब मा0 काशीराम से यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या–हरिजन का मुसलमान बन जाना उचित है तो वे कहते हैं कि – "मुसलमानो की तो इस देश में और भी दुर्गति हो रही है । हरिजन बने रहने से इन्हे कुछ सुविधाये तो मिल जाती हैं । असल में धर्म वगैरह धर्म के ठेकेदारो द्वारा लोगों को बेवकूफ बनाने के हथकण्डे है ।"[58] हिन्दू धर्म में सर्व प्रतिष्ठित वेद के विषय में वे कहते है कि – "मैने सुना है कि इस नाम की कोई चीज है न तो मैं कभी मन्दिर गया हूँ और न हीं मैंने कभी वेद देखे हैं । जिन लोगों ने इसे पढा है वे कहते है कि इसमें बुरी–बुरी बातें लिखी हैं ।"[59]

धार्मिक रूप से अल्पसख्यकों के लिये बसपा की सख्त जरूरत बताते हुये मा0 काशीराम वक्तव्य देते हैं कि – "धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिये इस पार्टी की सख्त जरूरत है । धार्मिक अल्पसंख्यको की अपनी बहुत सी समस्यायें हैं और इनकी समस्यायें दिन व दिन बढ़ती और जटिल होती जा रही हैं । लेकिन हम सोचते है कि उनकी सबसे बड़ी समस्या उनके खिलाफ करवाये जाने वाले जातीय दगें हैं । मुस्लिम अल्पसंख्यक एक बहुत बड़ा समुदाय है उनकी संख्या देश की 11–12 प्रतिशत है । इनके खिलाफ साल में 365 दिनों में कम से कम 400 बलवे होते या करवाये जाते हैं । इस प्रकार कड़ी मेहनत करके वे जो भी अपनी आर्थिक हालत सुधारते हैं या जो भी थोड़ा रंग उन पर चढ़ता है, वह दगों के माध्यम से उतार दिया जाता है । अल्पसंख्यकों में सिख अल्पसंख्यक एक छोटा परन्तु खुशहाल समुदाय है । ऐसा लगता था कि इस देश में उनके साथ धोखा नहीं होता है लेकिन 1984 में पहले तो स्वर्ण मन्दिर में सेना की कार्यवाही के कारण उसके वाद इसी वर्ष नवम्बर में (1988) उनके खिलाफ दिल्ली और उसके चारों ओर हिन्दी भाषी प्रदेशों में, सेना और पुलिस का इस्तेमाल कर उन पर अन्याय और अत्याचार किये गये । उनकी दूकानों को जलाया गया, लूटा गया, उनको बड़े पैमाने पर मारा

गया । अब वे महसूस करते हैं कि वे अपने देश मे ही सुरक्षित नहीं हैं । उनको भी जान–माल–इज्जत का खतरा है ।"[80]

शूद्र की गुलामी वाली अवधारणा का विश्लेषण कते हुये वे कहते है कि – शूद्र, मुस्लिम और ईसाई भारत के मूल बाशिन्दे थे । उसके बाद बाहर से हिन्दू यहा आये और उन्होंने मूल बाशिन्दों को गुलाम बना लिया, उन्हे मूर्तियों व जानवरों की पूजा करने को बाध्य किया गया । गुलामी तोडने का वक्त अब आ गया है । बाइबिल मे ईसा ने कहा है कि – अन्याय और गुलामी को दूर करना ही सच्ची साधना है ।"[81] मुसलमानों के साथ अपने ताल मेल पर वे कहते है – "इसमे जो दबा–कुचला हिस्सा है जो प्राय अनुसूचित जाति व जनजातियों से परिवर्तन कर इस्लाम बना है, उसे हम अपने समाज का हिस्सा मानते है और सगठित करने की कोशिश मे हैं क्योकि उनके साथ उस धर्म मे भी दुर्व्यवहार होता है ।"[82] आगे हरिजनों द्वारा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किये जा रहे धर्म परिवर्तन पर वे कहते है कि – "बडे पैमाने पर तो धर्म परिवर्तन नही हो रहा है । कुछ लोग हैं जो धमकियां देते रहते है, मै तो उनसे कहता हूँ कि – हिन्दू, सिख या इस्लाम बनने से क्या होगा कुछ बनना है तो पहले इन्सान बनो ।" धर्म परिवर्तन करना है तो यह एक मुश्त हो, मुट्ठी भर लोगों के ऐसा करने से कोई बात नहीं बनती लोग इधर–उधर बटंते है तो इनकी ताकत और कमजोर होती है ।"[83]

इस्लाम में ब्राह्मणवाद की विश्लेषण करते हुये वह कहते हैं कि – मुसलमानों में ब्राह्मणवाद देखकर मैं दंग रह गया । इस्लाम तो बराबरी और अन्याय के खिलाफ लड़ना सिखाता है लेकिन मुसलमानों का नेतृत्व शेख, सैयद, मुगल पठान यानि अपने को ऊंची जाति का मानने वालो के हाथ में है वे यह नहीं चाहते कि अंसारी, धुनिया, कुरैशी उनकी बराबरी पर आये ।"[84] साम्प्रदायिकता के केन्द्र बन चुकें राम मन्दिर के प्रश्न पर वह कहते है कि – यह राजनीतिक पार्टियों का काम नही है । मैं इसको मन्दिर या मस्जिद का मामला समझता ही नही उसे पाप और

इंसाफ का मामला समझता हूँ । न्याय का मामला न्यायालय पर छोड़ देना चाहिये ।— मुस्लिमों की समस्याओं का जिम्मेदार वह उन्ही को मानते है क्योंकि वह सही नेतृत्व अपने बीच मे पैदा नहीं कर सके ।"[65] मुसलमानो को पैगाम देते है कि – मैं उनके लिये बहुत पहले से कोशिश कर रहा हूँ । मैं उनसे बहुजन समाज से भाईचारा बनाने को कहता हूँ । विभिन्न प्लेटफार्मो से यही बात दोहराता हूँ आज भी मैं यही कहना चाहूँगा कि मुसलमानो का हित बहुजन समाज के साथ है । वह उन्हीं के साथ सुरक्षित है ।[66] बहुजन समाज में भाईचारावादी वाली सत्ता में सभी का उत्थान सम्भव है इसके लिये मुसलमानो को अपने मध्य से बहुजन समाज का नेता बनाना होगा ।

* * * * * * * * * * *

इस प्रकार कहा जा सकता है कि धर्म वस्तुत व्यक्तिगत सोच है । धर्म का निष्कर्ष मनुष्य के हेतु है । व्यक्तिगत धर्म समूह एव समाज का निर्माण करता है । समाज के हेतु वही धर्म सत है जिसमें मानवतावाद की पराकाष्ठा हो । धर्म की गुणवत्ता उसके मानवजीवन और मानव समाज के परिप्रेक्ष्य में ही मापी जा सकती है । धर्म में असमानता का समावेश अनुचित है । असमानतावादी धर्म असमान होगा तो लोकतत्र की आत्मा 'बन्धुत्व' और समानता स्वय ही ध्वस्त हो जायेगी ।

ब्राह्मण धर्म में मूलत ऋग्वेद के दशम स्कन्ध से नये वर्ण शूद्र वर्ण की सर्जना मानी जाती है । इसके पूर्व समाज मे दास–दस्यु का बटवारा था । बाद के धार्मिक ग्रन्थों द्वारा वर्ण संकट समाज से चान्डाल वर्ण, अछूत वर्ण की व्यूत्पत्ति हुयी और इनकी दशा भी घृणित हो गयी और अन्तत शूद्रो से नीचे चान्डाल (अछूत) वर्ण की उत्पत्ति हो गयी । यद्यपि प्राचीन समाज में विदुर, बाल्मीकि आदि निम्न वर्णी ऋषियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया परन्तु बाद के दौर में शूद्र वर्ण के लोगों को महत्ता मिल सकना दूरूह कार्य हो गया । यह दशा गुप्तकाल के उत्तरवर्ती अंग्रेजीकाल तक हमें प्राप्त होती है ।

दलित चेतना के सवाहको ने शूद्रो की इतिहासपरक मीमासा की । 'शूद्र कौन' और 'अछूत कौन और कैसे' जैसे शोध लिखकर डा0 अम्बेडकर ने शूद्रो के महत्व को रेखाकित किया । महत्व के क्रम मे शूद्रो को आर्यावर्त का महान कारीगर तक बताया गया ।

शूद्र वर्ण का विभाजन जाति वर्ग मे हो गया । वर्ण की वाहक जाति व्यवस्था बन गयी । जाति व्यवस्था ने सामाजिक सरचना को दुरूह बना दिया । आरम्भ में वर्ण की रचना कर्म के आधार पर की गयी थी परन्तु बाद मे यह जन्म के आधार पर स्थिर हो गयी । जन्मना स्थिरता से समाज की गति शीलता समाप्त हो गयी और उसमे जडता आ गयी । जाति व्यवस्था आज एक कलक के रूप मे हमारे सामने आती है जिसमे जाति को उसकी योग्यता क्षमता पर श्रेष्ठता प्रदान की जाती है । वस्तुत दलित जातियो की दशा काफी बेचारगी की है जिसके लिये जिम्मेदार यहा का धार्मिक सास्कृतिक परिवेश है ।

परम्परा से अनेको सुधारको ने इस दलित समाज की उन्नति और असमानतावाद की समाप्ति हेतु कार्य किया । कबीरपन्थी, शिवनारायणी, आर्यसमाजी आदि इसके अगुआ रहे । इसके साथ इस समाज के लोगो ने भी सुधारात्मक प्रयास किये । जिससे महात्मा फूले, स्वामी अछूतानन्द, डा0 अम्बेडकर मान्यवर काशीराम जैसे अनेकों नाम है । इन नायको ने दलित सामाज की धार्मिक, सामाजिक जागृति हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन खपा दिया । इनका सर्वप्रधान प्रयास दलितों को उनका आत्म सम्मान वापस लौटाने का था । मा0 काशीराम भारतीय हिन्दू सस्कृति को जातियो को सस्कृति कहकर चोट करते है ।

वस्तुत महात्मा फूले को सत्य शोधक समाज, पेरियार ई वी आर का बुद्धिवाद और नास्तिकतावाद तथा बाबा साहेब अम्बेडकर का बौद्ध धर्म पुनर्जागण इस चेतना को जगाने के उपागम थे । इन्ही उपागनों मे सबसे बड़ी चीज मा0 काशीराम की

स्थापना "बहुजन धर्म" के निर्माण की है । बहुजन समाज आपसी भाईचारा के आधार पर शूद्र + चान्डाल जातियों को एकत्रित कर उन्हें शक्ति, व आत्म सम्मान प्रदान करने के लिये एक आन्दोलन हैं । यह शूद्र व चान्डाल भले ही किसी अन्य धर्म ईसाई, सिख, इस्लाम के हो । इनकी दशा वहा भी हिन्दू धर्म जैसी ही विचित्र है वहा भी मनुवादी लोग जो ऊची जातियो से धर्मान्तरित हुये है नेतृत्त कर रहे है और वे निम्न जातियो से परिवर्तित लोगों को गिरी निगाह से देखते है । अत अन्य धर्मो मे भी जो चान्डाल, अछूत, शूद्र वर्ग के धर्मान्तरित लोग है उन्हें आपसी भाईचारा के आधार पर, समानता के आधार पर 'बहुजन समाज' की अवधारणा में जोड़ा जायेगा ।

आर्य समाज ने इसके लिये शिक्षा शुद्धि जैसे तरीको द्वारा भारत में एक सुधारात्मक आन्दोलन चलाने का, जागरण करने का प्रयास किया था । संयुक्त प्रान्त मे रामचरन दास, अछूतानन्द, बोधानन्द आदि लोग सक्रिय थे । इन्ही आन्दोलनो के परिणाम स्वरूप आगरा मे जाटवों का अलीगढ़ में चौधरियों का संस्कृतिकरण सम्पन्न हुआ । इलाहाबाद के बाल्मीकियो ने जागृति के लिये प्रयास किया । स्वतत्रता के करीब, जाटव महासभा, चमार माहसभा, रविदास महासभा, जैसे अनेकानेक सगठनों का उदय हुआ ।

राजनीतिक रूप से इस आन्दोलन की अगुआई रिपब्लिक पार्टी आफ इन्डिया द्वारा की गयी । साथ ही इसमें धार्मिक सामाजिक, राजनीतिक सभी मामलों को एक साथ मिला दिया गया । बिखरती रिपब्लिकन पार्टी की पृष्ठभूमि पर ही उसके सदस्य मान्यवर काशीराम ने 'बहुजन समाज पार्टी' नामक दल बनाया और उसके द्वारा दलित आन्दोलन को बहुजन के स्वरूप में परिवर्तित कर दिया । यहां भी धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक मामले एक ही घोषित रहे । बहुजन समाज में 6000 के लगभग जातियों को एकत्रित कर उन्हे आत्म सम्मान देने की बात की जाती है ।

अल्प सख्यको की समस्या पर भी मा0 काशीराम स्पष्ट हैं । प्रमुख समस्या दगें है और उनको वह प्रायोजित घोषित कर देते है । इसमें भी क्षति बहुजन समाज के लोगो की ही होती है । इसका कारण है कि अल्पसख्यक समाज मे बहुजन समाज ने नेतृत्व नही पैदा किया है । नेतृत्व वहा भी मनुवादियो के हाथों मे ही है ।

धर्मान्तरण पर वह बिलकुल स्पष्ट है । कहते है कि धर्म वही उचित है जिसमे मानवतावाद ही जिसमे समानतावाद हो । धर्म परिवर्तन से कुछ लाभ–हानि नहीं हो सकता है लाभ–हानि के लिये उन्हें आपसी बधुत्व व समानतावाद को मानवता के धरातल पर अपनाना होगा । अस्तु वह धर्म परिवर्तन को निरर्थक मानते है ।

इस प्रकार मा0 काशीराम और बहुजन समाज पार्टी एक बहुजन समाज का निर्माण करना चाहती है । यह बहुजन समाज प्राचीन जाति पर, समानता वाद पर, मानवतावाद पर, भाई–चारा के आधार आधृत होगा । इसमें भारतीय समाज की धर्म द्वारा प्रताडित लगभग 6000 जातियों का समावेश होगा । इन्हें आत्म शक्ति प्रदान की जायेगी । इस आत्म शक्ति का वाहक बहुजन समाज आन्दोलन होगा और 'केन्द्र' बहुजन समाज के द्वारा सत्ता की कुर्सी प्राप्त करना होगा साथ ही इस समाज के निर्माण का दायित्व बहुजन समाज पार्टी का होगा ।

विवरणिका

1. क्रान्ति प्रतीक अम्बेडकर – थामस मैथ्यू, सावन्त राय, अशोक भारती – पृष्ठ–13 धम्म बुक्स प्रकाशन – नई दिल्ली – 1994 ।
2. वही " पृष्ठ–15 ।
3. मायावती – बहुजन समाज और उसकी राजनीति – पृष्ठ–3 द्वितीय संस्करण – अक्टूबर–2000 प्रकाशन – ई ए – 44 – इन्द्रपुरी नई दिल्ली ।
4. प्रेम कपाडियां एवं डा0 प्रकाश लुइस (सम्पादित) – नई सदी भी तोड़ नहीं पाई उत्तर प्रदेश में अछूत पनको – राजनारायण आर्य द्वारा लिखित – पृष्ठ–19 ।

5. मायावती – बहुजन समाज और उसकी राजनीति – पृष्ठ–2 – द्वितीय सस्करण प्रकाशन ई ए – 44 इन्द्रपुरी नई दिल्ली – 2000 ।

6 जी0एच0 धुर्ये – कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – बाम्बे – पापुलर बुक डिपो – 1940 – पृष्ठ – 176 ।

– रामशरण राम – शूद्रो का प्राचीन इतिहास – द मेकमिलन कम्पनी आफ इन्डिया लिमिटेड – नई दिल्ली – 1979 पृष्ठ – 141 ।

7 आर0 टी0 एच0 ग्रिफिच – हास आफ द ऋग्वेद – नई दिल्ली – साहित्य भन्डार – 1977 – पृष्ठ – 164 ।

8. एस0 एन0 श्रीवास्तव – कास्ट इन इन्डिया एन्ड अदर एसेज – बाम्बे – एशिया पब्लिशिंग हाउस – 1962 – पृष्ठ – 54 ।

9 एस0 राधाकृष्णन – ईस्टर्न रिलीजन्स एन्ड वेस्टर्न थाट, लन्दन एलेन एन्ड अनविन । 1949 – पृष्ठ – 13 ।

10. धनजंय कीर – अम्बेडकर लाइफ एन्ड मिशन – बाम्बे – पापुलर प्रकाशन – 1954 – पृष्ठ – 63

11 डी0 आर0 जाटव – भारतीय समाज एव सविधान – जयपुर – समता साहित्य सदन – द्वितीय सस्करण – 1992 – पृष्ठ – 45 !

12. एम0 एन0 श्रीनिवासन – 1962 – पृष्ठ – 75 – कास्ट इन इन्डिया एन्ड अदर एशेज – बाम्बे – एशिया पब्लिशिग हाउस ।

13 माता प्रसाद – उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज – पृष्ठ – 3 – प्रकाशक – देहली किताब घर – नई दिल्ली । 1995 ।

14. डा0 पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पृष्ठ – 45, पोइन्टर पब्लिशिर्स, जयपुर – 1999

15 वी0 टी0 सेम्पूल – वन कास्ट, वन रिलीजन, वनगाड – ए स्टडी आफ श्री नारायण गुरू–न्यू देहली–स्टर्लिंग पब्लिकेशन, 1977, पृष्ठ–10 ।

– नव भारत टाइम्स – जयपुर–20 अगस्त 1994 ।

16 डी0 बी0 आर0 अम्बेडकर – इन्हिलेशन आफ कास्ट – ए रिप्लाई टू महात्मा गाधी, डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एन्ड स्पीचचेज, वोन, बाम्बे गवर्नमेन्ट आफ महाराष्ट्र–1979 पृष्ठ–112–113 ।

– दलित एशिया टू डे मासिक लखनऊ जनवरी 1995, पृष्ठ – 30 ।

17 धनजय कीर – महात्मा ज्योतिराव फूले – कादर आफ इन्डियन सोशल रिवोलूशन बाम्बे–पापुलर प्रकाशन–द्वितीय सस्करण–1974, पृष्ठ–23–26 ।

18 डा0 पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पृष्ठ – 45 – पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1999 ।

19 वही पृष्ठ – 45 ।

20 ए0 एस0 राजशेखशचार्य – वी0 आर0 अम्बेडकर – द क्विस्ट फार सोशल जस्टिस – न्यू देहली – उप्पल पब्लिशिग हाउस – 1989 ।

21 काशीराम – चमचायुग – पृष्ठ – 123ए अनुवादक – रामगोपाल आजाद, समता प्रकाशन – नागपुर – चतुर्थ सस्करण – 2000 ।

22. वहीं " पृष्ठ – 124 ।

23 वहीं " पृष्ठ – 126 ।

24 वहीं " पृष्ठ – 127 ।

25 माता प्रसाद – उत्तर प्रदेश की दलित जातियो को दस्तावेज – पृष्ठ – 5 – प्रकाशक देहली किताब घर, नई दिल्ली – 1995 ।

26. प्रेम कपाडिया व डा0 प्रकाश लुइस – नई सदी भी तोड़ नहीं पायी उत्तर प्रदेश में अछूतपन को – पृष्ठ – 12 – विनोद कुमार चिराग द्वारा लिखित प्रकाशन – भारतीय सामाजिक संस्थान, 2001, नई दिल्ली ।

27. विवेक कुमार व उदय सिन्हा – पृष्ठ – 40, दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए परस्केशन फ्राम वे लो – 2001 – पब्लिशर बहुजन साहित्य संस्थान, लखनऊ ।

28. वहीं " पृष्ठ – 41 ।

29. वहीं " पृष्ठ – 42 – 43 ।

30 गुप्टू – पृष्ठ – 286–87 – 1993 – कास्ट एन्ड लेबर अनटचेबिल्स सोशल मूवमेन्टस इन अर्बन उत्तर प्रदेश इन द एरली ट्वेन्टीन्थ सेन्चुरी इन पीटर राव (सम्पादित) दलित मूवमेन्ट्स आफ द नार्थ इन्डियाज अनटचेविल्स ।

31. मार्क ज्वेर गेन्शमेयर – 1979, पृष्ठ – 26 – पोलिटिकल होप – द क्वेस्ट फार पोलिटिकल आइडेन्टिटी एन्ड स्ट्रेटजी इन द सोशल मूवमेन्ट्स आफ द नार्थ इन्डियाज (अनटचेबिल्स) ।

32. विवके कुमार उदय सिन्हा – पृष्ठ – 44 – दलित एसर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए परस्केशन फ्रमम वेलो – 2001 पब्लिशर – बहुजन साहित्य सस्थान लखनऊ ।

33 वही " पृष्ठ – 54 ।

34 ए0 आर0 अकेला सम्पादित – काशीराम प्रेस के आइने मे – पृष्ठ – 15 साक्षात्कार – अभय भारती, 2001, आनन्द साहित्य सदन, तृतीय सस्करण – अलीगढ ।

35. काशीराम का साक्षात्कार – संचेतना – महीम सिह व कमलेश सचदेव–अक्टूबर 1989 ।

36 सुधा पाई – पेज–5, दलित एशर्सन एन्ड दि अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोलूशन (द वी0एस0पी0 इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन – न्यू देहली, वां–3, 2002 ।

37 रूडोल्फ लायन एन्ड सुशाने होएवर रूडोल्फ – माडर्निटी आफ ट्रेडिशन पोलिटिकल डेवलपमेंट इन इन्डिया, न्ये देहली, ओरियन्ट लांगमैन लिमिटेड ।

38 जेलिट – 1998, पृष्ठ – 46 – फ्राम अनटचेबिल टू दलित – एजेज आफ दि अम्बेडकर मूवमेंट – न्यू देहली मनोहर पब्लिकेशन ।

39. नील वाल्टर – 1998 – पृष्ठ – 21 – इकोनामिक चेन्ज इन रूरल इन्डिया लैन्ड टेन्योर एन्ड रिफार्म्स इन यू0 पी0 1800–1856 – न्यू हैवेन – याले यूनिवर्सिटी प्रेस ।

40 ओवन लिच – 1969–72–पालिटिक्स आफ अन्टचेविल्स – सोशल माविलिटी एन्ड चेन्ज इन द सिटी आफ इन्डिया – कोलम्बिया कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस ।

41 इयान आर0 डकन – 1979 – लेवल्स द कम्यूनिकेशन आफ प्रोग्राम्स एन्ड सेक्शनल स्ट्रेटजीज इन इन्डियन पालिटिक्स विद रिफ्रेस वे द वी0के0डी0 एन्ड दि आर0पी0आई0 इन यू0पी0 स्टेट एन्ड अलीगढ डिस्ट्रिक्ट – यूनिवर्सिटी आफ ससेक्स ।

42 भगवान दास – 1998 – बाबा साहेब अम्बेडकर और भगी जातिया – नई दिल्ली दलित टुडे प्रकाशन – पृष्ठ – 56–58 ।

43 सुधा पाई – पृष्ठ – 50 – दलित एसर्शन एन्ड दि अनफिनिस्ड डेमोक्रेटिक रिवालूशन (द वी0एस0पी0 इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन्स – न्यू देहली वा–3 – 2002 ।

44. इयान आर0 डकन – 1979 – लेवल्स द कम्यूनिकेशन आफ प्रोग्राम्स एन्ड सेक्शनल स्ट्रेटजीस एन्ड इन्डियन पालिटिक्स विद रिफ्रेंसवे द वी0के0डी0 एन्ड दि आर0पी0आई0 इन यू0 पी0 स्टेट एन्ड अलीगढ डिस्ट्रिक्ट – यूनिवर्सिटी आफ ससेक्स।

45. धनजंय कीर – 1962 – पृष्ठ – 35 – डा0 अम्बेडकर लाइफ एन्ड मिशन बाम्बे – पापुलर प्रकाशन

46. राम नारायण – 1996 – पृष्ठ – 34 – द मेकिंग आफ द सिड्यूल्ड कास्ट कम्यूनिटी इन उत्तर प्रदेश ए स्टडी आफ द एस0सी0एफ एन्ड दलित पालिटिक्स – 1946 – 48 एम0 फिल0 थेसिस – डिर्पाटमेंट आफ हिस्ट्री – यूनिवर्सिटी आफ देहली ।

47 विवेक कुमार उदय सिन्हा – पृष्ठ – 50 – दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए परशेपशन फ्राम बेलो – 2001, पब्लिशर बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ ।

48 आर0 बारबरा जोशी (सम्पादित) 1986 – पृष्ठ – 105 – अनटचेबिल वायस आफ द दलित लिबरेशन मूवमेंट – न्यू देहली – सेल्फ सर्विस सिन्डीकेट ।

49 काशीराम – चमचायुग – पृष्ठ – 94 अनुवादक राम गोपाल आजाद समता प्रकाशन – नागपुर – चतुर्थ सस्करण – 2000 ।

50 इलाहाबाद लोक सभा उपचुनाव के समय काशीराम की अपील 16 जून 1988 ।

51. विनोद कुमार चिराग द्वारा लिखित – प्रेम कपाडिया व डा0 प्रकाश लुइस सम्पादित – नई सदी भी तोड नहीं पायी उत्तर प्रदेश में अछूतपनको – प्रकाशन – भारतीय सामाजिक सस्थान – 2001 – नई दिल्ली (प्रथम अध्याय)

52. अभय भारती का साक्षात्कार – ए0आर0 अकेला का सकलन – काशीराम प्रेस के आइने मे पृष्ठ – 15 – 2001 – आनन्द साहित्य सदन – तृतीय सस्करण – अलीगढ़ ।

53 मायावती – बहुजन समाज और उसकी राजनीति – पृष्ठ – 34 द्वितीय संस्करण – अक्टूबर 2000 – प्रकाशक – इ ए – 44 इन्द्रपुरी कालोनी, नई दिल्ली ।

54 वही " पृष्ठ – 55 ।

55 वही " पृष्ठ – 80 ।

56. प्रेम कपाडिया व डा0 प्रकाश लुइस सम्पादित – नई सदी भी तोड़ नही पायी उत्तर प्रदेश में अछूतपन को – विनोद कुमार चिराग लिखित – पृष्ठ – 15 – प्रकाशन – भारतीय सामाजिक संस्थान – नई दिल्ली ।

57. माता प्रसाद – उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज – पृष्ठ – 5–6 छेदी लाल साथी की पिछड़े वर्गो के आरक्षण – पृष्ठ – 34 से उधृत प्रकाशन – देहली किताब घर – नई दिल्ली – 1995 ।

58. काशीराम – साक्षात्कार – अभयभारती – सकलन ए0आर0 अकेला – काशीराम प्रेस के आइने में – पृष्ठ – 15 – 2001 – आनन्द साहित्य सदन तृतीय सस्करण – अलीगढ ।

59. वही " आगे

60. काशीराम की इलाहाबाद लोक सभा उप चुनाव के समय की गयी अपील 16 जून 1988

61. इन्डियाटूडे – 30 जून 1988 ।

62. चौथी दुनिया–2 से आठ अप्रैल – 1989 साक्षात्कार – वीरेन्द्र सेंगर द्वारा ।

63. वही आगे " ।

64. संचेतना–महीप सिह व कमलेश सचदेव का साक्षात्कार – अक्टूबर 1989 ।

65. शहिद सिद्दीकी – नई जमीन – 28 सितम्बर से चार अक्टूबर 1993 ।

66. शहिद सिद्दीकी – नई जमीन – 21–27 दिसम्बर – 1993 ।

(ग) आर्थिक क्रियाविधि

व्यक्ति के क्रियात्मक क्षणो का अधिकतम भाग उसकी आर्थिक गतिविधियो मे व्यतीत होता है । जीविकोपार्जन के अतिरिक्त व्यक्ति का व्यवसाय उसकी सामाजिक स्थिति से सबधित अनेक करणो के प्रतिमानों को प्रतिबिम्बित करता है ।[1] सामान्य तौर पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सम्पत्ति अर्जित करने का प्रयास करता है । सम्पत्ति अर्जित करने की यही प्रक्रिया जो निरन्तर चलती रहे व्यवसाय कहलाती है यह व्यक्ति के सामाजिक मूल्यों, विचारों व्यक्तित्व तथा जीवन शैली को निश्चित करता है भले ही व्यक्ति सम्पत्ति के लिये (जो व्यवसाय से उपलब्ध होती है) काम करता है और आमदनी को व्यसाय से अलग नहीं किया जा सकता फिर भी आधुनिक समाजों में व्यवसाय जीविकोपार्जन के लिये धन कमाने से अधिक महत्वपूर्ण ही नही बल्कि शक्ति, पद, प्रतिष्ठा का भी प्रतीक है ।[2] ब्रूम का कहना है कि व्यक्ति भले ही आमदनी के लिये व्यवसाय करता है, लेकिन उसकी जीविकोपार्जन सबंधी उपलब्धियो के अतिरिक्त उसके सामाजिक पद एवं स्थिति को भी व्यवसाय प्रभावित करता है ।[3] व्यवसाय की प्रकृति तथाा उसका स्तर व्यक्ति के वर्ग तादात्मीकरण व राजनैतिक मूल्यों को प्रभावित करता है । मैक्लेलैन्ड के अनुसार – व्यक्ति की व्यवसायिक महत्वाकाक्षाये उसकी उपलब्धि एव पूर्वामुखता जो कि आधुनिकीकरण का एक अग है को भी निर्धारित करती है ।[4]

एक गतिशील अर्थ व्यवस्था में कार्यात्मक गतिशीलता निरन्तर बढ़ती रही है, इसका मापन एक एक व्यक्ति के जीवन, समय के कार्यों, जिसमें दो या दो से अधिक पीढ़िंया आती हैं, किया जा सकता है ।[5] भारतीय समाज प्राचीन काल से ही अत्याधिक स्थिर, रूढ़ एव यथास्थितिवादी रहा है । लेकिन वर्तमान में सचार साधनों के विस्तार, शिक्षा में वृद्धि, यातायात एव परिवहन के साधनो का तेजी से विस्तार जैसे अनेक कारणों से आर्थिक गतिशीलता में वृद्धि हुयी है तथा हिन्दू समाज के निम्नतम दलित वर्ग में भी अर्थिक गतिशीलता दिखाई देने लगी है ।[6]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था पूर्णत व्यवसाय पर आधारित रही है जिसमें प्रत्येक जाति का अपना एक पृथक एव निश्चित व्यवसाय होता है । एक ही जाति के भीतर अनेको उपजातिया दिखाई देती हैं । लेकिन उनमे बहुत हद तक व्यावसायिक समानता पाई जाती है । दलित वर्ग मे भी व्यवसाय एव जाति के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है ।[7] आज दलित वर्ग मे शामिल जातिया वैदिक युग में चारो वर्णो से बाहर पचमा, अति शूद्र, अन्तयज, अवर्ण, अस्पृश्य आदि नामों से जानी जाती थी । इनको सबसे घृणित एव गन्दा व्यवसाय प्रदान किया गया । जाति एव व्यवसाय एक ही सिक्के के दो पहलू होने तथा जाति के आधार पर व्यववसाय निश्चित होने के कारण व्यवसाय का त्याग करना या व्यवसाय बदलना आसान कार्य नहीं था ।[8] यह एक रोचक तथ्य है कि वेद, उपनिषद, माहकाव्य, एव अन्य धर्म शास्त्र मे जाति व्यवसाय के साथ सम्बद्ध थी तथा व्यवसाय बदलने पर जाति स्वत ही परिवर्तित हो जाती थी । कालान्तर में जाति–व्यवस्था के बन्धन दृढ़ होते गये तथा जाति का निर्धारण व्यवसाय के स्थान पर जन्म द्वारा होने लगा ।[9]

ब्रिटानी शासन के दौरान व्यावसायिक दृढ़ता शिथिल होने लगी तथा दलितों के सदस्य भी अपने परम्परागत एव जातिगत धन्धों को त्यागकर कृषि, सरकारी सेवा, व्यापार, उद्योग जेसे स्वच्छ व्यवसायों में प्रवेश पाने लगे । लेकिन यह परिवर्तन भी जाति बन्धनों को विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में समाप्त करने मे असफल रहा है । ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों का अभी भी वही व्यवसाय करने की अनुमति है जो उनके लिये पूर्व निर्धारित है । आज भी इन जातियों के सदस्य ग्रामीण इलाकों मे चाय, पान एवं खाने योग्य वस्तुओ की दूकाने नहीं लगा सकते है ।[10]

प्राय. जाति का यह कहकर पक्ष लिया जाता है कि यह सभ्य समाज में श्रम विभाजन का एक उपयोगी स्वरूप है । किन्तु जाति केवल श्रम का विभाजन ही नहीं यह श्रमिकों का भी विभाजन है । यह एक पदक्रम है जिसमें श्रमिकों का विभाजन

एक के ऊपर दूसरे के रूप मे श्रेणीगत है । जाति व्यवस्था न तो स्वत परिवर्तित है ना ही यह स्वाभाविक उपयुक्तता पर आधारित है । यह व्यक्ति को उसकी उपयुक्तता क्षमता एव योग्यता के अनुसार बढने से रोकती है । वशानुगत विभाजन एव व्यवसाय के निर्धारण के कारण जाति व्यक्ति एव समाज की उद्यमशीलता और विकास को पगु बनाती है ।"[11]

डा० अम्बेडकर ने यह आशका व्यक्त की थी कि आर्थिक समानता के बिना राजनैतिक स्वतत्रता से परस्पर विरोध बढेगे । उन्होने यह टिप्पणी 25 नवम्बर 1949 को सविधान सभा में निम्न शब्दों में की थी ।– '26 जनवरी 1950 को हम एक परस्पर विरोध के युग मे प्रवेश करने जा रहे हैं । राजनीति मे हमारे पास समानता होगी और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन मे असमानता । राजनीति में हम एक व्यक्ति–एक वोट तथा एक वोट–एक मूल्य के सिद्धान्त को अपनायेगे । किन्तु अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन मे अपने सामाजिक और आर्थिक ढाचे के कारण हम एक व्यक्ति–एक मूल्य के सिद्धान्त का खन्डन करते रहेंगे । हम परस्पर विरोध का यह जीवन कितने दिन जी सकेंगे ? हम अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता का कितने दिन तक खन्डन करते रहेगें ? यदि हम लम्बे समय तक इसका खन्डन करते रह तो हम ऐसा केवल अपने राजनैतिक लोकतंत्र को खतरे में डालकर ही कर सकते हैं । हमें यह विरोधाभास यथा शीघ्र खत्म करना होगा अन्यथा जो असमानता से पीड़ित हैं वे राजनैतिक लोकतत्र को उखाड़ फेकेगें जिसे हमने इतनी कड़ी मेहनत से बनाया है ।"[12]

जाति व्यवस्था अथवा वर्ण व्यवस्था उत्पादकों के संगठन एवं वितरण की योजना के तौर पर पूर्णतया असफल हो चुकी है । जाति कार्य को रूचि से अलग करती है । बुद्धि का शारीरिक श्रम से विच्छेद करती है । मानव समुदाय को महत्वपूर्ण रूचिया विकसित करने से रोककर उसे सवेदनहीन बनाती है और संगठित होने से रोकती है । यह केवल श्रम का विभाजन ही नहीं अपित श्रमिकों का भी

विभाजन है । — भारत मे बहुत से धन्धे निकृष्ट समझे जाते है और उनसे दूर भागने की इच्छा सदैव रहती है । – शूद्रों के लिये धन्धों को दैवीय निर्धारण मुख्यत निकृष्टतम क्षेत्र मे कुविचार एव काम से दूर रहने के रूप मे सामने आया है । शूद्र जो मेहनत करता है उसे बुद्धिमत्ता विकसित करने की अनुमति नहीं दी गयी । परिणामत यह समाज व अर्थ व्यवस्था के लिये धातक रहा है ।"[13]

जन्म से पेशे का निर्धारण, सामाजिक व्यवस्था का एक मूलभूत आधार है । प्रत्येक वर्ण को उसी कार्य को करना है जो उसके लिये निर्धारित किया गया है । जिसमें उसने जन्म लिया है । उसमें व्यक्तिगत चयन का कोई महत्व नहीं है । उसे अपने पूर्वजो के धन्धे मे लगना ही पडेगा । वर्ग और श्रम विभाजन सब जगह मौजूद हैं आगे बढने के रास्ते सबके लिये समान नहीं है ।"[14] इस पर 'राम निहोर विमल' विश्लेषण करते हुये लिखते है कि – किन्तु मौजूदा भारतीय वर्ण एव जाति–व्यवस्था केवल श्रम विभाजन अथवा श्रम एव श्रमिको का विभाजन ही नहीं है बल्कि इसमे कुछ और भी है, जिस पर समाजशास्त्रियों की नजर नही पड़ी है किन्तु भारतीय समाज एव समाजशास्त्रियों को सर्वाधिक चिन्तित परेशान एवं नुकसान किया है, वह है विभाजित श्रमिकों के लिये एक खास श्रम को आरक्षित कर देना अथवा विभाजित श्रमिकों के लिये उनके जन्म के आधार पर एक निश्चित श्रम को आरोपित कर देना जिसमें कि श्रम करने या श्रमिक बनने से पूर्व ही उसका जन्म के आधार पर विभाजन हो जाता है । श्रम विभाजन पर आधारित व्यवस्था बहुत पहले रही होगी आज की वर्ण व्यवस्था में श्रम विभाजन की कहीं कोई जगह नहीं है क्योंकि श्रम विभाजन की अनिवार्य शर्त है योग्यता के आधार श्रम का चयन – जैसे कि उद्योग, नौकरियो आदि मे आई.ए.एस., पी.सी.एस. इजीनियर, डाक्टर, मजदूर आदि होते हैं । चूंकि वर्ण व्यवस्था में योग्यता के आधार पर श्रम को चुनने की छूट या अधिकार नहीं है । अत वर्ण व्यवस्था श्रम का विभाजन नहीं हो सकती है ।[15]

इन्हीं सब तथ्यो को ध्यान मे रखते हुये मान्यवर काशीराम ने स्वतत्रता की स्वर्ण जयन्ती के समय अपने दिये गये बृहद भाषण मे बृहद आर्थिक सुधारो की याद दिलाया । "बाहरी रूप से तो देश ने साम्राज्यवादी शासन उखाड फेका था किन्तु अन्तरिक रूप से जनता के कुछ वर्ग कुछ दूसरी ही बेडियो मे जकडे हुये थे आर्थिक रूप से उन्नत, साहूकारो का चगुल, स्थितियो मे असमानता, जमीदारो की दासता जाति प्रथा के अवरोध, धार्मिक असमानता इत्यादि की बेडिया थी । जब तक शोषितों को उपयुक्त रूप से सुरक्षा नही दी जाती, जब तक पारम्परिक व्यापारिक और कुशल लोगो की दक्षता का सरक्षण नहीं किया जाता और उसे बेहतर नहीं बनया जाता जब तक सभी वंचितों को शिक्षा और स्वास्थ्य देख भाल नहीं प्रदान की जाती जब तक सबके लिये रोजगार के अवसर नहीं सृजित किये जाते जब तक विकास कार्य इस तरह हाथ मे नही लिया जाता, जिसमे मौजूदा स्थानीय कौशलों में दक्षता समाप्त नहीं बल्कि उन्नत होगी तब तक इन दासता की इन बेड़ियों को तोड़ा नहीं जा सकता है ।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से हम आजादी के बाद प्राप्त की गयी समूची आर्थिक प्रगति के बारे में सन्तुष्ट हो सकते है । कृषि के क्षेत्र में देश ने भारी प्रगति की है । वर्ष 1947 में देश भुखमरी के कगार पर था किन्तु आज देश के पास अन्न का पर्याप्त भन्डार है तथा हम खाद्यान्न के दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर हैं । हमारी हरित क्रांति, अनपढ़ और संसाधनहीन ऐसे वर्ग द्वारा लाई गयी जो ऐसे ग्रामीण क्षेत्र में थे जो देश से ठीक तरह से जुड़ा हुआ भी नही था । इसलिये हमारी हरित क्रांति विश्व के लिये एक दुर्लभ चमत्कार ही है । शिक्षा के क्षेत्र में हमारा देश केवल "बाबू" ही तैयार किया करता था ताकि वे विदेशी राज्य की सेवा कर सके, किन्तु आज हमारा देश तकनीकी–आर्थिक–मानवशक्ति वाला तीसरा सबसे बड़ा देश कहलाता है । वर्ष 1947 में हमारे पास एक नगण्य औद्योगिक आधार था जिसमें केवल कुछ ही कृषि आधारित उद्योग तथा एक–दो खाने थी । हम आज विश्व के दस सबसे बड़े औद्योगिक देशों में एक है । जिसमें सैफ्टी पिन से लेकर

सुपरसोनिक हवाई जहाज तक लगभग सब कुछ बनता है । किसी भी अन्य देश ने जो हमारे साथ ही स्वतत्र हुआ हो, इतने कम समय में इतना कुछ हासिल नहीं किया है राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक नागरिक के औसत गैर रानजीतिक साधनो मे सुधार हुआ है किन्तु 'औसत' एक भ्रामक शब्द है । यदि हमारा एक पाव वर्फ की सिल्ली पर हो और दूसरा अगार के ढेर पर तो हम यह नहीं कह सकते कि औसतन यह अच्छी स्थिति है । यही बात आज हमारी अर्थव्यवस्था पर लागू होती है ।

इन आकड़ों से यह पता नहीं चलता कि जिन लोगों के पास ससाधन नही है वे इन विकास की योजनाओ से कितने लाभान्वित हुये है । उदारहरण के तौर पर हरित क्राति गेहूँ और चावल जैसे नकदी फसलो के आधार पर ही हासिल हुयी है । गरीब आदमी के मोटे अनाज जैसे ज्वार, बाजरा और मकईया का क्या हुआ ।

सिंचाई से छोटे सीमान्त किसानों को लाभ नही पहुचा है । सिचाई के अभाव में उनके अलाभकर जोत और अधिक अलाभकर हुये हैं । सिचाई उपकरण तथा पानी उधार पर लेने के लिये वे अपने अमीर पड़ोसियो पर पहले से अधिक निर्भर हो गये हैं । इस प्रकार भूमि सुधार का क्या हुआ । जो पारम्पस्कि रूप से गरीब लोगों के पास हुआ करती थी जैसे कि – दियाए भूमि, खारी भूमि और ऊसर भूमि ? यदि तुलनात्मक रूप से देखें तो इन श्रेणियो के लोगो पर बहुत कम ध्यान दिया गया है । डेयरी, सुअर पालन, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, आदि जैसे व्यवसाय दुर्लभ मामलों में ही सफल हुये हैं । सामान्य तौर पर जीवन यापन करने वाले इन व्यवसायों में सुधार नहीं हुआ है और अधिकाश मामलो मे गरीब लोगों को जो अपने जीवन यापन के लिये इन व्यवसायों पर ही आश्रित थे । इन व्यवसायों को छोड़ना पड़ा तथा जीवन यापन के लिये कोई और तरीका ढूंढना पड़ा ।

इसी प्रकार भारत का औद्योगिक मानचित्र मुख्यत सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों तथा निजी घरानों से बना हुआ है । हाल के वर्षो तक तो मझोले और छोटे उद्योगों के लिये कुछ भी नहीं किया गया था । ग्रामीण उद्योग तो खुद के ही भरोसे चल रहे हैं । ऐसी स्थिति मे रोजगार सृजन नही हुआ है । उदारीकरण मे हाल ही मे किये गये प्रयासो का परिणाम अभी नही मिला है और यह भी अनिश्चित है कि ये परिणाम सुखद होगें अथवा दुखद ।

आर्थिक असमानताए ज्यो की त्यो बनी हुयी हैं । नहीं, यह असमानतायें पहले से बहुत बढ़ चुकी है । आज भारत में सर्वाधिक धनी व्यक्ति जितनी धनराशि एक नाश्ते पर व्यय करता है वह देश के सबसे निर्धन व्यक्ति की सम्पूर्ण आर्थिक सम्पत्ति से कई गुना अधिक होती है ।"[16]

प्रस्तुत भाषण अश को गहराई से देखने पर यह एक तरफ स्वतत्र भारत की आर्थिक नीतियों की समीक्षा और बहुजन समाज पार्टी की आर्थिक घोषणा पत्र के रूप में स्वीकारा जा सकता है । दोनों पक्षों पर की गयी टिप्पणिया घोषित वक्तव्य से किसी भी रूप में कम नहीं मानी जा सकती है । यद्यपि यहा तक अर्थव्यवस्था के आगमन का एक पूर्ण इतिहास है । साथ ही काशीराम और बहुजन समाज के उदय में हमारी नयी आर्थिक व्यवस्था का भारी योगदान माना जा सकता है । सामाजिक व्यवस्था मे शिथिलता तभी आ सकी जब आर्थिक व्यवस्था ने उसके ताने—बाने को छिन्न—भिन्न करने का प्रयास किया ।

अन्यत्र मा0 काशीराम कहते हैं कि – 'भारत विपुल भूमि, जल, खनिज और प्रचुर मानव संसाधन वाला एक विशाल देश है जो वैज्ञानिक और तकनीकी रूप से भी उन्नत है इतने सबके बावजूद यह संसार का निर्धनतम और सर्वाधिक पिछड़ा देश है । यह चमचा युग के सबसे बुरे प्रभाव का परिणाम है क्योंकि यदि किसी अल्पमत को बहुमत पर शासन करना है तो उसे बहुमत को अशिक्षित, अज्ञानी, लाचार, मजबूर और गरीब तथा पिछड़ा बनाये रखना होगा । इस प्रकार बहुमत के

लोगो को अज्ञानी और असहाय बनाये रखने की अपनी चिन्ता मे शासक जातियो के लोग देश को गरीब व पिछड़ा बनाये रखने में सफल हुये ।'[17]

स्वतंत्रता के पूर्व भारत मे आर्थिक गतिविधियो का मूल केन्द्र खेती व्यवस्था पर टिका था वहीं से सम्पूर्ण राजस्व राज्य को प्राप्त हुआ करता था । इसके साथ–साथ जजमानी व्यवस्था भी कायम थी । इम्तियाज अहमद खेती पर कहते हैं कि – लगभग 1000 साल से अपनी गगा की उपजाऊ भूमि के कारण उत्तर प्रदेश राजनीति का केन्द्र बिन्दु है । उत्तर प्रदेश का इतिहास सम्पूर्ण भारत का इतिहास बन गया है ।[18] बीसवीं सदी की राजनीतिक जड़ो का केन्द्र कलकत्ता और बगाल से आगे था जैसे कि – 19वीं सदी मे कलकता और बम्बई बनारस अलीगढ और इलाहाबाद था ।[19] यह क्षेत्र जहा सल्तनत और मुगल राज्य का केन्द्र था वहीं स्वतंत्रता के बाद 6 मे से एक सासद आज भी उत्तर प्रदेश अथवा गगा के मैदान से चुना जाता है । इसका कारण मात्र गगाघाटी की उपजाऊ भूमि है ।[20]

अकबर के समय ठाकुर जाति के लोग जमींदार थे जो कि लगभग 2/3 राजस्व का एकत्रण मध्य दोआब अवध और पूर्वी क्षेत्र के जिलों से करते थे । रूहेलखण्ड और उत्तर दोआब मे उनका प्रभाव कमजोर था यहा जाट, मुस्लिम, अहीर, गूजर, त्यागी, लोध जाति के लोग बड़े भूस्वामी थे और वे अपनी मिलकियत से भरों, डोमो आदि की मिल्कियत पर अपना प्रभाव बनाने का प्रयास करते थे ।[21] मध्यकाल में जमींदार अपने रैयतों को धमकी प्राय नहीं देते थे क्योंकि मानव शक्ति सीमित और खेत ज्यादा होने से किसान का पलड़ा भारी था । भूसम्बन्धों में स्थिरता आ गयी थी । अग्रेंजो के आने के बाद भू सम्बन्धो में बदलाव आया अब नीलामी के द्वारा पैसेवाला वर्ग भूमि क्रय करने के लिये आगे आया । नये जमींदार राजस्व की दर को बढ़ाने लगे जिससे कि देय राजस्व में किसी प्रकार की कमी न रह जाये । जिलावार–जातिवाद जमींदाराना 20वीं सदी से आरम्भ हुआ कारण था नये जमींदारों द्वारा ताकत का प्रदर्शन । लगभग दो तिहाई अवध के जमींदार जिन्हें तालुकदार

कहा जाता था अग्रेंजो द्वारा 1856 के बाद स्थापित किये गये ।[22] इन तालुकदारो को मात्र भूमि का मालिकाना ही नहीं दिया गया बल्कि मालिकाना के साथ–साथ भूमि का विभाजन और खन्डन का अधिकार भी 1869 और 1870 मे दिया गया ।[23]

1915 ई0 के बाद काग्रेस जनान्दोलन की आवश्यकता को महसूस कर रही थी । 1915–20 के बीच अनेक किसान रैलियॉं उसके आहवान पर निकाली गयीं जिससे राष्ट्रवादी सघर्ष को मजबूती मिले ।[24] इसी समय जमीनी स्तर पर तालुकदारों और जमीदारों के खिलाफ भी अवध क्षेत्र मे एक आन्दोलन चला (एका आन्दोलन), वस्तुतः यह आन्दोलन भूस्वामियॉं के विरूद्ध न होकर उनकी गालियों के विरूद्ध था । किसान सभा की बैठक में यह प्रस्ताव पास किया गया कि – हम किसी से पिटना और मार खाना नही चाहते, हम अवैध करो को देना नहीं चाहते, हम बेगारी नहीं चाहते, यदि हमें कोई गाली देगा तो हम उसे अपने आपको रोकने को कहेगे ।[25] काग्रेंस के एक प्रभुत्वशाली वर्ग और गाधी ने 1930 के दशक के आरम्भ मे कृषि में आमूल–चूल सुधारों को रोक दिया । जमीदारी समापन पर स्वराजपार्टी ने 1932 में प्रस्ताव पारित किया कि – पार्टी इस प्रभुत्वशाली वर्ग के समापन का पागलपन पूर्ण स्वप्न नहीं देखती क्योंकि इससे सैकड़ो वर्षो की हमारी विरासत जुड़ी है ।[26] यद्यपि स्वतंत्र्योत्तर भारत में जमीदारी व्यवस्था को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया । भूमि सुधार कानून लागू किये गये । तब भी ब्राह्मण आज अपनी क्षमता से डेढ से दो गुना और ठाकुर 2 5 से 3 गुना भूमि अपने कब्जे में रखे है । मात्र 5 प्रतिशत ब्राह्मण ठाकुर परिवार ऐसे है जिनके पास भूमि नही है ।[27]

जबकि अधिकाश दलितों के पास कोई भूमि नही है और वे भूमिहीन मजदूर है ।

इसी कारण मा0 काशीराम कहते है कि – ग्रामीण आबादी के लगभग 75प्रतिशत लोग अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियो तथा अन्य पिछड़े वर्गो के हैं । वे अत्याधिक वंचित और पराश्रित है । उनमे से बहुतों के लिये तो केवल उनका शरीर मात्र ही उनकी सम्पत्ति है । उनमें से 50प्रतिशत से ज्यादा के पास

अपनी कोई भूमि नहीं है । उत्तरी भारत मे इनको 'बटाईदार' कहा जाता है । दूसरे शब्दों में ये उन लोगों पर आश्रित होते है जिनके पास कागजो मे अपनी जमीन होती है । लोग पूरी तरह से उनकी दया पर जीते हैं लाभकारी रोजगार न दिये जाने के कारण उनमे से अधिकाश लोग सूद खोरो के ऋणी रहते हैं बाकी के 25 प्रतिशत दलित ग्रामीण जिनके पास जमीन है वह अलाभकारी जोतो के स्वामी हैं क्योंकि छोटे और सीमान्त किसान हैं उनकी स्थिति भी भूमिहीन किसानों से बेहतर नहीं कहा जा सकती ।

भूमिहीन किसानों और छोटे तथा सीमान्त किसानों की स्थिति को सुधारने के लिये चलाई गयी अधिकांश सरकारी स्कीमे विफल हो गयी हैं या फिर रूटिन बनकर रह गयी है । उदाहरण के लिये गहन ग्रामीण विकास कार्यक्रम से ऐसे बहुत से लोगों की स्थिति मे सुधार नहीं हुआ है जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर कर रहे हैं । इस स्कीम का उद्देश्य इन वर्गो के लोगो को लाभकारी परियोजनाओं में लगाकर उनको आय का इन्टरमीडियटरी श्रोत उपलब्ध कराना था । लाभार्थियों का पता लगाने के लिये अफसरशाही प्रक्रिया थीं । लाभार्थियों के लिये स्कीमों की उपयुक्तता को ध्यान में रखकर उनका चयन करने पर बहुत कम जोर दिया गया था और चुनिन्दा प्रोग्रामों या परियोजनाओ के लिये कच्चेमाल की आपूर्ति को स्थापित करने या उनके उत्पादनो के विपणन की व्यवस्था के लिये कोई समन्वित प्रयास नहीं किये गये । इसलिये समन्वित ग्रामीण विकास परियोजना विफल हो गयी । यह तो अवश्यम्भावी था । वास्तव मे गरीबी उन्मूलन स्कीमों से बहुत से गरीब लोग अपने पैरों पर खड़े होने के बजाय ऋण के बोझ से दबकर रह गये और उन्हें उत्पीड़न सहन करना पड़ा ।[28]

इसी बात को आगे बढाते हुये वह स्वर्ण जयन्ती पर बुलाये गये संसद के विशेष अधिवेशन में वह कहते है कि – "जो लोग खेतों में काम करते हैं और अनाज पैदा करते हैं उनके पास खेत नहीं है । 1947 मे जो लोग खेतों में खेती करके अनाज पैदा करते थे, उनके पास खेत नहीं था । ऐसे बहुत से लोग हैं,

करीब 35 प्रतिशत कृषि मे ऐसे काम करने वाले लोग हैं और 32 प्रतिशत ऐसे हैं जिनके पास खेत बहुत कम है, जो मार्जीनल फार्मर है और लगभग दो तिहाई खेतों में खेती करने वाले लैंडलेस या मार्जीनल फार्मर हैं । उनके बारे में डा0 अम्बेडकर ने 1942 मे आवाज उठाई थी और अपना सुझाव पेश किया था कि इन लोगों के लिये सेपरेट सेटलमेट होना चाहिये । उन्होने अलग मुल्क नही मागा था । पूरे देश के नक्शे पर 80 ऐसे प्वाइन्ट बनाये थे कि यहा उनका सेटेलमेट किया जा सकता है । इस देश में खेतों की कमी नहीं है जो लोग खेती करके अनाज पैदा करते हैं और उनके पास खेत नहीं है उनको खेत दिये जो सकते है । इस देश मे एसे बहुत से खेत है आज जितने भाग में खेती होती है उतनी ही खेती लायक जमीन देश में पड़ी है लेकिन वह जमीन उनको नही दी जाती है जो खेतो मे खेती करके अनाज पैदा करते है । इसलिये वे लोग देहात छोडकर शहरों की तरफ बढ़े । अगर हम उनको अम्बेडकर की राय के अनुसार खाली जमीन दे देते तो वह शहर आने के बजाय खेतो की तरफ चले जाते और वहा अनाज पैदा करते । लेकिन उनको खेत नहीं मिले । इसलिये 'लैण्ड टू दि लैण्डलेस' की बात बहुत चली लेकिन उनको जमीन नहीं मिली । इस कारण वह देहात छोडकर शहरों की ओर आ गये । आज लाखों करोड़ो की तादाद में वे शहरों में आ गये है । इससे झोपड़ियों की, हाउसिंग की, और अन्य तरह की समस्याए शहरों में पैदा हो गयी है ।

यह समस्या क्यों पैदा हुयी ? इसलिये कि जो खेतों में काम करने वाले खेतिहर मजदूर थे उनको खेत नहीं मिले । खेतों की आज भी देश में कमी नहीं है । इसके साथ ही खेतो मे खेती करके अनाज पैदा करने वाले किसानो की भी कमी नहीं है, लेकिन इन 50 सालों में हम इसका समाधान नहीं कर पाये है । इसलिये वे देहात छोड़ कर शहरो की तरफ आ गये और शहरों की समस्याएं बढ़ गयी ।[29]

अग्रेजो के शासनकाल मे जब सम्पूर्ण देश कारखानो व वाणिज्यवाद के दौर में प्रवेश कर गया था उस समय उत्तर प्रदेश की दशा काफी खराब थी जैसा कि – "सुधापाई का मत है कि तुलनात्मक रूप से (अन्य राज्यो से) सयुक्त प्रान्त की दशा अग्रेजी राज्य मे काफी खराब थी इसके बावजूद कुछ क्षेत्रों मे वाणिज्यवाद बढ़ रहा था । कृषि का विस्तार कुछ विशेष क्षेत्रो मे गन्ना मिलो के स्थापना के कारण हुआ । चमडा समान उद्योग के कारण कुछ शहरों, कस्बों का उदय हुआ । इसी तरह बहुत थोडा परिवर्तन अर्थव्यवस्था के ढाचे मे हो रहा था । परन्तु यह पुराने ताने–बाने को तोडने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगा था ।[30] जाति और जजमानी प्रथा द्वारा स्थापित पारम्परिक व्यवस्था सचालित थी, जबकि पश्चिमी भारत इस मामले में आगे निकल चुका था ।[31] परिणामत बडी सख्या में दलित वर्ण के लोग जनसख्या के सबसे गरीब लोगों में थे । उनके पास बहुत थोड़ी सी भूमि होती थी, जो होती भी थी वह अनुपजाऊ होती थी और खेत अत्यत छोटे होते थे, बदले में वे अपेक्षाकृत अन्यों से अधिक राजस्व और उपकरों की अदायगी करते थे, साथ ही वे बेगार भी करते थे । वे अपने मालिकों के तमाम मामलों में बधुवा होते थे और नये स्वामी के चयन की स्वतत्रता उनके पास नहीं थी । बहुत से दलित हरवाहा होते थे और पीढ़ियों तक मालिक के यहां काम करते थे । यह अत्यंत गरीब वर्ग था । चमार, पासी, भगी, खाती आदि जातिया जमीदारों की जुताई से अपना अलगाव करने लगी । इससे जमीदारों ने उनका बहिष्कार कर दिया और उनकी आर्थिक दशा 1930 के आस–पास काफी खराब हो गयी । इस तरह उनका पारम्परिक धन्धा भी छिन गया ।[32] इस समय मात्र चमार की दशा थोड़ा ठीक थी उनके स्वामियों ने उन्हें जमीने दी जिससे वे चमड़ा उद्योग की तरफ बढ़ सके इसका मतलब यह नही कि सारे चमारों की दशा अच्छी हो गयी या फिर वे खुशहाल थे । बल्कि मात्र कुछ चमारों की खुशहाली थी जो चमड़ा उद्योग की तरफ उन्मुख हो गये थे ।[33]

औद्योगीकरण के अभाव रोजगार के स्थानापन्न न होने की दशा मे लोगो ने अन्य राज्यों की ओर पलायन किया । बहुत से भूमिहीन मजदूरो ने या तो पंजाब में किसानो के यहा काम पाने के लिये अथवा बम्बई मे, मिलो मे काम पाने के लिये पारगमन किया । शहरो मे भी इन लोगो की दशा ठीक नहीं थी । चमड़ाकर्मी व बुनकर जैसे लोगो को उद्योगो से प्रतिस्पर्धा करनी पड रही थी । स्वीपर भी या तो कम आय पर काम कर रहे थे अथवा बेरोजगार हो रहे थे । वह वहा कुओं और स्कूलों का प्रयोग नहीं कर सकते थे । उन्हे धोबी, नाई की सेवायें भी नहीं मिल पाती थी । कुछ जगहो पर लोगो ने मिशनरी स्कूलो और आर्य समाज द्वारा संचालित स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर अपनी स्थिति सुधारी ।(34) उपनिवेशवाद के अन्त समय में नगरो मे ग्रामीण ढांचे को समाप्त करने का कार्य आरम्भ हो गया था । गन्ना के कारण गन्ना मिलो की स्थापना हो रही थी, वाणिज्यिक कृषि और दुग्ध उद्योग का विकास हो रहा था परन्तु यह सब समय से पीछे अर्थात देर से हो रहा था ।(35)

ठीक इसी समय प्रान्त के तमाम क्षेत्रो मे अलग–अलग तरीके से आर्थिक विकास, दलित आन्दोलन को अलग स्वरूप प्रदान कर रहा था । उपनिवेशवादी काल के उपरान्त भी यह विकास और चेतना का क्रम जारी रहा । दलित वर्ग की दशा पश्चिमी क्षेत्र मे राज्य के किसी अन्य क्षेत्र से अधिक अच्छी थी । सभी गतिविधियों में कृषि से पैदा होने वाले अतिरेक का महत्वपूर्ण योगदान था जिसका कारण नहरों का एक विस्तृत जाल था । जिसके कारण लगभग 37 प्रतिशत क्षेत्र पर वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन किया जा रहा था ।(36) जैसा कि लिंच अपने आगरा पर अध्ययन में लिखते है कि – "इस परिक्षेत्र में दलितो ने दोनो चीजे प्राप्त किया – प्रथम आर्थिक सम्भावना और जिससे उच्च जातियों को चुनौती दी, दूसरे अपने आन्दोलन की स्थापना और उसको गति दी ।(37) पश्चिमी क्षेत्र में चमारों के पास ऐतिहासिक रूप से अधिक और उपजाऊ जमीनें थी, अच्छी जलवायु थी । अधिकांश गेहूँ उगाते थे, कुछ गन्ना उगाया करते थे । पश्चिम में थोड़े जमीदारों के

होने के पीछे बड़ा कारण था उनकी जीवन शैली मे अन्तर । रोटी, कपड़ा और मकान उनकी आवश्यकता थी इसी कारण वे अपने पजाबी पडोसियो से जुडे रहते थे ।[38] दूसरा कारण (चेतना का) नये कस्बो का विकास था जो कि – सामाजिक बदलावो और नये विचारों की एक अलग दुनिया थी । पश्चिमी यू0पी0 मे यह तथ्य दिखाई पड़ रहे थे । इसी सबके परिणाम स्परूप इस परिक्षेत्र मे शहरी, शिक्षित दलित नेताओं के हाथो मे दलित आन्दोलन की अगुआई थी + यू पी सी एफ (यूनाइटेड प्राविंस सिड्यूल्ड कास्ट प्राविन्स) के द्वारा 1940 के दशक मे और आर.पी. आई. (रिपब्लिकन पार्टी आफ इन्डिया) के द्वारा 1950–60 के दशक मे यह अगुआई जारी रही । जिनका लक्ष्य अधिक से अधिक विधायिका में स्थान प्राप्त करना नौकरियो मे अधिकतम भाग पाना, और राजनीतिक रूप से एक शक्ति की महत्ता प्राप्त करना था ।[39]

केन्द्रीय भाग, पूर्वी क्षेत्र और बुन्देलखण्ड क्षेत्र मे अधिक जनसख्या थी, अधिक गरीबी थी साथ ही कृषि भूमि पर अधिकतम दबाव था ।[40] इन जिलो में भी उपजाऊ भूमि थी, अच्छी वर्षा थी, और प्रतिबन्धित श्रम था । लेकिन भूस्वामित्व भिन्न किस्म का था । उच्च और मध्य जातियो के पास बड़ा भूस्वामित्व था जबकि दलितों के पास बहुत थोडा भूस्वामित्व था । उपनिवेश वादी काल में इन क्षेत्रों में परिवहन व्यवस्था पर भी बहुत थोड़ा ध्यान दिया गया था । सिचाई व्यवस्था का प्रसार भी काफी देर से 1951 में हुआ और 16 प्रतिशत भूमि वाणिज्यिक फसलों के अन्तर्गत आयी । कुछ भागों में गन्ना बुआई और गन्ना मिलों की स्थापना उपनिवेशवादीकाल में आरम्भ हो गया था । लेकिन असमान कृषिलाभ व ढांचा दलितों के लिये ज्यादा अच्छा अवसर उपलब्ध नही करा सका । वह जमींदार वर्ग था जिसने अपने लाभ के लिये गन्ना बुआई को प्राथमिकता दी ।[41] अवध और पूर्वी क्षेत्रों में राजस्व अदायगी करने वाले दलित वर्ग की दशा अत्यन्त खराब थी । बाद के समय में जमींदार अपनी भूमि को खुदकाश्त भूमि नहीं होने देते थे । 30–40 वर्ष तक खेती करने के बाद भी भूमि खुद काश्त नही हो पाती थी । ऋण

पर ब्याज काफी ज्यादा था गरीब किसान न्यायालय की शरण नहीं ले सकता था । वे लगभग दास की अवस्था में थे और अपना गाव छोडकर अन्यत्र भी नही जा सकते थे । दलित वर्ग के गरीब किसान की दशा अत्यन्त दुखद थी ।[42] जैसे कि मोहिन्दर सिह कहते है कि – लगभग 67 3 प्रतिशत कृषक वर्ग कोई लाभ प्राप्त नहीं कर पा रहा था । जो वे प्राप्त करते थे उसका बडा भाग भूस्वामी को वापस कर देते थे । अस्सी प्रतिशत से अधिक लोगो की दशा अत्यन्त असन्तोषजनक थी ।[43] हरवाहा पूर्णतया जमींदार का नौकर होता था । इन्हीं दुरूहताओ से घिरे लोगों द्वारा 1920 के दशक में किसान सभा द्वारा और 1940 के दशक में 'बेगार विरोधी आन्दोलन' छेडा गया ।

इन्हीं परिस्थितियो में डा0 अम्बेडकर से प्रभावित दलितो ने यू पी एस सी एफ. (यूनाईटेड प्राविन्स सिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन) नामक सगठन बनाया । जोकि आल इन्डिया सिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन का एक भाग था । जिसकी स्थापना डा0 अम्बेडकर द्वारा 1942 में की गयी थी । ए आई एस सी एफ नामक दल की स्थापना बहुत दिनो तक दलित जागृति करने और कांग्रेस से लड़ने हेतु की गयी थी ।"[44] ए.आई एस सी एफ. जिसे अम्बेडकर के विचारों पर नेताओं द्वारा 1942 से संचालित किया जा रहा था कि प्रमुख मांगे थीं अलग दलितों का चुनाव क्षेत्र, शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण आदि । राजकीय सेवाओ मे आरक्षण, विधायिका मे शक्ति बनकर कैबिनेट और नौकरशाही के द्वारा वह सशक्त भूमिका भविष्य मे निभाना चाह रहे थे । यह आवश्यक था क्योंकि वह दुखों के गर्त मे थे ।[45] डा0 अम्बेडकर की मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने बम्बई में निश्चित किया कि पार्टी उनकी इच्छाओं व आदर्शों के अनुरूप चलेगी लेकिन उसका आधार ज्यादा बडा होगा । आर पी.आई नये लोगों से समझौते करेगी और नये वर्गों को आमंत्रित करेगी ।[46] तत्पश्चात 'बामसेफ' और 'दलित शोसित सामाज संघर्ष समिति' (डा एस कोर) के माध्यम से 1984 में 'बहुजन समाज पार्टी' की स्थापना की गयी । इस दौर मे स्वतत्र भारत की आर्थिक

व्यवस्था मे परिवर्तन आ गया था । जिसने ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धो और दलित चेतना को जागृति करने मे मदद की ।

भारत राष्ट्र में यू.पी. एक अत्यन्त अविकसित राज्य है । यद्यपि शोधकर्ताओं ने स्पष्ट किया कि 1980 के दशक मे यू.पी. की अर्थव्यवस्था अपनी चिरनिद्रा से जाग गयी थी।[47] स्वतन्त्रता के बाद वह पूर्णतया सो रही थी अचानक 1980 के दशक में वह कृषि और उद्योग दोनों तरफ से जाग गयी । इस दौरान कृषि व उद्योग दोनो क्षेत्रों में विकास दर राष्ट्रीय विकास दर की अपेक्षा अधिक थी ।"[48] अब तक जो कृषि क्राति पश्चिमी भागो में सीमित थी वह फैलकर मध्य और पूर्वी भागो तक पहुँच गयी जहां की छोटे किसानों की बहुतायत थी । प्रथम चरण मे हरित क्राति मूलत पश्चिमी क्षेत्र तक सीमित थी इसका मुख्य आधार 'गेहूँ' था जबकि द्वितीय चरण का प्रमुख क्षेत्र मध्य व पूर्वी था व प्रमुख अनाज 'धान' था ।[49] उत्तर प्रदेश ने 1980 के दशक में 4.92 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्ज की जो कि 1970 के दशक की वृद्धि से अधिक थी । सभी क्षेत्रों ने वृद्धि दर्शायी थी । पूर्वी भाग ने भू-भाग के साथ पैदावार की भी वृद्धि की । यह वृद्धि दर पूर्वी क्षेत्र में 4.99 प्रतिशत थी जबकि पश्चिमी क्षेत्र मे 4.57 प्रतिशत ही थी ।[50] इस कृषि क्राति का परिणामस्वरूप लोगों की आय स्वयमेव बढ गयी । जब आय बढ गयी तो विचारों का प्रसार, जागृति का प्रसार स्वयमेव होने लगाा । अन्तत कृषि क्राति जब छोटे किसानो तक पहुची तब दलित जागृति अपने आप आ गयी ।

भूमि के अलावा और भी आय के साधन इस समय स्पष्ट हो रहे थे जिससे शक्ति साधन व प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो रही थी । कुछ दलित वर्ग के लोग अपने परम्परागत चमड़ा व्यवसाय की ओर उन्मुख हो रहे थे ।[51] प्राय इस समय जाट दलित संघर्ष अधिक होते है । पूर्वी उत्तर प्रदेश में हरत क्राति ने कृषि के निवेश में वृद्धि कर दी । जिससे शहरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी । फार्म संस्कृति, ईंट तोड़ना, विनिर्माण उद्योग, शिक्षा सीचना जैसे उद्यम विकसित हुये । जिससे परम्परावादी

भूमि आश्रित ढाचा ध्वस्त हो गया । तमाम लोगो ने मरे जानवरो को उठाना छोड़ पवित्र धागा बाध लिया और वे सस्कतिकरण की ओर बढ गये । उन्होने मास खाना त्याग दिया ।[62] लीटेन और श्रीवास्तव अपने अध्ययन मे स्पष्ट करते है कि – पूर्वी जिलों मे भूस्वामी ठाकुर अधिक सुरक्षित नही रह सके जब कि वे गरीबो पर प्रभुत्व रखते थे । जो कि उन पर भोजन, रोजगार जाए और ऋण के लिये आश्रित थे । बेगारी और कम मजदूरी पर काम की प्रथा कमजोर हुयी ।[63] बहुतेरे कृषि मजदरों ने अधिक वेतन पर हडताल कर दी यह एक चमत्कारिक घटना थी । 1980 के दशक मे यह अद्भुत था क्योकि इनमे अधिकाश दलित वर्ग के लोग थे । इसका कारण था कि सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओ के द्वारा श्रम शक्ति का विकास हो रहा था । जवाहर रोजगार योजना ने भूस्वामियो को इस बात के लिये मजबूर कर दिया कि वे श्रमिकों को उच्चतम मजदूरी प्रदान करे अन्यथा उनकी बजाय मजदूर जेआरवाई मे कार्य तलाशेगे । इस तरह मोल–तोल की शक्ति दलितों में आ गयी थी । इससे सड़क परिवहन का विकास हुआ आरम्भिक ढाचा कायम हुआ । अब मजदूर श्रम के लिये दूर तक तलाशी अभियान पर जाने में समर्थ हुआ । सबसे बड़ी बात यह हुयी कि मजदूर अब जागृत, मुखर और दबाव में काम करने के प्रति विरोधी स्वभाव का बन गया ।[64] इससे दलित वर्ग में आर्थिक समृद्धि आयी, जागरूकता आयी और अन्तत अपना हक लेने की इच्छा जागी । सबको संचालित करने का काम किया बहुजन समाज पार्टी और उसके अध्यक्ष मा० काशीराम ने फलत बसपा ने राष्ट्रीय पार्टी तक की यात्रा इतनी जल्दी तय कर ली ।[65] इसका कारण आरपीआई का बिखरा हुआ होना था जिसका लाभ बहुजन आन्दोलन को रिक्त स्थान की पूर्ति करके प्राप्त हो गया ।

इस बात को समझते हुये कि सामाजिक जागृति की चाबी आर्थिक जागृति में छिपी हुयी है मा० काशीराम कहते है कि "जो लोग खेती के अनाज पैदा करते है उनकी संख्या बहुत ज्यादा है, लेकिन उनके पास खेत नही है । खेती के लिये वे दूसरो पर निर्भर है । लेकिन जब खेतों में खेती करने वाला किसान भूखो मरता है,

बेइज्जत होता है, किनके हाथो से ? जिनके पास खेती है । तो वह देहात छोडकर शहरों में आ जाता है । आज हमारे देश के शहरो मे लगभग 15 करोड लोग देहात छोडकर पहुच चुके है । शहरो मे उनकी क्या हाल है ? ये फ्यूडल लार्ड के शिकजे से निकलकर शहरी लार्ड के शिकजे मे फस जाते है । आज भी हम सामाजिक और आर्थिक फ्रन्ट पर आगे नहीं बढ़े है और यह काम दलित प्रेमियो द्वारा होने वाला भी नहीं है । ये दलित प्रेमी चाहे किसी भी पार्टी के हो, क्योकि उन्हे पचास (50) साल मिले और इन पचास सालो में उन्होंने दलितो को सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में आगे नहीं बढाया है । जिसके लिये फूले, शाहू और अम्बेडकर ने सघर्ष किया । दलितों को अगर आगे बढना है तो उन्हें यह काम खुद ही करना होगा । चाहे वह उत्तर प्रदेश के दलित हो, बिहार के हो, महाराष्ट्र के हो, तमिलनाडु के हों, उन्हे आगे बढ़ने का काम खुद ही करना पडेगा । उन्हे आपस मे मिल–जुलकर यह काम करना होगा । सदन के माध्यम से मैं यह मैसेज सारे दलितो का पहुँचाना चाहता हूँ ।[66]

अपने लक्ष्य के प्रति मान्यवर काशीराम पूर्णतया स्पष्ट है । वे कहते है कि – "हमारा लक्ष्य आर्थिक मुक्ति ओर सामाजिक परिवर्तन का है । बसपा अपने इस लक्ष्य के प्रति साफ है । उसे बाबासाहब के विचारो के अनुसार ऐसा समाज बनाना है जिसमे ऊच–नीच नही होगी । इसान की कद्र होगी और परस्पर घृणा के स्थान पर बराबरी की भावना होगी हम जानते है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति – दबे, कुचले वर्ग की आर्थिक मुक्ति के द्वारा ही होगी । इसलिये बहुजन समाज पार्टी का प्रयास है कि – दबे–कुचले वर्ग को उसके अपने पैरो पर खडा किया जाये । जब तक ये लोग दूसरों पर निर्भर रहेगे और उनके पिछलग्गू बने रहेगें, भारी जनशक्ति के बावजूद अपना भला नहीं कर सकेगें ।"[67]

नई आर्थिक नीतिया यानि 1990 के बाद के दौर के विषय में वे कहते है कि – नई हो या पुरानी दोनों ही नीतिया समाज के उच्च वर्ग की पोषक है । हम हर किस्म की आर्थिक नीति के दायरे से बाहर रहकर उस आर्थिक नीति का निर्माण

करना चाहते हैं, जिसमे दबे–कुचले वर्ग की आर्थिक मुक्ति का रास्ता निकले । जैसे देश में कुल 40 करोड हेक्टेयर भूमि अतिरक्ति है । इसमे से पिछले 44 वर्षो मे सिर्फ 14 लाख हेक्टेयर भूमि खेतिहर भूमिहीन महजूदरो मे बाटी गयी । उसके भी अधिकाश हिस्सों पर विवाद व मुकदमे है । इसलिये हमारी माग है कि देश में जो 10 करोड हेक्टेयर सरकारी जमीन बिना खेती के खाली पड़ी है सरकार यह भूमि कृषिहीनों में बांटे, उनके लिये कृषि फार्म बनाये ।"[68]

बसपा के सामाजिक परिवर्तन की रूपरेखा ही है कि के राजसत्ता से ही आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन होगे ।[69]

* * * * * * * * * * *

आर्थिक प्रश्न पर निष्कर्षात्मक रूप से कहा जा सकता है कि अर्थ ही वह प्रधान सत्ता है जिससे व्यक्ति को जीविका व प्रतिष्ठा प्राप्त होती है तथा समाज को इसी के माध्यम से गतिशीलता प्राप्त होती है । आर्थिक गतिविधियों मे व्यक्तिगत भागीदारी एक व्यवसाय के माध्यम से ही होती है । अर्थ ही व्यक्ति की महत्वाकांक्षा उपलब्धि आदि तत्वों का निर्धारक होता है । भारतीय अर्थव्यवस्था एवं समाज की आर्थिक गतिविधिया प्राचीन काल से रूढ स्थिर व शिथिल रही है इसमे गतिशीलता का पूर्ण अभाव था परन्तु वर्तमान युग मे व्यक्तिवाद, विकासवाद, विज्ञानवाद की आंधी अर्थव्यवस्था के प्रत्येक कोने तक पहुँच रही है फलत पारम्परिक शिथिल जर्जर आर्थिक ढाचें मे सक्रमण होना समीचीन था । अन्तत समाज के निम्नतम पायदान पर बैठे दलितों तक नई रोशनी जा पहुँची है ।

प्राचीन व्यवस्था जाति वर्ण के आधार पर सचालित थी जिसमें प्रत्येक जाति का अपना एक विशिष्ट कार्य नियत था । इसमें जितने घृणित कार्य थे वह सब चान्डाल, अछूत व शूद्र वर्ग द्वारा सम्पन्न किये जाते थे । व्यवसाय बदलना आसान नही था । व्यवसाय जन्म के समय ही निश्चित हो जाता था । अंग्रेजी शासनकाल

मे प्राचीन वर्ण, जाति, आधारित अर्थव्यवस्था मे शिथिलन के लक्षण दिखाई पड़ने लगे । परन्तु यह परिवर्तन ग्रामीण अचल तक न पहुँच सका ।

कुछ लोग वर्ण आधारित व्यवस्था एव जाति आधारित श्रम विभाजन को वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयास करते है । परन्तु यह उचित नही जान पडता क्योंकि यहा श्रमिक को श्रम के चयन की स्वतत्रता नही है । श्रमिक का श्रम नियत है यह निश्चितता ही अर्थव्यवस्था को पगु बनाती है और वैज्ञानिकता का पटाक्षेप कर देती है । डा0 अम्बेडकर ने स्वतत्रता के समय कहा कि – अब हम राजनीतिक रूप से तो समानता प्राप्त कर रहे है लेकिन समाजिक और आर्थिक रूप से इसे प्राप्त करना आवश्यक है अन्यथा व्यवस्था का क्षरण होगा ।

जाति आधारित कार्यो का करने मे स्वेच्छा लगाव के बजाय घृणा का समावेश अधिक होता है अत यह व्यवस्था असफल हो चुकी है । समाजशास्त्रियों ने विभाजित श्रमिकों के लिये एक विशिष्ट श्रम के निश्चित करने को पूर्णतया अवैज्ञानिक एव अतार्किक बताया है ।

इन्हीं सब बातों को मान्यवर काशीराम स्वतत्रता के समय के अपने भाषण में उल्लेख करते है कि अभी तक हमने आर्थिक व सामाजिक समानता प्राप्त नहीं की है जिसकी कि परिकल्पना डा0 अम्बेडकर ने सविधान निर्माण के समय की थी । यद्यपि राष्ट्रीय परिदृश्य में हम अपनी प्रगति से सन्तुष्ट हो सकते हैं परन्तु यह विकास का सामान्यीकरण ही होगा । क्योकि विकास के साथ ही असमानता भी बढ़ी है । गरीब वहीं रह गया और अमीर और भी अमीर हो गया है । भूमि सुधार अभी अधूरें हैं इसको पूर्ण करना आवश्यक है । परन्तु यह काम तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक अल्पमत का शासन बहुमत पर होता रहेगा ।

अग्रेजी भारत मे समस्त राजस्व कृषि व्यवस्था से ही प्राप्त होता था । अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु खेती थी । अन्य उपागमो में 'जजमानी व्यवस्था' भी व्यवस्था का अभाज्य अग थी । इसी के द्वारा समाज व उसकी अर्थव्यवस्था धीमी गति से सचालित होती रहती थी । इसमे दलित वर्ग के लोग जिनके पास भूमि नहीं थी अपने भूमिधरों से सेवा के बदले मे अनाज प्राप्त किया करते थे ।

यदि हम मात्र गगाघाटी व उसमे सबसे उपजाऊ क्षेत्र उत्तर प्रदेश की बात करे तो यहा कि व्यवस्था भिन्न थी । यथा पश्चिम उत्तर प्रदेश मे भूमि छोटे-छोटे जमींदारों के पास थी तो मध्य व पूर्वी भागो मे भूमि बड़े भूस्वामियों व ठाकुर जमींदारों के हाथ में थी । पश्चिम की जोते छोटी थी तो बाकी राज्य की भू-जोते बड़ी-बड़ी थी । पश्चिम में दलितो के पास भूमि थी जबकि अन्य भागो मे वह अपने भूस्वामियों पर आश्रित थे । जबकि सभी भूमि उपजाऊ थी । पश्चिम मे नहरों का जाल पहले फैला फलत वहां वाणिज्यिक फसलो का उत्पादन भी पहले आरम्भ हुआ । फलत पश्चिमी किसानों में जागृति भी सबसे पहले आई । पूर्वी एवं मध्य के किसानों मे जागृति देर से आई । आगरा, मेरठ, अलीगढ़ में सस्कृतिकरण जैसे आन्दोलन चले । वहां दलित वर्ग के हाथ में जब पैसा आया तब वह अन्य उद्योगो की ओर उन्मुख हो गया जिससे उसकी भूमि पर आश्रितता कम हो गयी ।

जबकि पूर्वी व मध्य उत्तर प्रदेश मे नहरे बाद में आयी । फलत वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन भी देर से आरम्भ हुआ । ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि किसानों के हाथ में तो पैसा आया लेकिन वह अपने मजदूरों से इसकी भागीदारी नहीं चाहता था । वह कम पैसे पर मजदूरी कराता था और दलित मजदूर के हाथ में अधिक धनशक्ति नहीं थी । परन्तु इस व्यवस्था में परिवर्तन तब आया जब सरकारी विकास परक योजनायें चलायी गयी । इनके द्वारा गावों में सड़क रोजगार आदि का विकास किया गया । इससे एक तरफ जहा आधारभूत ढाचे का विकास हुआ और आवागमन तेज हुआ वहीं रोजगार का भूमि के अलावा एक विकल्प पैदा

हुआ । जिससे अपने मजदूरो के पास मोल–भाव की शक्ति अपने 'मानव श्रम' को लेकर आ गयी । फलत भूस्वामियो को भी मजदूरी मे वृद्धि करनी पडी । साथ ही अब मजदूर अपना श्रम बेचने दूर तक जा सकता था । खाली समय मे भी अब उनको रोजगार प्राप्त हो रहा था । इन सबसे मजदूरों की दशा में सुधार आया । अधिकाश मजदूर दलित वर्ग से सम्बन्धित थे । अन्तत जब आर्थिक दशा मे सुधार आया तब सामाजिक व राजनीतिक चेतना का दौर स्वयमेव आ गया ।

अर्थ से जुडी एक अन्य समस्या पर ध्यान देना आवश्यक है कि – दलित पिछडे वर्ग के वे लोग जिनके पास गावो में भूमि नही है वे अधिक मजदूरी की तलाश मे गाव–देहात से दूर शहर की ओर आ जाते है और यहा शहर मे झुग्गी बस्ती, मलिन बस्ती के रूप में एक नयी समस्या खड़ी कर देते है । मा0 काशीराम का मानना है कि यदि इन लोगो को भूमि के कुछ टुकड़े उपलब्ध करा दिये जाये तो हम इन मलिन बस्तियों की समस्या से छुटकारा अपने आप प्राप्त कर सकते हैं।

हरित क्रान्ति के आने के बाद प्रथम दौर मे गेहूँ व पश्चिमी उत्तर प्रदेश और द्वितीय दौर में चावल के रूप में शेष प्रदेश में प्रभाव दिखाई पड़ता है । इससे समस्त जनता को लाभ पहुचा परन्तु भूस्वामी वर्ग का यह लाभ अपेक्षाकृत अधिक था । यद्यपि असमानता की खाई और चौडी हुयी परन्तु इससे अन्तत दलित चेतना का जागरण हो गया । रिक्शा खींचना, चमडा व्यवसाय, विनिर्माण उद्योग आदि नये जागृति उपागम बन गये । बेगारी बन्दी के साथ–साथ अधिक वेतन को लेकर हड़तालें कृषि क्षेत्रों मे भी दिखलाई पडने लगी ।

अन्तत अर्थ शक्ति के आते ही दलित जागृति आयी और समाज का पारम्परिक ढाचा जो सदियो से शिथिल सुषुक्तावस्था मे पड़ा था वह ध्वस्त होने लगा । इससे बहुजन समाज पार्टी जहा सत्ता तक पहुँच गयी वही उसकी विचारधारा उसका दर्शन, आम जनता तक आसानी से पहुँच गया । समानतावादी

समाज, की ओर भारतीय अर्थ व्यवस्था ने एक कदम आगे बढा दिया । क्योकि यदि सत्ता ही समाजिक और आर्थिक समानता की चाबी है तो अर्थ समृद्धि वह उपागम है जिससे सत्ता की प्राप्ति सम्भव है ।

विवरणिका

1 मैकाइवर एवं पेज – सोसायटी – एन इन्ट्राडक्टरी एनालिसिस – लन्दन मैकमिलन – 1962 – पेज – 350 ।

2. एस के गोयल – द स्टडी आफ सिडयूल्ड कास्ट स्टूडेन्टस आफ कालेज इन ईस्टर्न यू पी – रिसर्च प्रोजेक्ट – स्पासर्ड बाई आई सी एस एस न्यू देहली – 1973–74 –डिपार्टमेन्ट आफ सोशियालोजी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी – पेज–116 ।

मुमताज अली खान– सिड्यूल्ड कास्ट एन्ड देयर स्टेटस इन इन्डिया न्यू देहली – उप्पल पब्लिसिग हाउस–1980, पेज–82 ।

3 विक्टर ब्रूम – वर्क एन्ड मोटिवेशन – न्यूयार्क – जान विले एन्ड संस – 1964, पेज – 30 ।

4 मैक्ले लैन्ड, सी देवी, द एचिविग सोसायटी न्यूयार्क द फ्री प्रेस आफ ग्लेन्को – पेज–29–1961 ।

5 रवि प्रताप सिह – दलित वर्ग के विधानमन्डलीय अभिजन दिल्ली – मित्तल पब्लिकेशन, 1989–पेज–123–124 ।

6 डा0 पूरनमल – पेज 123, अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999 ।

7 सच्चिदानन्द, – द हरिजन एलिट – ए स्टडी आफ देयर स्टेटस – नेटवर्क माविलिटी एन्ड रोल इन सोशल ट्रान्सफार्मेशन – फरीदाबाद थामसन प्रेस – (इन्डिया) लिमिटेड – 1977 पेज–16 ।

आर शान्ताकुमारी – शिड्यूल्ड कास्ट एन्ड वेलफेयर मीजर्स, न्यू देहली–क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी–1983–पेज–99 ।

8 सच्चिदानन्द – 1977 – पेज 96 ।

– एस शेल्वानाथन – स्टेटस आफ शिड्यूल्ड कास्ट – न्यू देहली – आशीष पब्लिशिंग हाउस – 1989 – पेज – 2–3 ।

9 एस.एन श्रीवास्तव–हरिजन्स इन इन्डियन सोसायटी – लखनऊ–द अपर इन्डिया पब्लिशिंग हाउस, प्राइवेट लिमिटेड – 1980, पेज – 178–80 ।

10 रिपोर्ट आफ बैकवर्ड क्लासेज कमीशन, न्यू देहली, गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया प्रेस – 1981, पेज – 12 ।

11. थामस मैथ्यू, सावन्त राय,अशोक भारती – क्राति प्रतीक अम्बेडकर – धम्मकुक्स, 1994, पेज–15 नई दिल्ली ।

12. अनुजकुमार सम्पादक – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण–पेज–23, प्रकाशन–गौतम बुक सेन्टर–2000–नई दिल्ली ।

13. थामसमैथ्यू, सावन्त राम, अशोक भारती–क्राति प्रतीक अम्बेडकर–धम्मबुक्स–1994–नई दिल्ली–पेज 16 ।

14. वहीं " पेज – 19 ।

15. प्रेम कपाडिया, डा0 प्रकाश लुइस–नई सदी भी तोड नहीं पायी उत्तर प्रदेश में अछूतापन को–पेज–68–69 (राम निहोर विमल द्वारा लिखित अध्याय) – प्रकाशन भारतीय सामाजिक संस्थान – 2001 नई दिल्ली ।

16. अनुज कुमार (सकलन) – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण–पेज–23–24 – प्रकाशन – गौतमबुक सेन्टर – 2000 – नई दिल्ली ।

17 काशीराम – चमचायुग–पेज102– अनुवादक राम गोपाल आजाद– समता प्रकाशन–नागपुर – चतुर्थ सस्करण – 2000

18 के. एल. शर्मा द्वारा सम्पादित – इम्तियाज अहमद व सक्सेना का लेख कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – रावत पब्लिकेशन – जयपुर व न्यू दिल्ली – 1998 पेज–171 ।

19 पाल ब्रास–फैक्शनल पालिटिक्स इन इन्डियन स्टेट–द कांग्रेस पार्टी इन उत्तर प्रदेश – वर्कले – कैली फोर्निया–1965 ।

20 इम्तियाज अहमद व सक्सेना का लेख – के एल शर्मा द्वारा सम्पादित – कास्ट एन्ड क्लास इन इडिया – रावत पब्लिकेशन जयपुर व न्यू देहली – 1998–पेज–172 ।

21. सी जे कोनेल – आवर लैन्ड रिवेन्यू पालिसी इज नार्दर्न इन्डिया कलकत्ता – 1876–कोटेड फ्राम अग्रेरियन कन्डीशन इन नार्दर्न इन्डिया वॉ–एम. वाई एलिजाबेथ, लाइट कामबे यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रेस 1977–पेज–123 ।

– थामस आर मेटकाफ – लैन्ड लार्डस विदाउट लैन्ड, द उत्तर प्रदेश जमींदार्स टुडे, पैससिफिक अफेयर्स – 40 (स्प्रिग एन्ड समर) 1967 ।

22. वहीं " आगे ।

23. इम्तियाज अहमद व सक्सेना – के एल शर्मा द्वारा सम्पादित–कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – रावत पब्लिकेशस – जयपुर वन्यू देहली 1998 – पेज – 177 ।

24. वी एन धानागरे – पीजेन्टस मूवमेन्ट इन इन्डिया 1920, 1920–50, ओ यू पी दिल्ली – 1983 पेज – 117 ।

25 माजिद सिद्दीकी – द पीजेट मूवमेन्ट इन प्रतापगढ़ – 1920 – इन्डियन इकोनोमिक हिस्ट्री रिव्यू खन्ड–9 न0–3 सितम्बर – 1973 ।

26 ज्ञान पान्डे – ए रूरल वेस फार दि कांग्रेस – द यूनाइटेड प्राविसेंज 1920–40 इन डी ए लो. (इडिटेड) – कांग्रेस एण्ड दि राज – देहली ए नोइट ही नामन – 1977

27 इम्तियाज अहमद व सक्सेना – के एल शर्मा द्वारा सम्पादित – पेज–203, कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – रावत पब्लिकेशन्स – जयपुर व न्यू देहली–1998 ।

28. अनुज कुमार – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण – पेज – 33 स्वतत्रता दिवस की स्वर्ण जयन्ती पर दिया गया भाषण – प्रकाशन – गौतम बुक सेन्टर – 2000 – दिल्ली ।

29. वहीं " स्वर्ण जयन्ती पर ससद मे दिया गया भाषण – पेज–51–52

30. सुधा पाई – दलित एसर्शन एन्ड दि अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोलूशन (दवी.एस.पी. इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशस – न्यू देहली – व्लैयूम–3, 2002 ।

31. नील वाल्टर – 1962 – पेज – 21 – इकोनामिक चेज इन रूरल इन्डिया लैन्ड टेन्योर इन यू.पी 1800–1955 – न्यू हैर्वन – याले यूनिवर्सिटी प्रेस ।

32. मोहिन्दर सिह – 1949 – डिप्रेस्ड क्लास देयर इकोनामिक एन्ड सोशल कन्डीशंस – बाम्बे – हिन्द किताब – पेज – 291 ।

33. सुधा पाई – दलित एसर्शन एन्ड दि अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवाल्यूशन (द वी.एस.पी. इन उत्तर प्रदेश) सेज पाब्लिकेशस – न्यू देलही, वां–3–2002 ।

34. वही " आगे ।

35. नील वाल्टर – 1962 – पेज – 185 – इकोनामिक चेज इन रूरल इन्डिया – लैन्ड टेयोर एन्ड रिफार्म इन यू पी 1800 – 1956 – न्यू हैवेन – याले यूनिवर्सिटी प्रेस ।

36. बलजीत सिंह एवं एस मिश्र – 1964 – ए स्टडी आफ लैन्ड रिफार्म इन यू.पी. – कलकत्ता – आक्सफोर्ड बुक कम्पनी ।

37. लिचं ओवन – पेज – 35 –1969 – पालिटिक्स आफ अनटचेबिल्टी सोशल मोबिलिटी एन्ड चेन्ज इन ए सिटी आफ इन्डिया – कोलम्बिया – कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस ।

38. मोहिन्दर सिंह – 1947 – द डिप्रेस्ड क्लासेज देयर इकोनामिक एन्ड सोशल कन्डीशन्स – बाम्बे – हिन्द किताब – पेज – 100–124 ।

39 सुधा पाई – दलित एशर्सन एन्ड दि अनफिनिस्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन (द वी एस पी. इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशस – न्यू देहली वा–3, 2002 ।

40. सुधा पाई – अग्रेरियन रिवालूशन इन उत्तर प्रदेश – ए स्टडी आफ ईस्टर्न डिस्ट्रिक्टस – न्यू देहली – इन्टर इन्डिया – पाब्लिकेशस – पेज – 86 – 1986 ।

41. शाहिद अमीन – 1981 – पेज – 30 – अनइक्वल प्रोटागोनिस्ट्स पीजेन्ट्स एन्ड कैपिटलिस्ट इन ईस्ट यू पी इकोनामिक एन्ड पोलिटिकल वीकली – (रिव्यू आफ पोलिटिकल इकोनामी) 17–39 अक्टूबर, पेज – 19–31

42. सुधा पाई – पेज – 37–दलित एसर्शन एन्ड दि अनफिनिस्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन (द वी एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशस, न्यू देहली, वा–3, 2002 ।

43. मोहिन्दर सिंह – 1942–द डिप्रेस्ड क्लासेज देयर इकोनामिक एन्ड सोशल कन्डीशस – बाम्बे – हिन्द किताब–पेज–15–20 ।

44. इयान डकन – 1979 – लेवल्स–द कम्यूनिकेसन आफ प्रोग्राम्स एन्ड सेक्शनल स्ट्रेटजीज इन इन्डियन पोलिटिक्स विद डिफ्रेंस टू दि – वे के डी. एन्ड दि आर पी आई इन यू पी स्टेट अलीगढ़ डिस्ट्रिक्ट – यूनिवर्सिटी आफ ससेक्स ।

45 सुधा पाई – पेज – 53–दलित एशर्सन एन्ड दि अनफिनिस्ड डेमोक्रेटिक रिवालूशन (द बी एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशस न्यू देहली, वा–3, 2002 ।

46. वही "' पेज – 64 ।

47. टी एस पापोला–1989–पृष्ठ–65 उत्तर प्रदेश इन एम आदिशेसैया (इडिटेड) इकोनामी ज आफ दि स्टेटस आफ दि इन्डियन यूनियन – न्यू देहली – लासंर इन्टर नेशनल – 63–70 ।

48. वही " आगे ।

49. विप्लव दास गुप्त – 1980 – अग्रेरियन चेज एन्ड द न्यू टेकनालोजी इन इन्डिया – न्यू देहली – मैकमिलन कम्पनी लिमिटेड ।

सुधा पाई – 1993 – उत्तर प्रदेश – अग्रेरियन चेज इलेक्टोरल पालिटिक्स – न्यू देलही – क्षिप्रा पब्लिकेशन ।

50. जी. के लीटेन एन्ड रवि श्रीवास्तव – 1999 – अनइक्वल पार्टनर्स पावर रिलेशस डिवालूशन एन्ड डेवलपमेट अल्टरनेटिव – 23 न्यू देहली – सेज पब्लिकेशन ।

51. संजय सिन्हा – 1986 – पेज – 1061 – इकोनामिक्स विन्स स्टिग्मा सोशियो इकोनामिक – डायनामिक्स आफ रूरल लेदर वर्क इन यूपी इकोनोमिक एन्ड पोलिटिकल वीकली – – 12 जून 1211–14 – पेज – 1212 ।

52. कृपा शंकर – 1998 – एग्रीकल्चरल लेवर्स इन ईस्ट यूपी इकोनामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – 12 जून 1211–14– पेज 1212 ।

53. जी के लीटेन और रवि श्रीवास्तव – 1999–अनइक्वल पार्टनर्स पावर रिलेशस, रिवोलूशन एन्ड डेवलपमेंटस इन उत्तर प्रदेश–इन्डो डच स्टडीज आन डेवलपमेट आल्टरनेटिव –23– न्यू देहली – सेज पब्लिकेशस ।

54. वही पेज – 151 – 159 ।

55. सुधा पाई – दलित एशर्सन एन्ड दि अनफिनिस्ड डेमोक्रेटिक रिवालूशन (दि बी.एस.पी. इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन – न्यू देहली वा–3, 2002 ।

56. अनुज कुमार का संकलन – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण – प्रकाशन – गौतम बुक सेन्टर – 2000 – दिल्ली – संसद ने 30 जुलाई को दिय गये भाषण से ।

57 18 अप्रैल – 1992 नव भारत टाइम्स – नई दिल्ली – साक्षात्कार काशीराम – विनोद अग्निहोत्री ।

58 वही " आगे नई आर्थिक नीति के सवाल पर ।

59. माया – 31 दिसम्बर 1993 काशीराम साक्षात्कार आशीष त्रिपाठी – इलाहाबाद ।

अध्याय – चार

दलित समाज के जागरण में काशीराम का राजनीतिक योगदान व आन्दोलन का परिणाम

दलित समाज के जागरण में काशीराम का राजनीतिक योगदान व आन्दोलन का परिणाम

राजनीतिक सत्ता वह मास्टर चाबी है, जिस चाबी के माध्यम से हर प्रकार के ताले खोले जा सकते है, अर्थात यदि बहुजन समाज के लोग अपने आपको तैयार करके राजनीतिक सत्ता रूपी मास्टर चाबी अपने हाथो मे ले लेते हैं, तो फिर ये लोग जिन्दगी के हर पहलू मे आगे बढ़ने के लिये हर प्रकार के ताले स्वय खोल सकते है ।[1] बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर ने अपनी मृत्यु के पूर्व 1950 में कहा था कि – "जब उनके एक साथी ने प्रश्न किया कि बाबा साहेब आजकल आप बहुत प्रसन्न रहते हैं । बाबा साहेब ने कहा कि – मैने इस देश को देश के मूल निवासियों को सौंपने का प्रण किया था, वह युद्ध मै 26 जनवरी 1950 को जीत गया हूँ । साथी ने कहा कि कैसे ? इस देश का प्रधानमत्री तो सवर्ण है, और अधिकांश मुख्यमंत्री भी सवर्ण हैं फिर आप युद्ध कैसे जीत गये? बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि मैंने – लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली बनाकर तथा बालिग मताधिकार का प्राविधान कर इस देश के बहुसंख्यक समाज को अपनी ओर से राजनीतिक सत्ता सौंप दी है । अभी वह समाज शासन की बागडोर सभालने लायक नही है । अगले 30 वर्षो मे वह पढ़ लिखकर तैयार हो जायेगा और शासन अपने हाथो मे ले लेगा ।" [2]

काका कालेलकर रिपोर्ट में जब डा० अम्बेडकर से पूछा गया कि भारत के पिछड़ेपन का कारण आप क्या मानते है तो बाबा साहेब ने उत्तर देते हुये कहा कि "यदि मुझे भारत की बेहतरी और प्रगति करने लायक स्थिति में छोड़ दिया जाये तो मै जनसामान्य के सामाजिक स्तर पर नजर डालूगा" ।

कास्ट, मुस्लिम इम्पलाइज फेडरेशन) बनाया । इस वर्ग के कर्मचारी उत्पीडित थे । इसलिये वे संगठित हो गये और चन्दा देकर इसमे सहयोग करने लगे । बामसेफ चल निकला, तब श्री काशीराम ने देखा कि दलितो मे अभी भी असन्तोष है और वे डा0 अम्बेडकर के दीवाने हैं तो उन्होने एक दूसरा सामाजिक सगठन 'डी एस फोर' (दलित शोषित, समाज, सघर्ष समिति) बनाया । चूकि राष्ट्रीय स्तर पर दलितो का कोई नेता नही था । अत युवक दलितो का झुकाव काशीराम की तरफ बढा ।[5]

डा0 अम्बेडकर ने कहा कि "एक प्रजातान्त्रिक सरकार के लिये एक प्रजातांत्रिक समाज का होना आवश्यक है । प्रजातत्र के औपचारिक ढाचें का कोई महत्व नहीं है यदि सामाजिक प्रजातत्र नहीं तो सामाजिक प्रजातत्र के बजाय शासन का ढाचा अनुपयुक्त होगा । राजनीतिज्ञ यह कभी नही समझ पाये कि लोकतत्र एक शासन का स्वरूप नहीं बल्कि अनिवार्यत एक समाज का स्वरूप होता है । एक ऐसा सामाजिक सगठन जो कठोर सामाजिक बधनों से मुक्त हो । प्रजातत्र के साथ ऐसी पृथकता और अनन्यता का कोई मेल नही है जिससे किसी विशिष्ट और निम्न वर्गो के बीच भेदभाव पैदा होता है ।"[6]

प्रजातत्र में इस भेदभाव को समाप्त करने हेतु प्रथमत अभिजात्य विमुखीकरण को रोकना होगा । जिसके लिये बामसेफ सगठन की स्थापना की गयी । तत्पश्चात सामाजिक जागरूकता बढ़ाने के लिये सामाजिक कार्यवाही की योजना बनायी गयी । मा0 काशीराम का मानना है कि – "हमें अपने इस विशाल वर्ग को जागरूक बनाने के लिये कई विचारपूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता है" जिसे वह सामान्य व विशिष्ट दो वर्गो में बाटकर देखते है । " सामान्य कदम सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं से जुडे हो सकते है । इतने व्यापक दायरे पर कदम उठाने की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि – दलित–शोषित समाज इन सभी मोर्चो पर बिल्कुल अज्ञान और अन्धकार में है । उनको प्रबुद्ध बनाने के लिये इन सब मोर्चों पर जागरूकता परम आवश्यक है । जब तक वे जागरूक

नहीं हो जाते तब तक वे सचेत नहीं हो सकते । और जब तक वे सचेत नही हो जाते तब तक वे निकटता से जुड नही सकते । अत उनके जुडाव और सम्बद्धता के लिये व्यापक जागरूकता की अति आवश्यकता है ।

सभी मोर्चो पर जागरूकता की इस व्यापक आवश्यकता के कारण ही हम अपने जागरूकता दस्तों को इतना अधिक महत्व दे रहे हैं । भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में हमारे जागरूकता दस्ते जागरूकता की इस जरूरत को पूरा कर रहे है । इन सभी मोर्चो पर दबे कुचले समाज को प्रबुद्ध करने के लिये हमारे जागरूकता दस्ते प्रशिक्षित है । दलित शोषित समाज की दीर्घकालीन सुस्ती को देखते हुये हमारे जागरूकता दस्तों का तरीका है मनोरजन करते–करते समाज को प्रबुद्ध और जागरूक बनाना ।

जागरूकता के विशिष्ट कदम मुद्दो पर आधारित है । उदाहरणार्थ–अम्बेडकर विचारों को प्रचारित करने हेतु पहियों पर अम्बेडकर मेला लगाया गया, चमचा युग पर प्रकाश डालने के लिये पूना पैक्ट की भर्त्सना की गयी । सिर्फ अपने छोटे–छोटे साधनों का बडे स्तर पर प्रयोग कर अपना काम चलाने की आदत पैदा करने के लिये 4200 किमी दूरी की सायकिल प्रचार यात्रा का आयोजन किया गया आदि है । विशिष्ट कदमो की जरूरत अनुसूचित जातियों, जनजातियों के लिये बने नियमों, विनियमो, योजनाओ परियोजनाओं, कार्यक्रमों और कानूनों को लागू न किये जाने को बिना जनसमर्थन के नहीं सुलझाया जा सकता है और जनसमर्थन सम्बंधित लोगों को सयत, प्रबुद्ध, और जागरूक बनाने के विशिष्ट उपाय किये बिना हासिल नहीं किया जा सकता है ।'[47]

काशीराम ने 1984 में अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी व सक्रिय राजनीति में आ गये । महाराष्ट्र रिपब्लिकन पार्टी और अम्बेडकर द्वारा स्थापित पीपुल्स एजूकेशन सोसायटी के लिये कार्य आरम्भ किया । उनके अनुसार – चार वर्षो तक काम करने

के बाद लगा कि इनके खुद के इतने झगडे है कि उन्हे निपटाने मे सगठन अपना मूल काम नहीं कर पा रहा है । इसी समय रिपब्लिकन पार्टी में टूटन आरम्भ हो गयी । बडे नेता कांग्रेस मे जाने लगे । रिपब्लिकन पार्टी 12 धडो मे और दलित पैन्थर्स पार्टी 6 धडो मे बट चुकी थी । फलत दलित नेतृत्व खाली था । अन्तत 6 दिसम्बर 1978 को इस आधार पर कि जिस समाज की गैर राजनीतिक जडे मजबूत नहीं होती, उस समाज की राजनीति कभी कामयाब नहीं होती । बामसेफ नामक मजदूरों का सगठन बनाया जिससे मजबूत आर्थिक व सामाजिक आधार तैयार हो गया । अपने लक्ष्य के प्रति वे स्पष्ट है कि – राजनीति सत्ता के लिये होती है और सत्ता बिना संघर्ष के नहीं मिलती । उनका आरोप है कि 15 प्रतिशत मनुवादी समाज 85% बहुजन समाज पर शासन कर रहा है । इस असमान सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ सघर्ष हेतु 1981 मे 'डी एस फोर' नामक सगठन बनाया गया । 6 दिसम्बर 1983 को इसके द्वारा समता और सम्मान के लिये के लिये सघर्ष का आन्दोलन चलाया गया ।[8] अन्तत समतामूलक समाज की स्थापना हेतु 'बुद्धिष्ट सोसायटी आफ इण्डिया' के समानान्तर 'बुद्धिष्ट रिसर्च सेन्टर' नामक सगठन बनाया । इसी बीच 'बहुजन संगठक' नामक पत्रिका निकाली 13 भाषाओं में छपने वाली इस पत्रिका के वे स्वय सम्पादक थे । एक और अग्रेजी पत्रिका 'ओयरेस्ट इण्डिया' निकाली । जिसे पार्टी का मुखपत्र बनाया गया । अन्तत 14 अप्रैल 1984 को 'बहुजन समाज पार्टी' का निर्माण किया गया । डी0एस0फोर का विलय बसपा में कर लिया गया ।[9]

जहां तक बहुजन समाज पार्टी के मैनिफेस्टो का सवाल है तो इस पर सुश्री मायावती लिखती है कि – बहुजन समाज पार्टी मनुवादी राजनीतिक पार्टियों की तरह देशवासियों से लम्बे–चौड़े वादे करने में नही, बल्कि कार्य करने में विश्वास करती है । साथ ही बहुजन समाज पार्टी मनुवादी राजनीतिक पार्टियो की भाति केवल राजनीतिक ही नही है बल्कि राजनैतिक के साथ–साथ सामाजिक भी है । इसलिये बहुजन समाज पार्टी ने अपना मुख्य आधार–सामाजिक परिवर्तन और

आर्थिक मुक्ति को बनाया है । परन्तु यह कार्य प्रदेश और देश की राजनीतिक सत्ता को हासिल किये बिना पूरा नही हो सकता है । [10]

समानता के लक्ष्य पर अम्बेडकर भी पूर्णतया स्पष्ट थे उन्होने इसे स्वीकार करते हुये कहा था कि – समता एक कल्पना हो सकती है, किन्तु फिर भी इसे जीवन को निर्धारित करने वाला सिद्धान्त माना जाना चाहिये । मनुष्यों में समानता अंकगणित के 1=1 की जैसे नहीं है । बल्कि मानव चेतना और जनतत्र की भावना न केवल राजनीतिक स्तर पर बल्कि एक व्यक्ति एक मूल्य के सिद्धान्त की आवश्यकता मानव अस्तित्व के सभी पहलुओं में है । वस्तुत एक व्यक्ति एक मूल्य के सिद्धान्त के पूर्ण विकास के बिना प्रजातत्र अधूरा है ।[11]

1980 के दशक मे एक दलित आधार वाले दल के रूप मे बसपा का अभ्युदय एक आकस्मिक घटना थी यह उत्तर प्रदेश की राजनीति मे और समाज में महत्वपूर्ण बदलाव था । बहुत से शोधार्थियो ने इसे क्रान्तिकारी आन्दोलन के रूप में देखा है । जिसका लक्ष्य जाति व्यवस्था को तोड़ना व समाज मे बदलाव लाना है ।[12] जबकि कुछ अन्य लोगों का मानना है कि यह आर पी आई द्वारा खाली किये गये स्थान और कांग्रेस की कमजोरी से लाभ उठाकर बनी हैं तथापि बसपा आज एक राष्ट्रीय पार्टी के अस्तित्व मे आ गयी है । इसके लिये उसने एक तरफ रूढ़िवादी प्रान्तीय समाज में दलित आत्मसम्मान और जागरूकता का आन्दोलन चलाया दूसरी तरफ 1980 व 1990 के दशक के अन्य दलित नेतागण मा0 काशीराम की मनुवादी समाज की काट निकालने मे असफल रहे । तथापि 1990 के पूर्वतम बसपा ज्यादा महत्वपूर्ण पार्टी नहीं थी ।[13]

डा0 अम्बेडकर द्वारा स्थापित पार्टी रिपब्लिक पार्टी आफ इण्डिया 1956 मे पश्चिम यू0पी0 में स्थापित थी परन्तु उसकी सफलतायें सीमित थी क्योंकि उसकी विचारधारा पर कांग्रेस ने अपना प्रभुत्व 1960 के अन्तिम दौर में बना लिया था ।[14]

इससे पूर्व भी काग्रेस दलित नेतृत्व मे झटके दे चुकी थी । स्वतत्रता के पूर्व डा0 अम्बेडकर ने सिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन आफ इडिया का गठन किया था जिसके तहत 1946 मे चुनाव लडे परन्तु उनकी विचारधारा, दर्शन, जागृति का फलक कांग्रेस के सामने छोटा साबित हुआ ।[15]

लेकिन वर्तमान में नयी दलित अभिव्यक्ति जिसका सयोजन बसपा ने किया है के अन्तर्गत एक शक्तिशाली चुनावी अपील का गुण है जिसमे शहरी शिक्षित, मध्य वर्ग और ग्रामीण गरीबों का सयोजन है । ये सब राज्य मे अनके जगहो पर सशक्त आधार प्रदान करते है । बसपा में जाति एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है । सवर्णो के हाथ से निकल कर यह एक विशेष अभियान का स्वरूप धारण कर चुकी है । जाति और वर्ण को ससदीय व्यवस्था मे एक औजार के रूप मे इस्तेमाल किया जा रहा है । जिससे समाज का प्रजातत्रीकरण सम्भव हो रहा है । यह सब जाति और वर्ण द्वारा निचले स्तर पर किये जा रहे शोषण के कारण सम्भव हुआ है ।[16] इस आधार पर दलित जागरूकता को वर्ण और जाति की जागरूकता समझना ठीक नहीं । सामान्य रूप से इसके सागठनिक चरित्र को जातीयता द्वारा सामाजिक ढाचे को बदलने के रूप में देखा जा सकता है ।[17] बसपा पर लोगो का इतना विश्वास विचारणीय तथ्य है । यहा ध्यातव्य है कि बसपा कोई व्यवस्था विरोधी आन्दोलन नहीं है । जोकि निचले सामाजिक ढाचे को बदलना चाहती है, वह अपने सामाजिक अभियान द्वारा आर्थिक शोषण से मुक्ति और समतावादी समाज का निर्माण करना चाहती है ।[18] इस प्रकार वह ऐसा दल है जो इसी व्यवस्था के साथ काम करना चाहती है । बस अपनी विचारधारा व दर्शन को लागू करना चाहती है ।

तुलनात्मक रूप में बसपा साख्यिकीय तकनीक अपनाती है । वह राज्य में ब्राह्मणवादी व्यवस्था के ढाचे को तोडना चाहती है और उसी के द्वारा दलित वर्ग को ऊपर उठाना चाहती है । मा0 काशीराम अपने निम्न वर्णीय श्रोताओ के समक्ष क्रान्तिकारी भाषण में सरल आग्रह करते है जैसे "वह फास और रूस की माग नहीं

कर रहे है । वह सिर्फ चाहते है कि वे टहलते हुये निकटतम मतदान केन्द्र तक जायें और स्थानीय बसपा प्रतिनिधि के पक्ष मे मतदान करें उनकी धारणा है कि – सत्ता वह राजनीतिक चाबी है जिससे सभी ताले खोले जा सकते है ।[19]

दलित सविधानिक रूप से अनुसूचित जाति के रूप मे जाने जाते है । जिनकी जनसख्या 1991 के अनुसार सम्पूर्ण राष्ट्र मे लगभग 16 48% थी ।यह 13 822 करोड़ के लगभग थी (जम्मू एव कश्मीर को छोडकर) । लक्षद्वीप, नागालैण्ड, अन्दमान निकोबार द्वीप समूह मे कोई दलित नही है । उच्चतम दलित अनुपात पंजाब में लगभग 28.6% और निम्नतम 0 10% मिजोरम में है । बडी सख्या में अनुसूचित जाति के लोग यू0पी0 बिहार, बगाल मे निवास करते है । उत्तर प्रदेश में लगभग 21 1 प्रतिशत अनुसूचित जाति के लोग रहते है । जो कि सम्पूर्ण राष्ट्र का 1/5वा भाग है ।[20]

ग्रामीण – शहरी का अनुपात काफी छोटा–बडा है । 11 79% शहरो में रहती है तो लगभग 88.21% जनसख्या गावों मे वास करती है । अनुसूचित जातियों का शहरीकरण राज्य में काफी नीचा है । साक्षरता दर 37 41% है (जिसमें 23 76% महिला और 49 91% पुरूष) जबकि उत्तर प्रदेश मे यह दर 26 85% ही है । जो कि राष्ट्रीय रूप से काफी कम है । महिला साक्षरता दर राज्य मे मात्र 10 68% ही है ।[21]

इन आकड़ो के माध्यम से दलितों की चेतना और सागठनिक भावना को ज्यादा आसानी से समझा जा सकता है । इन आकडो को थोड़ा और बढाकर यदि हम एलीट क्लास (अभिजन वर्ग) के साथ में नौकरियों में आरक्षित वर्ग की भर्ती तक देखें तो पायेगें कि – ग्रुप A – 8 16%, B – में 10 12% ग्रुप C – में 15 76%, ग्रुप – D में 21 19% पद भरे थे । जबकि ग्रुप A मे 14 64%, ग्रुप B मे 12 88, ग्रुप

C मे 724 और ग्रुप D मे 81% पद खाली थ । जबकि 1970 से राज्य मे 23% और केन्द्र की नौकरियों में लगभग 15% का आरक्षण दिया गया है ।[22]

सर्विस ग्रुप	केन्द्रीय सेवा के भरे पद	केन्द्रीय सेवा के खाली पद	राज्य सेवा के भरे पद	राज्यसेवा के खाली पद
A	823–677	677	816	1484
B	1047–453	453	1012	1288
C	1446–0054	0054	1576	724
D	2009–509	–509	2119	81

इन शिक्षित अभिजनो की समाज के जागरण मे एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है । परन्तु दलित अभिजनो के विषय मे कतिपय शोध नकारात्मक विवेचन करते हैं । यथा – एस एस सिह तथा एस सुन्दरम ने लिखा कि – "अभिजन श्रेणी मे आने के बाद व्यक्ति परकीकृत हो जाता है और अपने दायित्वो का निर्वाह नही करता है ।[23]

इस बात को आगे बढाते हुये हरिजन अभिजनो के विषय मे श्री सच्चिदानन्द लिखते हैं कि – "हरिजनो मे से एक शिक्षित अभिजन उभरकर आता है । यह शेष समुदाय के लिये एक सन्दर्भसमूह तथा भावी परिवर्तनो का अभिकर्ता बन सकता है । दुर्भाग्यवश ऐसा हो नही पाता । अभिजन पद प्राप्ति के बाद वह अपने भूतकाल, निम्न उत्पत्ति एव जाति सम्बधी सभी बातों को भूलना चाहता है । हरिजन अभिजन अपने समुदाय के लोगो की अपेक्षा हिन्दू जातियो के अधिक, निकट आना चाहता है ।[24]

इसी प्रकार खान अपने अध्ययन "शिडयूल्ड कास्ट एण्ड पेपर स्टेटस इन इण्डिया" में लिखा कि – "दलित मत्री, विधायक, अधिकारी एव अन्य अभिजन

शहरी क्षेत्रो मे रहने लगे हैं । ये अभिजन महसूस करते है कि यदि वे ग्रामीण क्षेत्रो के अपनी जाति के सदस्यों से मेल जोल रखेगें या ग्रामीण परिवेश जो उनका पैतृक स्थान हैं, मे ही रहेगे । तो हिन्दू जातियो की नजरो मे अपनी प्रास्थिति खो देगें ।"[25]

जबकि डा पूरन मल इस पर कहते है कि – "सवैधानिक विशेषाधिकारो का लाभार्थी दलित वर्ग का होने के कारण उससे अपेक्षा की जाती है कि वह अपने वर्ग का नुमाइन्दा बनकर उसके लिये न्याय की लड़ाई लड़ेगा । लेकिन यह महसूस किया जाता हैं कि दलित जाति के आरक्षण के लाभार्थियों से एक नवीन बाह्मणवाद पनप रहा हैं ।[26]

जातीय सगठन हमेशा से राजनीतिक जागृति मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं । डा0 पूरन मल लिखते हैं कि – "हजारो वर्षो से जिस भारतीय श्रमजीवी जनसाधारण को वर्णाश्रम धर्म ने शूद्र, अतिशूद्र, म्लेच्छ, चान्डाल, अवर्ण आदि अपमानजनक नाम देकर न केवल शोषित – उत्पीडित किया बल्कि अपमानित, लांछित एव पद दलित भी किया । उनकी सामूहिक एव व्यक्तिगत वेदना की दबी कुचली चेतना के प्रस्फुटन की, व्यक्ति स्वातत्र्य की तथा मानवीय आकाक्षाओ की व्यापक और प्रखरतम अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन जातीय सगठन ही हो सकते है ।[27]

जातीय सगंठन राजनैतिक क्षेत्र मे भी व्यापक भूमिका अदा करते है । उड़ीसा के एक अध्ययन में बेली ने लिखा कि – "जातिगत सगठनो की प्रतिष्ठा इस कदर है कि यदि हम यह निर्णय करना चाहें कि कुछ अन्य राज्यों में क्या घटित हो रहा है, तो जातिगत सगठन जनसख्या के एक भाग से घनिष्ठता एव राजनैतिक लगाव के कारण भीतर तक की खबर लाने में सक्षम होते है ।[28]

लिच महोदय ने उत्तर प्रदेश की एक निम्न जाति जाटव जाति का विधान मण्डल में निश्चित प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में 'जाटव वीर महासभा' की प्रभावी भूमिका का उल्लेख किया है 'जाटव वीर महासभा' ने अपनी पहली सफलता हासिल की जब इसके एक नेता 'खेमचन्द' आगरा व सयुक्त प्रान्त की विधान सभा का चुनाव जीत गये ।[29]

आज जातिवाद सगठनों का निर्माण बहुतायत मे हो गया है परन्तु उनकी सक्रियता अनिश्चित है । "यद्यपि इन सगठनो से दलितो को लाभ मिला है परन्तु सगठनों की बहुलता के बावजूद दलित जातियो की वर्तमान दशा को देखकर ऐसा महसूस होता है कि जातीय सगठन वाछित परिणाम प्राप्त करने मे असफल सिद्ध हुये है ।[30]

जाति चेतना को आरम्भ से ही उभारकर राजनीतिक लाभ लेने वालो की कमी नही रही है । ध्यातव्य है कि डा0 अम्बेडकर इसके सख्त खिलाफ थे । यथा – 30 नवम्बर 1956 को 'शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' की अपनी अन्तिम सभा मे दिल्ली में डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि – ऐसी किसी भी राजनीति मे भाग लेना सिद्धान्तहीन और अशोभनीय है जिसका आधार जातिवाद हो ।[31]

काग्रेस द्वारा डा0 अम्बेडकर के विरूद्ध लोकसभा चुनावो मे काजरोलेकर के उम्मीदवार बनाकर महार और चमारो के मध्य जाति भेद की दीवार खड़ी करने की जो शुरूआत की थी वह आज तक बदस्तूर जारी है ।[32]

जगजीवन राम ने इसी आन्तरिक जातिवाद का सहारा लेते हुये 1988 के बिजनौर लोकसभा उपचुनावों में स्पष्टत कहा था कि – यू0पी0 के चमारों–मेरी बेटी को तुम्हें जिताना है । राम विलास पासवान चमार या जाटव जात से नही है, तुम्हारी जाति से मीरा कुमार है ।[33]

राजनीतिक दल प्रजातन्त्र की आधारशिला है । ससदीय प्रजातत्र मे राजनैतिक दलो का होना आवश्यक है, क्योंकि दल पद्धति के बिना प्रजातंत्र की कल्पना भी असम्भव है ।[34] डा0 अम्बेडकर के शब्दो मे सरकार को चलाने के लिये एक दल आवश्यक है । जनतान्त्रिक सरकार उसी समय तक जनतान्त्रिक है, जब तक उसमे द्विदलीय पद्धति कार्य करती है । एक सत्तारूढ़ दल के रूप मे तथा दूसरा विरोधी दल के रूप मे ।[35] जनमत को प्रशिक्षित करने, उसके निर्माण तथा अभिव्यक्तियो मे राजनीतिक दलो द्वारा अत्याधिक महत्वपूर्ण कार्य किया जाता है । दल अनुचित सरकारी नीतियो के विरूद्ध जनमत तैयार करके सत्तारूढ दल की निरकुशता पर रोक लगाते हैं । विरोधी दलों द्वारा निरन्तर रचनात्मक विरोध के कारण सत्तारूढ दल की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है ।[36]

आजादी के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य सदियो पुरानी समाज व्यवस्था का पुनर्निर्माण करना था । इस उद्देश्य से दलित जातियो तथा समाज के दलित वर्गो के लिये सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक न्याय तथा विकास हेतु अनेक सवैधानिक रक्षोपायो की व्यवस्था की गयी है । लेकिन जितना न्याय मिलना चाहिये, विकास होना चाहिये तथा कुल मिलाकर जो एक समतामूलक समाज का निर्माण होना चाहिये, वह नहीं हो पाया है ।[37] आज भी सभी राजनैतिक दल इन जातियो को अपना वोट बैंक बनाये रखने हेतु चुनावो के समय अनेक प्रलोभन देकर आकर्षित करते है । लेकिन चुनावो के बाद इन घोषणाओ पर विशेष ध्यान नही दिया जाता है ।[38] मुख्य बात यह है कि डा0 अम्बेडकर के बाद दलित राजनीति एव दलित समाज का नेतृत्व करने वाला न कोई सर्वमान्य नेता रहा न कोई राजनीतिक दल और न ही ठोस रचनात्मक कार्यक्रम ।[39] इन्ही परिस्थितियों मे बहुजन समाज पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मा0 काशीराम अपनी खास राजनीतिक ताकत बनाने के लिये जी तोड मेहनत कर रहे है । वह पिछले कुछ सालो मे दलितो के नये मसीहा के रूप मे उभरे है । उनका नारा है कि सवर्ण जातियो के चगुल से निकलने का रास्ता

यही है कि कमजोर वर्ग एक साथ गोलबद हो । देश के 65 करोड लोगो को वह बहुजन समाज का मानते है ।[40]

विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है । इसका प्रत्यक्ष सम्बध समाज के आर्थिक पहलुओ से होता है । समाज वैज्ञानिको का मत है कि विभिन्न सामाजिक उद्देश्यो और प्रगति की प्राप्ति तभी सम्भव हो सकती है । जब समाज का आर्थिक विकास होगा । दलितो के विकास के लिये स्वतत्रता के बाद सरकार ने अनेक कदम उठाये हैं ।[41] भारत मे दलितो के लिये चलाये जा रहे विशेष कार्यक्रमो के सम्बध मे रजनी कोठारी ने कहा है कि सम्भवत विश्व में कहीं भी निम्न वर्ग को इतनी सुविधायें प्रदान नही की गयी है, जितनी वर्तमान में भारत सरकार द्वारा दलित वर्ग के लिये प्रदान की जा रही है ।[42] लेकिन जनतत्र की सबसे बडी कमजोरी सामाजिक अनैतिकता एव राष्ट्रीय चरित्र का अभाव है दुर्भाग्यवश भारत मे अनैतिकता, चरित्रहीनता और भ्रष्टाचार अपने चरम पर है ।[43] यह गहन चिन्ता का विषय है कि इस सर्वग्राही भ्रष्टाचार की छूत से राज्यो के भ्रष्टाचार निरोधक एव केन्द्रीय जाच ब्यूरो भी अछूते नही रहे है । भ्रष्टाचार प्रशासन के समस्त अगो तथा समाज के हर स्तर पर प्रवेश कर जनतत्र की जडों पर प्रहार करके दलितों के विकास को अवरूद्ध कर रहा है ।[44] इस सम्बन्ध मे समाज वैज्ञानिक सच्चिदानन्द लिखते है कि — अभिजन वर्ग की दक्षता एव उपयोगिता सामाजिक परिवर्तन की दिशा एव गति प्रभावित करने का एक महत्वपूर्ण कारण है । सत्ताकेन्द्र तथा जन सामान्य के मध्य की कडी के रूप मे एक ओर वे सामाजिक परिवर्तन हेतु जनसामान्य का निर्देशन कर सकते है तथा दूसरी ओर वे नीति–निर्माताओ पर इस प्रकार की रणनीति अपनाने पर दबाव डाल सकते है ।[45] जिससे अधिक से अधिक लाभ लक्षित वर्ग तक पहुच सके । अज्ञानता ही दलित वर्ग के विकास की प्रमुख बाधा है जिसे यह कड़ी दूर करने मे सहायक हो सकती है । यथा आर पी सिह ने अपने एक शोध मे पाया कि — उत्तर प्रदेश के 56 10% बिहार के — 55 77% मध्य प्रदेश के 58 33%

एव सयुक्त रूप से तीनो प्रदेशो के 56 47% विधायक दलितो की अज्ञानता को ही उनके विकास की प्रमुख बाधा मानते है ।[46]

इस अज्ञानता को दूर करने के लिये मा0 काशीराम शिक्षा व्यवस्था को परमावाश्यक बताते हुये कहते है कि – शिक्षा न केवल मस्तिष्क का विकास करती है और उसे अप्रचलित विचारो तथा प्रथाओ से मुक्ति दिलाती है बल्कि यह आदमी को जीवन में स्थान प्राप्त करने के लिये भी सक्षम बनाती है । यह सत्ता प्राप्त करने का मुख्य साधन है । शोषित वर्ग के शिक्षा स्तर में सुधार लाने के नियोजित प्रयास अधिकांशत कागजों पर ही रह गये है । हमारे नियोजकों ने ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति बाहुल्य क्षेत्रो मे शिक्षा के प्रसार पर बल दिया है । प्रत्येक योजना मे इन क्षेत्रो में प्राथमिक विद्यालय खोलने पर प्राथमिकता दी जाती है । परन्तु वास्तविक उपलब्धि बिल्कुल ही अनुत्साहवर्धक रही है । दुख की बात है कि शोषित वर्ग और आम जनता के बीच साक्षरता स्तर की खाई हर योजना मे बढ़ती ही गयी है और जब तक दलितों के बीच साक्षरता स्तर में सुधार नहीं होता तब तक समाज में उनका एकीकरण सम्भव नहीं होगा ।[47]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में अनेक विकासात्मक योजनागत कार्य सम्पन्न किये गये जिससे भारतीय समाज के सगठन मे बदलाव आया है । फलत: सामाजिक, राजनीतिक, जागरूकता देश के अनेक भागों मे दलितों में दिखाई पडती है । इससे दलितो में अपने शोषकों के प्रति विद्रोह का भाव आया है ।[48] इसी प्रकार की स्थिति बिहार मे चल रही है । इसने एक वातावरण सामाजिक–मनोवैज्ञानिक तरीके का तैयार कर दिया है जिसके अन्तर्गत एक तरफ दलित और उच्च जाति मे विरोध है तो दूसरी ओर दलित और मध्य पिछडी जाति में विरोध भाव है ।[49] उत्तर प्रदेश में दलितो पर अत्याचार का अनुपात काफी तेजी से बढ़ गया है । सरकारी रिपोर्टो के आधार पर कहा जा सकता है कि 1981–86 के दौरान उत्तर प्रदेश मे दलितो पर अत्याचार लगभग 34% बढ़ गया है । वास्तव में दलित और गैर दलित के मध्य

तनाव ने एक संस्थागत स्वरूप धारण कर लिया है ।[60] यह तनाव कृषि मजदूरी व बेकारी को लेकर पैदा होता है और इसका टकराव सरकार समर्थित कल्याणकारी कार्यो से होता है तब तनावों का जन्म होता है । हिंसा का यह स्वरूप शहरी केन्द्रों तक प्राप्त होता है जहा नौकरशाही द्वारा एक अलगाव व विभेदीकरण की नीति अपनायी जाती है ।[61]

बसपा का गठन और उसका एक राजनीतिक शक्ति के रूप में अभ्युदय स्वातंत्र्योत्तर भारत में हुये महत्वपूर्ण परिवर्तनो, उसमें भी पिछले दशको में हुये तीव्र विकास के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है । बदले हुये सन्दर्भ में बसपा ने अपना नया स्थान, मजबूत और जागरूक चेतनामय नेतृत्व और एक मजबूत सामाजिक आधार का सयोजन किया है ।[62] राजनीतिक रूप से इसे काग्रेंसी व्यवस्था के उत्तर भारत मे बिखरने के परिणाम के रूप मे देखा जा सकता है ।[63] 1960 से 1980 के दशक तक काग्रेंस पार्टी की लगातार अवनति उसके सस्थागत स्वरूप में दिखाई पड़ती है । श्रीमती गांधी ने केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढावा देते हुये सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ मे केन्द्रित कर ली जिससे स्थानीय नेतृत्व समाप्त हो गया । यहीं प्रवृत्ति श्री राजीव गांधी तक जारी रही । काग्रेंस पार्टी के सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्टत पता चलता है कि उसकी राज्यगत मशीनरी नष्टप्राय थी । जो कि राष्ट्रीय स्तर पर पूर्व मे उसकी मजबूती व उसकी प्रभुता का मजबूत आधार थी ।[64] काग्रेंस की नष्टप्रायता ने अन्य दलों को अपनी पहचान और आधार बनाने का समय स्वयं मुहैया करा दिया । पार्टी अपना सामाजिक आधार अनुसूचित जाति और अल्प सख्यको का उत्तर भारत मे बचानें मे असफल रही जबकि दक्षिण भारत में वह इसे बचाने व बढाने मे सफल रही ।[65] उत्तर प्रदेश मे काग्रेस मे उच्च जातीय नेतृत्व का दबदबा था, पार्टी दलित या पिछ्ड़ा नेता उभारने में कामयाब न हो सकी अन्तत जागृति के दौर में इन्हीं समुदायों के लोग आदरणीय व मान्य हो गये । इससे एक नेतृत्व का खालीपन आ गया । समुदाय प्रतिनिधियो के लिये

स्थान खाली हो गया । दलितो की नयी पीढी के जागरूक लोगों ने इसका लाभ एक नई दलित पार्टी बसपा के गठन व आधार देने में उठाया ।[56]

बसपा ने भी अपनी जड़े 1970 के दशक से जमानी शुरू की इसकी कुछ विशेषताये थी जो इसी समय केअन्य दलित आधृत सगठनो से इसका अलगाव करते हैं । बसपा कोई क्रान्तिकारी सघर्ष या आन्दोलन का आहवान नहीं करती । इसकी जडें – निम्न मध्य वर्ग के सरकारी कर्मचारियों के सगठन – बामसेफ मे है । जिसकी स्थापना मा0 काशीराम के नेतृत्व मे 1976 में की गयी थी । जिसके आधार को डी एस फोर की स्थापना के द्वारा और बढाया गया । इस प्रकार बसपा एक आधार युक्त दल है । बसपा का विश्वास सामाजिक न्याय में है जिसकी प्राप्ति सत्ताशक्ति के बाद ही सम्भव है । इसकेलिये वह अन्य दलों से गठबन्धन करने को भी तैयार है । भले ही वह उच्चजातीय प्रभुता वाले दल क्यो न हो । 'गेल आम्वेट' इसी आधार पर कहते है कि – निश्चितत यह एक राजनीतिक संगठन है, जिसका लक्ष्य राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना है जिसके प्रयोग द्वारा दलित उत्थान किया जायेगा ।[57] इसके लिये बामसेफ के द्वारा शिक्षित और समर्पित लोगो का एक कोर ग्रुप पहले ही सगठित है जिसके धन से आन्दोलन को धनशक्ति उपलब्ध होती रहती है ।[58]

डी एस फोर मात्र एक सामाजिक दल नहीं है बल्कि उसका एक राजनीतिक आधार है । इसे सिद्ध करने का निर्णय हरियाणा चुनाव में लिया गया । हरियाणा में 46 डी.एस फोर सदस्यों ने विधायिका का चुनाव 1982 में लड़ा ।[59] इसके बाद उत्तर प्रदेश का चुनाव लडा इस प्रक्रिया से देश के उत्तरी क्षेत्रो मे मा0 काशीराम डी.एस फोर की ताकत की पहचान करना चाह रहे थे । हरियाणा में डी एस फोर को प्राप्त वोटों को देखकर लगा कि अन्य दलों की अपेक्षा डी.एस. फोर का प्रदर्शन आनुपातिक रूप से अच्छा है ।[60] इससे पता चला कि काशीराम के आक्रामक नारों

से प्रभावित होकर दलितो का एक बडा रूझान डीएस फोर की तरफ हो रहा है ।[61]

आन्दोलन को चलाने के लिये अर्थ की व्यवस्था के रूप मे बामसेफ के 20 लाख सदस्यो से आर्थिक मदद ली गयी । इसके बाद किसी भी तरीके से काशीराम धन की व्यवस्था मे लग गये । 1985 मे जब बसपा ने उत्तर प्रदेश मे चुनाव लडने की घोषणा की तब उन्होने धन के लिये एक नयी तरकीब 'एक वोट और एक नोट' की निकाली । उन्होने चुनाव सभाओ मे अपने समर्थको से एक वोट और एक रूपये की मॉग की । उन्होंने उत्तर प्रदेश में इस फार्मूले को कई वर्षो तक सफलतापूर्वक आजमाया । इसके बाद उन्होने प्रति क्षेत्र से बारह हजार रूपये का एक नया फार्मूला चलाया ।[62] मा0 काशीराम अर्थ के मजबूत आधार के रूप में बामसेफ के योगदान को स्वीकारते हुये कहते है कि – आज इस सगठन की सदस्यता लगभग एक लाख है । हर सदस्य को अपनी आमदनी का एक प्रतिशत सगठन को देना पडता है । इस प्रकार मुझे लेवी के रूप मे प्रतिवर्ष 2 40 करोड रूप मे प्राप्त हो जाते है ।[63] आगे वह कहते है कि – मेरी पार्टी के एक लाख वर्कर है और 25 लाख से ज्यादा कैडर सारा धन इन्हीं से प्राप्त होता है ।[64] इसके बाद मा0 काशीराम ने अपना 52वा जन्मोत्सव अलग तरीके से मनाया । उन्होने अपने समर्थको से कहा कि वह वही सभा को सम्बोधित करेगे जहा से उन्हे 52 हजार रूपये की भेंट मिलेगी । इस प्रकार चालीस सभाये तय हुयी । तदुपरान्त समयाभाव होने पर उन्होने कहा कि यदि कहीं से 52 हजार से ज्यादा की भेंट मिले तो वह वहां समयाभाव होने पर भी सभा सम्बोधित कर सकते हैं । अत एक लाख की दर से सात रैलिया उन्होने सम्बोधित की ।[65] इस प्रकार मा0 काशीराम ने बसपा को धन सम्पन्न बनाया और दलित समाज के स्वाहित वर्धक फैसला स्वतंत्र रूप से लेने में सक्षम किया ।

बसपा का आन्तरिक सगठनात्मक ढाचा अन्य पार्टियो से अलग है । वह पूर्णतया अनौपचारिक और व्यक्ति केन्द्रित ढाचा है । पूर्णतया मा0 काशीराम के व्यक्तित्व और उनके मिशन के स्वरूप मे केन्द्रित है । बामसेफ और डी एस फोर द्वारा शिक्षित कैडर, मानव शक्ति, फन्ड, और पार्टी साहित्य प्राप्त होता है जो कि चुनावो के समय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है ।[66] 1990 के दशक तक मा0 काशीराम उसे स्वयं एक नेशनल मोर्चा कहा करते थे जिसके द्वारा सासद जिताये जा सकते हैं । वह कहते है कि – बसपा एक बनती हुयी पार्टी है, उसका प्रथम लक्ष्य है बहुजन समाज बनाना फिर बाद मे बहुजन पार्टी बनाना जो कि उनके विचारो को आगे बढाने में सहायक होगा । वह कहते है कि – सघर्ष के दौरान गठित बामसेफ और डी एस फोर सागठनिक जरूरतो की पूर्ति करते है । वह बसपा को पूर्णतया आन्तरिक राजनीति से मुक्त रखना चाहते हैं । जिससे कि एक सदस्य अन्य सदस्यो का निर्माण करे न कि नेताओ का निर्माण करे ।[68] अत यह नारा एकदम उचित है कि बसपा ही काशीराम है और काशीराम ही बसपा है ।

बहुजन समाज पार्टी पूरे भारत मे 100 क्षेत्रो मे विभाजित है 3200 कार्यालय है मुख्य कार्यालय दिल्ली में है ।[69] काशीराम इसके अध्यक्ष व मुखिया दोनों हैं । इनके अलावा मात्र मायावती सचिव है । शेष किसी को कोई बडा पद नही मिला है । 1997 तक पार्टी मे कोई आन्तरिक चुनाव नहीं हुआ था । 1997 मे राज्य प्रमुखो का चुनाव कराया गया था । शेष नामाकिंत पद है । काशीराम स्वय को भी एक कार्यकर्ता कहलवाना पसन्द करते है । 1996 के लोकसभा चुनावों के बाद बसपा को एक राष्ट्रीय पार्टी घोषित कर दिया गया ।[70] पार्टी में तहसील, जिला, राज्य सभी स्तरों पर नियुक्ति सीधे अध्यक्ष द्वारा की जाती है । नियुक्ति के समय व्यक्ति की जाति, पार्टी में उसका योगदान, कठिन परिश्रम और उसकी इमानदारी को महत्व दिया जात है ।[71]

पार्टी के पास दो तरीके के सदस्य हैं । कुछ पूर्णकालिक और कुछ अशकालिक है । लगभग एक लाख पूर्णकालिक सदस्य है ।[72] बसपा का सदस्य बनने पर तीन रूपया और सालाना शुल्क 12 रूपया है । पार्टी के सिद्धान्त के द्वारा किसी भी जाति के व्यक्ति को पार्टी का सदस्य बनाया जा सकता है परन्तु सवर्ण लोग प्राय नहीं बनते है । बसपा के गठन के समय ही काशीराम ने घोषित किया था कि – कोई भी व्यक्ति सदस्य बन सकता है परन्तु पदधारण हमेशा दलितो के हाथ मे ही रहेगा । तथापि 1990 मे हुये एक शोध मे पाया गया कि उत्तर प्रदेश बसपा कार्यकारिणी के 28 सदस्यो मे कई उच्च जातीय व्यक्ति थे । 3 ब्राह्मण व एक बनिया – चार सवर्ण जाति के थे, 13 अन्य पिछडी जाति से थे । 5 दलित थे, 3 मुस्लिम थे जबकि चार सदस्यों का जातीय आधार पहचाना नही जा सका ।[73] इसका कारण है कि पार्टी अब बहुजन से सर्वजन की ओर जा रही है ।

बसपा के कुछ अन्य सहयोगी सगठन भी हैं । यथा – 'शोध प्रभाग' जिसमे काशीराम द्वारा चयनित विद्वान लोग रहते हैं जो कि पार्टी साहित्य का निर्माण करते है । दूसरा एक 'निदेशक प्रभाग' और एक सुरक्षा प्रभाग है । सुरक्षा सहायको की नीली वर्दी है वे पार्टी के निर्देशों को लागू करवाते है ।[74] बसपा ने कुछ सास्कृतिक प्रतीको को अपनी विचारधारा के प्रचारार्थ अपनाया है जैसे कि – **नीला, झन्डा, हाथी, निशान, जय भीम,** का अभिवादन, । नीला रग का चुनाव इसलिये किया गया कि – पार्टी के लक्ष्य आकाश की भाति ऊंचे और स्वच्छ है । हाथी का चयन इस आधार पर किया गया कि वह अपने विरोधियों के आक्रमण से बेखबर अपनी गति से चलता जाता है । जय भीम का प्रतीक यह स्पष्ट करता है कि हमने ब्राह्मणवाद को त्याग कर अम्बेडकरवाद को अपना लिया है ।[75] इसी क्रम मे बसपा की ऐतिहासिक अवधारणा भी आती है यथा – बसपा महासचिव सुश्री मायावती कहती है कि – जो लोग हमारा इतिहास लिखते है उन्होने जान बूझकर दलित राजा – महराजाओ के निशानो को मिटा दिया है । मै कोई इतिहास की खोज

नहीं कर रही हूँ । मैं मात्र इतिहास के उन बिन्दुओ को सामने लाना चाहती हूँ जिनको कि छोड दिया गया है ।[76]

स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे लोकतन्त्रिक ढाचा अपनाया गया उसमें सवर्णो ने अपने, अर्थ सम्पन्नता, जागरूकता की बदौलत अपनी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था कायम रखी । जिसमें कि दलितो का शोषण किया जाता था । साथ ही एक छद्म सस्कृति का निर्माण किया जिसमें बहुजन समाज का शोषण किया जा सके । लेकिन अब मा० काशीराम ने इस व्यवस्था को पलटने और दलितो को भेड के बजाय शेर की तरह जीने का जीवनोद्‌देश्य बताया है ।[77] उनका लक्ष्य दलितों के लिये एकदम साफ है, ब्राह्मणवाद के विरूद्ध लडो, इस लडाई में सब कुछ दाव पर लगा दो, साहसी बनो, सगठित हो और अपने में एक सामुदायिक भावना का विकास करों । भाग्य और भगवान से भी मत डरो, एक समाज के निर्माण मे सहयोग दो, जहा सब कोई एक समान भाव से स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकें । इसके लिये एक राजनीतिक शक्ति और संगठन आवश्यक है ।[78] नया सामाजिक ढाचा भाईचारा, समानता और मानवता पर आधारित होगा । इसीलिये बसपा का एक प्रमुख नारा है कि – "शिक्षित, जागृत और संगठित बनो" ।[79] काशीराम कहते हैं कि जहां एक बार दलित अपने वास्तविक अधिकारों को प्राप्त कर गया उसी समय वह जाति और जातिगत विचारो को त्याग देगा ।[80] काग्रेस पार्टी जो कि केन्द्र और उ०प्रदेश मे सत्ता में थी पर बसपा ने तीखा आक्रमण करना आरम्भ किया । पार्टी का कहना था कि काग्रेंसी शासन मे 1955 के सिविल राइट अधिनियम को ठीक प्रकार से लागू नहीं किया जा रहा है साथ ही आर्थिक रोशनी भी गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले दलितों तक नहीं पहुँच पा रही है ।[81]

दलित जागरूकता आत्मविश्वास, आक्रामकता को बढाने के लिये ऐसे नारों को अपनाया गया जो कि सामाजिकता पर सीधी चोट करते थे साथ ही लोगो की जुबान पर सीधे आ जाया करते थे । जैसे "तिलक तराजू और तलवार इनको मारो

जूते चार" या फिर जिसकी जितनी सख्या भारी उसकी उतनी भागीदारी या वोट हमारा राज तुम्हारा नहीं चलेगा नहीं चलेगा ।[82] यहा ध्यान देने वाली बात है कि प्रत्येक नारा लोकतान्त्रिक मूल्यो को पूरी तरह अपने मे समाये हुये है । यह राजनीतिक सोच काशीराम को डा अम्बेडकर के और नजदीक ले जाती है । क्योकि उनका प्रजातन्त्र मे पूर्ण विश्वास था । श्री कुबेर इसी आधार पर कहते हैं कि – उनका ससदीय लोकतत्र पर पूर्ण विश्वास है वह संविधान की नैतिकता को उसके आदर्श को लागू करने की बात कहते हैं । वह राजनैतिक लोकतत्र सामाजिक और आर्थिक लोकतत्र की ओर ले जाने की बात करते हैं । राजनीतिक आदर्शो को वह आम जनता की जागरूकता का आधार बनाना चाहते है ।[83]

बहुजन समाज पार्टी चुनावी अखाडे मे मुख्य निर्णायक शक्ति के रूप मे 1996 मे प्रवेश करती है । लेकिन इस समय वह अपने 1991 और 1993 की चुनावी सफलताओं को आगे बढाने में असफल रहती है । इस बीच वह मत अनुपात और स्थान सख्या के आधार पर उभर चुकी थी । 1996 और 1998 के उत्तर प्रदेश के विधान सभा और लोकसभा के चुनावो ने बसपा की सफलताओ पर सवालिया निशान लगा दिया । तमाम लोगों ने माना कि वह अपने सभी समर्थकों को एकजुट रखने मे असफल रही है ।[84] कुछ सर्वे रिपोर्टो में कहा गया कि 1996 और 1998 के चुनावो मे बसपा का वोट प्रतिशत पहले की अपेक्षा घटा है ।[85] परन्तु इसके बाद के चुनावो मे बसपा का मत प्रतिशत नयी रणनीति के आधार पर टिकट वितरण करने से लगातार बढा है ।[86] तथापि कुछ लोग इसे दो भागो में बाट कर देखते है पहले 1996 के पूर्व तक जब तक कि इसने अन्य दलो से सघ नहीं बनाया था दूसरा 1990 के दशक के मध्य से जब इसने अन्य दलो से संघ बनाया और उच्च जातियों के उम्मीदवारों को टिकट दिया । उनका यह भी कहना है कि इससे पार्टी ने अपनी दलित छवि को चोट पहुचाई है और इससे वह दीर्घजीवी नहीं हो सकती है ।[87] जबकि बसपा अध्यक्ष मा0 काशीराम कहते है कि (दलित हित) बहुजन समाज के हित मे जो भी समझौते आवश्यक होगें वह किये जायेगें ।[88]

अपने आरम्भिक चरण 1984–1993 मे बसपा अपना अलग दलित आधारित चरित्र बनाने में कामयाब हुयी जिसके अनेक कारण थे । उसने मनुवादी पार्टियों को धिक्कारा और उनसे दूरी बनायी । यह दलित शोषित लोगो के लिये आन्दोलन का आधारभूत सैद्धान्तिक चरण बन गया । बसपा ने जातीय विचारधारा की आलोचना की । गाँधी व मनुवादी पार्टियो को धिक्कारा । काग्रेसी शासन मे दलित अधिकारो पर आघात की बात की । हिन्दुत्व और जाति आधारित शोषण की आलोचना की । इससे बसपा एक दलित आधारित दल बनने मे कामयाब हो गया ।[89]

पहली बार उत्तर प्रदेश मे बसपा ने 1984 का संसदीय चुनाव और 1985 का असेम्बली चुनाव लडा । 1984 से 1989 तक वह एक भी सीट नहीं जीत सकी परन्तु उसका आधार सरकारी कर्मचारियो में मजबूत होता गया । 1984 के चुनावों मे श्रीमती गाधी की शोकलहर में दलित – मुस्लिमो ने काग्रेस को वोट दिया । परन्तु 1985 के असेम्बली चुनावो मे काग्रेस अपना आधार बरकरार नहीं रख सकी और बसपा को 4% वोट प्राप्त हो गये ।[90] तत्पश्चात उप चुनावों मे बसपा मजबूत प्रदर्शन करने लगी । दिसम्बर 1985 मे बिजनौर के लोकसभा उपचुनाव में काग्रेंस की ओर से जगजीवन राम की पुत्री मीरा कुमार मात्र थोडे वोटों से ही चुनाव जीत सकी । बसपा प्रतिनिधि 18% वोट प्राप्त कर मात्र 5000 वोटों से चुनाव हार गया ।[91]

1987 के उपचुनाव मे बसपा का प्रदर्शन अच्छा रहा । उसने एक लोकसभा तीन विधानसभा सीटे जीत लीं उसकी नेता मायावती दूसरे स्थान पर आ गयी । वह काग्रेंस उम्मीदवार से मात्र 23000 वोटो से हार गयी । वहा दलित मतों के भरोसे राम विलास पासवान जनता दल से चुनाव लडे वह चौथे स्थान पर पहुंच गये । उन्हें मात्र 34000 वोट मिले । इस प्रकार बसपा उत्तर प्रदेश में एक मजबूत दल के रूप मे स्थापित हो गयी ।[92] बाद के चार सीटो के उपचुनाव मे काग्रेंस ने 33% वोट, बसपा ने 26.3% वोट, बी जे पी , जे डी , लोकदल–सी पी.आई.–सब मिलाकर मात्र 2% वोट प्राप्त कर सकी ।[93]

1989 के इलाहाबाद लोक सभा उपचुनाव मे जहां वी पी सिंह, अमिताभ बच्चन द्वार खाली सीट पर चुनाव लड रहे थे वह सयुक्त विपक्ष के उम्मीदवार थे । उनके खिलाफ मा0 काशीराम ने चुनाव लडा और वह तीसरे स्थान पर पहुँचकर 19% वोट पाने मे कामयाब रहे । यहा बसपा समर्थको ने अपने नीले झडे, सायकिल रैली, हाथी आदि के द्वारा प्रचार कर उन्हे राष्ट्रीय नेता के रूप मे स्थापित कर दिया । 1989 मे चुनाव मे काशीराम ने राजीव गाधी का विरोध करने का फैसला किया परन्तु बाद मे फैसला स्थगित कर दिया । इस प्रकार 1989 में उत्तर प्रदेश में बसपा दूसरी महत्वपूर्ण पार्टी के रूप मे स्थापित हो गयी । इस प्रकार काग्रेसी परम्परागत वोटों में बिखराव आया जिसका लाभ बसपा को मिला । काशीराम कहते भी थे कि – हम सीटे जीतने नही जा रहे है, हम अपनी ताकत का प्रदर्शन करने जा रहे है ।[94]

– बसपा द्वारा उ0प्र0 लोकसभा चुनावो मे प्राप्त सीट और वोट प्रतिशत–सारिणी–1[95]

1989		1992		1996		1998		1999	
सीट	वोट	सीट	वोट	सीट	वोट	सीट	वोट	सीट	वोट %
2	9 7	1	8 7	6	20 6	4	20 7	14	22 0

नोट – भारतीय चुनाव आयोग लोक सभा चुनाव की साख्यिकीय रिपोर्ट

1– अन्य बडे दलो द्वारा सीट और वोट प्रतिशत – यू0पी0 असेम्बली चुनाव–1989–93

	जीती सीटे			मत प्रतिशत		
	1989	1991	1993	1989	1991	1993
कांग्रेस	94	46	28	27 94	17 5	14.8
बी जे पी	57	221	177	11 63	31 6	33 4
जद/लोद	208	92	27	29 75	19.0	11 6
सी पी आई	6	4	3	1 56	0 9	0 5
सी पी आई(एक)	2	1	1	0 37	0.3	0 2
सजपा	1	–	–	0 74	–	–
सपा	–	34	106	–	12 5	17 9
बसपा	13	12	66	9 46	9 2	10 8

सारिणी – 2 [98]

सारिणी न0–1 देखकर स्पष्टत कहा जा सकता है कि – 1989 में बसपा 9. 7% वोट के माध्यम से 2 सीट और 1991 मे 8 7% वोट के माध्यम से 1 सीट जीतने में कामयाब रही । जब कि सारिणी न0–2 द्वारा स्पष्ट है कि 1989 से 1993 के बीच बसपा ने तेज छलाग लगायी और 13 सीट से 66 सीट पर पहुच गयी । जबकि मत प्रतिशत मे मामूली वृद्धि 9 46% से 10 8% की हुयी है ।

1993 मे बसपा ने अपनी चुनावी रणनीति बदली अब तक वह पूर्णतया इकला चलो के आधार पर एक दलित आधार वाली पार्टी थी । जो कि बहुजनवादी अवधारणा के निकट थी । परन्तु अब नयी रणनीति सर्वजनवाद की आई । जिसमें किसी अन्य पार्टी के साथ मिलकर शक्ति अर्जित करने की रणनीति अपनायी गयी । यह पार्टी सर्वप्रथम बहुजनवाद के सबसे करीब दिखने वाली पार्टी समाजवादी पार्टी बनी । यह माना गया कि उत्तर प्रदेश मे दलितो की सख्या लगभग 22% है । यद्यपि यह अन्य प्रान्तों की अपेक्षा काफी ज्यादा है परन्तु सत्ता प्राप्ति के लिये

पर्याप्त नही है । अत सत्ता के लिये अन्यो से सहयोग लेना ही होगा । यह तब किया गया जब कई चुनावो मे बसपा का मत प्रतिशत 20 से 22% पर स्थिर हो गया था ।[97] माना गया कि उत्तर प्रदेश मे मत विभाजन तीन भागो में है दलित, अन्य पिछड़े वर्ग और सवर्ण । इसमे मुस्लिम इधर–उधर होते रहते है । अत 1991 मे चन्द्रशेखर की सजपा से मा0 काशीराम ने तालमेल किया ।[98] इसको लेकर उत्तर प्रदेश मे बसपा के एक ग्रुप ने विद्रोह कर दिया । तब काशीराम ने पार्टी के अनेक मचो से घोषणा की कि – इस तालमेल से हमारी ताकत तेजी से बढेगी इसमे अन्यो की भी ताकत मे थोडा सा इजाफा हो जायेगा ।[99] तालमेल की रणनीति का आरम्भ मूलत इटावा लोकसभा उपचुनाव से हुआ जहा काशीराम चुने गये और आन्तरिक तालमेल के कारण मुलायम सिह ने अपने प्रतिनिधि को हारने दिया ।[100] यह चुनाव एक प्रयोग बन गया जहा पाया गया कि दलित व पिछड़ा वर्ग एक साथ चुनाव जीत सकते है । तत्पश्चात मुलायम सिह ने सजपा छोड़कर अलग दल सपा (समाजवादी पार्टी) बनायी । जिससे वह बसपा के नजदीक आ सके और एक बहुजन गठजोड – दलित–पिछडा–मुस्लिम–जनजाति का बनाया जा सकें ।

इस आधार पर 1993 का चुनाव लडा गया जहा सपा बसपा को कामयाबी मिली । मडलवाद और मन्दिर मस्जिद की आधी मे सपा, बसपा व भाजपा तीनो ही दल मजबूत हो गये । यहा एक तथ्य स्थापित हो गया कि दलित पिछड़े सामाजिक न्याय के लिये एक प्लेटफार्म आ सकतें है । इसके द्वारा वह साम्प्रदायिक शक्तियो का मुकाबला करने मे सक्षम हो सकते है । इसके साथ ही एक सामान्तर धारा दलितों मे राष्ट्रीय स्तर पर दिखाई पड रही थी वह थी अपने आन्दोलन को आगे बढाने की जिसे मन्डलवाद ने रोक दिया था । यहा सबसे निचले लोगों की सत्ता प्राप्ति की भावना थी ।[101]

इसका सबसे बडा प्रभाव देखने मे यह आया कि अब सभी दलो को दलित वोटो की जरूरत महसूस होने लगी । अत सबने दलितों को अपनी ओर खीचने के

लिये कुछ उपाय किये । जैसे भाजपा ने दलित बस्तियो मे सामूहिक भोज का आयोजन किया राम मन्दिर का शिलान्यास एक दलित से कराया । जद अध्यक्ष ने राम विलास पासवान के नेतृत्व मे एक 'दलित सेना का गठन किया जिसने अपने आपको दलित शिक्षा आन्दोलन और अम्बेडकर महासभा से जोडा । इण्डियन पीपुल्स फ्रन्ट ने अक्टूबर 1993 मे 'दलित महासभा' नामक एक सगठन का निर्माण किया । इन सब का लक्ष्य उत्तर प्रदेश में दलितों को अपनी ओर खीचना था ।[102]

ध्यातव्य है कि सपा–बसपा 88 आरक्षित सीटो मे मात्र 42 सीटे जीत सकीं, 34 भाजपा ने जीता, और और मात्र 6 कांग्रेस ने जीता । लेकिन पीछे इसे जनसंख्या के आधार पर देखे तो अन्य तस्वीर सामने आयेगी । लगभग 99 विधान सभा क्षेत्र जहा अनुसूचित जाति सख्या लगभग 25% है वहां 33 9% वोट पाकर सघ ने मात्र 59 सीटे जीती । यहा भाजपा अपना आधार बनाने मे कामयाब रही । इसका सीधा अर्थ था कि गठबन्धन अन्य पिछडा वर्ग को अपने साथ चलाने में असफल रहा और वह भाजपा के साथ चला गया । यह दलित–मुस्लिम गठजोड के लिये स्पष्ट सदेश था कि निचली जातिया भी अब वोट के हथियार का पहचान कर गयी है और वह स्वयं स्थापित होना चाहती है ।[103]

1993 मे चुनावी सफलता के बाद गठबन्धन सरकार सपा–बसपा की गठित की गयी । जिसमे कैबिनेट की 27 में बसपा को 11 स्थान प्राप्त हुआ । लगभग 16 महीने सरकार चलने के बाद गतिरोध पैदा हो गया । (नवम्बर 1993 से जून 1995) इसके लिये पिछडी जाति वोट बैंक पर कब्जा करने की लालसा तथ उच्च पिछडो द्वारा दलितो का शोषण करने की प्रवृत्ति जिम्मेदार थी ।[104] यद्यपि इसमें व्यक्तित्व की मुठभेड और राजनीतिक दुश्मनी का कम योगदान नहीं था । मुख्यमंत्री मुलायम सिह काशीराम द्वारा सरकार चलाने में की जा रही दखल, ट्रान्सफर–पोस्टिंग की मॉग बर्दास्त करने को तैयार नहीं थे ।[105] इसमे मसूद का सर्दू प्रश्न पर इस्तीफा, उपचुनावों में बसपा की असफलता व पंचायतों के नये

सीमाकन द्वारा 52% सीटे सपा द्वारा जीतना भी कारण था ।[106] पिछड़े वर्गो द्वारा दलितों पर अत्याचार किये जा रहे थे, जिसमें मन्डलवाद और मुलायम सिह के मुख्यमत्री बनने से नया जोश आ गया था ।[107] अन्तत 2 जून 1995 को बसपा ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया और राज बहादुर के नेतृत्व 13 विधायक बसपा से टूटकर अलग हो गये । वे सब सपा मे शामिल हो गये ।[108] तत्पश्चात गेस्ट हाउस कान्ड की घटना हुयी जिसमे बसपा नेताओ के जान के लाले पड गये ।[109]

तत्पश्चात दूसरा चरण बहुजन समाज पार्टी का आरम्भ होता है । यह **सर्वजन** का चरण था । इस चरण में नयी रणनीति अपनायी गयी । इसके अन्तर्गत सवर्णो को भी चुनाव मे टिकट देना तथा सवर्णो के साथ चुनावी गठबन्धन की रणनीति अपनायी गयी । तत्पश्चात 3 जून को भाजपा के सहयोग से मायावती की सरकार बन गयी ।[110] बाद मे कांग्रेस से बसपा ने अपना ताल मेल बैठाया । यहा ध्यान देने वाली बात है कि बसपा का वोट बैंक पूर्णतया हस्तान्तरणीय है ।[111] 1996 के चुनावो में सीटो का ऐसा बटवारा किया जनता ने कि कोई सरकार गठित नहीं हो सकी और 17 अक्टूबर 1996 को राज्य मे राष्ट्रपति शासन लगाना पड गया ।[112] तब बसपा ने अपना कांगेस से ताल मेल तोड़कर भाजपा से पुन. तालमेल बैठाया और छ–छ माह का समझौता हुआ । इसके अन्तर्गत पहले 21 मार्च 1997 को मायावती दुबारा भाजपा के सहयोग से राज्य की मुख्यमत्री बन गयी ।[113] यह गठबन्धन मात्र 6 माह मे ही ध्वस्त हो गया क्योकि यह कमजोर व परस्पर विरोधी समीकरण था । 19 अक्टूबर को पार्टी ने अपना समर्थन वापस ले लिया, 21 अक्टूबर को 26 विधायकों ने बसपा छोड़कर जनतांत्रिक बसपा नामक नये गुट का निर्माण कर लिया । जिसमें 19 लोग रह गये । इन्होने कल्याण सिह को सरकार बनाने का समर्थन दिया ।[114] अन्तत भाजपा के नेतृत्व में सरकार 2002 तक चली । पुन. चुनाव में बसपा 98 विधायको के साथ दूसरी बड़ी पार्टी बनकर उभरी । भाजपा तीसरे पर पहुच गयी । अन्तत पुन भाजपा के साथ तालमेल कर सुश्री मायावती उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री तीसरी बार बन गयी ।

वर्तमान समय में बसपा एक राष्ट्रीय पार्टी है । किसी भी राष्ट्रीय पार्टी द्वारा प्राप्त मत प्रतिशत के आधार पर यह तीसरे नम्बर की बडी पार्टी है । मात्र भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस का मत प्रतिशत इससे अधिक है । राष्ट्रीय स्तर पर लगभग 42 प्रतिशत वोट बसपा के पास है ।[115] बसपा के आन्दोलन के प्रभाव का वर्णन करते हुये मायावती कहती है कि – मा0 काशीराम ने 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी नाम से एक राजनीतिक पार्टी की स्थापना की । स्थापना के बाद से बहुजन मनुवादी पार्टियो को छोडकर बसपा से जुड़ रहे हैं । इसका प्रभाव है कि मनुवादी पार्टियाँ आज बहुजन समाज के वोटों की खातिर अनुसूचित जाति–जनजाति, अल्पसख्यक व पिछडा वर्ग के व्यक्ति को अपनी पार्टी का राष्ट्रीय, प्रान्तीय अध्यक्ष या सरकार बनने पर प्रधान, मुख्य मत्री या राष्ट्रपति, राज्यपाल बनाने पर भी आमादा दिखती है ।[116] लेकिन मनुवादी पार्टियो के लोग बहुजन समाज की वोटो की खातिर दिखावे के तौर पर राष्ट्रीय अध्यक्ष व प्रान्तीय अध्यक्ष, प्रधानमत्री, राष्ट्रपति या राज्यपाल किसी भी महत्वपूर्ण पद पर तो बिठा सकते है परन्तु लगाम अपने हाथ मे ही रखेगे फिर वह जैसा चाहेगे वैसा ही घुमायेगे और इस तरह न तो बहुजन समाज को आत्म सम्मान प्राप्त होगा और न हीं आगे बढने की परिस्थिति प्राप्त होगी ।[117]

डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा था कि – अधिकार मागे नहीं जाते बल्कि छीने जाते है और छिने हुये अधिकार अत्याचारियो से विनय प्रार्थना करने से नहीं मिल सकते है, अपितु वह तो कठिन सघर्ष द्वारा ही प्राप्त हो सकते है । साथ ही उन्होंने मनुवादियों द्वारा नेतृत्व के बारे मे भी स्पष्ट कहा था कि दलितो का नेतृत्व करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है । क्योंकि वह दलितों का वांछित भला नहीं कर सकते । समाज की समतावादी रचना को सही दिशा तो समाज के उसी वर्ग का व्यक्ति ही दे सकता है जिसने स्वय निरादर एवं दरिद्रता का अनुभव किया है ।[118]

यद्यपि काशीराम के 'सर्वजन' के गुण उनके प्रारम्भिक उद्बोधनों में भी विद्यमान थे । यथा आरम्भिक चरण मे ही वह अभय भारती के साथ साक्षात्कार मे कहते है कि – मैं ब्राह्मणो के खिलाफ नहीं हूँ मैं व्यवस्था के खिलाफ हूँ ।[119] व्यवस्था भी ऐसी जिसमे 15% लोगो के द्वारा 85% लोगो का शोषण किया जाता है ।[120] राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिये वह राजनीतिक अस्थिरता के हिमायती है ।[121] क्योंकि इससे महत्व अपने आप बढ जाता है । उत्तर प्रदेश की स्थिति देखकर इसे सही भी माना जा सकता है । जहा बसपा बार–बार सत्ता शीर्ष तक पहुँच रही है यद्यपि काशीराम कहते है कि – सत्ता प्राप्त करना हमारा लक्ष्य नहीं वरन वहा टिके रहना हमारा लक्ष्य है ।[122] वह तो अभी अधूरा है । बार–बार सत्ता प्राप्ति हो रही है परन्तु वह कुछ ही समय मे हाथ से फिसल भी जाती है । इसका कारण है अभी 85% बहुजन समाज को नही जोड़ा जा सका है अभ मात्र 20 से 22% बहुजन समाज को जोडा जा सका है ।[123]

इस प्रकार निष्कर्षात्मक रूप से कहा जा सकता है कि मा0 काशीराम ने एक राजनीतिक दल का गठन किया था और लगभग 20 वर्षो की कठिन मेहनत से उसे राष्ट्रीय पार्टी का स्वरूप प्रदान कर दिया । साथ ही बहुजन समाज पार्टी ने देश के सब से बडे राज्य मे सत्ता की वह मास्टर चाबी प्राप्त कर ली जिससे कि सभी तालो को खोला जा सकता है । यहा बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर का वक्तव्य एकदम सटीक लगता है कि हमने एक व्यक्ति – एक वोट के आधार पर राजनीतिक सत्ता बहुजन समाज को सौंप दी है और जब यह समाज पढलिखकर तैयार हो जायेगा तब वह अपना राजनीतिक अधिकार स्वय प्राप्त कर लेगा । यहां 1990 के दशक में जब दलित समाज का एक बडा वर्ग आरक्षण के आधार पर पढ–लिख कर अभिजन की श्रेणी मे आया तो उसने अपनी प्रतिष्ठा अपना आत्म सम्मान तलाशना आरम्भ किया । जिसकी अगुआई मा0 काशीराम ने की । और कुछ ही समय की राजनीतिक उठा–पटक के बाद दलित चेतना के आधार पर टिकी

बहुजन समाज पार्टी सबसे बडे राज्य मे सत्ता शीर्ष तक पहुचने मे कामयाब हो गयी ।

मा0 काशीराम ने अभिजनो की इस जागृति को ठीक तरीके से पहचाना । उन्होने अभिजन जागृति को पहचान कर अभिजनो को ही सर्वप्रथम बामसेफ के झडे तले इकटठा करने का प्रयास किया । बाम सेफ सरकारी कर्मचारियों के सगठन के रूप मे आज भी विद्यमान है और बसपा को वह मजबूत आधार अभिजन वर्ग में प्रदान करता है । दलितो के असन्तोष को अभिव्यक्ति मा0 काशीराम ने दी । उन्होंने डा0 अम्बेडकर को अपने दर्शन का आधार बनाया । इसका कारण था कि दलित समाज में डा0 अम्बेडकर की पैठ गइराई तक जम चुकी थी । अत सामाजिक जागृति फैलाने के लिये उन्होने डी एस फोर नामक एक नया सगठन बनाया । इसका लक्ष्य प्रजातात्रिक सरकार के लिये प्रजातत्रिक समाज का निर्माण बन गया । जिसका लक्ष्य दलित समाज को जागृत करना था । उनको इकटठा करना था ।

उन्होने जागरूकता दस्तों का गठन किया । जो छोटे–छोटे क्षेत्रों में जाकर जागृति का सृजन करते थे । इसमे मा0 काशीराम ने सायकिल रैली, मेला, पूनाधिक्कार जेसी भावनात्मक गतिविधियो का प्रयोग किया । इन गतिविधियो मे आम दलितों को सम्बद्ध किया गया । सीधे व्यक्ति से सवाद उनकी तकनीक बन गयी ।

यहां ध्यातव्य है कि 1970 के दशक मे उत्तर प्रदेश मे दलित आधार खाली था । जितने दलित नेता थे वे सब कांग्रेस की गोद में जाकर बैठ गये थे । अत दलितो की भावनाओ को तीखे ढग से अभिव्यक्ति देकर दलितो को अपनी ओर आकृष्ट करना आसान था । इसी खाली स्थान को भरने का एक गम्भीर प्रयास अपनी अति आक्रामक शैली के माध्यम से मा0 काशीराम ने किया । उनकी

राजनीतिक जागृति की शैली अत्यन्त आक्रामक है । वे सीधे सवर्णो या शोषक वर्गो पर चोट करते है । इस चोट में दबा–कुचला दलित वर्ग अपनी चोट की अभिव्यक्ति के रूप मे स्वीकार करता है । इस प्रकार मा० काशीराम और बहुजन समाज पार्टी ने समस्त शोषित दलितो के मसीहा और प्रतिकारक के रूप मे अपनी छवि बनायी है ।

इसके लिये उन्हे कोई लम्बा चौडा घोषणा पत्र जारी करने की आवश्यकता नहीं है। वह मात्र सामाजिक समानता के नारे और मास्टर चाबी की तलाश पर ही दलित समाज को एक जुट करने में कामयाब होते हैं । यहा जाति एक महत्वपूर्ण भूमिका में आ गयी है । जाति समाप्त करने के लिये अनेक जातियों को एक बद्ध करना राजनीतिक दर्शन बन गया है । उनकी अपीले भी बहुत सामान्य सी भाषा मे होती है जिसे उनके श्रोता आसानी से समझ सके। यहा नेताद्वय अपनी अत्यन्त तीखी भाषा शैली का मनोवैज्ञानिक उपयोग करते है । इसी कारण कम से कम उत्तर प्रदेश मे जहा दलित जनसख्या लगभग 22% है वहां बहुजन समाज पार्टी का वोट प्रतिशत भी लगभग 22% पर आकर ही रूक गया है ।

इस जागृति मे समाज के अभिजनों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है यद्यपि कुछ विश्लेषको ने माना कि अभिजन अपने समाज से कट कर ब्राह्मणवादी तेवर अपना लेता है । परन्तु ध्यान देने योग्य विषय वस्तु है कि ये अभिजन जातीय संगठनो मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । कहना न होगा कि जागरूकता के प्रथम पायदान पर यही लोग होते हैं ।

जाति चेतना उभारकर उसका काम भारत में हमेशा लोग अपने–अपने तरीके से लेते रहे हैं । यद्यपि डा० अम्बेडकर इसके सख्त खिलाफ थे लेकिन उस समय भी विरोधी राजनीतिक पार्टियो ने जाति चेतना उभार कर राजनीतिक लाभ हासिल किया था । प्रजातंत्र में जाति चेतना के आधार पर मतों का ध्रुवीकरण अपने पक्ष में

करने की परिपाटी रही है । इस जातिवादी चेतना को मा0 काशीराम ने अपने तरीके से इस्तेमाल किया उन्होने जातीय आधार पर एक बहुजन समाज का निर्माण करना चाहा । यह बहुजन समाज दबे कुचले वर्ग के लोग है जो कि – आर्यावर्त मे मूल निवासी दास, दस्यु, शूद्र, चान्डाल, अछूत वर्ण के लोग है ।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की प्रजातान्त्रिक सरकारों ने विकास के अनेक कार्यक्रम चलायें । जिससे सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक स्तर मे देशवासियों में काफी बदलाव आया । इन बदलावो के परिणामस्वरूप दलित एक तरफ जहा जागरूक हुआ वहीं दूसरी ओर उस पर शोषण का दायरा भी बढता गया । कृषि मजदूरी, बेकारी आदि के प्रश्न पर अत्याचार व सघर्ष बढ गया ।

कांग्रेसवाद का बिखराव भी बसपा के उभार मे सहायक बन गया । बसपा का आज जो वोट बैंक है वह पूर्व मे कांग्रेसी वोट बैंक का एक भाग था । कांग्रेस अनेकानेक कारणो से बिखराव के दौर मे आई । जिससे उसके वोट बैंक के एक बड़े हिस्से पर बसपा ने अपना कब्जा जमा लिया ।

बसपा के उभार का दो चरणो मे बाट कर देखा जा सकता है । पहले चरण मे वह सवर्णो को अपनी सभाओ से उठकर चले जाने की बात करती थी । जब कि दूसरे चरण मे उसने मात्र केन्द्रीय सत्ताशीर्ष के पदो को छोडकर अन्य पदों के लिये सवर्णो को योग्य बताया । इसके पीछे कई कारण माने गये । प्रथम उन सवर्णो को हम स्वीकार करते है जो हमारी विचारधारा को स्वीकारते है । दो हमारा मत प्रतिशत अब स्थिर हो गया है और इसे बढाना है । तीन एक बार सत्ता मिलने से जागरूकता तेजगति से बढती है । इन आधारों पर बसपा ने मनुवादी पार्टियों से सहयोग हासिल किया, गठबन्धन किया और सवर्णो को चुनावों मे टिकट बाटे ।

आन्दोलन और पार्टी को चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है । इसका इन्तजाम भी मा0 काशीराम ने नये तरीके से किया । जैसे एक नोट–एक

वोट पर धन का सकलन । फिर सभा स्थल से 12 हजार की थैली का लिया जाना , तत्पश्चात 52वें जन्मदिन पर बावन हजार की थैली को हासिल करना । बाद में अधिक धन देने वाले को अतिरिक्त समय देना । इसके साथ–साथ वाम सेफ के द्वारा अनवरत धनापूर्ति जारी रही । वह अपने कार्यकर्ताओ से सदस्यता शुल्क व वार्षिक शुल्क भी प्राप्त करते है । इससे आन्दोलन चलाने के लिये एक बड़े कोष का निर्माण हो जाता है ।

पार्टी का सगठन पूर्णतया केन्द्रीय है । पार्टी मे एक अध्यक्ष मा0 काशीराम है वही सब कुछ है । दूसरी नेता के तौर पर महासचिव सुश्री मायावती हैं । शेष की नियुक्ति ऊपर से की जाती है । यहा तक कि तहसील स्तर पर भी नियुक्ति सीधे केन्द्र द्वारा की जाती है । पार्टी ने नीला झन्डा, हाथी, जय भीम, जैसे अनेक प्रतीको को अपनाया है । पार्टी का एकसूत्री नारा है । सामाजिक समानता की प्राप्ति और उसके लिये सर्वप्रथम राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति करनी आवश्यक है ।

इसी क्रम मे वे अत्यन्त तीखे नारों का सगठन करते हैं । जो क्रिया–प्रतिक्रिया नियम के तहत अन्तत दलित जागृति मे सहायक होते है । मुख्य लक्ष्य दलित जागृति, है इसके लिये उपाय कुछ भी अपनाये जा सकते है । साध्य सामाजिक समानता अतिपवित्र है इसके लिये साधन की परवाह नही करना चाहिये ।

बहुजन समाज पार्टी राजनीतिक अखाडे मे एक निर्णायक शक्ति के रूप में 1996 मे प्रवेश करती है । 1997 और 1993 के चुनावो मे उसने अपनी सफलताओं के झन्डे गाडे थे परन्तु 1996 और 1998 मे उसकी वृद्धि रूक गयी । तत्पश्चात बसपा थिक टैक ने नयी रणनीति अपनानी आरम्भ की जिससे कि मत प्रतिशत में इजाफा किया जा सके । अब बहुजन समाज के साथ अपनी विचारधारा मानने वाले सवर्णो को लेकर सर्वजन समाज की बात की गयी ।

अपने आरम्भिक चरण मे बसपा पूर्णतया अपना दलित चरित्र बनाने में कामयाब हुयी थी । जिसका सृजन उसने मनुवादियों को धिक्कार करके किया था । यह चरण 1984 से 1993 तक का था जिसे बहुजन युग कहा जा सकता है बसपा ने 1984 से ही चुनाव लडना आरम्भ कर दिया था । परन्तु 1989 तक वह एक भी सीट नही जीत सकी थी परन्तु उसके द्वारा दलित वोटो का ध्रुवीकरण जारी था उपचुनावो के द्वारा यह ध्रुवीकरण मजबूत होता रहा । जहां कि प्रशासन ज्यादा चुस्त–दुरूस्त रहता है । 1989 तक बसपा एक महत्वपूर्ण दल के रूप मे प्रतिष्ठित हो गया । इस दौरान वह सीटे तो नही जीत सकीं लेकिन उसने वोटो का ध्रुवीकरण किया ।

1993 मे उसने अपनी चुनावी रणनीति बदली और बहुजन समाज के सबसे नजदीक दिखने वाली पार्टी समाजवादी पार्टी से गठबन्धन बनाने का फैसला किया । फिर एक गठबन्धन सरकार बनी परन्तु दोनो के अपनी विचारधारात्मक द्वन्द्व के कारण गठबन्धन टिकाऊ न हो सका और 2 जून 1996 को वीभत्स गेस्ट हाउस कान्ड हो गया ।

इस समय आन्दोलन का एक परिणाम जहा राजनीतिक ध्रुवीकरण के रूप मे दिखाई पडता हैं वही अब सभी दल दलितो को अपनी ओर आकर्षित करने का विशेष प्रयास करने लगे । सभी दलो ने दलितों के महत्व को स्वीकार किया । इसी जागरण का परिणाम था कि एक दलित को विश्व हिन्दू परिषद ने रामजन्म भूमि की नींव रखने के लिये आमन्त्रित किया ।

सपा–बसपा गठबन्धन की सफलता यद्यपि काफी महत्वपूर्ण रहीं परन्तु उसमें भी कुछ कमिया रह ही गयी थी । यथा बहुजन समाज के एक बडे हिस्से पर भाजपा ने अपना कब्जा जमाया था । यथा आरक्षित 88 सीटों मे 34 भाजपा ने जीता । साथ ही वे सीटे जहां 25% से अधिक दलित जनसख्या थी वहां कुल मत

लगभग 33.9% ही प्राप्त हुये । अर्थ स्पष्ट था कि अन्य पिछड़ा वर्ग के एक बड़े भाग पर गठबन्धन का कोई प्रभाव नहीं था । वह वर्ग सोशल इन्जीनियरिंग करने वाली भाजपा के साथ था । अन्य पिछड़ा वर्ग ने उच्च पिछड़ा वर्ग की सत्ता स्वीकार करने के बजाये ब्राह्मणवाद को सत्ता स्वीकार करना अच्छा माना ।

वस्तुत बहुजन वाद व पिछड़ावाद की अवधारण इतनी सतही रही कि वह 16 माह की सरकार के बाद टूटी और मा0 काशीराम ने दलित हित देखते हुये भाजपा के साथ अपनी सरकार का निर्माण कर लिया । उन्होने घोषणा कर दी कि बसपा – अपना हित देखते हुये अल्पकालिक समझौते करेगी । उसके बाद के चुनावो मे मृत्युशैय्या पर पडी कांग्रेस से बसपा ने समझौता चुनाव के दौरान किया । तत्पश्चात पुन भाजपा के साथ छ छ माह की चक्रक सरकार बनाने का समझौता हुआ लेकिन वह छ माह बाद टूट गयी और कल्याण सिंह के नेतृत्व मे भाजपा ने अपनी सरकार बनाई और 5 वर्ष चलाई । अतत नये चुनाव 2002 मे हुये और बसपा 98 सीटे जीतकर असेम्बली मे दूसरे नम्बर की पार्टी बनकर आई । अब बसपा सीनियर पार्टनर के रूप मे पुन सरकार बनाने के लिये भाजपा के साथ तैयार हो गयी । अन्तत वह तीसरी बार उत्तर प्रदेश जैसे बडे व महत्वपूर्ण राज्य की मुख्यमत्री भाजपा के सहयोग से बन गयी ।

वस्तुत दलितवाद पिछड़ावाद की अवधारणा स्वत खन्डनीय है । चूकि भारतीय समाज व्यवस्था में जाति पिरामिडीय है । इसमे हर जाति से छोटी और ऊची कोई न कोई जाति है । इस दशा में दो समान जातियों का चयन कर पाना सम्भव नही है । जहा दो जातिया होगी वही असमानता स्वत आ जायेगी । अत बसपा का दलितवाद भी उत्तर प्रदेश में चमार आधारित हो गया है । चमार उसमें सबसे आगे है चूकि वह सर्वाधिक जागरूक था । साथ में जो अन्य जातियां है सब उसकी सहायक होकर रह गयी है । अत उनकी सोच है कि जब चमार ब्राह्मणवाद की सत्ता स्वीकार नहीं कर सकते तो आखिर हम चमारवाद की सत्ता क्यो स्वीकार

करे । यही दशा पिछडावाद मे है वहा भी यादव अगुआई मे है शेष सब पीछे है । अत उनकी भी चेतना है कि – जब यादव ब्राह्मणवाद नहीं स्वीकारते तो आखिर हम यादववाद क्यो स्वीकार करे । दूसरे एक मानसिक प्रत्यय है कि जो बहुत बडा अधिकारी है उसकी सत्ता मानने मे कष्ट कम होता है । लेकिन जो थोडा बडा श्रेष्ठ अधिकारी होता है उसकी सत्ता मानने मे कठिनाई अधिक होती है । अत पिछडा वर्ग दलित की सत्ता क्यो स्वीकार करे । वह अपनी अवनति क्यो करेगा । दलित वर्ग का सबसे बड़ा शोषक पिछडा वर्ग बन चुका है । इसलिये दलित को ब्राह्मणवाद की सत्ता स्वीकार करने मे उतनी परेशानी नही है जितनी की पिछडा वर्चस्व की परेशानी होती है । अतएव यदि जाति चेतना को ही आधार बनाया जायेगा तो बहुजनवाद जैन दर्शन की भाति स्वत ही खन्डित हो जायेगा । जिस आधार पर वह ब्राह्मणवाद की नकारता है उन्हीं आधारो पर वह चमारवाद के झडे के नीचे सबको आने का आहवान करता है । इस प्रकार जाति के आधार पर जोड़कर बहुजनवाद नही बनाया जा सकता है ।

चेतना का पूर्ण स्वरूप जिस दिन दलित वोट बैक मे भी आ जायेगा उस दिन पिछडा वोट बैंक के रूप में वह भी बिखर जायेगा । कारण स्पष्ट है कि जाति पिरामिडीय है उसमे एक जाति के नीचे दूसरा काम क्यो करे । वरिष्ठता की सत्ता स्वीकार है कनिष्ठतम की सत्ता स्वीकार्य नहीं है ।

अत बहुजनवाद को जाति आधारित बनाने के बजाये वर्ग आधारित बनाना होगा । पहले जाति को वर्ग मे बदलना होगा फिर वर्ग ही ब्राह्मणवाद की सत्ता को चुनौती दे सकता है । चूकि ब्राह्मणवादी व्यवस्था एक बुर्जुआवादी व्यवस्था है उसमें सर्वप्रथम जाति आधारित वर्ग बनाना होगा और वहीं व्यवस्था को चुनौती दे सकता है और जब चुनौती बराबरी की होगी तो —— समन्वय की अवधारणा का विकास होगा । क्योंकि भारतीय सस्कृति की महानता उसके समन्वय मे ही है ।

विवरणिका

1 मायावती – बहुजन समाज और उसकी राजनीति – पृष्ठ – 79, द्वितीय सस्करण–अक्टूबर 2000, प्रकाशक – इ ए – 44 इन्द्रपुरी नई दिल्ली ।

2 वही पृष्ठ – 28 ।

3 काशीराम – चमचा युग – काका कालेलकर रिपोर्ट से उघृत – अम्बेडकर की गवाही पृष्ठ – 112–13, अनुवादक – राम गोपाल आजाद – समता प्रकाशन – नागपुर, चतुर्थ सस्करण – 2000 ।

4 काशीराम – चमचा युग – पृष्ठ – 113 वही " ।

5 माता प्रसाद – उत्तर प्रदेश की दलित जातियो का दस्तावेज, पृष्ठ – 141, प्रकाशक – देहली किताब घर – नई दिल्ली – 1995 ।

6. मा0 काशीराम का स्वतत्रता की स्वर्ण जयन्ती पर दिया गया भाषण – सकलन अनुजकुमार – बहुजन नामक काशीराम के अविस्मणीय भाषण – प्रकाशन – गौतम बुक सेन्टर – नई दिल्ली – 2000 ।

7 काशीराम – चमचा युग – पृष्ठ – 115 – अनुवादक – राम गोपाल आजाद – समता प्रकाशन – नागपुर – चतुर्थ सस्करण – 2000 ।

8 माया–प्रथम पक्ष– 1986 –उघृत–काशीराम प्रेस के आइने मे –सकलन ए0आर0 अकेला– 2001 आनन्द साहित्य सदन – तृतीय सस्करण – अलीगढ ।

9 माया– 15 फरवरी 1990 –प्रथम पक्ष – शुदेश द्विवेदी द्वारा काशीराम का साक्षात्कार ।

10 मायावती– बहुजन समाज और उसकी राजनीति– पेज–15 द्वितीय सस्करण – अक्टूवर 2000 , प्रकाशक – इए – 44 इन्द्रपूरी नई दिल्ली।

11 कान्ति प्रतीक अम्बेडकर – थामस मैथ्यू, सावन्तराम, अशोक भारती – पृष्ठ – 142, धम्म बुक्स – 1994 – नई दिल्ली ।

12 काचा इतियाह – 1994 – पृष्ठ – 669, बी एस पी कास्ट एज आइडियालोजी इकोनामिक एन्ड पोलिटिकल वीकली – 24 न0 – 12, 19 मार्च, 668–69 ।

13 जैफ्रेलाट क्रिस्टोफ – 1998, द बी एस पी इन नार्थ इन्डिया नो लागर जस्ट ए दलित पार्टी – कम्परेटिव स्टडीज आफ साउथ एशिया अफ्रीका एन्ड द मिडिल ईस्ट – 18 न0 – 1, 35 51 ।

14. ओवन लिच – 1996 – पालिटिक्स आफ अनटचेबिलिटी स्पेशल मोबिलिटी एन्ड चेन्ज इन ए सिटी आफ इन्डिया – कोलम्बिया, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस ।

15 आर इयान डकन – 1979 – लेवल्स द कम्यूनिकशन आफ प्रोग्रामस एन्ड सेक्शनल एन्श्रेटजीज, इन इन्डियन पालिटिक्स, विद रिफ्रेंस टू अलीगढ डिस्ट्रिक्ट, यूनिवर्सिटी आफ ससेक्स ।

16 सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवालूशन (द बी.एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन्स – नई दिल्ली वैल्यूम – 3 – 2002, पृष्ठ – 10 ।

17 काचा इतियाह – 1994 – पृष्ठ – 668–69, बी एस पी कास्ट एज आइडियालोजी इकोनामिक एन्ड पोलिटिकल वीकली – 24 न0 – 12, 19 मार्च, ।

18 गेल ओम्बेट – 1994 बी – पृष्ठ – 224, दलित एन्ड द डेमोक्रेटिक रिवालूशन, डा0 अम्बेडकर एन्ड द दलित मूवमेन्ट इन कोलोनियल इन्डिया – न्यू देलही, सेज पब्लिकेशनस ।

19 सी. एल मौर्या विद सुरेन्द्र नारायण एन्ड एम डी प्रजापति '– 1996 पृष्ठ – 1, बसपा सुप्रीमो काशीराम प्रेस के सामने, इलाहाबाद, कुशवाहा पब्लिकेशन्स ।

20 विवेक कुमार व उदय सिन्हा – दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी, ए पर्सकेप्शन फ्राम वेलो – 2001, पब्लिशर – बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ, पृष्ठ – 16 ।

21 वही " पृष्ठ – 17 ।

22 वही " पृष्ठ – 30–31 ।

23 एस एस सिह तथा एस सुन्दरम – इमरजिग हरिजन ए लिट – एस्टडी आफ पेपर आइडेन्टिटी, न्यू देहली, उप्पल पब्लिशिग हाउस, 1987, पृष्ठ – 166 ।

रवि प्रताप सिह – अनुसूचित जाति के विधान मडलीय अभिजन – दिल्ली मित्तल पब्लिकेशन्स – 1989, पृष्ठ – 29 ।

24 सच्चिदानन्द, एजूकेशन एन्ड सोशल वैलूज मैच इन इन्डिया वा – 48, न0–1 जनवरी – मार्च, 1968 पृष्ठ – 23 ।

25. मुमताज अली खान – शिड्यूल कास्ट एन्ड देयर स्टेटस इन इन्डिया, न्यू देहली, उप्पल पब्लिशिग हाउस – 1989 पृष्ठ – 175 ।

26 डा0 पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पृष्ठ – 162 – पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999 ।

27 वही पृष्ठ – 163 ।

28. एफ जी बेली – पोलिटिकल एन्ड सोशल चेन्ज इम ओडिसा, 1959 – वर्कले, यूनिवर्सिटी, आफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1963 पृष्ठ – 134 ।

29 ओ एम लिच – द पालिटिक्स आफ अनटचेबिलटी, इन मिल्टन सिगर तथा एस बर्नाड (ए डी) स्ट्रक्चर इन इन्डियन सोसायटी शिकागो एल्डइन, 1968, पृष्ठ – 216 ।

30 दलित एशिया टुडे – जनवरी 1995, लखनऊ, पृष्ठ – 7 ।

31 नवभारत टाइम्स – 4 फरवरी 1988 – जयपुर ।

32. डा0 पूरनमल – अस्पृश्यता एव दलित चेतना – पृष्ठ – 173 – पोइन्टर पब्लिशर्स – जयपुर – 1999 ।

47 काशीराम का स्वतत्रता की पचासवी वर्षगाठ पर ससद मे दिया गया भाषण – बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण संकलन – अनुजकुमार – प्रकाशन – गौतम बुक सेन्टर – 2000 – नई दिल्ली ।

48 विवेक कुमार एव उदय सिन्हा – पृष्ठ – 32 – दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए पर्सकेप्शन फ्राम वेलो – 2001 – पब्लिशर – बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ ।

49 सच्चिदानन्द – पृष्ठ – 65 – 1988 ।

50 नन्दू राम – 1995 – वीयोन्ड अम्बेडकर – एसेज आन दलित्स इन इन्डिया, हार आनन्द पब्लिकेशन्स – नई दिल्ली – पृष्ठ – 233 ।

51 वही " पृष्ठ – 263 ।

52 सुधापाई – दलित एरार्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवालूशन (द बी एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पाब्लिशन्स – नई दिल्ली वाल्यूम – 3 – 2002, पृष्ठ – 80 ।

53 ब्रेवर स्टोन – 1988 – 1018 – इस्टीट्यूशनल डिके एन्ड ट्रेडिशनलाइजेशन आफ पालिटिक्स द यू0 पी0 काग्रेस पाटी एशियन सर्वे – 27 – न0 – 10 अक्टूबर – 1018 –30 ।

54 रूडोल्फ लायड एन्ड सुशाने होएवर रूडोल्फ – 1981 – स्योन – 1982, वुड – 1984

55. रूडोल्फ लायड एन्ड सुशाने होएवर रूडोल्फ – 1981 – ट्रासफारमेशन आफ द काग्रेस पार्टी वाई – 1980 ज वाज नाट ए रिस्टोरेशन, इकोनामिक एन्ड पालिटिक्ल वीकली, 2 मई – 811–18 ।

56 सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवालूशन (द बी एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पाब्लिशन्स – नई दिल्ली वाल्यूम – 3 – 2002, पृष्ठ – 81 ।

57 गेल ओम्बेट – 1994 ए काशीराम एन्ड द बी एस पी के एल शर्मा (इडी) कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – जयपुर,, रावत पब्लिकेशस – 153–177 – पृष्ठ–165 ।

58 अजय कुमार – 1987 – सम क्वेश्चन आन द बी एस पी – न्यू देलही, द टाइम्स आफ इन्डिया – 6 अप्रैल ।

59 गेल ओम्बेट – 1994 ए काशीराम एन्ड द बी एस पी के एल शर्मा (सम्पादित) कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – जयपुर,, रावत पब्लिकेशस – 153–177 – पृष्ठ–164 ।

60 कवल भारती – 1996 – पृष्ठ – 13 ।

61 गेल ओम्बेट – पृष्ठ–153–177 1994 ए काशीराम एन्ड द बी एस.पी के एल शर्मा (इडी) कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – जयपुर, रावत पब्लिकेशस ।

62. विवेक कुमार व उदय सिन्हा – पृष्ठ–66 – दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए पर्सकेप्शन फ्राम वेलो – 2001, पब्लिशर – बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ ।

63 माया प्रथम पाक्षिक – 1986 – उघृत – काशीराम प्रेस के आइने में, सकलन– ए आर अकेला – 2001 – आनन्द साहित्य सदन – अलीगढ़ – तृतीय सस्करण – प्रथम अध्याय ।

64 वही " आगे ।

65 विवेक कुमाए व उदय सिन्हा – पेज – 67–68– दलित एसर्शन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए पर्सकेप्शन फ्राम वेलो – 2001, पब्लिशर बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ ।

66 सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोलूशन (द बी एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पब्लिकेशन्स – नई दिल्ली वाल्यूम – 3 – 2002, पृष्ठ – 100–101 ।

67 आर के सिह – 1996 – पृष्ठ – 92 – काशीराम और बसपा – इलाहाबाद – कुशवाहा पब्लिकेशन्स ।

68 वही आगे " ।

69 वही पृष्ठ – 96 ।

70 सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोलूशन (द बी एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पाब्लिशन्स – नई दिल्ली वाल्यूम – 3 – 2002, पृष्ठ – 102 ।

71. आर के सिह – 1996 – पृष्ठ – 95 – काशीराम और बसपा – इलाहाबाद – कुशवाहा पब्लिकेशन्स ।

72 वही " पृष्ठ – 97 ।

73 जैफ्रेलाट क्रिस्टोफ – 1998 – पृष्ठ – 45 – द बी एस पी इन नार्थ इन्डिया, नोलागर जस्ट ए दलित पार्टी – कम्परेटिव स्टडीज आफ साउथ एशिया, अफ्रीका एन्ड मिडिल ईस्ट 18, न0 – 1, 35 – 51

74 आर के सिह – 1996 – पृष्ठ – 96– काशीराम और बसपा – इलाहाबाद – कुशवाहा पब्लिकेशन्स ।

75 वही " पृष्ठ – 97 ।

76 इन्डिया टूडे – 11 अगस्त 1997 – पृष्ठ – 53 – मायावती का साक्षात्कार ।

77 महाराज सिह भारती – एन डी – क्रान्ति के पाच खम्भे – कानपुर – लालजी पाल ।

78 आर के सिह – 1996 – पृष्ठ – 93–94– काशीराम और बसपा – इलाहाबाद – कुशवाहा पब्लिकेशन्स ।

79 वही " आगे ।

80. वही " पृष्ठ – 25 ।

81 एम एस ए राव – 1984 – सोशल मूवमेन्टस इन इन्डिया – स्टडीज इन पीजेन्ट, वैकवर्ड कास्ट्स, सेक्टेरियन टोइवल एन्ड वोमेन्स मूवमेन्टस न्यू देहली मनोहर पब्लिकेशन्स ।

82 विवेक कुमार सदय सिन्हा – पृष्ठ – 71 – दलित एशर्सन एन्ड बहुजन समाज पार्टी ए पर्सकेप्शन फ्राम वेलो – 2001 – पब्लिशर – बहुजन साहित्य सस्थान – लखनऊ ।

83. डबलू. एन कुबेर – 1991 – पृष्ठ – 300 – एक्रिटिकल स्टडी – प्यूपिल पब्लिशिग हाउस – न्यू देहली ।

84 प्रदीप कुमार – 1999 – दलित एड द बी एस पी इन यू पी इसूज एन्ड चैलेज – इकोनामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – 34, न0 – 14, 3 अप्रैल – 822–26 ।

85 पुष्पेन्द्र – 1994 – दलित एशर्सन प्रो इलेक्टोरल पालिटिक्स इकोनामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – 24, न0 – 36, 4 सितम्बर 2609–18 ।

86 सुधापाई – 1999 –बी एस.पीज न्यू इलेक्टोरल स्ट्रेट, पृष्ठ – इकोनामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – 24, न0 – 44 – 30 अक्टूबर 3099 – 3101 ।

87 जैफ्रेलाट क्रिस्टोफ – 1998 – पृष्ठ – 35 – द बी एस पी इन नार्थ इन्डिया नोलागर जस्ट ए दलित पार्टी – कम्परेटिव स्टडीज आफ साउथ एशिया, अफ्रीका एन्ड मिडिल ईस्ट 18, न0 –1, 35 – 51 ।

88 ए आर अकेला – सकलन – काशीराम प्रेस के आइने मे – 2001 – आनन्द साहित्य सदन – तृतीय सस्करण – अलीगढ ।

89 सुधापाई – 1997 – 2313 – दलित एशर्सन इन यू पी इम्पलीकेशन्स फार पालिटिक्स – इकोनामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – 32, न0 – 37, 13 सितम्बर 2113–14 ।

90 द टाइम्स आफ इन्डिया – न्यू देहली – 2 अप्रैल 1987 ।

91 गेल ओम्बेट – 1994 – 165 काशीराम एन्ड द बी एस पी., के एल शर्मा (इडी) कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया – जयपुर, ,रावत पब्लिकेशंस, 153 – 1771 ।

92 द इन्डियन एक्सप्रेस – न्यू देलही – 29 मार्च 1987 ।

93 द इन्डियन एक्सप्रेस – न्यू देलही – 30 मार्च 1987 ।

94 द इन्डियन एक्सप्रेस – न्यू देलही – 1 जुलाई 1989 ।

95 भारतीय चुनाव आयोग द्वारा लोकसभा का चुनाव के ऊपर जारी सॉख्यिकीय रिपोर्ट ।

96 1 इन्डिया डिसाइड्स इलेक्शस 1952 – 91 – डेविड वटलर – अशोक लाहिड़ी

एन्ड प्रणय राय – न्यू देहली, लिविग मीडिया बुक्स – 1991 ।

2. सी एस डी सी डाटा यूनिट, डाटा सेट आन स्टेट असेम्बली इलेक्शन्स, 1989 – 95, सेन्टर फार द स्टडी आफ डेवलपिग सोसायटीज, न्यू देहली ।

97 सुधा पाई – " वही – पृष्ठ – 162 ।

98 अभय कुमार दुबे – 1997 – काशीराम एक आलोचनात्मक अध्ययन – नई दिल्ली – राजकमल पब्लिकेशंस – पृष्ठ – 84 – 85 ।

99 हिन्दुस्तान टाइम्स – नई दिल्ली – 6 अप्रैल 1991 ।

100. वही " " आगे ।

101. के श्री निवासुलू – 1974–159 – आन्ध्र प्रदेश – द बी एस पी एन्ड कास्ट पालिटिक्स – इकोनामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – एक अक्टूबर – 2583 – 86 ।

102. अमरेश मिश्र – 1993 – 2702 – यू पी दलित एशर्सन – पासिबिलिटीज एन्ड लिमिटेशस इकोनामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – 228, न0 – 50, 11 दिसम्बर – 2701 – 2 ।

103 योगेन्द्र यादव 1993 – पालिटिकल चेन्ज इन नार्थ इन्डिया – इन्टरप्रेटिग असेम्बली इलेक्शन रिजल्टस – इकानामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – 28, – न0 – 51, 18 दिसम्बर 2767 – 74 ।

104 सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवालूशन (द बी एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पाब्लिेशन्स – नई दिल्ली । वाल्यूम – 3 – 2002, पृष्ठ – 166 ।

105 अमरेश मिश्र – 1994 – 1997 – यू पी क्रैक्स इन द एलायन्स इकोनामिक एन्ड पोलिटिकल वीकली – 29, न0 – 30, 23 जुलाई – 1907 – 8 ।

106 इन्डिया टूडे – 15 मई 1995 ।

107 फ्रन्ट लाइन – एक मार्च 1994 – 4 – 12 ।

108 हिन्दुस्तान टाइम्स – नई दिल्ले – 3 जून 1995 ।

109 मायावती – बहुजन समाज और उसकी राजनीति – पृष्ठ – 84 – 86, तक के फोटोग्राफ – द्वितीय सस्करण – अक्टूबर 2000, प्रकाशक – इ ए – 44 इन्द्रपुरी नई दिल्ली ।

110 हिन्दुस्तान टाइम्स – नई दिल्ली – 6 जून 1995 ।

111 पालब्रास – 1997 – जनरल इलेक्शन्स – 1996 इन यू पी डिवाइसिव स्ट्रगल इन्फ्लूएन्स आउटकम्स – इकोनामिक एन्ड पालिटिकल वीकली – 32, – न0 – 38 – 20 सितम्बर – 2403 – 21 पृष्ठ – 2407 ।

112 फ्रन्टलाइन – एक नवम्बर 1996 ।

113 सुधापाई – दलित एशर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवालूशन (द बी एस पी इन उत्तर प्रदेश) सेज पाब्लिेशन्स – नई दिल्ली, वाल्यूम – 3 – 2002, पृष्ठ – 178 ।

114 द हिन्दुस्तान टाइम्स – नई दिल्ली – 19 अक्टूबर 1997 ।

115. फ्रन्टलाइन – 5 नवम्बर 1999 – पृष्ठ – 122 – 23 ।

116 मायावती – बहुजन समाज और उसकी राजनीति – पृष्ठ – 30, द्वितीय सस्करण – अक्टूबर 2000, प्रकाशक – इ ए – 44 इन्द्रपुरी नई दिल्ली ।

117 वही " पृष्ठ – 33 ।

118 वही " पृष्ठ – 153 ।

119 ए आर अकेला – सकलनकर्ता – काशीराम प्रेस के आइने मे – पृष्ठ 15 – 2001, आनन्द साहित्य सदन – तृतीय सस्करण – इलाहाबाद ।

120 काशीराम – चमचा युग – पृष्ठ -- 125 – अनुवादक – राम गोपाल आजाद – समता प्रकाशन – नागपुर – चतुर्थ संस्करण – 2000 ।

121 वीरेन्द्र सेगर को साक्षात्कार – चौथी दुनिया – आठ अप्रैल 1989 ।

122 बहुजन नायक, नागपुर – 5 दिसम्बर – 1993 – अनामीशरण बबल को साक्षात्कार (नागपुर) ।

123 शाहिद सिद्दीकी को साक्षात्कार – नई जमीन – 1–7 अक्टूबर 1996 को – प्रेस आइने मे उघृत – पृष्ठ – 202 ।

अध्याय – पंचम

निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण

निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण

भारत में सामाजिक व्यवस्था जाति प्रथा पर आधारित है । जाति प्रथा के उत्पन्न होने से पूर्व भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था, जिसे वर्ण व्यवस्था कहा जाता था । भारतीय जाति व्यवस्था अपनी तरह की एक विचित्र एव रोचक सस्था है । धर्म की सीमाओ के बाहर हिन्दुओ का जो कुछ अपनापन है उसकी अनोखी अभिव्यक्ति जाति प्रथा है । वास्तव मे यह सस्था हिन्दू जीवन पद्धति को दूसरो से इतना पृथक कर देती है कि सैकडो भारतीय एव विदेशी विद्वानों का ध्यान इस सस्था की ओर आकर्षित हुआ है । जाति प्रथा मुख्यत जन्म के आधार पर सामाजिक सस्तरण और खन्ड विभाजन की एक गतिशील व्यवस्था है जो खाने पीने , विवाह, व्यवसाय औए समाजिक सहवासो के सम्बन्ध मे अनेक या कुछ प्रतिबन्धों को अपने सदस्यों पर लागू करती है ।

दलित जातिया जिन्हे आर्यो द्वारा शूद्र गाधी द्वारा "हरिजन" अम्बेडकर द्वारा डिप्रेस्ड क्लास एव काशीराम द्वारा बहुजन कहा गया भारतीय सामाजिक व्यवस्था में निम्न स्थान रखती है । इनकी यह निम्न दशा ढाई हजार वर्ष प्राचीन है आज से हजारो साल पूर्व आर्य भारत मे आये तब उन्होने दास, दस्यु और शूद्र वर्ण की रचना अपने कर्म सिद्धान्त के आधार पर की थी जिससे कालान्तर मे सत् शूद्र और असत शूद्र का जन्म हुआ । 1000 ई के आते आते अत्यज वर्ग की दशा अत्यन्त बुरी कोटि मे समाज मे व्याप्त हो गयी थी । जिसका पोषण उत्तर वेद, उपनिषद, स्मृति काल के मनीषियो चिन्तको के द्वारा किया गया था ।

ज्ञान सम्पत्ति, सत्ता से चौथे वर्ण व अन्त्यज को वचित कर दिया गया था । यद्यपि इसको लेकर तीन उपरिवर्णो मे सघर्ष होते थे परन्तु शूद्र वर्ण को इसका भी अधिकार नही था कि वो सघर्ष कर सकें । उसका कर्तव्य मात्र अन्य वर्णो की सेवा करना था जिसके मुक्ति के लिये उसे मृत्यु का वरण करना ही एक मात्र

रास्ता था । यह ऐसी सुव्यवस्था थी जिसमे कर्म के प्रारब्ध मे यदि वचना थी तो प्रायश्चित मात्र मृत्यु थी । वह भी एक सुव्यवस्थित सभ्य अक्षुण्ण सस्कृति का दावा करने वाले समाज के लिये ।

अस्पश्यो की सख्या का अनुमान परतत्र भारत मे 5 – 6 करोड के बीच लगाया गया था । यह वह वर्ग था जिस पर सभी की दृष्टि आकस्मात पड़ जाती थी क्योकि यह पशुवत जीवन व्यतीत करने को मजबूर था । सभी मूलभूत सुविधाओ से वंचित इस वर्ग का जीवन पशु नीग्रो यूरोपीय गुलाम की तुलना मे भी निकृष्ट कोटि का था ।

भारतीय मनीषियो ने यद्यपि समय समय पर जाति प्रथा के विरूद्ध आवाज उठायी है परतु यह अपने मूल मे अध्यात्मिक थी सामाजिक होते हुए भी सामाजिक नही थी । अर्थ का पुट तो लेस मात्र भी नही था मात्र आध्यात्मिकता के सहारे इस मजबूत दुश्चक्र को तोड पाना अत्यन्त कठिन था । यह उस बीमार बेटे के समान था जहा मात्र माता के पुत्र स्नेह से रोग नही ठीक किया जा सकता । उसके लिए आवश्यकता चिकित्सा के अतिरिक्त श्रोत की है । साधु मनीषी चिन्तको की अध्यात्मिकता पूर्ण कार्य किसी कोटि का था ।

इस्लाम के आगमन से भी समाज को बदलने मे ज्यादा लाभ नहीं मिला बल्कि दोनो ने अपनी विद्रूपताओ का आदान प्रदान करना आरभ कर दिया इस्लाम ने धर्मान्तरण तो कराया परतु अपनी असमानता का त्याग कर दिया । हिन्दू समाज के दलित वहा भी दलित होकर ही रह गये ।

अग्रेजी काल मे नवजागरण के आगमन से कुछ विद्रूपताओ पर चोट साघातिक होने लगी । इस नवजागरण की अगुवाई राजा राम मोहन राय,दयानन्द सरस्वती ,विवेकानन्द आदि के द्वारा की गयी यहा यदि राम मोहन राय बगाल तक

सीमित रहे तो आर्यसमाज दीर्घजीवी बन गया । वस्तुत अस्पृश्यता पर नवजागरण वाद हमें महात्मा फुले के चिन्तन व क्रियाकलाप मे दिखाई पडता है । उनकी सृजन शक्ति उनकी वाणी की दासता, उनकी आक्रामकता ने दलित समाज को जागृत होने के लिए उकसा दिया । उन्होने शिक्षा के महत्व को पहचाना । दलितो को शिक्षित करने का आधारभूत कार्य आरभ किया ।

अग्रेजी सरकार जब शिक्षा व्यवस्था कर रही थी तभी मिशनरी शिक्षा ने समतावाद पर आधारित शिक्षा का प्रसार आरभ कर दिया । यहा ब्राहमण के साथ अस्पृश्य को उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती थी सरकार ने भी समान शिक्षा के मार्ग को अपना लिया था । दलितो को काफी यातनाये शिक्षा ग्रहण करने के लिए सहन करनी पड रही थीं लेकिन वह क्षम्य है क्योकि दलित शिक्षा प्राप्त करने लगे थे ।

1857 के बाद के बदले परिदृश्य और काउटर बैलेन्सी नीति ने सेना के द्वार दलितों के लिए खोल दिये । छावनी की शिक्षा समान व अनिवार्य शिक्षा थी । इससे दलित आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर जागरूक होने लगे । यहा अग्रेजी कार्य एशिया मे द्विस्तरीय था प्रथम विध्वन्सक व द्वितीय सर्जक ।

महाराष्ट्र मे सुधारवादियो की एक पूरी श्रखला थी । जिसमे महात्मा फुले, रानाडे, आगरकर,, किशन भागू जी वनसोणे, काम्बले आदि थे । इसी परपरा को आगे बढाने व वृहद पैमाने पर ले जाने का कार्य डा अम्बेडकर करते हैं । भले ही राज्य शासन के रूप मे साहू जी महाराज व सियाजीराव गायकवाड जैसों ने महत्वपूर्ण कार्य किया था परतु उसको वृहद पैमाने पर 20वीं सदी के प्रथमार्द्ध मे प्रसार देने का काम डा भीमराव अम्बेडकर ने किया था क्याकि 20वीं सदी भी असमानतावाद व दलितवाद पर ही चल रही थी ।

* * * * * * * * * * *

किसी भी महान व्यक्तित्व का जन्म अचानक नहीं हो जाता उसके लिए परिस्थितिया जिम्मेदार होती हैं जिसमें उस व्यक्तित्व का उदभव और विकास होता है । बचपन की यादे अमिट होती है । सस्कार ही भविष्य के परिष्कार होते हैं । भविष्य की महानता का बीजवपन भूत की पूर्वपीठिका मे ही हो जाता है ।

भीमराव अम्बेडकर का परिवार एक सैनिक परिवार था बाबा ,पिता, नाना, मामा, सभी का जीवन आधार सेना मे था । जिससे लडाकूपन उनके खून मे था । छावनी स्कूल का लाभ मिला दलित होने के बावजूद पूरा परिवार शिक्षित हो गया पिता राम जी स्कूल के प्राचार्य पद तक पहुच गये 14 सालों तक वह प्राचार्य रहे ।

परिवार बडा था, आरभ मे आय के स्त्रोत सीमित थे, अत गुजारा मुश्किल था । बाद मे वेतन वृद्धि होने पर जब आर्थिक सकट दूर होता है तब अन्य सकट परिवार को घेर लेते हैं । चिकित्सा की बुरी दशा का बयान यह तथ्य कर जाता है कि लगभग 14 पैदा हुए और मात्र 5 जीवित बचे । 6 वर्ष की आयु मे ही मा का निधन हो गया सौतेली मा जब वास्तविक मा के कपडे पहनती थी तो बालक को एक अजीब कचोट उठती थी पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था यद्यपि पिता का शिक्षक मन बच्चो को अच्छे सस्कार , अच्छी शिक्षा देने के लिए व्यग्र था ।

बालक भीम को बचपन से ही अस्पृश्यता की चोट पडने लगती है । वह देखता है कि दुकानदार मा को कपडे दूर से फेंकता है इसलिए क्योंकि वह अछूत है, वह देखता है कि अध्यापक उसका तिरस्कार करते है क्योंकि वह अछूत है, गाडीवान गाली देकर उतार देता है, क्योंकि वह अछूत है, जल जैसी जीवनावश्यक चीज पर भी उसका स्वत्व नहीं है उसे भी वह ग्रहण नहीं कर सकता है तो आवश्यक रूप से यह प्रश्न दिमाग मे उठता है कि यह अछूत क्या है, हम अछूत क्यो है, और इससे हमें मुक्ति कैसे मिल सकती है ।

इतना ही नहीं बालक के साथ युवा, उच्च शिक्षित अम्बेडकर को अस्पृश्यता का दश सहन करना पडता है, यहा तक कि उन्हें सारे बडौदा में कोई धर्मशाला का आवास नही देता है, कर्मचारी फाइले दूर से फैकता है, चपरासी पानी नही पिलाता है, पीडित अम्बेडकर को पेड की छाव तले बैठकर रोना पडता है । सबकी जड मे जडबद्ध हिन्दू समाज की व्यवस्था थी जिसने अस्पुश्यता जैसे पशुवत तत्व का सृजन अपने समाज मे कर रखा था । इससे बचने का रास्ता दो था— पहला हिदू धर्म का त्याग और दूसरा मृत्यु ।

इस बीच उन्हे अच्छे लोगभी मिले जिनकी अमिट छाप उनके मन मस्तिष्क पर पडी । इनमे एक पेढसे गुरूजी थे और दूसरे अम्बेडकर गुरूजी जिन्होने अम्बेडकर को अपने नाम से अम्बेडकर दिया था । दोनो के प्रति डा0 अम्बेडकर के मन मे अपार आदर था ।

अमेरिका में पढाई के दौरान उन्हे समतावादी समाज का ज्ञान प्राप्त हुआ जहा कोई उनका तिरस्कार नही करता था । कोई महार जाति में जन्म लेने के कारण गालिया नहीं देता था । सब कुछ स्वीकार व त्याग की अवधारणा थी वहा उन्हे अपने नये जीवन का साक्षात्कार हो रहा था । अमेरिका ब्रिटेन मे उन्होने व्यापक ज्ञानार्जन किया परन्तु भारत आते ही पुन अस्पृश्यता का दश उन्हे कसने लगा ।

काग्रेस मे 1917 के दौरान अस्पृश्यता के विरूद्ध दलित हित मे प्रस्ताव पारित होने लगे थे । 1918 मे बडौदा नरेश सियाजीराव गायकवाड की अध्यक्षता मे अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारक परिषद का गठन हुआ जिससे भीम राव अम्बेडकर अलग रहे परन्तु साउथबरो कमेटी मे गवाही देने गये । मूकनायक का सम्पादन सभाला अन्तत दामोदर ठाकरसी सभागृह मे नई सस्था बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया जिसका लक्ष्य दलित समाज की दशा में सुधार करना था ।

भारतीय समाज आर्य, द्रविण, सीथियन,मगोलियन आदि लोगो के द्वारा सगठित हुआ है जहा सास्कृतिक एकता तो आ गयी परन्तु मानवीय एकता 'विवाह संस्था' के कारण सम्भव न हो सकी । 'विवाह सस्था' मे स्थिरता रखने के लिये स्त्री सख्या को सीमित रखने का प्रयास, सतीप्रथा और वैधव्य के द्वारा किया । यदि स्त्री सख्या पुरूष की अपेक्षा बढ जाती तो सम्भव था कि जाति व्यवस्था में मानवीयता का प्रवेश हो जाता । इतना ही नहीं जातियो ने एक वर्ग का रूप धारण कर लिया जिससे समाज का निर्माण हुआ है ।

कबीरपन्थी परिवेश में पले अम्बेडकर कुछ न करने की अपेक्षा गलती सहित कुछ करने के सिद्धान्त के साथ **Try with error** कुछ करना चाहते थें । जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था या भारतीय अस्पृश्य व्यवस्था का आधार थी । वह इसे शिव की जटाओ की भाति उलझी व बिना मुह का फोडा बताते हैं । जिसकी शल्यचिकित्सा इतना आसान नही है। भारतीय समाज कहीं से भी रक्त शुद्धिवाला समाज नहीं है यहा द्रविण, मगोल, शक, सीथियन, हूण आभीर, नाग यक्ष आदि प्रजातियो का सम्मिश्रण है परन्तु इस मिश्रण से सजातीयता का भाव उदय नहीं हो सका है । समझना दुरूह है क्योकि एक सजातीय समाज में जातीयता की घुसपैठ है इसे हम यूरोपीय नृविज्ञान और समाज शास्त्रीय सिद्धान्तो के आधार पर नहीं समझ सकते । यहा सजातीय विवाह जातीयता के अलग समूहन के लिये पूर्णतया जिम्मेदार है यदि हम जातीय समूहन का कारण जानना चाहते है तो हमे सजातीय विवाह के कारणो को जानना होगा ।

यदि हमे इसे समाप्त करना है तो हमे भावुकता और आदर्शो के स्थान पर परिवर्तित मानसिकता व ठोस कार्यक्रमो का सहारा लेना होगा । सम्पूर्ण समाज रचना की मीमासा नखशिख से करनी होगी । मात्र परिवार सुधार कार्यक्रम से समाज सुधार नहीं हो सकता है । उच्च जातियो की रूचि परिवार सुधार मे थी क्योकि परिवार सुधार की सीमा मे उच्च वर्णीय लोग भी थे।

आर्य समाज जाति सख्या को श्रम विभाजन मानता था जबकि वस्तुत यह श्रमिको का भी विभाजन था । इससे भी आगे वह श्रमिक विभाजन के बाद श्रमिकों के समूहन को एक के ऊपर एक करके आघृत करती है इसमे भी सबसे महत्वपूर्ण बात है कि यह सब निश्चित करने का आधार व्यक्ति का गुण नहीं बल्कि जन्म है । जिसपर मानव का कोई स्वत्वाधिकार नही है

आधार वाक्य है कि डा0 अम्बेडकर ने जो कुछ भी किया वह हिन्दू समाज की सुदृढता के लिये था । हिन्दू असमतावादी था एक समूह विशिष्टाधिकारयुक्त था दूसरा तब का अधिकारहीन व पशुवत था ऐसा क्यो ? एक वर्ग आदर करने वाला था तो दूसरा घृणा करने वाला था । घृणित वर्ग कभी भी लकवे के शिकार समाज को अग भग कर चील कौवो को डाल सकता था अम्बेडकर ने इस रक्त पात से बचाते हुये आपदाग्रस्त समाज को स्वस्थ करने की शल्यचिकित्सा आरम्भ कर दी थी वे वर्ग सघर्ष को रोककर सामाजिक मानवतावाद लाने का सतत् प्रयास करते रहे । वे ब्राह्मण विरोधी नही थे अपितु वह ब्राह्मणवाद की कलुषित मशाओं का पर्दाफाश कर समाज का चरित्र निर्मल कर भारतीयता की विमल कीर्ति की पुनर्वापसी चाहते थें ।

जाति समापन हेतु ना तो उपजाति समापन उपयुक्त आधार है और ना ही सामूहिक भोज की अवधारणा । इसका एकमात्र उपाय है "मुक्त वैवाहिक सम्बन्ध" इससे रक्त शुद्धि की धारणा समाप्त हो जायेगी । जाति व्यवस्था एक मानव निर्मित काल्पनिक व्यवस्था है चूकि हिन्दू धार्मिक प्रवृत्ति के परम्परागामी है और परम्परा से श्रद्धा के साथ व्यवस्था को अपनाये है तो इस काल्पनिकता को समाप्त करने हेतु तार्किकता को लाना होगा । व्यवस्था को खाद पानी देने का कार्य शास्त्र करते थे । अत शास्त्रोन्मेष आवश्यक है । अम्बेडकर की यह धारणा आर्य समाज के वेदों की ओर लौटो नारो के उलट थी ।

गाधी जी की वेद ब्राह्मण, गाय, राम, स्वराज, जाति, वर्ग, कर्म की अपनी अवधारणा थी जिसे अम्बेडकर समय से आगे की चीज कहकर अमान्य कर देते थे । गाधी की मान्यता की समाज का आधार जाति है जैसे प्रत्येक सैनिक को उसका सर्वोच्च अधिकारी नही पहचानता वह उनके बास (बडे अधिकारी) से काम चलाता है उसी प्रकार की हमारी समाज व्यवस्था है । साथ ही वर्ण व्यवस्था किसी न किसी रूप मे ससार के सभी सभ्य से सभ्यतम समाजो मे व्याप्त है इसका कारण मनुष्य की आसुरी व दैवी वृत्ति है । गांधी जी की यह आध्यात्मिकता पूर्ण सामाजिकता अम्बेडकर की समझ मे नहीं आती थी । वस्तुत अम्बेडकर को वर्ण और जाति शब्दो से ही घृणा हो गयी थी क्योंकि उसका दश उन्होने बचपन से ही महसूस किया था । इन शब्दो का ही वह उन्मूलन चाहते थें । जबकि गाधी जी इसको आध्यात्मिकता व वैश्विकता और कर्म सिद्धान्त के साथ स्वीकार करने को तैयार थे ।

गांधी जी समाज की कमियों को पहचानते व स्वीकारते थे परन्तु उनका विजन वैश्विक था । जातीय अलगाव झेलना नरक से कम नही था और हिंदू समाज को इसके लिये वह अनेकों बार चेतावनी देते है यहां अम्बेडकर और गाधी एक मच पर खडे दिखाई पडते है। अम्बेडकर समता ,स्वतन्त्रता,भातृत्व पर आधृत समाज की कल्पना करते थे जबकि गाधी का रामराज्य था जिसकी नींव मे दोनो ही त्याग, बलिदान, समर्पण सत्य, अहिंसा, प्रेम की ईंट को चिनवाना चाहते थे।

डा0 अम्बेडकर हिन्दू को हिन्दुस्तान का रोगी मानते थें । यदि यह एकवर्णी समाज बनेगा तभी वह अपनी आत्मरक्षा कर सकने मे समर्थ होगा । इस खतरे को आर्य समाजियों ने भी पहचाना था अम्बेडकर ने शूद्र सेवक शेष तीनों वर्ण इसके सरक्षक की अवधारणा को मानने से इकार कर दिया था वे शूद्र हेतु भी विद्या, ज्ञान, शस्त्र व धन का अधिकार समाज द्वारा प्रदत्त चाहते थे । उनके चिन्तन का आधार मनुष्य था जिसे सभी मानवीय अधिकारो से सम्पूर्ण करना हमारे समाज की नैतिक

जिम्मेदारी है । अम्बेडकर ने हिन्दू को देश सूचक के बजाय जाति सूचक सिद्ध किया हिसया यो दूसयति अन्यानां मनासि जात्यहकार वृत्तिना सतत सो हिन्दू वे हिन्दू समाज से निराश हो गये थे । उनकी सुधाराकाक्षा समाप्त हो चुकी थी । इसी अवधारणा पर चलकर वह पकिस्तान के जन्म को स्वीकार कर लेते है ।

डा0 अम्बेडकर नही समझ पा रहे थे कि सवर्ण समाज एक गुलामी से मुक्ति की बात स्वीकारता है (अग्रेजी राज से) जबकि दूसरी मुक्ति को नहीं स्वीकारता (अवर्ण की सर्वण से मुक्ति) वह गांधी जी की हरिजन सरचना से भी सहमत नहीं थे क्योंकि नाम बदलने से प्रकृति में कोई बदलाव आने वाला नहीं था । शुद्धि सस्कार से भी कोई परिवर्तन होने वाला नहीहै जाति व्यवस्था ने हिन्दू धर्म के प्रसार की धारणा को उसकी कोख मे ही समाप्त कर दिया है ।

अतत उन्होंने सामाजिक व्यवस्था के सुधार के लिये धर्मान्तरण सहारा लिया । कहा स्वतत्रता प्राप्ति बिना हिन्दू धर्म त्याग के सम्भव नहीं । तुम्हारे पास गवाने को कुछ भी नहीं है। जो जायेगा वह मात्र बेडिया होंगी । जबकि तुम्हें मानवीय शक्ति द्रव्य शक्ति और बैद्धिक शक्ति की प्राप्ति सम्भव हो जायेगी ।

वह समाज की आधी जनता स्त्रियो को भी अलग से देखते हैं । हिन्दू कोड बिल को वस्तुत स्त्री मुक्ति के रूप मे घोषित करते हैं । स्त्री को गौण स्थान से प्रमुख स्थान दिलाना होगा । उनके चिन्तन का प्रमुख बिन्दु था । दलित और स्त्री । दोनो ही गुलाम व परवशता की जिन्दगी जी रहे थे । हिन्दू कोड बिल से स्त्री को तत्काल विवाह, उत्तराधिकार ,दत्तक जैसी स्वतंत्रता प्राप्त होने वाली थी।

वह दलितो को अपनी मुक्ति का सघर्ष स्वय करने का आह्वान करते हैं। जागरूकता हेतु शिक्षा को आवश्यक मानते है । इससे जागरूकता आयेगी और वह

अपने संघर्ष को आगे बढाने मे सफल होगे । क्योकि यह व्यवस्था जितनी पुरानी और जर्जर है उतना ही लम्बा सघर्ष इसके समापन के लिये करना होगा ।

* * * * * * * * * * *

डा अम्बेडकर धर्म के आधार पर समानता और समानता के आधार पर विकास चाहते थे उनकी धर्म मीमासा का लक्ष्य समाज के बड़े लेकिन पशुवत वर्ग को उसका सत्व वापस दिलाना था । अस्पृश्य को स्पृश्य के साथ वह एकीकृत करना चाहते थे । अपने धर्म में परिवर्तन के समय डा अम्बेडकर ने दो महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान दिया था । प्रथम हिन्दू धर्म को कम से कम क्षति पहुचे और दूसरे अस्पृश्य को स्पृश्य बनाया जाये ।

डा अम्बेडकर को समाज की व्यापक समझ थी वे जानते थे कि अस्पृश्य हिन्दू धर्म मे लाख प्रताडित हो लेकिन उन्हे भी अपनी परपराओं से लगाव है, इस लगाव के कारण वे इस्लाम व ईसाई जैसे विदेशी धर्म को स्वीकार नहीं कर सकते हैं । अस्पृश्य समाज को समता चाहिये लेकिन शर्त है कि यह अपनी परम्पराओ के साथ प्राप्त हो । जबकि विदेशी धर्म मे जाने से समता तो प्राप्त हो जाती लेकिन उन्हें अपनी परम्पराओ से हाथ धोना पड जाता ।

इसी मीमासा के अन्तर्गत उन्होंने भारतीय परिवेश में व्याप्त गैर हिन्दू धर्म पर अपना ध्यान केन्द्रित किया । जिससे सिखो और बौद्ध धर्मो की प्राप्ति हुई । सिंख धर्म भारतीय तो है लेकिन उसकी अलग पहचान है साथ ही कुछ राजनीतिक लाभो से भी वचित होने का भय था । स्वतत्रतापूर्ण अलग सिख राज्य की मांग होने लगी थी । डा अम्बेडकर अखण्ड भारत चाहते थे अत वे सिख से बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख हुए । यहां उन्हे समतावाद की प्राप्ति भारतीय सस्कृति, परंपरा व संस्कारो के साथ हो गयी हिन्दू धर्माचार्यों ने बुद्ध को दसवा अवतार घोषित किया था राजनीतिक लाभ से वचित होने का कोई खतरा नहीं था ।समाज के तिरस्कार का

भी भय नहीं था फलत उन्होने 1935 – 50 की गहन मीमासा के बाद बौद्ध धर्म अपनाने का निर्णय लिया था ।

धर्म का उदभव मानव समाज के कल्याणार्थ हुआ था परतु हिन्दू धर्म का स्वरूप सपूर्ण मे मानवता के लिए अकल्याणपरक हो गया है । यदि न्याय, मुक्ति, समानता और भाईचारे का दूसरा नाम है तो इन तत्वो की न्यूनता हिन्दू धर्म मे आ गयी थी । चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, जातिभेद और अस्पृश्यता इस न्यूनता के उपागम हैं । इन न्यूनताओ का समापन धर्म शुद्धि के लिए अनिवार्य है ।

सर्वप्रथम स्पृश्य समाज मे उत्तरदायित्व भावना का बोध कराना अनिवार्य है आरभ मे डा अम्बेडकर हिन्दू धर्म मे जीना चाहते थे परतु इसकी कमियो का समापन अति शीघ्र चाहते थे । इसकी सीमा सहन शक्ति की सीमा थी उन्होने हिन्दू धर्म का गहन अध्ययन किया । वेद, उपनिषद, मनुस्मृति, रामकृष्ण आदि के माध्यम से समीक्षाये की । कुछ लोगों को ये समीक्षाये अच्छी नहीं लगीं क्योंकि वे ब्राह्मण विशेषाधिकार व अपने धर्म की समीक्षा सहन करने को तैयार नहीं थे ब्राह्मण की तुलना नीत्शे की सुपरमैन अवधारणा से कर दी जो पृथ्वी पर साक्षात भगवान है ।

उनके विचार मे धर्म का मूल उददेश्य समाज को नैतिक अवधारणा पहनाना है । धर्मदर्शन के लिए तार्किकता या वैज्ञानिकता आवश्यक तत्व है इसके बिना वह अकल्याण परक होगा । तार्किकता व कल्याण परकता में अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध है प्राचीन समाज की भाति ईश्वर व उसकी धर्मसत्ता को वर्तमान समाज स्वीकार नहीं कर सकता । आधुनिक समाज के ईश्वर व उसके धर्मतंत्र को आधुनिक तत्वो के साथ कल्याणपरक होना एक अनिवार्य शर्त है ।

हिन्दू व्यवस्था की जाति विभक्ति मात्र श्रम का विभक्तिकरण नही है । यहां जाति उत्पन्न मनुष्यता अनैच्छिक कर्म करने को बाध्य है । कुछ जातियो को

स्वतंत्रता समानता मानवीयता जैसे आधुनिक तत्वो के साथ–साथ कुछ मध्ययुगीन तत्वों यथा धन्धे की स्वतत्रता ज्ञान की स्वतत्रता भी अप्राप्त है जिसका कारण रीति–रिवाज परपरा धर्म श्रद्धा की एकरूपता के बावजूद राष्ट्रीयता जैसे तत्व का सचयन असभव रहा जिसका कारण हिन्दू धर्म के खडनीय धर्मशास्त्र हैं ।

डा अम्बेडकर के चिन्तन का आधार विज्ञानवाद या तर्कवाद था । इससे वह सामाजिक धार्मिक पशुता को स्वीकार नहीं कर पाते थे । उनका मानना था कि धर्मो का मूल '**श्रद्धा**' है । ईश्वरी कृपा प्राप्त करना धार्मिको का लक्ष्य है शेष सब कुछ पाखन्ड ओर त्याज्य है व्यक्ति और ईश्वर का विशिष्ट अनवरत सम्बन्ध प्रतिष्ठा में अन्य को हस्तक्षेप नही करना चाहिये । इसी हस्तक्षेप से धर्मपीठो की स्थापना होती है जो कि मानवता के शोषण की आधारशिला बन जाती है । अन्तत समस्त क्रियाकलापो का सचालन व्यक्ति स्वय ही करता है । यह उक्ति उन्हे भौतिकवाद के करीब ले जाती है।

अन्तत वे हिन्दू धर्म मे सुधार की आशा को त्यागकर धर्म त्यागने का मन्तव्य प्रकट करते है। हिंदू धर्म स्वयं अपने भाईयों को साथ लेकर चलने को तैयार नही था । जिससे दलितो को भी मनुष्य शक्ति, द्रव्य शक्ति और बौद्धिक शक्ति की प्राप्ति हो सके । विद्या, वित्त, और धर्म से वचितता ही उन्हे धर्मान्तरण की ओर ले जाती है। इससे अस्पृश्यों को कानूनी समकक्षता के साथ सामाजिक स्वतत्रता भी प्राप्त हो सकेगी।

धर्म मनुष्य के लिये है, मनुष्य धर्म के लिये नही है समाज सगठन और यशप्राप्ति हेतु हिन्दू धर्म का त्याग करना होगा । '**मैं हिंदू धर्म में पैदा तो हुआ परन्तु मरूंगा नहीं**' वहीं व्रत त्योहार, तीर्थों के त्याग की घोषणा भी कर दी वे बौद्ध धर्म की मीमासा में लग गये और उसकी तर्क व विचारशीलता उन्हे आकृष्ट कर गयी । भारत मे बौद्ध धर्म के पतन के कारणो की मीमासां की अन्तत 14 अक्टूबर 1956 को

नागपुर मे भिक्षु चन्द्रमणि से बौद्ध धर्म की दीक्षा 5 लाख समर्थको के साथ स्वीकार की।

वह हिन्दू धर्म को कम से कम चोट पहुचाना चाहते थें वे मात्र समतावाद, तार्किकतावाद मानव ईश्वर का सीधा तादात्म्य, विज्ञानवाद व विकासवाद का समावेश हिदू धर्म मे चाहते थे, यदि ये चीजे हिदू धर्म उन्हे दे सकता तो कदाचित हिंदू धर्म से उन्हे घृणा नही थी सुधार की आशा न होने पर ही उन्होने हिन्दू धर्म त्याग का मार्ग अपनाया था ।

* * * * * * * * * * *

वस्तुत डा अम्बेडकर **आत्मा से एक अर्थशास्त्री मन से राजनीतिज्ञ एवं परिस्थितियों से एक समाज सुधारक थे** । समाज शास्त्री के रूप मे उनकी ख्याति भारत व्यापी थी यदि वह बडे समाज चिन्तक न हुये होते तो वह एक बडे अर्थशास्त्री होते। अनका समाज चिन्तक पक्ष उनके समाज सुधार में राजनीतिक पक्ष सविधान मे एव अर्थशास्त्री पक्ष शोध ग्रन्थों मे हमे द्रष्टिव्यित होता है ।

डा अम्बेडकर ने दलित समाज की अर्थमीमासा की और जाना कि अंग्रेजी सरकार और सवर्ण जनों की नीतियों के कारण दलित समाज विपन्न दशा में था । बहुतायत मे दलित वर्ग कृषि मे सलग्न था लेकिन उपज का अत्यन्त न्यून भाग उसको प्राप्त होता था शेष मालिकाने की एवज मे मालिक को चला जाता था। अस्पृश्य होने के कारण अधुनिक रोजगार उसे प्राप्त नहीं हो रहा था । जुल्मों के खिलाफ न्यायालय की शरण प्राप्त कर पाना एक दलित के लिये लगभग असम्भव था ।

डा अम्बेडकर ने अमेरिका व लदन विश्वविद्यालयो से अर्थशास्त्र परक शोध की उच्चतम डिग्रियां हासिल की । मुद्रा व्यवस्था व व्यापार पर नयी सस्थापनायें कीं, पारम्परिक कृषि व्यवस्था मे वह दो महत्वपूर्ण बदलाव चाहते थे । पहला खोती

प्रणाली और दूसरा वतन प्रणाली । दोनो की पृष्ठभूमि मे काश्तकार को मालिकाना दिलाना था । वह अन्य विकल्प भी साथ रखते थें जैसे खाली भूमि पर दलितों को मालिकाना हक देकर उनको वित्तीय सहायता दी जाये । अन्यथा वह सहकारी खेती के पक्ष में थे । अन्तत वह रैयत को इकाई मानकर चलते थे । वह बडे काश्तकारो पर आयकर लगाना चाहते थे ।

वह तीव्र औद्योगीकरण व यन्त्रीकरण चाहते थे । उनकी मान्यता थी कि तीव्र यन्त्रीकरण से तीव्र रोजगार पैदा होगे । तीव्र रोजगार से अन्तत दलितो के अस्पृश्यतावाद पर रोजगारदाताओं को समझौतावादी दृष्टिकोण अवश्य दिखाना होगा । जिससे दलितों का प्रवेश आधुनिक रोजगारधारा में सम्भव होगा इससे ज्ञान, शास्त्र और सम्पत्तिहीनता के दुष्चक्र मे से कम से कम एक से मुक्ति अवश्य हो जायेगी । इसके विपरीत प्रकृतिवादी गाधीजी यन्त्रीकरण को शैतानी उपज कहते थे।

श्रमिक अधिकारो के वह हिमायती थे । इसे वह प्रतिगामी के बजाय अग्रगामी मानते थे। उद्योग की शैशव दशा से ही हमे श्रम, आवास चिकित्सा, शिक्षा, कार्य के घटे आदि के मानक तय कर उनकी आदत डाल लेनी चाहिये । जिससे भविष्य का कार्य आसान होगा । वह उद्योगो का राष्ट्रीयकरण भी चाहते थे । अन्तत वह मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे ।

वह सत्याग्रह को स्वतत्रता की भाति जीवन का अत्यवाश्यक अग मानते थें । सत्याग्रह का विशिष्ट औजार था हड़ताल । हडताल को वह पूजीवाद पर समाजवाद की विजय का हथियार मानते थे । हडताल के हथियार के कारण ही पूंजीपति दास सम्बन्धों के बजाय मिलमालिक कर्मचारी सम्बन्धों का विकास सम्भव हो पाता है । अतिरिक्त लाभ जिसे पूजीपति झपटना चाहता है उस पर श्रमिको की अधिकारिता हडताल का अधिकार ही तय करता है इस आधार पर उन्होने 1938

औद्योगिक विवाद अधिनियम पर सारे देश मे हडताल करवा दी । अन्तत वे एक अधिकृत मजदूर नेता बन गये थे।

वे इन अधिकारों को सामाजिक न्याय की पूजी मानते थे । सामाजिक न्याय पूजी व श्रम दोनो की चिन्ता करता है क्योकि दोनो ही समाज के अग है । शक्ति द्वारा सामाजिक शान्ति सम्भव नहीं है, इसके लिये प्राकृतिक न्याय अर्थात सामाजिक न्याय का आश्रय लेना होगा । वे आधुनिक विचाराधारा के आधुनिक तत्वों को स्वीकार करते थें परन्तु इसके अविकास के लिये अग्रेजी सरकार को जिम्मेदार मानते थे ।

* * * * * * * * * * *

डा अम्बेडकर के राजनीतिक क्षितिज पर आने की परिस्थितिया विश्व परिदृष्य मे उथल पुथल भरी थी । विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था । उसकी कोख से मानवतावाद अस्तित्ववाद का उद्भव हो चुका था । सभी अपनी अस्मिता की खोज कर रहे थे । विश्व मे लोकतत्र सघवाद की चेतना का अवतरण हो रहा था । साम्राज्यवाद का आधार खिसक रहा था भारत मे भी समस्त परिस्थितिया विद्यमान थी, परन्तु यहा दलित समाज इस नवीन ज्ञान की अवधारणा से दूर था । वह पाषाणवत होकर शिथिल पडा था ।

डा अम्बेडकर की राजनीति मानवतावादी थी । वे समग्र मानवता का कल्याण करना चाहते थे । वे जनतंत्र को इसके लिये आवश्यक मानते थें परन्तु जनतंत्र बहुमत पर निर्णय लेकर एक वर्ग को किनारे न लगा दे इसके लिये वह हिस्सेदारी की माग करते थें । वह एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिसमें धर्म, राज्य, सत्ता, पूजीवाद, पौरोहित्यवाद आदि द्वारा स्त्री और पुरूष का शोषण समाप्त हो जाये । उनके समग्र राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक चिन्तन का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है । इस मनुष्य की मनुष्यता पर लगे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, बन्धनों के विरूद्ध वह अपना अभिमत प्रकट करते हैं ।

किसी भी वर्ग के अभिजन इस वर्ग की प्रगति मे सहायक होते हैं अभिजन अपने अपने क्षेत्र के मान्यता प्राप्त एव प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं साथ ही वे समाज के आदर्श भी होते है । डा अम्बेडकर भी अभिजन थे जो पहले दलित अति उच्च शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्ति थें । दलित वर्ग को उनसे तमाम अपक्षाये थीं । उन्होने दलित वर्ग के लिये काम करने का निश्चय किया । वे दलित वर्ग को शोषण से अविमुक्त करना चाहते थें । उन्होने सभी तत्वो की आलोचना की जिनसे शोषण बढता था । उन्होने विरोधात्मक एवं टकराव की राजनीति दलित समाज के जागरण हेतु अपनाई ।

मूकनायक के सम्पादन मे उन्होनें लिखा कि ब्राह्मण शिक्षा पर विशेषाधिकार के कारण ही नौकरियो में ऊपर छाये हुये हैं, जबकि दलित को ज्ञान का अधिकार ही नही है । हमे एक अच्छी स्वसरकार चाहिये जो समाज के सभी वर्गो पर ध्यान दे सके । स्वतत्रता तब पूर्ण मानी जायेगी जब समाज का प्रत्येक नागरिक स्वतंत्रता का अनुभव करे । सरकार में सरकारी प्रतिष्ठानो मे बराबरी की भूमिका निभाये । स्वतत्रता सवर्ण दलित सभी का जन्मसिद्ध अधिकार है । अतएव सवर्ण का प्रथम कर्तव्य है कि वह दलित को आधुनिक शिक्षा देकर उन्हें इस लायक बनाये कि वे राष्ट्रोत्थान मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके ।

डा अम्बेडकर सृजनात्मक राजनीतिज्ञ थे । वे तर्कवादी थे श्रद्धा, भक्ति, भावुकता आदि को कोई स्थान नहीं देते थे । अपनी तर्कवादी और बेबाक प्रवृत्ति के कारण ही संविधान मे उन्होने भारत राष्ट्र की जगह हम भारत के लोग शब्द का उल्लेख किया ।

जनतत्र में उनका अगाध विश्वास था, इसे वह जीवन की कला मानते थे । इसके द्वारा बिना रक्त की बूद बहाये क्रान्ति लाई जा सकती है । इसमें पक्ष विपक्ष की मजबूती आवश्यक है । एक व्यक्ति, एकपार्टी, एकवाद के रूप में (पौरोहित्यवाद)

यदि सत्ता रह जाये तो ससदीय प्रणाली की हत्या हो जाती है । विपक्ष ही सत्ता के लोग और शक्ति की अति पर सतत् नियत्रण रखता है । इसी भावना से प्रेरित उन्होने स्वतत्र मजदूर पार्टी का गठन किया जिसका घोषणापत्र लोक कल्याणकारी विचारो का व्यापक मसौदा था । जब उन्हे सविधान बनाने का मुखिया पद का कार्य मिला तब उन्होने लोककल्याणकारिताउन्मुख रखने का अनथक प्रयास किया । स्वतत्र भारत मे वह कानून मत्री बने ।

वे भारतीयता के प्रेमी थे वह समता चाहते थे परन्तु भारतीय आदर्शो के साथ । फूले, रानाडे, आगरकर आदि विचारकों की उदारता का वह भारत चाहते थे । वह पहले भारतीय थे और अन्त तक और कुछ न होकर भारतीय ही रहना चाहते थे, हम पहले भारतीय है बाद मे और कुछ का नारा उन्हे पसन्द नही था राष्ट्र के प्रति उनमे अटूट श्रद्धा थी । जब कभी देश के हित व अम्बेडकर के हित मे टकराव होगा तो वह देश को तरजीह देगें लेकिन जब कभी अस्पृश्य हित और देश के नाम पर बोलने वाले सवर्ण से टकराव होगा, तो वह अस्पृश्य का हित देखेगे । सवर्ण हितों पर अस्पृश्य हितो की बलि नही दी जा सकती है ।

वे जानते थे कि जाति प्रथा गरिमा के साथ साथ समता मूलक समाज के भी विरूद्ध है । यह जाति प्रथा मनु से पहले स्थापित थी और स्थापित करने मे राजसी शक्ति का विशिष्ट योगदान था । ब्राह्मण मे इसे लादने की शक्ति कदापि नहीं थी वर्णसकर की उत्पत्ति उसकी गोचारण सस्कृति मे था तथापि भारत में भौगोलिक और सास्कृतिक एकता सम्पूर्णता मे है जिससे उन्हे स्नेह है ।

वे सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता महसूस कर रहे थे । वे मार्क्सवादियों के धन सिद्धान्त को चुनौती देते है और भारत की धार्मिक दार्शनिक परिस्थिति से टकराने को उकसाते है । मनु के कानून अब तक विलुप्त हो गये है उसमे अपवादस्वरूप विवाह व उत्तराधिकार ही बचा है । बची है तो मात्र प्रथाये । प्रथायें

मजबूत हो चुकी है और इसे राज्य अपनी शक्ति द्वारा लागू करता है । जिसका कारण सगठित जनसमूह की बाध्यकारी शक्ति का राज्य पर प्रबल हो जाना है अत इसका उन्मूलन आवश्यक है ।

उन्हे उसी समय आर्थिक भ्रष्टाचार,, रिश्वत, भाई भतीजावाद की दुर्गन्ध दूर से आ रही थी । जनतंत्र की सफलता के लिये वे एक अनुकूल पृष्ठभूमि की वकालत करते है । दरिद्रता, अशिक्षा, जाति वर्णभेद, जनतंत्र के लिये बहुत बडे खतरे होते है । कानून नियम का निर्माण मनुष्यता अपने हित के लिये करती है कानून के लिये उसमें मानवीय तत्वों का होना अनिवार्य है ।

राजनीति मे समता व आर्थिक विषमता की परिदृश्य मे बदलाव अत्यावश्यक है अन्यथा विपन्नता जनतात्रिक मुखौटे को अनावृत्त कर देगी । अग्रेज सरकार ने अब तक विषमता समापन का कोई यत्न नहीं किया है । उसने न तो हमें पानी दिया, न मदिर खुलवाये और ना ही आर्थिक ढाचे को हमारे शोषण से मोडा । ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप न करने का बहुत बडा अपराध किया है ।

अम्बेडकर गांधी युग को तमोयुग कहते है । इसके दो आधार हैं प्रथम विद्रोह की आकामक जागरूकता राणनीति और द्वितीय यह भय कि गाधी कहीं सेफ्टी वाल्व का कार्य करके चुप न हो जायें । इस गाधी युग का आरम्भ गाधी अम्बेडकर और सावरकर के एक साथ सुधारात्मक कार्यकमो के द्वारा होता है । अम्बेडकर को दया नहीं दिखानी थी बल्कि हम क्या करे का उद्‌बोध करना था । **उद्धारेदात्मनात्मानम** दया का दान नही अधिकार चाहिये का ध्येय उन्होने बनाया । उनका रास्ता भी सीधा था । गुलाम को गुलामी का ज्ञान करा दो वह विद्रोह कर देगा । उसका सन्देश था आत्मोद्धार हेतु लडते रहो । अभी कांग्रेस दलित मुददे पर क्या करना है का निश्चय नहीं कर सकी थी ।

गाधी जी के सामने पहला लक्ष्य था आजादी का दूसरा साम्प्रादायिकता का । अस्पृश्यता उनके प्रधान लक्ष्यो मे सविनय अवज्ञा के बाद आता है । जब वह देखते है कि सरकार ब्राह्मण –ब्राह्मणेत्तर नाम से काउन्टर बैलेस का प्रयास कर रहीं हैं । गाधी का मानना था कि अव्वल तो अब कोई वर्णव्यवस्था को मान्यता नहीं देता दूसरे आजादी के बाद इसे हम सुलझा लेगे । जबकि अम्बेडकर ने स्वय अस्पृश्यता के दश को भोगा था इसलिये जितनी जल्दी हो सके जिस भी कीमत पर सम्भव हो उन्हे दलित समाज की आजादी व समानता चाहिये थी ।

गाधी व अम्बेडकर दोनों ही आजादी व समानता चाहते थे, अन्तर मात्र क्रमो का था । गाधी पहले आजादी और तब समता चाहते थे जबकि अम्बेडकर पहले समता फिर आजादी करने को तैयार थे । इस अन्तर का कारण उनका भोगा गया यर्थाथ था । गाधी ने कभी अस्पृश्यता नही भोगी थी । एक बार भोगा था वह भी रगभेद और तब से आजादी की माग करने लगे और अम्बेडकर ने तो अपनी जिन्दगी इसी छुत अछूत के बीच गुजारी थी । अत उनकी जल्दबाजी अधैर्य नहीं कही जा सकती है।

डा अम्बेडकर नाग लोगो और आर्य अनार्य के आधार पर नये अस्पृश्य इतिहास का निर्माण करते है । जिसका मूल मन्तव्य दलितो मे आत्मविश्वास भरना था । इस आत्मविश्वास वृद्धि की सरचनात्क ढाचे का कार्य बहिष्कृत हितकारिणी सभा ने किया था । जिसने छात्रावास, पत्रिका, वाचनालय, क्लब स्थापना जैसे कार्य अपने हाथ में लिया था ।

13 नवम्बर 1927 को अस्पृश्य प्रान्तीय सम्मेलन में उन्होने अधिकार प्राप्ति हेतु "सत्याग्रह व प्रतिकार" का निर्णय लिया । हमारा लक्ष्य जल व मंदिर नहीं बल्कि वर्णव्यस्था को ध्वस्त करना है 27 दिसम्बर 1927 के महार सम्मेलन मे मनुस्मृति जलाने की बडी घटना प्रतिकार की हुयी । जिसकी जानकारी तक अम्बेडकर को

नही थी पूरी योजना ब्राम्हण सहयोगी गगाधर नीलकन्ठ सहस्रबुद्ध और दलित पी एन राजाभोज की थी जिसका बाद में अम्बेडकर ने समर्थन कर दिया था । इसकी तुलना आजादी की लडाई मे गाधी के विदेशी वस्त्रो की होली से की जाती है । ध्यातव्य है कि प्राय अम्बेडकर अपने को सनातन हिन्दू कहा करते थे । वे गीता के सत्याग्रह को स्वीकार करते थे, जोकि उन्हे नैतिक शक्ति प्रदान करता था ।

सत्याग्रह की पवित्रता उसकी नैतिकता की शक्ति पर ही निर्भर होती थी । अम्बेडकर साध्य की पवित्रता पर सूक्ष्म हिसा को स्वीकार करते थे अस्पृश्यता जैसी विशाल समस्या के लिये यदि कुछ लोगों के प्राण न्यौछावर हो जाये तब भी कोई चिन्ता नही, रेंकते रहने की अपेक्षा वीरता की ज्योति दिखा कर बुझ जाना अच्छा है ।

अपने समतावाद से वह महिला को अलग नही रखते थे बल्कि महिलाओ के लिये सभा मे प्रसूति के लिये सवैधानिक अवकाश का विधेयक विधान परिषद में रखा था । जिसमे सुझाव था कि सरकार को प्रसूति हेतु बोझ उठाना चाहिये ।

तिलक की गणपति पूजा का भी उपयोग अम्बेडकर ने दलित समाज के जागरण मे कर डाला उन्होने गणपति पूजा का अधिकार दलितो के लिये मागा । सनातनी नाराज हुये परन्तु अन्तत उन्हे अधिकार प्राप्त हो गया यह सनातानियो पर सुधारवादियो की विजय थी ।

अम्बेडकर ने दलित समाज के आरक्षण की मांग सरकार से की । सरकार ने कुछ आधारो पर दलितों की जनसंख्या पता की जोकि लगभग 5 करोड थी जिसकी पुष्टि साइमन कमीशन व अन्य स्त्रोतो से भी हो ती है अब तक मुसलमानों ।को आरक्षण दिया जा चुका था साइमन कमीशन का भारतीयो द्वारा बहिष्कार किया गया था । भारतीय नेताओं द्वारा आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू समिति

मे किसी दलित को आमात्रित नही किया गया था जबकि अग्रेज सरकार ने अम्बेडकर को आमन्त्रित किया और बम्बई सरकार ने उन्हें प्रान्तीय समिति में जगह दी थी इस कारण उन पर देशद्रोह का भी आरोप लगाया गया । यहा दो कारण थे प्रथम राष्ट्रीय नेताओ ने अम्बेडकर को आमात्रित करने लायक नहीं समझा और द्वितीय अम्बेडकर को दलित समाज हेतु अग्रेज सरकार से लाभ प्राप्ति की प्रत्याशा थी ।

कुल 18 सस्थाओ ने आयोग के समक्ष प्रतिवेदन दिया जिसमे 16 ने पृथक निर्वाचक मण्डल की मांग की । बाद में डिप्रेस्ड क्लासेज एसोशियेशन और बहिष्कृत सभा के प्रतिवेदन पर अम्बेडकर ने सरकार से जनसख्या के अनुपात मे प्रतिनिधत्व, वतनजागीर, फौज, पुलिस मे भर्ती के अधिकारो की माग की ।

डा अम्बेडकर भाषावार प्रान्त रचना के खिलाफ थे । उनका मानना था कि यदि हम भाषावार प्रान्त रचना का विचार स्वीकार करेंगें तो हमें इतने प्रान्तों की रचना करनी होगी कि प्रान्त की अवधारणा स्वय ही बेमानी हो जायेगी । वे क्षेत्रवाद व वर्गवाद के विरूद्ध थे क्योंकि इससे राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुचती थी । इस देश का नागरिक पहले भी भारतीय है और अन्त मे भी भारतीय है ।

एक भाषा, एक जीवन पद्धति और एक धर्म को वे राष्ट्रीयता के आधार मानते थे । भाषा विषय पर वे हिन्दी के आग्रही प्रतिपादक थे । केन्द्र की भाषा को ही राज्य की भाषा बनाया जाये इससे भाषावार प्रान्त रचना बेमानी है । अनेक भाषी प्रान्तो की तुलना में एक भाषी प्रान्तों मे जनतत्र का विकास अधिक तेज होता है । अतएव देश की भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होनी चाहिये भाषावाद को वे साम्प्रदायिकता का एक अन्य रूप मानते थे । वे छोटे राज्यो के समर्थक थे । कोई राज्य भूगोल, जनसख्या, अर्थ मे इतना बडा नही होना चाहिये कि अन्य को दबा सके ।

अम्बेडकर मुस्लिमो के प्रति अलग मत रखते थे । हिदू मुस्लिम मात्र दो समुदाय नहीं है बल्कि दो राष्ट्र हैं । भावुकता की हद तक भारतीय मुस्लिम अपनी विरासत या पश्चिम एशिया की अपनी अलग पहचान हेतु देखते है तब भी वह पृथक निर्वाचन मुसलमानो को देने के खिलाफ थे। ग्रीस, रूमानिया, युगोस्लाविया, बुलारिया मे भी मुस्लिम अल्पसख्यक है परन्तु वहा तो उन्होने पृथक निर्वाचक क्षेत्र की मांग नहीं की है।

उनका मानना था कि जैसे किसी राज्य का अन्य राज्य पर राज करने का अधिकार नहीं है। उसी प्रकार किसी विशिष्ट वर्ग को अन्य वर्ग पर शासन करने का अधिकार भी नही है । प्रत्येक व्यक्ति को जीवन एक ही बार व्यतीत करना है इसलिये उसी जीवन में अधिकतम उन्नति का मौका देने का मानवीय मूल्य स्वीकार करना चाहिये । स्वराज्य का कोई कारण न भी हो तो भी सबसे बडा कारण यहाँ की दरिद्रता व अकाल है । कोई समाज मात्र परिष्कृत न्याय व सुव्यवस्थित प्रशासन से जीवित नहीं रहता जीवन के लिये अन्न चाहिये । यह कल्याण स्वय का शासन पाने के बाद ही होगा ।

गोलमेज सम्मेलन के दौरान डा अम्बेडकर ने कहा कि जिन लोंगों की स्थिति गुलामो से बुरी है जिनकी जनसख्या फ्रास के बराबर है । ऐसे भारत के 1/5 लोगों की बात मै यहा विश्व के सामने रख रहा हूँ । हमारी माग है कि भारत सरकार लोगों द्वारा लोगो के लिये चलाया गया लोगो का राज्य होना चाहिये अर्थात जनतंत्र हो जो बिना किसी दबाव के अपनो कार्य करे । अपनी इस ब्रिटिश यात्रा मे उन्होने विश्व के सामने दलित समस्या को बृहद रूप मे उठाया था ।

अब तक (गोलमेज तक) भारतीय नेता एक दूसरे को कितना कम जानते थे यह ध्यातव्य है यथा गाधी जी अम्बेडकर को दलित के लिये लडने वाला कोई

ब्राम्हण नेता जानते थे तो और तिलक, गाधी जी को जैन समझते थे । जबकि एलफिस्टन की मेज पर सारी छोटी–छोटी जानकारी हमेशा पडी रहती थी ।

आरक्षित प्रतिनिधित्व पर उन्होने प्रतिवेदन दिया कि जनसख्या अनुपात मे दलितो को प्रतिनिधित्व साथ ही अस्पृश्य वर्ग को अवर्ण हिन्दू, प्रोटेस्टेट हिन्दू, अथवा नान कम्फर्मिस्ट हिन्दू कहा जाये । इसी आधार पर कम्यूनल अवार्ड प्रस्तुत कर दिया गया । जिसमे दो गुनी सीटे दलितो के आरक्षित कर दी गई जिसका गाधी जी ने विरोध किया और कहा कि अल्पसख्यक को आरक्षण तो ठीक है लेकिन दलित को ठीक नहीं क्योकि सिख या मुसलमान हमेशा ही सिख या मुसलमान रहेगे लेकिन दलित हमेशा के लिये दलित नही हो सकते ।

डा अम्बेडकर ग्राम प्रजातन्त्र के विरूद्ध थे क्योकि ग्राम पचायतो के कारण ही समूहीकरण वढा है । एक अशिक्षित देश मे विकेन्द्रीकृत लोकतत्र का अर्थ अधिनायकवाद है । 1935 के अधिनियम के आधार पर उन्होनें इडिपेडेन्ट लेबर पार्टी का गठन किया जिसकी स्थिति शीध्र ही बम्बई सरकार में काग्रेस के विपक्ष की हो गयी । इस पार्टी का आधार मुस्लिम लीग की भांति सिर्फ दलितों के लिये न होकर सर्वागीण था । डा. अम्बेडकर बाद मे संविधान सभा प्रारूप समिति के अध्यक्ष बने और स्वतत्र भारत की प्रथम पुस्तिका के निर्माता बन गये । जिसमें उन्होनें अपने आदर्शो को उचित स्थान देने का निश्चय किया ।

उनकी विदेश नीति शान्तिवादी थी । स्वतत्रता, सहअस्तित्व, मैत्री, शन्ति मूलाधार थे । चीन, रूस की तरफ झुकाव को वे सन्देह की दृष्टि से देखते थे अन्तत मनुष्य ही उनके विचारो का केंद्र था । जिसका विकास समता बन्धुत्व व आजादी द्वारा ही सम्भव था ।

* * * * * * * * * * *

डा अम्बेडकर की परम्परा को मा0 काशीराम ने आगे बढाया है डा अम्बेडकर ने शक्ति की अभिलाषा दलितोत्थान हेतु प्रकट की थी लेकिन वे शक्ति प्राप्त करने मे सफल नहीं हुये थे उनकी पृष्ठभूमि को "रिपब्लिक पार्टी आफ इन्डिया" ने पाना चाहा लेकिन वह सफल न हो सकी । वस्तुत महात्मा फुले डा अम्बेडकर की परम्परा को मा0 काशीराम ने आगे बढाया है उन्होने अपने इस आन्दोलन का वाहक बामसेफ, डी एस फोर तथा बहुजन समाज पार्टी जैसे सगठनो को बनाया है । इन संगठनों का आधार बहुजन समाज है।

डा अम्बेडकर ने जिस चाबी की तलाश राजनीतिक शक्ति के रूप में की थी वह तालाश मुख्यमत्री मायावती उत्तर प्रदेश के रूप मे प्राप्त हो गयी । यद्यपि इससे पूर्व भी दलित समाज के लोग मत्री नेता सब कुछ बने थें परन्तु उनका अस्तित्व इतना स्वतत्र नही था कि वह दलित समाज के हितो को लेकर गैर दलित समाज से टकरा सके । इसलिये उनका नामकरण मा0 काशीराम आक्रामक शैली मे चमचा के रूप मे करते है ।

भारतीय समाज स्पृश्य–अस्पृश्य दो भागों में विभक्त है काशीराम की अवधारणा में स्पृश्य समाज के लोग मनुवादी है जबकि अस्पृश्य समाज के लोग बहुजन समाज के विशिष्ट अग है । अस्पृश्य समाज को सविधान मे सरक्षित किया गया है परन्तु इनकी कोई परिभाषा नहीं दी गयी है । जहा अम्बेडकर को अस्पृश्यता की समस्या से बारम्बार दो चार होना पडा था वहीं मा0 काशीराम को आर्य समाज और मिशनरी गतिविधियों के जागरण के परिणामस्वरूप कभी छुआछूत का सामना नहीं करना पडा । वह कक्षा मे आगे बैठने वाले विद्यार्थी के रूप में अपना परिचय कराते हैं ।

मा0 काशीराम जातिव्यवस्था को तोडना नही चाहते और न ही उस पर मौन साधना चाहते है । वे जाति व्यवस्था को जोडना चाहते है । उनका लक्ष्य भारतीय

समाज की 6000 जातिया व राष्ट्र की 85 प्रतिशत जनसख्या का वह समाज है, जो कभी न कभी शोषित प्रताडित अवश्य था । वह सभी जाति वर्ग को जोडकर नया बहुजन समाज का निर्माण करना चाहते है । इस बहुजन समाज का आधार **समानतावाद मानवतावाद** होगा । इस बहुजन समाज के समतावाद मानबताबाद द्वारा मनुवादी समाज के असमतावादी व अमानवीय स्वरूप को ध्वस्त किया जायेगा ।

बहुजन समाज की जागृति के लिये वह शिक्षा प्रसार की वकालत करते है उन्हे विश्वास है कि दलित समाज मे बुद्धि व लगन की कोई कमी नही है, कमी है तो मात्र अवसरो की । शिक्षा प्रसार की आवश्यकता को सर्वप्रथम महात्मा फूले ने पहचाना था । अम्बेडकर ने उसको आगे बढाया **और और और** मजबूत करने की माग मा0 काशीराम करते है । अग्रेजी काल मे फूले, मिशनरी, अग्रेजी गतिविधियो के परिणामस्वरूप शिक्षा प्रसार सम्भव हुआ था इससे पारम्परिक समाज की शिथिलता में तर्कवादी दृष्टिकोण आया था मा0 काशीराम अब मेडिकल, तकनीकी तथा अन्य सभी प्रभागो मे दलित अवसरो की वकालत करते है ।

अग्रेजी काल मे जागरूकता सर्वप्रथम प्रेसीडेन्सीज मे आई थी क्योकि वही अग्रेज पहले आये और आधुनिकतावादी गतिविधिया आरम्भ हुई । इसीलिये कलकत्ता प्रेसीडेन्सी मे नवजागरण आया तो बम्बई प्रेसीडेन्सी मे महात्मा फूले व डा0 अम्बेडकर का प्रादुर्भाव हुआ ।

दलित समाज में अपनी जागरूकता के क्रम में अपने इतिहास का निर्माण किया । कहा गया कि जिस समाज को मिटाना हो उसके इतिहास को मिटा दो । यह खोज डा0 अम्बेडकर ने भी की थी, उन्होने ही आर्य–अनार्य और आर्य नागों के अमान्य सिद्धान्त का विकास किया था ।

मा0 काशीराम समाज से प्रश्न करते है कि स्वतत्र भारत मे दलित समाज की वास्तविक अपेक्षा और उपलब्धि क्या रही है । साम्राज्यवाद से निकलकर हमने आजादी पाई तो आजादी की किरण कहा तक पहुची । इस पर बहस होनी चाहिये ।

डा अम्बेडकर और काशीराम दोनो इस बात को मानते हैं कि हिन्दू धर्म समाज ने एक **जाति संस्कृति** की सर्जना की है । धर्म ने जाति का स्वरूप ग्रहण कर लिया है । धर्म व्यक्तिगत होने की जगह साझे स्वरूप मे आ गया । जिससे शोषण व उत्पीडन को बढावा मिल रहा है । इस व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन होना चाहिये ।

मा0 काशीराम 6000 जाति मे बिखरे 85 प्रतिशत के बहुजन समाज को इकट्ठा करने के लिये अनेक सगठनो और पत्र पत्रिकाओ, की स्थापना करते है उनका लक्ष्य सत्ता प्राप्ति नहीं है उनका लक्ष्य समतामूलक समाज की स्थापना करना है ।

उनका मानना है कि शोषण की व्यवस्था धर्मान्तरण से भी समाप्त नहीं होती है, वह अन्य धर्मो मे भी साथ–साथ चली जाती है । अन्य धर्मो मे जो अनुसूचित जाति , अनुसूचित जनजाति के लोग है वे वस्तुत अनार्य शूद्र से धर्मान्तरित लोग है।

15 प्रतिशत उच्च वर्ग के मनुवादी लोग जो कि शोषक प्रवृत्ति के लोग है । जिनके पास अधिकाश सम्पत्ति का मालिकाना है यद्यपि अम्बेडकर की भांति काशीराम भी समतामूलक समाज की स्थापना चाहते है परन्तु इसके लिये वह सभी जातियों को जोड़कर सत्ता प्राप्त करना चाहते है । किसी चीज की समाप्ति के लिये सर्वप्रथम हमे उसके अस्तित्व को स्वीकार करना होगा । वह अपना

सामाजिक न्याय नये तरीके की सोशल इजीनियरिंग से प्राप्त करना चाहते है । इसे पाने के लिये वह आक्रामक राजनैतिक शैली और आक्रामक नारों का सहारा लेते है । **उनकी आक्रामकता से बुद्धिजीवी भयभीत होते है, उच्च वर्ग की जनता क्रोधित होती है, उनका व्यक्तित्व विवादास्पद होता है,** जिससे अन्तत जागृति व चेतना का प्रसार होता है ।

ससदीय लोकतत्र से उनका गहरा लगाव है इसी में 85 प्रतिशत के भविष्य की चाबी छिपी हुई है । भारतीय सविधान से उनका आत्मीय लगाव है वह इसी लोकतात्रिक व्यवस्था के माध्यम से 85 प्रतिशत को सत्ता सौंपना चाहते है क्योंकि बहुजन समाज ही इसका वास्तविक अधिकारी है ।

अस्पृश्यता का जन्म 5वी सदी के पूर्व हो गया था । अनेक अस्पृश्य जातियो को सूची क्रम मे रखकर भारतीय सविधान मे अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति का निर्माण किया गया । ससद भी समय–समय पर विनियम बनाती रहती है परन्तु आकडे बताते है कि दलित समाज के प्रति अपराध धटने के बजाय बढे है ।

अस्पृश्यता निवारण का कार्य अछूतानन्द ने उत्तर भारत में आरम्भ किया था । जिसे अग्रेजी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नीतियो ने बल प्रदान किया । अग्रेजी नीतियो ने अनेक अवरोध पारम्परिक समाज में खडे कर दियें थे जिससे उसका टूटना अनिवार्य हो गया था ।

मा0 काशीराम यद्यपि 6000 जाति व 85 प्रतिशत जनता को इकटठा कर बहुजन समाज का निर्माण कर सत्ता तो पाना चाहते है परन्तु वह 15 प्रतिशत मनुवादी उच्चवर्णीय वाले समाज को शूद्र कदापि नहीं बनाना चाहते हैं । इसीलिये जब वह अनुभव कर लेते है कि दलित समाज में जागृति का समावेश हो चुका है तो वह **सर्वजन समाज** की बात करने लगते है क्योंकि उनका लक्ष्य समता मूलक

समाज की स्थापना करना है राष्ट्र का विखण्डन करना नही है उनको ज्ञात है कि राष्ट्र एक है जहा सबको साथ रहना है ।

विवाह, परिवार आदि सामाजिक विषयो पर मा0 काशीराम अपना ज्यादा समय नही जाया करते है । उनका मानना है कि जब दलित समाज जागृत हो जायेगा, बहुजन समाज इकट्ठा हो जायेगा, सत्ता की चाभी प्राप्त हो जायेगी तो वह स्वत ही इन छोटी–मोटी समस्याओ का निपटारा कर लेगा ।

बहुजन समाज पार्टी का गठन नवशिक्षित अभिजनो द्वारा किया गया है । यह लडाकू है, यह सम्भ्रान्त है, इन्हे सत्ता आत्मसम्मान मे बराबरी चाहिये, इसके लिये लडना भी पडे तो बुरा नहीं । कारण स्पष्ट है कि जो सदियो से दबे कुचले है उनको आत्मसम्मान दिलाना इतना आसान नही है कि कहा जाये और मिल जाये । उसके लिये आकामकता एक सटीक तकनीकी होगी । इसी के द्वारा जन जागृति का सचार होगा । **यहां तकनीक आक्रामकता है लक्ष्य समता मूलक समाज है रास्ता सत्ता की चाबी से होकर जाता है ।**

* * * * * * * * * * *

धर्म एक व्यक्तिगत सोच है । धर्म का निष्कर्ष मनुष्यता के हेतु है व्यक्ति समूह एव समाज का निर्माण करता है । समाज के हेतु वहीं धर्म सत है जिसमे मानवतावाद की पराकाष्ठा हो । धर्म की गुणवत्ता उसके मानवजीवन और मानवसमाज के परिप्रेक्ष्य मे ही आकी जा सकती है । धर्म में असमानता का समावेश अनुचित है असमानतावादी धर्म असमानतावादी समाज मे ही चल सकता है यदि धर्म असमान होगा तो लोकतत्र की आत्मा बन्धुत्व और समानता स्वय ही ध्वस्त हो जायेगी ।

ब्राह्मण धर्म में त्रग्वेद के दशम स्कन्ध मे शूद्र वर्ण की व्यूत्पत्ति मानी जाती है इससे पूर्व दास, दस्यु के रूप मे निम्नता थी बाद के धर्म शास्त्रो द्वारा वर्णशकर

समाज की व्यूत्पत्ति की गयी । जिसमे अस्पृश्य चान्डाल वर्ग रखे गये व इनसे समाज के घृणित कार्य कराये जाने लगे । यद्यपि प्राचीन काल में बिदुर बाल्मीकि आदि ऋषियों को महत्व प्रदान किया गया परन्तु बाद के काल मे यह दूरूह हो गया । यह दूरूहता गुप्तकाल से सतत् अग्रेजी काल तक चलती रही ।

डा अम्बेडकर ने **शूद्र कौन अछूत कौन और कैसे** ग्रन्थ लिखकर इनकी दशा सुधारने का यत्न किया । यहा उन्होने शूद्रों को नागवशी और आर्यावर्त का महान कारीगर तक स्थापित किया गुलामगिरी मे ज्योतिबा फूले ने गुलामी पर प्रहार किया ।

पहले वर्ण विभाजन कर्म पर आधारित था बाद मे यह जन्म पर आधारित हो गया इससे जाति व्यवस्था पनपी जिसने समाज व्यवस्था को दुरूह बना दिया । आधुनिकता के माथे पर जाति एक कलक बन गयी । जाति योग्यता व क्षमता के आगे पहुच गयी । जिसके लिये हिदू धर्मशास्त्र उत्तरदायी है समय-समय पर अनेक विचारको ने दलित समाज की उन्नति और असमतावाद की समाप्ति पर विचार व कार्य किया कबीरपन्थी, शिवनारायणी व आर्यसमाज ने इसकी अगुवाई की । दलित समाज के विचारको यथा ज्योतिबा फुले अछूतानन्द, डा अम्बेडकर, काशीराम जैसे लोगो ने इस पर प्रहार किया है इन सबका प्रयास दलितो को उनका आत्मसम्मान वापस कराना था । काशीराम भारतीय हिंदू सस्कृति को जातियो की सस्कृति कह कर चोट करते हैं ।

वस्तुत **फूले का सत्यशोधक समाज ई. वी. आर. पेरियार का बुद्धिवाद और नास्तिकतावाद तथा बाबासाहेब अम्बेडकर का बौद्ध धर्म पुर्नजागरण** इस चेतना को जगाने के उपागम थे इन्ही उपागमों की अगली पीढी में काशीराम की स्थापना 'बहुजन धर्म' की है बहुजन समाज आपसी भाईचारा के आधार पर शूद्र, चान्डाल जातियों को सभी धर्मो से एकत्रित कर उन्हे शक्ति व आत्मसम्मान प्रदान कराने का

धर्मान्तरण पर वह विल्कुल स्पष्ट ढग से कहते है कि – धर्म वही उचित व मान्य है जिसमें मानवतावादी समतावादी तत्व हो धर्म परिवर्तन से कोई लाभ हानि होने वाली नही है लाभ हानि के लिये सभी को आपसी बन्धुत्व व समानतावाद को मानवतावादी धरातल पर अपनाना होगा अस्तु धर्म परिवर्तन एक निरर्थक कवायद है ।

* * * * * * * * * * *

आर्थिक प्रश्न पर कहा जा सकता है कि अर्थ ही वह प्रधान अवयव है जिससे व्यक्ति को जीविका व प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। अर्थ के माध्यम से ही समाज गतिशीलता प्राप्त करता है । व्यवसाय के माध्यम से व्यक्ति आर्थिक गतिविधियो मे सलग्न होता है । भारतीय समाज की आर्थिक गतिविधिया शिथिल, स्थिर व रूढ रही है । इनमे त्वरित परिवर्तन का अभाव था । परन्तु वर्तमान युग मे व्यक्तिवाद, विकासवाद, विज्ञानवाद, तर्कवाद की ऑधी अर्थव्यवस्था के प्रत्येक कोने तक पहुचने से पारम्परिक, शिथिल, व जर्जर ढाचे मे सक्रमण होना समीचीन था । इस सक्रमण से निकली उर्जा अन्तत समाज के निचले पायदान पर बैठे दलित वर्ग तक पहुच गयी है ।

प्राक व्यवस्था जाति वर्ण के आधार पर सचालित थी जिसमें प्रत्येक जाति का अपना एक विशिष्ट कार्य नियत था । समाज के जितने घृणित कार्य थे वे सब चाण्डाल, अछूत व शूद्र वर्ग द्वारा सपन्न किये जाते थे । व्यवसाय जन्म से ही निश्चित था उसमें बदलाव कर पाना असभव था । अग्रेजी काल मे इस वर्ण जाति आधारित अर्थव्यवस्था मे यद्यपि सक्रमण के लक्षण दिखाई पडने लगे थे किन्तु यह परिवर्तन स्वायत्त ग्रामीण सरचना को भेदने मे कामयाब न हो सका था ।

वर्ण एवं जाति आधारित श्रम विभाजन को वैज्ञानिक स्वरूप देना उचित नहीं जान पडता है । कारण स्पष्ट है कि यहा श्रम नियत है उसके 'चयन की स्वतंत्रता'

"कर्ता" को नही है यह चयन की परतत्रता ही अर्थव्यवस्था को पगु बनाती है और वैज्ञानिकता का पटाक्षेप कर देती है ।

डा अम्बेडकर ने स्वतत्रता के समय कहा था कि अब हम राजनीतिक रूप से तो समानता प्राप्त कर रहे है लेकिन सामाजिक और आर्थिक रूप से इसे प्राप्त करना आवश्यक है अन्यथा व्यवस्था का क्षरण होगा । जाति आधारित कार्यो को करने मे स्वेच्छा लगाव के बजाय घृणा का पुट अधिक होता है घृणा के कारण व्यवस्था असफल हो गयी है । समाजशास्त्रियो ने विभाजित श्रमिक के लिये किसी विशिष्ट श्रम को नियत करने की प्रक्रिया को पूर्णतया अवैज्ञानिक घोषित कर दिया है।

इन्ही बातो को काशीराम और अधिक सपाट बयानी के साथ स्पष्ट करते है कि – अभी तक हम सामाजिक व आर्थिक समानता प्राप्त करने के नितान्त असफल रहे है जिसकी परिकल्पना डा अम्बेडकर ने की थी । यद्यपि राष्ट्रीय परिदृश्य मे हम अपनी प्रगति से सन्तुष्ट हो सकते है परन्तु यह सन्तुष्टि समस्या का सामान्यीकारण ही होगा । यहा विकास के साथ असमानता भी बढी है । गरीब वही खडा है अमीर और अमीर हो गया है । भूमि सुधार अभी तक नही किये गये है । इनको पूरा करना अत्यावश्यक है ।

ब्रिटिश भारत मे राजस्व का वृहद भाग कृषि से ही प्राप्त होता था । अर्थव्यवस्था का केन्द्र विन्दु खेती थी जिसके सचालन के लिये एक **जजमानी व्यवस्था** थी । इसी जजमानी व्यवस्था के द्वारा कृषि आधारित ग्रामीण समाज धीमी गति से सचालित होता रहता था । इस जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत दलित वर्ग के लोग जिनके पास भूमि नही थी अपने भूमिधरो से सेवा के बदले अनाज या अनाज के लिए भूमि का एक टुकडा प्राप्त किया करते थे ।

यदि हम मात्र गगाघाटी व उसके सर्वाधिक उपजाऊ क्षेत्र उत्तर प्रदेश की बात करे तो यहा की भूमि व्यवस्था भिन्न थी यथा पश्चिम उत्तर प्रदेश में भूमि छोटे जमीदारो के पास छोटी–छोटी जोतो मे थी तो मध्य व पूर्वी भागो मे भूमि बडे भूस्वामियो व ठाकुर जमीदारो के हाथो मे थी । पश्चिमी उत्तर प्रदेश की जोते छोटी थी शेष राज्य की जोते बडी थी । पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे दलित व मध्यम जातियो के पास भूमि थी जबकि अन्य भागो मे उनके भूमि तो थी परन्तु मालिकाना नहीं था वे अपने भूपतियो पर आश्रित थे ।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे नहरों का जाल पहले फेला । जिससे वहा वाणिज्यिक फसलो का उत्पादन भी पहले आरम्भ हुआ जिससे लोगो के हाथ मे धन आया और साथ मे जागरूकता भी आई । पश्चिमी उत्तर प्रदेश के दलितो के हाथ मे जब अर्थ आया तब वह अन्य उद्योगो की ओर उन्मुख हो गया । भूमि पर उसकी आश्रितता कम हो गयी जिसके परिणामस्वरूप सस्कृतिकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई ।

शेष प्रदेश की स्थिति अलग थी यहा नहरे देर से आई । वाणिज्यिक फसलों का दौर देर से आया था । जिससे किसानों के हाथ में धन आया परन्तु यहा का दलित वर्ग भूमि का मालिक नही था वह मात्र भूमि पर मजदूर था इससे किसान के पास तो पैसा आया परन्तु वह मजदूर के पास तक नही पहुच सका । भूपति अधिकांशत उच्च वर्ग के लोग थे । निम्न जाति के लोग अधिकाशत मजदूर थें उन्हे वाणिज्यीकरण का कोई लाभ नहीं प्राप्त हो सका ।

इस व्यवस्था में परिवर्तन तब आया जब सरकारी विकासपरक योजनाये चलायी गयी । इनके द्वारा गावों में सडक, रोजगार आदि आधारभूत संरचना का विकास किया गया । जिससे एक तरफ जहा अतिरिक्त रोजगार पैदा हुआ वहीं दूसरी तरफ आवागमन भी तेज हो गया अब मजदूर के पास अपने श्रम के विक्रय को लेकर मोलभाव करने की शक्ति आ गयी । अब मजदूर के पास भूमि पर

रोजगार के अलावा भी रोजगार का एक अन्यत्र विकल्प था । वह तीव्र आवागमन का लाभ उठाकर दूर तक अपना श्रम बेचने जा सकता था । साथ ही उसे खाली समय मे भी रोजगार प्राप्त हो गया । इस दशा मे भूमिपति को भी मजदूरी दर मे वृद्धि करनी पडी । इन सबसे मजदूरो को अन्तिम लाभ मिला । मजदूरों की दशा मे सुधार आने लगा जब आर्थिक दशा मे सुधार आया तब सामाजिक व राजनीतिक चेतना का दौर स्वयमेव आ गया ।

अर्थ से जुडी एक अन्य समस्या पर घ्यान सकेन्द्रण आत्यवाश्यक है । दलित वर्ग के लोग जिनके पास भूमि नहीं हैं । वे गांव से रोजगार की तलाश में शहर आ जाते है । शहर मे वह झुग्गी बस्ती के रूप मे एक नयी समस्या खड़ी कर देते है । काशीराम का मानना है कि यदि इन भूमिहीन दलितों को भूमि के कुछ टुकडे उपलब्ध करा दिये जाये तो यह शहरोन्मुखता अपने आप बन्द हो जायेगी और हमें झुग्गी बस्तियो से छुटकारा मिल जायेगा । भूमि उपलब्ध करा पाना बहुत मुश्किल नहीं है क्योंकि अभी बहुत सी भूमि बिना जोत के पडी है ।

हरित क्रान्ति का प्रभाव प्रथम दौर में पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गेहूं के रूप मे व द्वितीय दौर मे चावल के रूप मे शेष प्रदेश मे हमे दिखाई देता है । हरित क्रान्ति से सम्पूर्ण जनता को लाभ पहुचा परन्तु भूस्वामी वर्ग का लाभ अपेक्षाकृत अधिक था इससे आर्थिक असमानता की खाई पहले से भी अधिक चौडी हो गयी परन्तु इससे अन्ततः दलित चेतना का जागरण हो गया । रिक्शा खीचना, चमडा व्यवसाय, विनिर्माण उद्योग आदि कार्य नयी जागृति के उपागम बन गये । बेगार बन्दी के रूप मे वेतन वृद्धि को लेकर हडताले कृषि में भी दिखाई पडने लगी यह कृषि मे जागरूकता व आधुनिक तत्वों का प्रवेश था ।

अन्तत अर्थ शक्ति के आने से दलित जागृति आई और समाज का पारम्परिक ढाचा जो सदियों से शिथिल सुप्तावस्था मे पडा था वह ध्वस्त होने

लगा । नयी जागृति मे नये सगठन का विकास हुआ । इस सागठनिक शक्ति से बहुजन समाज पार्टी सत्ता केंद्र तक पहुच गयी । इसी जागृति के परिणामस्वरूप बहुजन समाज की विचारधारा शीघ्रता से आम दलित तक आसानी से पहुंच सकी । इससे भारतीय अर्थव्यवस्था ने समाज को समतावादी सीढी की ओर एक कदम आगे बढा दिया । ध्यान देने योग्य बात है कि यदि सत्ता ही सामाजिक और आर्थिक समानता की चाबी है तो अर्थ समृद्धि वह उपागम है जिससे सत्ता की प्राप्ति और सुदृढीकरण सभव हो सकता है ।

* * * * * * * * * * *

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में हम देखे तो हमें ज्ञात होता है कि काशीराम ने **बहुजन समाज पार्टी** नामक एक राजनीतिक दल का गठन किया और लगभग 20 वर्ष के अत्यल्प काल मे ही उसे अपनी कठिन मेहनत के द्वारा सत्ता के शीर्ष पर पहुचा दिया । साथ ही पार्टी को राष्ट्रीय स्तर की एक मान्य पार्टी के रूप में स्थापित कर दिया । अत्यल्प काल मे ही बहुजन समाज पार्टी ने देश के सबसे बडे राज्य मे सत्ता की वह मास्टर चाबी प्राप्त कर ली जिससे कि सभी तालों को खोला जा सकता है ।

कदाचित यही इच्छा अम्बेडकर की थी जब उन्होनें कहा था कि हमने **एक व्यक्ति एक वोट** के आधार पर दलित समाज को राजनीतिक सत्ता सौंप दी है और जब यह समाज पढलिखकर तैयार हो जायेगा तब वह अपना राजनीतिक अधिकार स्वय प्राप्त कर लेगा । वही पढ़ा लिखा वर्ग जब 1990 के दशक मे अभिजन की श्रेणी में आया तब उसने अपने स्वत्व की तलाश की इस 'स्वत्व' 'प्रतिष्ठा' 'आत्मसम्मान' तलाशी अभियान की अगुआई काशीराम ने की थी फलत अत्यल्प समय की राजनीतिक उठापटक के बाद दलित चेतना के आधार पर टिकी बहुजन समाज पार्टी सबसे बडे राज्य मे सत्ता शीर्ष तक पहचने में सफल हो गयी ।

मा0 काशीराम ने अभिजनो की इस जागृति को ठीक तरीके से ठीक समय पर पहचान कर सर्वप्रथम अभिजनों को बामसेफ के नीचे इकट्ठा करने का प्रयत्न किया । बामसेंफ सरकारी कर्मचारियो के मजबूत सगठन के रूप मे आज भी विद्यमान है । जिससे बहुजन समाज पार्टी को अभिजनो का मजबूत आधार प्राप्त होता है।

मा0 काशीराम ने डा अम्बेडकर को अपने दर्शन का आधार बनाया । इसका कारण था कि डा. अम्बेडकर की पैठ गहराई तक जम चुकी थी । इसका इस्तेमाल कर शीघ्रता से दलितों को अपने साथ लाया जा सकता था । सामाजिक जागृति व चेतना प्रसार हेतु डी एस फोर (दलित शोषित समाज संघर्ष समिति) का गठन किया गया इसका लक्ष्य प्रजातान्त्रिक सरकार के लिये प्रजातान्त्रिक समाज का निर्माण करना था । इस सगठन ने दलित समाज को जागृत करने व एक मच पर लाने का कार्य किया ।

उन्होने जागरूकता दस्तो का गठन किया जो छोटे–छोटे क्षेत्रो मे जाकर जागृति का सृजन करते थे । इसमें मा0 काशीराम ने साइकिल रैली, पहियों पर अम्बेडकर मेला, और पूनाधिक्कार जैसी भावनात्मक गतिविधियो का प्रयोग किया । इन गतिविधियो से आम दलितों को सम्बद्ध किया गया । सीधे व्यक्ति से संवाद उनकी तकनीक बन गयी ।

1970 के दशक में उत्तर प्रदेश मे दलित नेतृत्व खाली था । जितने दलित नेता थे वे सब काग्रेस की गोद में जाकर बैठ गये थे । अत दलितो की भावनाओं को तीखे ढग से अभिव्यक्ति देकर दलितों को अपनी ओर आकृष्ट करना आसान था । इसी रिक्त स्थान को भरने का एक गम्भीर प्रयास अपनी अति आक्रामक शैली के माध्यम से माननीय काशीराम ने किया ।

उनकी राजनीतिक शैली अति आक्रामक है वे सीधे सवर्ण शोषको पर चोट करते है । इस चोट को दबा–कुचला शोषित वर्ग अपनी चोट की अभिव्यक्ति के रूप मे स्वीकार करता है । इसी शैली व जागरूकता तकनीकी के माध्यम से मा0 काशीराम ने अपनी छवि दलितो के मसीहा व प्रतिकारक के रूप मे बनायी है ।

इसके लिये उन्हें किसी घोषण पत्र की आवश्यकता नही होती बल्कि वह मात्र समानता के नारे और मास्टर चाबी की तालाश द्वारा ही दलित समाज को एकजुट करने मे कामयाब हो जाते है ।

जाति की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है । जाति उन्मूलन हेतु अनेक जातियों को एकबद्धता राजनीतिक दर्शन बन गया है । उनकी अपीले भी अत्यन्त सरल भाषा मे होती है जिससे उनके श्रोता उसे अपील को आसानी से समझ सके। यहा नेताद्वय अपनी अत्यन्त तीखी वक्तृता शैली का मनोवैज्ञानिक उपयोग करते है । इसी कारण उत्तर प्रदेश मे इनका मत प्रतिशत लगभग 22 प्रतिशत हो गया है । उल्लेख है कि उत्तर प्रदेश की जनसंख्या मे अनुसूचित जाति व जनजाति सख्या भी लगभग 22 प्रतिशत ही है ।

समाज की जागृति मे समाज के अभिजनो की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है अभिजन जातीय वर्गीय सगठनो मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । अभिजन ही जागरूकता के प्रथम पायदान पर खडे लोग होते है ।

भारत में जाति चेतना उभारकर उसका लाभ हमेशा लोग लेते रहे है । यद्यपि डा0 अम्बेडकर इसके सख्त खिलाफ थे तथापि उनके समय में भी लोग जाति चेतना उभारकर लाभ लेते थे । भारतीय प्रजातत्र में जाति चेतना उभारकर उसका लाभ लेने की लम्बी परिपाटी रही है । इसका इस्तेमाल मा0 काशीराम ने अपने तरीके से किया उन्होने जातीय आधार को बहुजन समाज मे और बहुजन समाज को राजनीतिक शक्ति मे तब्दील कर सामाजिक समतावाद लाने का लक्ष्य बनाया ।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की प्रजातात्रिक सरकारो ने अनेक विकासपरक कार्यक्रम चलाये जिससे देशवासियों के सामाजिक शैक्षिक आर्थिक स्तर में काफी बदलाव आया । इससे जहा एक तरफ दलित जागरूक हुआ वही दूसरी तरफ उसके अत्याचारो व शोषण का दायरा बढ गया । कृषि, मजदूरी, बेकारी आदि प्रश्नों पर अत्याचार व सघर्ष काफी बढ गया । कांग्रेसवाद का बिखराव भी बहुजन समाज पार्टी के उभार मे सहायक बन गया । बसपा का आज जो वोट बैंक है वह पूर्व मे कांग्रेस का वोट बैक था । कांग्रेस अनेकानेक कारणो से बिखराव के दौर मे बढी जिससे उसका वोट बैक बिखर गया जिसके एक बडे हिस्से पर बसपा ने अपना कब्जा जमा लिया ।

बसपा के उभार को दो चरणो में बाटकर देखा जा सकता है पहला चरण वह था । जब वह अपनी सभाओं से सवर्णो को उठकर चले जाने का आहवान करती थी जबकि दूसरे चरण मे केन्द्रीय सत्ता शीर्ष के कुछ पदो को छोडकर शेष के लिये सवर्णों को योग्य घोषित किया । यानि सवर्णो से दूरी नजदीकी में बदल गयी । इस बदलाव के कई कारण थे प्रथम जो सवर्ण हमारी विचारधारा स्वीकारते हैं उन्हें हमें स्वीकार करना चाहिये। दूसरे हमारा मत प्रतिशत दलित सख्या अनुपात पर स्थिर हो गया है इसमे बृद्धि तभी हो सकती है जब लचीला रूख अपनाया जाये, अन्तत एक बार सत्ता मिलने से जागरूकता तेजी से बढती है अत हमे सत्ता पाने के लिये मनुवादी पार्टियो से सहयोग गठबन्धन और सवर्णो को चुनावों में टिकट देना चाहिये ।

किसी भी पार्टी और आन्दोलन को चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है । इसका भी इतजाम मा0 काशीराम ने नये तरीके से किया जैसे **एक नोट एक वोट** पर धन का सकलन फिर सभा स्थल से बारह हजार की थैली का लिया जाना तत्पश्चात 52 वे जन्मदिन पर बावन हजार की थैली हासिल करना । बाद मे अधिक धन देने वाले आयोजक के यहां सभा का समय न होते हुये भी निकालना ।

यह सब धन प्राप्ति की नयी तकनीके थी । जिसके द्वारा काशीराम ने धन इक्ट्ठा किया ।

इसके साथ बामसेफ सगठन के सदस्यो लिया जाने वाला सदस्यता शुल्क व वार्षिक शुल्क आन्दोलन सचालन के लिये अनवरत धनापूर्ति का श्रोत था । बामसेफ के लाखों सदस्य हैं । इससे पार्टी के पास एक बडा कोष इकट्ठा हो जाता है ।

पार्टी का सगठन पूर्णतया केन्द्रीकृत है । पार्टी मे एक अध्यक्ष मा0 काशीराम है वही सब कुछ हैं दूसरे नेता के तौर पर महासचिव सुश्री मायावती हैं शेष सभी पदाधिकारियों की ऊपर से नियुक्ति की जाती है । पार्टी ने नीला झडा, हाथी, जयभीम, जैसे अनेक प्रतीक को अपनाया है । पार्टी का एक मात्र एजेण्डा सामाजिक समानता की प्राप्ति है जिसके लिये राजनीतिक सत्ता प्राप्ति अत्यावश्यक है । इसी क्रम मे वे अत्यन्त तीखे नारो का सृजन करते है जो क्रिया–प्रतिक्रिया नियम के तहत अन्तत दलित जागृति मे सहायक होते है । साध्य दलित जागृति है इसके लिये साधन कुछ भी अपनाये जा सकते है । साध्य पवित्र है साधन की पवित्रता का कोई विचार नहीं है ।

बसपा राजनीतिक रूप से निर्णायक भूमिका मे 1996 मे आती है अब तक उसने तीव्र विकास के झडे गाड दिये थे परन्तु 1996 और 1998 में उसकी वृद्धि रूक गयी थी तब बसपा थिकटैंक ने नयी रणनीति मनुवादी सहयोग की विकसित की । जिसमें कहा गया कि जो मनुवादी दल या व्यक्ति हमारी विचारधारा से सहमत है हमे उन्हे स्वीकार करना चाहिये । इस प्रकार सर्वजन समाज की अवधारणा विकसित हुई ।

बसपा का आरम्भिक चरित्र बहुजन समाज का था जिसका निर्माण उसने मनुवादियों के धिक्कार से किया था । यह प्रथम चरण 1984 से 1993 तक का

था । जिसे बहुजन युग कहा जा सकता है बसपा ने 1984 से ही चुनाव लडना आरम्भ कर दिया था परन्तु एक भी सीट जीतने में सफलता 1989 तक नही मिल सकी थी । इस काल मे वह वोटो का ध्रुवीकरण चुनाव व उपचुनावो के माध्यम से ही कर रही थी । 1989 तक बसपा ने अपनी पहचान एक मजबूत दल के रूप मे बना ली थी ।

1993 मे उसने अपनी चुनावी रणनीति बदली और बहुजन समाज के सबसे नजदीक दिखने वाली पार्टी समाजवादी पार्टी से गठबन्धन बनाने का फैसला किया जिसने चुनावों में सफलता हासिल कर सरकार का गठन किया परन्तु दोनों दलों के अलग अलग विचारधारात्मक द्वन्द्व के कारण गठबन्धन टिकाऊ न हो सका और 2 जून 1996 को वीभत्स गेस्ट हाउस काड हो गया और सरकार व गठबधन दोनों टूट गया ।

इस समय आन्दोलन का एक परिणाम जहा राजनीतिक ध्रुवीकरण के रूप मे दिखाई पडता है । वही अब सभी राजनीतिक दल दलितों को अपनी ओर आकर्षित करने का विशेष प्रयास करने लगे । सभी दलों ने दलितों के महत्व को स्वीकार किया । इसी जागरण का परिणाम था कि विश्व हिन्दू परिषद ने अयोध्या मे राम मदिर की नींव रखने हेतु एक दलित को आमत्रण दिया ।

सपा–बसपा गठबन्धन की चुनावी सफलता उल्लेखनीय तो रही परन्तु यहां बहुजन समाज के एक बडे हिस्से पर भारतीय जनता पार्टी ने अपना कब्जा जमाया था यथा आरक्षित 88 सीटो मे 34 सीटो पर भाजपा जीती । साथ ही जहां दलित जनसंख्या का प्रतिशत 25 प्रतिशत से अधिक था वहा गठबंधन को कुल 33.4 प्रतिशत मत ही मिले जिसका अर्थ स्पष्ट था कि अन्य पिछडा वर्ग सोशल इजीनियरिंग करने वाली भाजपा के साथ था । अन्य पिछड़ा वर्ग ने उच्च पिछडा